प्रकाशकीय

अपौरुषेय महाग्रन्थ अथर्व वेद का द्वितीय खण्ड सुविज्ञ पाठकों के कर कमलों में समर्पित करते हुए परम आनन्द लाभ होता है। वेद विश्व के प्रथम आदि ग्रन्थ और ज्ञान-स्रोत हैं। वेदों को जन-सुलभ करना हमारा परम लक्ष्य है। अभी तक वेदों के जितने संस्करण दृष्टि में आए हैं, वे सभी या तो केवल अत्यधिक पढ़े-लिखे विद्वानों के मनन योग्य हैं अथवा उनका मूल्य इतना अधिक है कि जन साधारण उनके दर्शन तक भी नही कर सकता। अतः हमने इन ग्रन्थों में वेदों की गहन वाणी का मर्म सरल हिन्दी भाषा में दिया है जिसे कम से कम पढ़ा लिखा व्यक्ति भी रामायण की भांति समझ सके और मूल्य भी इतना अल्प रखा है कि प्रत्येक साधारण गृहस्थ भी खरीदकर परम पुण्य का भागी बन सके। अथर्व वेद के इस द्वितीय खण्ड में एकादश काण्ड से मन्त्र प्रारम्भ होते हैं। इससे पूर्व के मन्त्र प्रथम खण्ड में दिए हैं। आशा है सुविज्ञजन समुचित लाभ उठायेंगे।

विनीत
प्रकाशक

अथर्व वेद द्वितीय खण्ड

एकादश काण्ड

१ सूक्त (प्रथम अनुवाक)

ऋषि—ब्रह्मा ।
देवता—ब्रह्मौदन ।
छन्द—पंक्ति, त्रिष्टुप, जगती, उष्णिक्, गायत्री ।

अग्ने जायस्वादितिर्नाथितेयं ब्रह्मौदनं पचति पुत्रकामा ।
सप्तऋषयो भूतकृतस्ते त्वा मन्थन्तु प्रजया सहेह ॥ १ ॥
कृणुत धूमं वृषणः सखायोऽद्रोघाविता वाचमच्छ ।
अयमग्निः पृतनाषाट् सुवीरो येन देवा असहन्त दस्यून् ॥ २ ॥
अग्नेऽजनिष्ठा महते वीर्याय ब्रह्मौदनाय पक्तवे जातवेदः ।
सप्तऋषयो भूतकृतस्ते त्वाजीजनन्नस्यै रयिं सर्ववीरं न यच्छ॥३॥
समिद्धो अग्ने समिधा समिध्यस्व विद्वान् देवान् यज्ञियाँ एह वक्षः ।
तेभ्यो हविः श्रपयञ्जातवेद उत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥ ४ ॥
त्रेधा भागो निहितो यः पुरा वो देवानां पितॄणां मर्त्यानाम् ।
अंशाञ्जानीध्वं वि भजामि तान् वो यो देवानां स इमां पारयाति ॥ ५ ॥
अग्ने सहस्वानभिभूरभीदसि नीचो न्युब्ज द्विषतः सपत्नान् ।
इयं मात्रा मीयमाना मिता च सजातास्ते बलिहृतः कृणोतु ॥ ६ ॥

साकं सजातैः पयसा सहैध्युदुब्जैनां महते वीर्याय ।
ऊर्ध्वो नाकस्याधि रोह विष्टपं स्वर्गो लोक इति यं वदन्ति ॥७॥
इयं मही प्रति गृह्णातु चर्म पृथिवी देवी सुमनस्यमाना ।
अथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम् ॥ ८ ॥
एतौ ग्रावाणौ सयुजा युङ्‌ग्धि चर्मणि निर्भिन्ध्यंशून् यजमानाय साधु ।
अवघ्नती नि जहि य इमां पृतन्यव ऊर्ध्वं प्रजामुद्भरन्त्युदूह ॥९॥
गृहाण ग्रावाणौ सकृतौ वीर हस्त आ ते देवा यज्ञिया यज्ञमगुः ।
त्रयो वरा यतमांस्त्वं वृणीषे तास्ते समृद्धीरिह राधयामि ॥१०॥

अदिति पुत्र की अभिलाषा करने वाली देवमाता ब्रह्मौदन करना चाहती है। हे अग्ने ! मंथन क्रिया द्वारा उत्पन्न हो। मरीचि आदि जो सप्त ऋषि भूतों को पैदा करने वाले माने जाते है वे इस यज्ञ रूपी विधान मे यजमान के पुत्र पौत्रादिक मथन द्वारा प्रकट करें ॥ १ ॥

हे सप्तर्षियो ! तुम संसार के मित्र रूप एवम् अभीष्टक माने जाते हो। धूमको मंथन द्वारा पुष्ट करो। यह अग्नि उपासकों और यजमानो की रक्षक है। यह ऋचा रूप स्तुतियों से वैरियों की सेना को वश में करने वाली है। इन्ही के द्वारा देव लोगों ने भी अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त की है ॥ २ ॥

हे ! अग्ने तुम समस्त उत्पन्न प्राणियों के ज्ञाता हो। तुम मथन क्रिया से उत्पन्न होते हो। तुम दाह पाक मे समर्थ कहलाते हो। तुम मन्त्रशक्ति से प्रदीप्त होकर मुझे अनन्त शक्ति प्रदान करते हो। तुम को सप्तर्षियों द्वारा ब्रह्मौदन के लिये उत्पन्न किया गया है। अतः इस पत्नी के लिये तुम पुत्र पौत्रादिक प्रदान करो ॥ ३ ॥

हे अग्ने ! तुम समिधाओं से प्रदीप्त होते हो अतः यज्ञ में देवताओं को लाओ। उन देव लोगों को हवि पकाकर तैयार करो। इन यजमानो के मर जाने पर इन्हें स्वर्ग में पहुँचाओ ॥ ४ ॥

हे देवताओ ! अग्नि आदि, पिता, पितामह, प्रपितामह आदि और ब्रह्मादि को जो भाग तीन भागो में बांट कर रखा था उसे अपने अपने भाग को पहिचान लो। इनमें देव भाग अग्नि मे जाकर यजमान की इस पत्नि को अभीष्ट फल प्रदान करे ॥ ५ ॥

हे अग्ने ! तुम शत्रुओ को वश में करने योग्य हो। अतः तुम हमारे वैरि वर्ग को नीचा दिखाओ। हे यजमान ! तू पति को पाकर पुत्र पौत्रादि से युक्त हो ॥ ६ ॥

हे यजमान तू वृद्धि को पा ! पराक्रम को पाने के लिये उन्नति कर और देह को छोड़ने के बाद स्वर्ग मे आरोहण कर ॥ ७ ॥

यह यज्ञ स्थली सम्मुख होकर चर्म को स्वीकार करे। अजिन के फलने पर यह पृथ्वी हम पर दयावान हो। इसकी दया दृष्टि से हम यज्ञादि मे मिले पुण्य फल द्वारा स्वर्ग आदि लोक को प्राप्त कर सकें ॥ ८ ॥

हे ऋत्विक ! तुम इन मूसल उलूखल (ओखली) आदि इस फैले हुये अजिन मे एकत्रित कर रखो और यजमान के लिये बढ़िया धान बनाओ। हे पत्नि ! हमारे प्रजा विनाशक शत्रुओं को नष्ट कर और हमारी सन्तान को श्रेष्ठ फलो से युक्त करो ॥ ९ ॥

हे अध्वर्यो ! तुम ओखली और मूसल को उत्तम हाथो मे ग्रहण करो। देव गण तुम्हारे इस यज्ञ मे आज पधारे हैं

हे यजमान ! तू जिन वरों का इच्छुक है वे इस यज्ञ से प्राप्त कर। कर्म की समृद्धि, फल की समृद्धि और परलोक समृद्धि ये तीनों यज्ञ से ही सिद्ध होती है ॥ १० ॥

इयं ते धीतिरिदमु ते जनित्रं गृह्णातु त्वामदितिः शूरपुत्रा।
परा पुनीहि य इमां पृतन्यवोऽस्यै रयिं सर्ववीरं नि यच्छ ॥ ११ ॥
उपश्वसे द्रुवये सीदता यूयं वि विच्यध्वं यज्ञियासस्तुषैः।
श्रिया समानानति सर्वान्स्यामाधस्पदं द्विषतस्पादयामि ॥ १२ ॥
परेहि नारि पुनरेहि क्षिप्रमपां त्वा गोष्ठोऽध्यरुक्षद् भराय।
तासां गृह्णीताद् यतमा यज्ञिया असन् विभाज्य धीरीतरा जहीतात् ॥ १३ ॥
एमा अगुर्योषितः शुम्भमाना उत्तिष्ठ नारि तवसं रभस्व।
सुपत्नी पत्या प्रजया प्रजावत्या त्वागन् यज्ञः प्रति कुम्भं गृभाय ॥ १४ ॥
ऊर्जो भागो निहितो यः पुरा व ऋषिप्रशिष्टाप आ भरैताः।
अयं यज्ञो गातुविन्नाथवित् प्रजाविदुग्रः पशुविद् वीरविद् वो अस्तु ॥ १५ ॥
अग्ने चरुर्यज्ञियस्त्वाध्यरुक्षच्छुचिस्तपिष्ठस्तपसा तपैनम्।
आर्षेया दैवा अभिसंगत्य भागमिमं तपिष्ठा ऋतुभिस्तपन्तु ॥ १६ ॥
शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा आपश्चरुमव सर्पन्तु शुभ्राः।
अदुः प्रजां बहुलां पशून् नः पक्तौदनस्य सुकृतामेतु लोकम् ॥ १७ ॥
ब्रह्मणा शुद्धा उत पूता घृतेन सोमस्यांशवस्तण्डुला यज्ञिया इमे।
अपः प्र विशत प्रति गृह्णातु वश्चरुरिमं पक्त्वा सुकृतामेत लोकम् ॥ १८ ॥
उरुः प्रथस्व महता महिम्ना सहस्रपृष्ठः सुकृतस्य लोके।
पितामहाः पितरः प्रजोपजाहं पक्ता पञ्चदशस्ते अस्मि ॥ १९ ॥

सहस्रपृष्ठः शतधारो अक्षितो ब्रह्मौदनो देवयानः स्वर्गः ।
अमूंस्त आ दधामि प्रजया रेषयैनान् बलिहाराय मृडतान्मह्यमेव ॥ २० ॥

हे सूप ! चावलों से तुषों को अलग करना ही तेरा मुख्य कार्य है । तुझे मित्र, वरुण, धाता, आदि की माता अदिति हाथ में ले । इस स्त्री की हत्या के लिये जो भी शत्रु सैन्य संग्रह करना चाहते हैं उनके नाश के लिये तू धानों से उसी को अलग कर । इस स्त्री को पुत्र पौत्रादि के सहित धन प्रदान करो ॥ ११ ॥

हे चावलो ! तुम्हारे लिये मैं सत्य फल रूप कर्म के लिये प्रभूत करता हूँ । अतः तुम सूप में विराजमान होकर तुषों से अलग हो जाओ । तुम्हारे द्वारा दी गई शक्ति से हम शत्रुओं को कुचल डालें ॥ १२ ॥

हे स्त्री ! तुम जलाशय से शीघ्र जल लेकर लौटे । गौऐं के जल पीने वाले गोष्ठ को तुम अपने शिर पर रखो । उस जल में से यज्ञ योग्य जलों को ही ग्रहण करना इससे भिन्न अयज्ञिय जल को ग्रहण मत करना ॥ १३ ॥

हे अलंकारों से युक्त पत्नि ! ये जल लाने वाली स्त्रियां जल लेकर आ गई हैं । तू आसन से उठकर इसे ग्रहण कर । तू पुत्र पौत्रादिक वाली होती हुई जल कलशों को ग्रहण कर । यह यज्ञ तुझे जल रूप से प्राप्त होवे ॥ १४ ॥

हे जलो ! ब्रह्मा ने जिस सारभूत भाग की कल्पना की है वही यहाँ पर लाया जावेगा । हे सौभाग्यवति ! तुम इन जलों को चर्म पर स्थापित करो । यह ब्रह्मौदन, पुत्र पौत्रादिक, बल, और यज्ञ मार्ग को देने वाला है । यजमान की पत्नि आदि सभी को यज्ञ शुभ फलों को प्रदान करे ॥ १५ ॥

हे अग्ने ! तुम पर हवि पकाने के लिये चरुस्थाली रखी जाती है और तुम इसको अपने तेज से तपाओ। गात्र के प्रवर्तक ऋषियों के ज्ञाता आर्षेय ब्राह्मण तथा इन्द्र आदि देवताओं के सहित सभी देव अपने २ भाग को पाकर इसे तपावें ॥१६॥

यह यज्ञ योग्य निर्मल जल चरुस्थाली में प्रविष्ट होवें। यज्ञ जल पुत्रादिक तथा पशु आदि पदार्थों को हमें प्रदान करें। ब्रह्मौदन करने वाला ब्राह्मण और यजमान सुख के साथ स्वर्ग को प्राप्त करें ॥ १७ ॥

ये चावल मन्त्र और घी से पक कर दोष रहित होवें। हे चावलो ! तुम यज्ञ योग्य हो इसलिये चरुस्थाली में रखे जाते हुये जलों में प्रविष्ट करो। जो यजमान इस ब्रह्मौदन को पकाता है वह पुण्य लोक अर्थात् स्वर्ग लोक को प्राप्त होता है। १८ ॥

हे ओदन ! तुम सहस्रो (असंख्य) अवयव वाला बन। पिता, पितामह आदि सात पूर्वज तेरे से तृप्ति को प्राप्त करते हैं। पुत्र और पुत्रों की सात पीढ़ी तक की सन्तान भी तेरे द्वारा ही तृप्त होती है। इन सभी के अतिरिक्त पकाने वाला मैं भी तृप्ति को प्राप्त करूँ ॥ १९ ।

हे यजमान ! तेरा यज्ञ सैकड़ों धाराओं और हजारों पृष्ठों वाला होवे। इसके द्वारा यजमान इन्द्रादि देवताओं को प्राप्त करते हैं और यह कभी भी क्षय को नहीं पाता है। हे यज्ञ ! मैं इन सजातियों को तेरे लिये उपस्थित करता हूँ। तुम इनको पुत्र और पौत्रादिक प्रदान करते हुये मुझे दिव्य सुख प्रदान करो ॥ २० ॥

उदेहि वेदिं प्रजया वर्धयैनां नुदस्व रक्षः प्रतरं धेह्येनाम्।
श्रिया समानानति सर्वान्त्स्यामाधस्पदं द्विषतस्पादयामि ॥ २१ ॥

अभ्यावर्तस्व पशुभिः सहैनां प्रत्यङेनां देवताभि सहैधि ।
मा त्वा प्रापच्छपथो माभिचारः स्वे क्षेत्रे अनमीवा वि राज ॥ २२ ॥
ऋतेन तष्टा मनसा हितैषा ब्रह्मौदनस्य विहिता वेदिरग्रे ।
अंसद्रीं शुद्धामुप धेहि नारि तत्रौदनं सादय दैवानाम् ॥ २३ ॥
अदितेर्हस्तां स्रुचमेतां द्वितीयां सप्तऋषयो भूतकृतो यामकृण्वन् ।
सा गात्राणि विदुष्योदनस्य दर्विर्वेद्यामध्येनं चिनोतु ॥ २४ ॥
शृतं त्वा हव्यमुप सीदन्तु दैवा निःसृप्याग्नेः पुनरेनान् प्र सीद ।
सोमेन पूतो जठरे सीद ब्राह्मणामार्षेयास्ते मा रिषन् प्राशितारः ॥ २५ ॥
सोम राजन्त्संज्ञानमा वपैभ्यः सुब्राह्मणा यतमे त्वोपसीदान् ।
ऋषीनार्षेयांस्तपसोऽधि जातान् ब्रह्मौदने सुहवा जोहवीमि ॥२६॥
शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा ब्रह्मणा हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि ।
यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोऽहमिन्द्रो मरुत्वान्त्स ददादिदं मे ॥ २७ ॥
इदं मे ज्योतिरमृतं हिरण्यं पक्वं क्षेत्रात् कामदुघा म एषा ।
इदं धनं नि दधे ब्राह्मणेषु कृण्वे पन्थां पितृषु यः स्वर्गः ॥ २८ ॥
अग्नौ तुषाना वप जातवेदसि परः कम्बूकां अप मृड्ढि दूरम् ।
एतं शुश्रुम गृहराजस्य भागमथो विद्म निर्ऋतेर्भागधेयम् ॥२९॥
श्राम्यतः पचतो विद्धि सुन्वतः पन्थां स्वर्गं अधि रोहयैनम् ।
येन रोहात् परमापद्य यद् वय उत्तमं नाकं परमं व्योम ॥ ३० ॥

हे पके ओदन ! तू वेदी में हवि के रूप में स्थित होने के लिये आ। इस पत्नि को सन्तानादि की वृद्धि द्वारा सुख प्रदान कर। यज्ञ हिंसक असुर को यहाँ से भगा। समान पुरुषों

है हमें अधिक शक्तिशाली बना। वैरियों को मारने की शक्ति मुझे प्रदान करो॥ २१॥

हे ब्रह्मौदन। तू यजमान आदि के सामने पशुवान होकर देवताओं के सहित आ। हे यजमान दम्पत्ति! तुम कभी दुःख के भागी न होओ। तुम रोग रहित होकर दिव्य सुखों के अधिकारी बनो॥ २२॥

ब्रह्मा ने इस वेदी की रचना की और हिरण्यगर्भ ने इसको स्थापित किया। ऋषियों ने ब्रह्मौदन के निमित्त इस वेदी की कल्पना की थी। हे पत्नि! तुम देवता मनुष्य और पितर को आश्रय देने वाली इस वेदी के निकट आओ इस पर ओदन को रखो॥ २३॥

अदिति देवमाता के द्वितीय हाथ रूप स्रुवे को सप्त ऋषियों द्वारा बनाया गया। ओदन के पके हुये शरीरों को पहचानती हुई यह दुर्वा वेदी पर ब्रह्मौदन को चढावे॥ २४॥

हे ओदन! पूज्य देवता तेरे समीप आएं। अग्नि से निकल कर तू उनको तुम प्राप्त होवो। दूध, दही आदि सोम रसों द्वारा शुद्ध हुआ तू ब्राह्मण के उदर में जाओ। अपने-अपने गोत्र प्रवर के ज्ञाता ये लोग भोजन करके हिंसा को प्राप्त न होवें॥ २५॥

हे ब्रह्मौदन! तू सोम से युक्त है। तुम इन ब्राह्मणों को मोह से बचाकर ज्ञान प्रदान करो। तेरे समीप जो ब्राह्मण स्थित हैं मैं तपोरम्न सुन्दर और निराले आह्वान वाली पत्नी ब्रह्मौदन के लिये आहुति देती हूँ। २६॥

मैं यज्ञ के उपयुक्त, पवित्र, पाप रहित जलों को ब्राह्मणों के हाथ पर डालता हूँ। हे जलो! मैं जिस अभीष्ट के

लिये तुम्हारा अभिसिंचन करता हूँ, मेरे उस अभीष्ट को मरुद्गणों सहित इन्द्र पूरा करें ॥ २७ ॥

यह शुद्ध जय आदि ओदनदान योग्य क्षेत्र से प्राप्त कामधेनु है और स्वर्ण मेरे स्वर्ग मार्ग में कभी न बुझने वाला दीपक है। इस धन को मैं दक्षिणा स्वरूप ब्राह्मणों को प्रदान करता हूँ, यह धन स्वर्ग में करोड़ गुण होवे। पितरों के लिये इच्छित स्वर्ग के लिये यह मार्ग हो ॥ २८ ॥

हे ऋत्विक्! ब्रह्मौदन से अलग हुये चावलों के गुणों को अग्नि में डालो। फलीकरणों को पैर से पृथक करो। यह फलीकरण वास्तु भाग का भाग और पाप निऋ ति देवता का भाग माना जाता है ॥ २९ ॥

हे ब्रह्मौदन! तुम तप कर्त्ता हो अतः यजमानों को स्वर्ग के मार्ग पर चढाओ। यह श्येन पक्षी वत जसे भी स्वर्ग को पा सकें, वैसा ही कार्य करो ॥ ३० ॥

बभ्रे रध्वर्यो मुखमेतद् वि मृड्ढ्याज्याय लोकं कृणुहि प्रविद्वान्।
घृतेन गात्रानु सर्वा वि मृड्ढि कृण्वे पन्थां पितृषु य स्वर्गः ॥३१॥
बभ्रे रक्षः समदमा वर्पेभ्योऽब्राह्मणा यतमे त्वोपसीदान।
पुरीषिणः प्रथमानाः पुरस्तादार्षेयास्ते मा रिषन् प्राशितारः ॥ ३२ ॥
आर्षेयेषु नि दध ओदन त्वा नानार्षेयाणामप्यस्त्यत्र।
अग्निर्मे गोप्ता मरुतश्च सर्वे विश्वे देवा अभि रक्षन्तु पक्वम् ॥ ३३ ॥
यज्ञं दुहानं सदमित् प्रपीनं पुमांसं धेनुं सदनं रयीणाम्।
प्रजामृतत्वमुत दीर्घमायू रायश्च पोषैरुप त्वा सदेम ॥ ३४ ॥
वृषभोऽसि स्वर्ग ऋषीनार्षेयान् गच्छ।
सुकृतां लोके सीद तत्र नौ संस्कृतम् ॥ ३५ ॥

समाचिनुष्वानुसम्प्रयाह्यग्ने पथः कल्पय देवयानान्।
एतैः सुकृतैरनु गच्छेम यज्ञं नाके तिष्ठन्तमधि सप्तरश्मौ ॥ ३६ ॥
येन देवा ज्योतिषा द्यामुदायन् ब्रह्मौदनं पक्त्वा सुकृतस्य लोकम्।
तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं स्वरारोहन्तो अभि नाकमुत्तमम् ॥३७॥

हे ऋत्विक् ! इस ओदन के मुख को पवित्र बनाओ। फिर इसको घृत से सींचो। ओदन के द्वारा उसी मार्ग का अनुसरण करता हूँ जो कि पितरों को स्वर्ग की प्राप्ति कराये ॥ ३१ ॥

हे ब्रह्मौदन ! ब्राह्मण से भिन्न, प्राशन हेतु जो क्षत्रिय तेरे समीप बैठे उन्हें युद्ध रूपी कलह दो। गोत्र प्रवर आदि के ज्ञाता ऋषियों के बठने पर उन्हें पशु आदि धन से युक्त कर। ये प्राशन करने वाले ब्राह्मण नाश को न पावें ॥ ३२ ॥

हे ओदन ! तुमको मैं आर्षेय ब्राह्मणों में विद्यमान करता हूँ। अनार्षेय की इस ब्रह्मौदन में सम्भावना नहीं होती है। अग्नि, मरुद्गण, अर्यमा आदि सभी देवगण इस ब्रह्मौदन की सभी ओर से रक्षा करें ॥ ३३ ॥

यज्ञ का उत्पन्न करने वाला यह ब्रह्मौदन है। यह धनों की वृद्धि करता है। हे ब्रह्मौदन ! हम तेरे से धन पुत्र पौत्र धन पुष्टि आदि की प्राप्ति करें ॥ ३४ ॥

हे काम्य वर्षक ब्रह्मौदन ! तू स्वर्ग देने वाला है। अतः तू आर्षेय ब्राह्मणों को मेरे द्वारा प्राप्त हो। पुण्यात्मा जीवों के लिये स्वर्ग में वास कर वहाँ तेरा हमारा सत्कार पूर्ण होगा ॥ ३५ ॥

हे ओदन ! तुम समावयन करते हुए गन्तव्यों को मिलो। हे अग्ने ! देव मार्ग गामी यानों को इस ओदन गमन को तैयार करो। हम भी इन यानों के द्वारा स्वर्ग प्राप्ति का मार्ग चुनें ॥ ३६ ।

ब्रह्मौदन से ही इन्द्रादि देवगण देवयान मार्ग को पाकर स्वर्ग में पहुँचे। देवयान वाले मार्ग पर हम भी अपने पुण्य कर्म से उस लोक को प्राप्त होवें। पहिले तो हम स्वर्ग में वास करें तथा फिर नाकपृष्ठ नामक स्थान को प्राप्त होवें ॥ ३७ ॥

२ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा। देवता-भवादयो मन्त्रोक्ताः। छन्द-जगती: उष्णिक्, अनुष्टुप, बृहती, गायत्री, त्रिष्टुप, शक्वरी)
भवाशर्वौ मृडतं माभि यातं भूतपती पशुपती नमो वाम् ।
प्रतिहितामायतां मा वि स्राष्टं मा नो हिंसिष्टं द्विपदो मा चतुष्पदः ॥ १ ॥
शुने क्रोष्ट्रे मा शरीराणि कर्तमलिक्लवेभ्यो गृध्रेभ्यो ये च कृष्णा अविष्यवः। मक्षिकास्ते पशुपते वयांसि ते विघसे मा विदन्त ॥ २ ॥
क्रन्दाय ते प्राणाय याश्च ते भव रोपयः ।
नमस्ते रुद्र कृण्मः सहस्राक्षायामर्त्य ॥ ३ ॥
पुरस्तात् ते नमः कृण्म उत्तरादधरादुत ।
अभीवर्गाद् दिवस्पर्यन्तरिक्षाय ते नमः ॥ ४ ॥
मुखाय ते पशुपते यानि चक्षूंषि ते भव ।
त्वचे रूपाय संदृशे प्रतीचीनाय ते नमः ॥ ५ ॥
अङ्गेभ्यस्त उदराय जिह्वाया आस्याय ते ।
दद्भ्यो गन्धाय ते नमः ॥ ६ ॥
अस्त्रा नीलशिखण्डेन सहस्राक्षेण वाजिना ।
रुद्रेणार्धकघातिना तेन मा समरामहि ॥ ७ ॥
स नो भवः परि वृणक्तु विश्वत आप इवाग्निः परि वृणक्तु नो भवः ।

मा नोऽमि प्रांस्त मन्यो अस्त्वस्मे ॥ ८ ॥
चतुर्नमो अष्टकृत्वो भवाय दशकृत्वः पशुपते नमस्ते ।
तवेमे पञ्च पशवो विभक्ता गावो अश्वाः पुरुषा अजावयः ॥९॥
तव चतस्रः प्रदिशस्तव द्यौस्तव पृथिवी तवेदमुग्रोर्वन्तरिक्षम् ।
तवेदं सर्वमात्मन्वद् यत् प्राणत् पृथिवीमनु ॥ १० ॥

हे भव, शर्व देवगणो ! तुम हमको सुख प्रदान करो। रक्षा हेतु मेरे आगे चलो। हे भूतेश्वरो ! तुम गौ आदि पशुओं के पालन करने वाले हो। मैं तुम्हें नमन करता हूँ। मेरे इस नमन से प्रसन्न होकर तुम मेरी ओर अपने शर को न छोड़ो तथा हमारी सन्तति और पशुओं का संहार न करो ॥ १ ॥

हे भव शर्व ! हमारे शरीरों को पलस भोजी गृद्धों श्वानों एवं गीदड़ों के लिए मत फेंको। तुम्हारी मक्षिकाएं तथा अन्य पक्षी भक्षण के निमित्त हमे प्राप्त न करें ॥ २ ॥

हे भव, शर्व ! तुम्हारे प्राण वायु और क्रंदन ध्वनि को हमारा नमन स्वीकार हो। तुम्हारे मायावी शरीरों को हम प्रणाम करते हैं। हे संसार के साक्षी देव ! तुम अमर को हमारा नमन ग्रहण हो ॥ ३ ॥

हे रुद्र ! पूर्व उत्तर और दक्षिण दिशाओं में हम तुम्हे प्रणाम करते हैं। अन्तरिक्ष मे सब के नियंता रूप से प्रतिष्ठित देव तुम्हें हमारा नमस्कार है ॥ ४ ॥

हे भवदेव ! तुम्हारे मुख, चक्षु, त्वचा और नील पीत-वर्ण को हमारा नमस्कार है। तुम्हारी सम दृष्टि को नमन है। मेरा नमस्कार स्वीकार करो ॥ ५ ॥

तुम्हारे उदर, जिह्वा, दाँत, नाक तथा अन्य अवयवों को हम नमन करते हैं ॥ ६ ॥

नीले केश, सहस्राक्ष, अश्वगामी, अर्ध वाहिनी का क्षण मात्र में विनाश करने वाले रुद्र के द्वारा हम कभी प्रहारित न हों ॥ ७ ॥

अिन भव देव की महिमा स्पष्ट है वे हमें सब उपद्रवों से दूर रखें। अग्नि जैसे जल को छोड़ता है उसी भाँति रुद्र देव हमको छोड़ दें, उन्हें हमारा नमन स्वीकार हो। वे हमे दुख न दें ॥ ८ ॥

शर्व देव को पुनः पुनः नमन है, भवदेव को आठ बार नमस्कार है ? हे पशुपते ! तुम्हे दस बार नमन करता हूँ। विभिन्न जाति के पशु जीवों और पुरुषों का रक्षण करो ॥ ६ ॥

हे रुद्र ! तुम महान शक्तिशाली हो, तुम्ही चारों दिशाओं के स्वामी हो । यह द्यावा पृथ्वी और अन्तरिक्ष तथा समस्त दिशाऐं तुम्हारा शरीर रूप ही हैं। तुम सब पर अनुग्रह करने वाले स्तुत्य हो ॥ १० ॥

उरुः कोशो वसुधानस्तवायं यस्मिन्निमा विश्वा भुवनान्यन्तः
स नो मृड पशुपते नमस्ते परः क्रोष्टारो अभिभाः श्वानः
परो यन्त्वघरुदो विकेश्यः ॥ ११ ॥
धनुर्बिभर्षि हरितं हिरण्ययं सहस्रघ्नि शतवधं शिखण्डिन् ।
रुद्रस्येषुश्चरति देवहेतिस्तस्यै नमो यतमस्यां दिशीतः ॥ १२ ॥
योऽभियातो निलयते त्वां रुद्र निचिकीर्षति ।
पश्चादनुप्रयुङ्क्षे तं विद्धस्य पदनीरिव ॥ १३ ॥
भवारुद्रौ सयुजा संविदानावुभावुग्रौ चरतो वीर्याय ।
ताभ्यां नमो यतमस्यां दिशीतः ॥ १४ ॥
नमस्तेऽस्त्वायते नमो अस्तु परायते ।
नमस्ते रुद्र तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ॥ १५ ॥

नमः सायं नमः प्रातर्नमो राज्या नमो दिवा ।
भवाय च शर्वाय चोभाभ्यामकरं नमः ॥ १६ ॥
सहस्राक्षमतिपश्यं पुरस्ताद् रुद्रमस्यन्तं बहुधा विपश्चितम् ।
मोपाराम जिह्वयेय मानम् ॥ १७ ॥
श्यावाश्वं कृष्णमसितं मृणन्तं भीमं रथं केशिनः पादयन्तम् ।
पूर्वे प्रतीमो नमो अस्त्वस्मै ॥ १८ ॥
मा नोऽभि स्रा मत्यं देवहेतिं मा नः क्रुधः पशुपते नमस्ते ।
अन्यत्रास्मद् दिव्यां शाखां वि धूनु ॥ १९ ॥
मा नो हिंसीरधि नो ब्रूहि परि णो वृङ्ग्धि मा क्रुधः ।
मा त्वया समरामहि ॥ २० ॥

हे पशुपते ! निवास के कारण रूप कर्म जहाँ किये जाते हैं, वह अण्डकटाहात्मक कोष तुम्हारा ही है । सब भूतों का यही निवास स्थान है तुम हमको सुख प्रदान करो । हम तुम्हें नमस्कार करते हैं । माँस भोजी गीदड़ कुत्ते आदि को हमसे पृथक करो । राक्षसिनी भी कहीं दूसरी जगह जाँय॥११॥

हे रुद्र ! तुम प्रलय काल में जिस विनाशात्मक धनुष को धारण करते हो वह हरित सुवर्ण निर्मित् धनुष सहस्रों का एक बार में ही सहार कर डालता है । हम तुम्हारे उस धनुष को नमस्कार करते हैं । तुम्हारा वह बाण बिना किसी बाधा के सर्वत्र जाता है वह बाण जिस दिशा मे भी हो, हम उसे प्रणाम करते हैं ॥ १२ ॥

हे रुद्र ! अपने सामने से भागने वाले अपराधी पुरुष को दण्डित करने मे तुम समर्थ हो । जैसे चोट खाया हुआ गुह्य पुरुष के पद चिन्हों को देखता हुआ उसे पाकर दण्डित करता है, उसी भाँति तुम भी करते हो ॥ १३ ॥

भव और रुद्र मित्रवत है तथा अपना महान पराक्रम प्रकट करते हुए विचरण करते हैं। वे जिस दिशा मे भी हो, हम उन्हें नमस्कार करते हैं ॥ १४ ॥

हे रुद्र ! हमारे समाने आते हुए, हम से लौटकर जाते हुए, बैठे हुए अथवा खड़े हुए तुम्हें हम नमस्कार करते हैं ॥ १५ ॥

हे रुद्र ! हम तुम्हें, सन्ध्या प्रातः काल, रात्रि और दिन मे नमस्कार करते हैं ! भव और शर्व दोनो देवों को हमारा नमस्कार प्राप्त हो ॥ १६ ॥

सहस्राक्ष महान मेधावी, सहस्त्रो बाण चलाने वाले और संसार व्यापी रुद्र के निकट हम न जावें ॥ १७ ॥

हम उन रुद्र को अन्य स्तोताओ से पूर्व अपने रक्षक के रूप मे जान कर प्रणाम करते है जिन्होंने केशी नामक दैत्य के रथ को फेंक दिया था तथा जिनसे स सार डरता है ॥ १८ ॥

हे देव ! हम ससारी जीवो पर क्रोधित न हो और न हम पर अपने बाणो से प्रहार ही करो। अपने दिव्य अस्त्र को हमसे अन्यत्र छोडो। हम तुम्हे नमन करते है ॥ १९ ॥

हे रुद्र ! हम पर क्रोध न करो और न हमारे प्रति हिंसात्मक भाव अपनाओ। हम पर कृपा करो तथा अपना शस्त्र हमसे अलग रखो। हम आपके क्रोधित भाव से अलग ही रहें ॥ २० ॥

मा नो गोषु पुरुषेषु मा गृधो नो अजाविषु ।
अन्यत्रोग्र वि वर्तय पियारूणां प्रजां जहि ॥ २१ ॥
यस्य तक्मा कासिका हेतिरेकमश्वस्येव वृषणः क्रन्द एति ।
अभिपूर्वं निर्णयते नमो अस्त्वस्मै ॥ २२ ॥
योऽन्तरिक्षे तिष्ठति विष्टभितोऽयज्वनः प्रमृणन् देवपीयून् ।

तस्मै नमो दशभिः शक्वरीभिः ॥ २३ ॥
तुभ्यमारण्याः पशवो मृगा वने हिता हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि ।
तव यक्षं पशुपते अप्स्वन्तस्तुभ्यं क्षरन्ति दिव्या आपो वृधे ॥२४।
शिंशुमारा अजगराः पुरीकया जषा मत्स्या रजसा येभ्यो अस्यसि ।
न ते दूरं न परिष्ठास्ति ते भव सद्यः सर्वान् परि पश्यसि भूमिं पूर्वस्माद्धंस्युत्तरस्मिन् समुद्रे ॥ २५ ॥
मा नो रुद्र तक्मना मा विषेण मा नः सं स्रा दिव्येनाग्निना ।
अन्यत्रास्मद् विद्युतं पातयैताम् ॥ २६ ॥
भवो दिवो भव ईशे पृथिव्या भव आ पप्र उर्वन्तरिक्षम् ।
तस्मै नमो यतमस्यां दिशीतः ॥ २७ ॥
भव राजन् यजमानाय मृड पशूनां हि पशुपतिर्बभूथ ।
यः श्रद्दधाति सन्ति देवा इति चतुष्पदे द्विपदेऽस्य मृड ॥ २८ ॥
मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा नो वहन्तमुत मा नो वक्ष्यतः ।
मा नो हिंसीः पितरं मातरं च स्वां तन्वं रुद्र मा रीरिषो नः ॥ २९ ॥
रुद्रस्यैलबकारेभ्योऽसंसूक्तगिलेभ्यः ।
इदं महास्येभ्यः श्वभ्यो अकरं नमः ॥ ३० ॥
नमस्ते घोषिणीभ्यो नमस्ते केशिनीभ्यः ।
नमो नमस्कृताभ्यो नमः संभुञ्जतीभ्यः ।
नमस्ते देव सेनाभ्यः स्वस्ति नो अभयं च नः ॥ ३१ ॥

हे रुद्र ! हमारे गौ तुथ सेवकादि को मारने की इच्छा न करो । हमारे भेड़ बकरों को भी मारने की इच्छा न करो ।

तुम अपने अस्त्र शस्त्रो को देव द्वेषियो पर चला कर उनकी सन्तति को नष्ट करो ॥ २१ ॥

हम उन रुद्र देव का अभिवादन करते हैं जिनके अस्त्र खासी ज्वरादि व्याधियाँ हैं जिन्हें वे अपराधियो के ऊपर घोड़े की हुकार के समान छोडतते हैं ॥ २२ ॥

अन्तरिक्ष मे स्थित रहते हुए जो रुद्र देव द्वेषियो अयाज्ञिको का सहार करते हैं, हम उन देव को करबद्ध प्रणाम करते हैं ॥ २३ ॥

हे पशुपते ! विधाता ने तुम्हारे निमित्त वन मे शेर मृग, बाज हस आदि वनचर तथा पक्षियो को उत्पन्न किया हैं, उनको अपनी इच्छानुसार ग्रहण करो एव इस ग्राम के पशुओ का सहार न करो। तुम्हारा श्रेष्ठ रूप जल मे स्थित है, तुम्हारे अभिषेक निमित्त दिव्य जल प्रवाहमान रहते हैं ॥ १४ ॥

हे रुद्र ! शिशुमार अजगर पुरीकय जष मत्स्य आदि जलचर भी तुम्हारे लिए ही उत्पन्न हुए हैं, उनके लिये तुम अपने तीक्ष्ण शस्त्र को चलाते हो। हे भव ! तुमसे दूर कुछ नही हैं अर्थात् तुम सर्वत्र वर्तमान हो। सम्पूर्ण पृथ्वी को तुम क्षण मात्र मे ही निहारे लेते हो तथा पूर्व से उत्तर जा पहुँचते हो ॥ २५ ॥

हे रुद्र ! तुम हमे ज्वरादि रोग रूप अपने अस्त्र से दूर ही रखो। तथा चर अचर व विष से भी दूर ही रखो। आकाश स्थित विद्युत रूप अग्नि से हमारा सामना न कराओ। इस विद्युत रूप अग्नि को जगली पशु आदि पर हमसे दूर फको ॥ २६ ॥

भवदेव, द्यावा पृथ्वी के स्वामी हैं तथा अन्तरिक्ष को तेजयुक्त भी वही करते हैं। हे भवदेव! तुम जहा कही भी हो, हम तुम्हे नमस्कार करते हैं ॥ २७ ॥

हे भव! तुम पाच प्रकार के पशुओ के स्वामी हो अपने यजन कर्ता को सुख प्रदान करो। जो व्यक्ति इन्द्र आदि देवगणो को अपना रक्षक समझता हैं उसके पशुओ को सुख प्रदान करो ॥ २८ ॥

हे रुद्र! हमारे वयस्क बीच के और अल्प वयस्को का सहार न करो। हमारे माता पिता को भी न मारो। हमारे पोषण करने वाले लोगो की भी हत्या न करो तथा हमारे शरीर की भी हिंसा न करो ॥ २९ ॥

रुद्र के प्रेरणायुक्त कर्म वाले प्रथम गणो को तथा कटु भाषी गणो को नमस्कार करता हूँ। भव के श्वानों को भी नमस्कार करता हूँ ॥ ३० ॥

हे रुद्र तुम्हारी प्रभूत घोषयुक्त, केशिनी, चन्डेश्वर आदि वाहनियो को नमस्कार करता हूँ सहभोजी तथा अन्य वाहनियों को भी नमस्कार है। तुम्हारे अनुग्रह से हम कुशल से रहें तथा भय रहित हो। ३१ ॥

३ सूक्त (१) (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि—अथर्वा। देवता—बार्हस्पत्यौदन। छन्द—गायत्री, पंक्ति, अनुष्टुप्, उष्णिक्, जगती, बृहती, त्रिष्टुप्,)

तस्यौदनस्य बृहस्पति शिरो ब्रह्म मुखम् ॥ १ ॥
द्यावापृथिवी श्रोत्र सूर्याचन्द्रमसावक्षिणी सप्तऋषय प्राणापाना ॥ २ ॥

चक्षुर्मुसलं काम उलूखलम् ॥ ३ ॥
दितिः शूर्पं मदितिः शूर्पं ग्राही वातोऽपाविनक् ॥ ४॥
अश्वा कणा गावस्तण्डुला मशकास्तुषा ॥ ५ ॥
कब्रु फल करणाः शरोऽभ्रम् ॥ ६ ॥
श्याममयोऽस्य मासानि लोहितमस्य लोहितम् ॥ ७ ॥
त्रपु भस्म हरितं वर्णः पुष्करमस्य गन्धः ॥ ८ ॥
खलः पात्रं स्फ्यावंसावीषे अनूक्ये ॥ ९ ॥
आन्त्राणि जत्रवो गुदा वरत्रा ॥ १० ॥

इस ओदन के सिर बृहस्पति तथा मुख ब्रह्म हैं ॥ १ ॥

द्यावा पृथ्वी इसके कान सूर्य चन्द्र नेत्र तथा सप्त ऋषि प्राण अपान वायु हैं ॥ २ ॥

मूसल इसका नेत्र है उलूखल इसकी कामना है ॥ ३ ॥

दिति ही सूप है, और जो सूप से झरती है, वही अदिति है तथा वायु धान और चावलो का विवेचन करने वाला है ॥ ४ ॥

ओदन के कण अश्व हैं तण्डुल गौ है और अलग की हुई भुसी मच्छर रूप है ॥ ५ ॥

फली करणो का शिर जिसकी भ्रू है, वह कब्रू है मेघ सिर हैं ॥ ६ ॥

काले रंग का लोह इस ओदन का मांस तथा लाल वर्ण का ताम्र इसका रक्त है ॥ ७ ॥

ओदन पकने के बाद जो राख होती है वह सीसा है जो ओदन का वर्ण है वह सुवर्ण है तथा ओदन की गन्ध कमल हैं ॥ ८ ॥

सूप इसका पात्र है, गाडी के भाग इसके अंस है एवं

बैलो के कन्ठ में बंधी रस्सिया इसकी प्राते हैं तथा धर्म बन्धन गुहा है ॥ १० ॥

इयमेव पृथिवी कुम्भी भवति राध्यमानस्यौदनस्य द्यौरपिधानम् ॥ ११ ॥
सीताः पर्शवः सिकता ऊबध्यम् ॥ १२ ॥
ऋतं हस्तावनेजनं कुल्योपसेचनम् ॥ १३ ॥
ऋचा कुम्भ्यधिहितार्त्विज्येन प्रेषिता ॥ १४ ॥
ब्रह्मणा परिगृहीता साम्ना पर्यूढा ॥१५॥
बृहदायवनं रथन्तरं दर्विः ॥ १६ ॥
ऋतवः पक्तार आर्तवाः समिन्धते ॥ १७ ॥
चरुं पञ्चबिलमुखं घर्मोऽभीन्धे ॥ १८ ॥
ओदनेन यज्ञवचः सर्वे लोकाः समाप्याः ॥ १९ ॥
यस्मिन्त्समुद्रो द्यौर्भूमिस्त्रयोऽवरपरं श्रिताः ॥ २० ॥

ओदन पाक के लिए यह पृथ्वी कुभी तथा आकाश इसका ढकना है ॥ ११ ॥

सागल पद्धतियाँ उसकी पसली तथा नदी की जो रज है, वह अवध्य है ॥ १२ ॥

ससार संपूर्ण जल जिसमें हाथ धोने का जल और लघु नदियाँ इस उपसेचन रूप हैं ॥ १३ ॥

ऋचन चिन्हो वाली कुभी ऋग्वेद रूप अग्नि पर चढी है । १४ ॥

अथर्ववेद द्वारा इसकी स्थापना की गई है तथा साम वेद यंगार इस के चारो ओर लगे हैं ॥ १५ ॥

जल में मिश्रित चावलों मिलाने का काष्ट बृहत्साम और करछी रथन्तर साम है ॥ १६ ॥

ऋतुऐं इस ओदन को पकाती हैं, ओदन का पकाना समयाधीन है उसके अतिरिक्त उसे कोई नही पका सकता। समयही इसे प्रतिक्षण प्रज्वलित करने मे समर्थ हैं ॥ १७ ॥

चरु को तेजस्वी सूर्य तपाता है॥ १८ ॥

यज्ञो द्वारा प्राप्त होने वाले सभी लोक इस पके हुए ओदन के द्वारा प्राप्त होते हैं ॥ १९ ॥

जिस ओदन के नीचे ऊपर पृथ्वी समुद्र आकाश स्थित हैं यह वही है ॥ २० ॥

यस्य देवा अकल्पन्तोच्छिष्टे षडशीतय ॥ २१ ॥
त्वौदनस्य पृच्छामि यो अस्य महिमा महान् ॥ २२ ॥
स य ओदनस्य महिमान विद्यात् ॥ ३२ ॥
नाल्प इति ब्रूयान्ननुपसेन इति नेद च किं चेति ॥ २४ ।
य यद् दातामिमनस्येत तन्नाति वदेत् ॥ २५ ॥
ब्रह्मवादिनो वदन्ति पराञ्चमोदन प्राशी प्रत्यञ्चामिति ॥ २५ ॥
त्वमोदन प्राशी३स्त्वामोदना इति ॥ २७ ॥
पराञ्चा चैन प्राशी प्र णास्त्वा हास्य तीत्येनमाह ॥ २८ ॥
प्रत्यञ्च चैन प्राशीरपानास्त्वा हास्यन्तीत्येनमाह ॥ २९ ॥
नैवाहमोदन न मामोदन ॥ ३० ॥
ओदन ऐवौदन प्राशीत् ॥ ३१ ॥

जिस ओदन यज्ञ से बचे अ श मे चार सौ अस्सी देवता समर्थ हुए उस ओदन द्वारा सभी लोको की प्राप्ति समव है॥ २१ ।

इस ओदन की महान महिमा को मैं तुमसे पूछता हूँ॥ २२ ॥

इसकी महिमा को जानने वाला गुरु इसकी महत्ता को कम करके न बतावे ॥ २३ ॥

और न यह भी न कहे कि इसमे दूध घृत आदि की आवश्यकता नही है। केवल उसकी महत्ता का ही बखान करे ॥ २४ ।

'बसयज्ञ' का अनुष्ठान कर्ता अपने हृदय मे जितने फल की कामना करे, उससे अधिक न कहे ॥ २५ ॥

ब्रह्मवादी महर्षि परस्पर कहते हैं कि तू इस आत्म विमुख ओदन का प्राशन कर चुका है । २६ ॥

तूने ओदन को खाया है या ओदन ने तेरा प्राशन कर लिया है ॥ २७ ॥

यदि तूने पीछे स्थित ओदन को खाया है तो प्राणवायु तुझसे पृथक हो जायेगा । इस तरह प्राशिता से कहना चाहिए । २८ ॥

यदि तूने प्रतिमुख ओदन को खाया है तो अपान वायु तेरा त्याग करेगा ऐसा प्राशिता से कहना चाहिए ॥ २९ ॥

ओदन का मैंने प्राशन नही किया और न ओदन ने ही मेरा प्राशन किया है ॥ ३० ॥

यह ओदन प्रपंचात्मक है। ओदन करने वाले ने इसका प्राशन स्वात्मरूप से किया । ३१ ॥

सूक्त(२) ३

ऋषि—अथर्वा । देवता—मन्त्रोक्ता । छन्द—त्रिष्टुप् ; गायत्री, जगती अनुष्टुप् ; पंक्ति-बृहती, उष्णिक्)

ततश्चैनमन्येन शीर्ष्णा प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्
ज्येष्ठतस्ते प्रजा मरिष्यतीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
बृहस्पतिना शीर्ष्णा । तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ।

एषा वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ३६ ॥
ततस्चैनमन्याभ्यां श्रोत्राभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैत पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
बधिरो भविष्यसीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
द्यावापृथिवीभ्यां श्रोत्राभ्याम् ।
ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ।
एष वा ओदन सर्वाङ्ग सर्वपरु सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरु सर्वतनू स भवति य एवं वेद ॥ ३३ ॥
ततश्चैनमन्याभ्यामक्षीभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन् ।
अन्धो भविष्यसीत्येनमाह ।
त वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्च न प्रत्यञ्चम् ।
सूर्याचन्द्रमसाभ्यामक्षीभ्याम् ।
ताभ्यामेनं प्राशिष ताभ्यामेनमजीगमम् ।
एष वा ओदन. सर्वाङ्ग सर्वपरु सर्वतनू ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनू स भवति य एव वेद ॥ ३४ ॥
ततश्चैनमन्येन मुखेन प्राशीर्येन चैत पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
मुखतस्ते प्रजा मरिष्यतीत्येनमाह ।
त वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
ब्रह्मण मुखेन । तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ।
एष वा ओदन सर्वाङ्गः सर्वपरु सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरु सर्वतनूः स भवति य एव वेद ॥ ३५ ॥
ततश्चैनमन्यया जिह्वया प्राशीर्यया चैतं ऋषयः प्राश्नन् ।
जिह्वा ते मरिष्यतीत्येनमाह ।

तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्
अग्नेर्जिह्वया । तयैनं प्राशिषं तयैनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः स भवति य एवं वेद ॥ ३६ ॥
ततश्चैनमन्यैर्दन्तैः प्राशीर्येश्चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
दन्तास्ते शत्स्यन्तीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
ऋतुभिर्दन्तैः तैरेनं प्राशिषं तैरेनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ३७ ॥
ततश्चैनमन्यैः प्राणापानैः प्राशीर्येश्चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
प्राणापानास्त्वा हास्यन्तीत्येनमाह ।
सं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
सप्तऋषिभिः प्राणापानैः । तैरेनं प्राशिषं तैरेनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ३८ ॥
ततश्चैनमन्येन व्यचसा प्राशीर्येन चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन् ।
राजयक्ष्मस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह ।
सं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
अन्तरिक्षेण व्यचसा । तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्ग सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ३९ ॥
ततश्चैनमन्येन पृष्ठेन प्राशीर्येन चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन् ।
विद्युत् त्वा हनिष्यतीत्येनमाह ।
सं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चम् न प्रत्यञ्चम् ।

बिशा पृष्ठ्ेन । रोनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनुः सं भवति य एव वेद ॥ ४०॥

पूर्व अनुष्ठान कर्ताओ ने जिस शिर से ओदन का प्राशन किया था, उसके विपरीत तूने अन्य शिर सेप्राशन किया है अतः तेरी सन्तति विनाश को प्राप्त होने लगेगी। अनजान व्यक्ति प्राशिता से ऐसा कहे। मैंने उस ओदन को अभिमुख और अभिमुख होने पर भी भक्षण नहीं किया। ऋषियों ने बृहस्पति से सम्पन्न शिर से इसका प्राशन किया था मैंने भी ओदन सबके शिर से उसी भांति प्राशन किया है। मुझे ओदन ने ही ओदन का भक्षण किया है। इस तरह प्राशित यह ओदन सब अंगों से पूर्ण शरीर वाला होकर सर्वांग फल को कहता है। इस प्रकार ओदन के प्राशन का ज्ञाता पुरुष सर्वांग फल को प्राप्त करता हुआ स्वर्ग आदिलोकों को प्राप्त होता है।।३२।।

पूर्व अनुष्ठाताओ की विधि के विपरीत अन्य सुनी हुई विधियो से प्राशन किया है तो तू बधिर होगा ! 'मैंने आकाश पृथ्वी रूप श्रोत्रो से इस ओदन का प्राशन किया है, सांसारिक श्रोत्रो से नहीं। इस भांति से प्राशित ओदन सर्वांग पूर्ण होता हुआ फल देता है। इस प्रकार ओदन प्राशन का ज्ञाता पुरुष सर्वांग फल पाता हुआ स्वर्गादि मे स्थित होता है ॥ ३३ ॥

'पूर्व अनुष्ठाताओ ने जिन नेत्रो से प्राशन किया था, तूने उसके विपरीत सांसारिक नेत्रो से इसका प्राशन किया है तो तू नेत्रविहीन हो जायेगा। मैंने सूर्य चन्द्र रूपी नेत्रो से ओदन का प्राशन किया है इस प्रकार किया हुआ प्राशन सर्वांग फल को देता है: इस प्रकार का ज्ञाता पुरुष सर्वांग फल को प्राप्त करता स्वर्गादि में स्थित होता है ॥ ३४ ।

"पूर्व ऋषियो ने जिस ब्रह्मात्मक मुख से ओदन प्राशन किया था तूने उसके विपरीत सांसरिक नेत्रों से इसका प्राशन किया है तो तू नेत्रविहीन हो जावेगा।" मैंने सूर्य चन्द्र रूपी नेत्रो से ओदन का प्राशन किया है इस प्रकार किया हुआ प्राशन सर्वांग फल को देता है। इस प्रकार का ज्ञाता पुरुष सर्वांग फल को प्राप्त करता स्वर्गादि मे स्थित होता है ।। ३४ ।।

'पूर्व ऋषियो ने जिस ब्रह्मात्मक मुख से ओदन प्राशन किया था, यदि तूने उसके विपरीत लौकिक मुख से इसका प्राशन किया है, तो तेरी सन्तति तेरे सम्मुख ही नाश को प्राप्त हो।" मैंने ब्रह्मात्मक मुख से ओदन का प्राशन किया है जो सर्वांग फल को देने वाला है। इस प्रकार ओदन के प्राशन का ज्ञाता पुरुष सर्वांग फल प्राप्त करता हुआ स्वर्गादि लोको मे पहुँचता है ।। ३५ ।।

'अनुष्ठाता ऋषियों ने जिस जिह्वा से प्राशन किया था, उसके अतिरिक्त सांसारिक जिह्वा से यदि तूने प्राशन किया था, तो तेरी जिह्वा निरर्थक हो जायेगी। इस ओदन की अवयव भूत अग्नि रूप जिह्वा से मैंने ओदन का प्राशन किया है जो सर्वांग फल का देने वाला है। इस का ज्ञाता पुरुष सर्वांग फल को पाता हुआ स्वर्ग आदि लोकों को प्राप्त करता है ।। ३६ ।।

पूर्व अनुष्ठाताओं की विधि के विपरीत यदि तूने लौकिक दाँतो से प्राशनकिया है तो तेरे दाँत नष्ट होगे। मैंने ऋतु रूप दाँतो से ओदन का भक्षण किया हैं। इस प्रकार प्राशन किया हुआ ओदन सर्वांग फल प्रदाता होता हैं। जो प्राशन

जो इस विधि से परिचित हैं वह सर्वांग फल की प्राप्ति करता हुआ स्वर्ग आदि लोकों को प्राप्त होता है ॥ ३७ ॥

पूर्व अनुष्ठाताम्र की विधि के विपरीत यदि तूने लौकिक प्राण पानो से ओदन का प्राशन किया हैं तो प्राण अपान वायु तेरा त्याग कर देगे । मैंने सप्तर्षि रूप प्राण पानो से इस ओदन का भक्षण किया है जो सर्वांग फल का देने वाला है इस भाँति ओदन प्राशन विधि का ज्ञाता सर्वांग फल प्राप्त करता हुआ स्वर्ग आदि लोको को प्राप्त होता है ॥ ३८ ॥

पूर्व ऋषयो की विधि के विपरीत यदि तूने इस ओदन का लौकिक विधि से प्राशन किया है तो तुझे यक्ष्मादि रोग नष्ट कर देंगे । मैंने उसी अन्तरिक्षात्मक विधि से उसका भक्षण किया है जो सर्वांग फल का देने वाला है । जो व्यक्ति ओदन प्राशन की इस विधि से परिचित है वह सर्वांग फल प्राप्त करता हुआ स्वर्ग आदिलोको को प्राप्त करता है । ३९ ॥

पूर्व अनुष्ठाताओं ने जिस पृष्ठ से प्राशन किया था यदि तूने उसके विपरीत अन्य पृष्ठ से प्राशन किया है तो विद्युत तुझे नष्ट करेगी । मैंने द्यौ रूप पृष्ठ से इसका प्राशन किया है जो सर्वांग फल देने वाला है । जो व्यक्ति प्राशन की इस विधि से परिचित है वह सर्वांग फल प्राप्त करता हुआ स्वर्ग आदि लोको मे स्थित होता है ॥ ४० ॥

ततश्चैनमन्येनोरसा प्राशीर्येन चैत पूर्व ऋषयः प्राश्नन ।
कृष्या न रात्स्यतसीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
पृथिव्योरसा । तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वांग एव सर्वपरु सर्वतनूः स भवति य एवं वेद ॥ ४१ ॥

ततश्चैनमन्येनोदरेण प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
उदरवारस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
सत्येनोदरेण । तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वांग सर्वपरु सर्वतनूः ।
सर्वांग एव सर्वपरुः सर्वतनू सं भवति य एवं वेद ॥ ४२ ॥
ततश्चैनमन्येन वस्तिना प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषय प्राश्नन् ।
अप्सु मरिष्यसीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
समुद्रेण वस्तिना । तेनैन प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ।
एष वा ओदन. सर्वांग. सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वांग एव सर्वपरुः सर्वतनू स भवति,य एवं वेद ॥ ४३ ॥
ततश्चैनमन्याभ्यामूरुभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषय. प्राश्नन् ।
ऊरू ते मरिष्यत इत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
मित्रावरुणयोरूरुभ्याम् ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यमेनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वांगः सर्वपरु. सर्वतनूः।
सर्वांग एव सर्वपरुः सर्वतनू स भवति य एवं वेद ॥ ४४ ॥
ततश्चैनमन्याभ्यामष्ठीवद्भ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषय. प्राश्नन् ।
स्रामो भविष्यसी.येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्च न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
त्वष्टुरष्ठीवद्भ्याम् । ताभ्यामेन प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वांगः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वांग एव सर्वपरुः सर्वतनूः स भवति य एवं वेद ।। ४५ ॥

ततश्चैनमन्याभ्यां पादाभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
बहुचारी भविष्यसीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
अश्विनो पादाभ्याम् । ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वांगः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वांग एव सर्वपरुः सर्वतनूः स भवति य एवं वेद ॥ ४६ ॥
ततश्चैनमन्याभ्यां प्रपदाभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
सर्पस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
सवितुः प्रपदाभ्याम् । ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वांगः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः स भवति य एवं वेद ॥ ४७ ॥
ततश्चैनमन्याभ्यां हस्ताभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
ब्राह्मणं हनिष्यसीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
ऋतस्य हस्ताभ्याम् । ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वांग एव सर्वपरुः सर्वतनूः स भवति य एवं वेद ॥ ४८ ॥
ततश्चैनमन्यया प्रतिष्ठया प्राशीर्यया चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
अप्रतिष्ठानो ऽनायतनो मरिष्यसीत्येनमाह ।
तं वाहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चं सत्ये प्रतिष्ठाय ।
तयैनं प्राशिषं तयैनमजीगमम् ।

एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः स भवति य एवं वेद ॥ ४६ ॥

पूर्व अनुष्ठाताओं ने जिस वक्ष से इस ओदन का प्राशन किया था, यदि तूने इनके विपरीत वक्ष से किया है तो तुझे कृषिकार्य में सफलता प्राप्त नहीं होगी। मैंने पृथ्वी रूप वक्ष से इस ओदन का प्राशन किया है जो सर्वांग फल का देने वाला है। जो पुरुष प्राशन की इस विधि को जानता है वह सर्वांग फल प्राप्त करता हुआ स्वर्ग आदि लोकों को प्राप्त होता है ॥ ४१ ॥

पूर्व अनुष्ठाताओं ने जिस उदर से ओदन का प्राशन किया था, यदि तूने उसके विपरीत ढंग से प्राशन किया है तो उदर रोगों से पीड़ित हो मृत्यु को प्राप्त होगा। मैंने सत्य रूप उदर से इस ओदन का भक्षण किया है जो सर्वांग फल का देने वाला है। जो इस विधि से परिचित है सर्वांग फल से सपन्न हो स्वर्ग आदि लोकों को प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥

पूर्व अनुष्ठाताओं की विधि विपरीत यदि तूने अन्य वस्ति से प्राशन किया है तो तू जल में मृत्यु को प्राप्त होगा। मैंने समुद्र रूप वस्ति से इस ओदन का प्राशन किया है तथा उसी से इसे यथा स्थान पहुँचाया है। इस प्रकार का ओदन प्राशन सर्वांग फल देने वाला होता है। जो ओदन प्राशन की इस विधि का ज्ञाता है वह सर्वांग फल पाता हुआ स्वर्ग आदि लोकों में स्थित होता हैं ॥ ४३ ॥

पूर्व अनुष्ठाताओं ने जिन उरुओं से प्राशन किया था, यदि तूने उस विधि के प्रतिकूल किसी अन्य विधि से प्राशन किया है तो तेरी उरु नष्ट हो जायेगी। मैंने मित्रावरुण रूप

उरुओं से प्राशन करके उसे यथोचित जगह पहुँचाया है जो इस विधि को जानता है, वह सर्वांग फल से युक्त हो स्वर्ग आदि लोको प्राप्त होता है ।४४।।

पूर्व अनुष्ठाताओ ने जिन अस्थियुक्त जाँघो से इस ओदन का प्राशन .किया था यदि तूने उस विधि के प्रतिकूल किया है तो तेरी जाँघें सूख जायेगी । मैंने त्वष्टा की जाघो से इस ओदन का प्राशन किया है और यथोचित स्थान पर पहुँचाया है । इस विधि से किया प्राशन सर्वांग फल युक्त होता है । जो इस विधि का ज्ञाता है, वह सर्वांग फल युक्त हुआ स्वर्ग आदि लोको को प्राप्त करता है ।। ४५ ।।

पूर्व अनुष्ठाताओ ने जिस विधि से ओदन का प्राशन किया था यदि तूने उससे भिन्न किया है तो तू बहुचारी हो जायेगा । मैंने अश्विद्वय के पैरो से प्राशन किया है और उन्हीं के द्वारा ,यथोचित स्थान पहुँचाया है । इस विधि से किया प्राशन सर्वांग फल देने वाला होता है । जो इस विधि से परिचित है वह सर्वांग फलो से युक्त हुआ स्वर्ग आदि लोको को प्राप्त करता है ।। ४६ ।।

पूर्व अनुष्ठाताओ ने इस ओदन का जिन पदार्थों से प्राशन किया था तूने यदि उसके प्रतिकूल किया है तो तुझे सर्प काट खायेगा । मैंने सविता देव के पादाग्रो से इस ओदन का प्राशन किया है तथा उन्हीं के द्वारा इसे यथास्थान पहुँचाया है । इस भाँति किया गया ओदन प्राशन सर्वांग फल देने वाला होता है जो व्यक्ति प्राशन के इस ढ ग से परिचित है, वह सर्वांग फल युक्त हो स्वर्ग आदि लोको मे स्थित होता है ।। ४७ ।।

पूर्व अनुष्ठाताओ जिन करो से ओदन का प्राशन किया था, यदि तूने उससे भिन्न किया है तो ब्रह्महत्या के पाप का भागी होगा। मैंने ब्रह्म के करो द्वारा प्राशन किया हैं तथा उसे यथास्थान पहुँचाया है। इस भाँति किया ओदन प्राशन सर्वांग फल देने वाला है। इस विधि का ज्ञाता सब ग फलो से युक्त स्वर्ग आ द लोको में स्थित होती है ॥ ४८ ॥

पूर्व अनुष्ठाताओ ने जिस ब्रह्मात्मिका प्रतिष्ठा से ओदन का प्राशन किया था तूने यदि विपरीत किया है तो तू ऐश्वर्य रहित हो जायगा। मैंने ब्रह्मात्मिका प्रतिष्ठा से इस ओदन का प्राशन किया है और उसे स्वग पहुँचाया है। इस भाति किया गया प्राशन सर्वांग पूण होता है। इस विधि का ज्ञाता तुरुप सर्वांग फलों से युक्त स्वग को प्राप्त होता है॥ ४९ ॥

३ (३) सूक्त

(ऋषि अथर्वा। देवता—मन्त्रोक्ता । छन्द—अनुष्टुप, उष्णिक् त्रिष्टुप, बृहती)

एतद् वै ब्रध्नस्य विष्टप यदोदन ॥ ५० ॥

ब्रध्नलोको भवति ब्रध्नस्य विष्टपि श्रयते य एव वेद ॥ ५१ ॥

एतस्माद् वा ओदनात् त्रयस्त्रिशत लोकान् ।

निरमिमीत प्रजापति ॥ ५२ ॥

तेषां प्रज्ञानाय यज्ञमसृजत। ५३ ॥

स य एव विदुष उपद्रष्टा भवति प्राण रुणद्धि ॥ ५४ ॥

न च प्राण रुणद्धि सर्वज्यानि जीयते ॥ ५५ ॥

न च सर्वज्यानि जीयते पुरै न जरस प्राणो जहाति

उपरोक्त महिमा से

सृष्टि के रचयिता एव सूर्य

रूप ही है ॥ ५० ॥

जो व्यक्ति सूर्य मंडलात्मक रूप को जानता है वह सूर्य लोक को प्राप्त होता है ॥ ४१ ॥

प्रजापति ने इस सूर्यात्मक ओदन द्वारा अष्टावसु, एकादश, रुद्र द्वादश आदित्य प्रजापति और वषट्कार इन तेंतीस देवताओं की सृष्टि करते हुए उनके लोकों का भी निर्माण किया ॥ ४२ ॥

उन लोकों के सुखो का ज्ञान कराने के लिए ही इस यज्ञ को रचा गया ॥ ४३ ॥

इसके ज्ञाता उपासक का जो व्यक्ति उपद्रष्टा होता है, वह उपरोधक अपने शरीर मे स्थित अपने प्राण की गति को रोक देता है क्योंकि वह उपासक की कामना के प्रतिकूल आचरण करता है ॥ ४४ ॥

उसके प्राण की ही गति नही रुकती अपितु सन्तान पशु आदि से विहीन हो वह पतित हो जाता है ॥ ४५ ॥

उसकी सर्वस्व हानि के साथ ही उसके प्राण उसे जरावस्था से पूर्व ही छोड़ देते हैं। ४६ ।

४ सूक्त

(ऋषि—भार्गवो वैदर्भि. । देवता—प्राण. । छन्द-अनुष्टुप्, पंक्ति; त्रिष्टुप्, जगती)

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे ।
यो भूत सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ १ ॥
नमस्ते प्राण क्रन्दाय नमस्ते स्तनयित्नवे ।
नमस्ते प्राण विद्युते प्राण वर्षते ॥ २ ॥
यत् प्राण स्तनयित्नुनाभिक्रन्दत्योषधी ।
प्र वीयन्ते गर्भान् दधतेऽथो बह्वीर्वि जायन्ते ॥ ३ ॥

यत् प्राण ऋतावागतेऽभिक्रन्दत्योषधी. ।
सर्वं तदा प्र मोदते यत् किं च भूम्यामधि ॥ ४ ॥
यदा प्राणो अभ्यवर्षीद् वर्षेण पृथिवीं महीम् ।
पशवस्तत् प्र मोदन्ते महो वै नो भविष्यति ॥ ५ ॥
अभिवृष्टा ओषधयः प्राणेन समवादिरन् ।
आयुर्वै नः प्रातीतरः सर्वा नः सुरभीरकः ॥ ६ ॥
नमस्ते अस्त्वायते नमो अस्तु परायते ।
नमस्ते प्राण तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ॥ ७ ॥
नमस्ते प्राण प्राणते नमो अस्त्वपानते ।
पराचीनाय ते नमः प्रतीचीनाय ते नम· सर्वस्मै त इद नमः॥८॥
या ते प्राण प्रिया तनूर्यो ते प्राण प्रेयसी ।
अथो यद् भेषज तव तस्य नो धेहि जीवसे ॥ ९ ॥
प्राण· प्रजा अनु वस्ते पिता पुत्रमिव प्रियम् ।
प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणति यच्च न ॥ १० ॥

समस्त प्राणियो के शरीर में श्वास प्राण को नमस्कार है जिसके अधीन यह समस्त विश्व है। वह भूतकाल से ही अविच्छिन्न है। वह प्राणियों का ईश्वर है तथा उसीमें समस्त संसार व्याप्त है। ऐसे महिमा शाली प्राण के निमित्त नमस्कार है ॥ १ ॥

हे प्राण ! तुम ध्वनिशील हो। तुम मेघ जल में युक्त एव गर्जनशील हो। तुमको नमस्कार है। तुम ही विद्युत रूप से प्रकाशित होते हो एव वृष्टि वर्षक हो ॥ २ ॥

मूर्त्तात्मक मेघ ध्वनि से जब प्राण ओषधि आदि को परिलक्षित करता हुआ गर्जन ध्वनि करता है तब वे ओषधि आदि गर्भ धारण करती है ॥ ३ ॥

वर्षाऋतु की समाप्ति पर जब प्राण औषधियों के प्रति गर्जन ध्वनि करता है, तब सब प्रसन्न होते हैं। पृथ्वी के सभी प्राणी आनन्द विभोर हो उठते हैं ॥ ४ ॥

जब प्राण विस्तृत पृथ्वी को चहुँ ओर से वर्षा द्वारा सिंचित करता है तथा गौ आदि पशु हर्षोन्मत्त हो उठते हैं ॥ ५ ॥

प्राण द्वारा सिंचित औषधियां उसी से कहती हैं कि हे प्राण ! तू हमको सुन्दर गन्ध वाली बना और हमारे जीवन की वृद्धि कर ॥ ६ ॥

हे प्राण ! तुम सामने आते तथा लौटकर जाते हुए को प्रणाम है। तू जहाँ कहीं भी हो वहीं तुझे नमस्कार है ॥ ७ ॥

हे प्राण ! तुम प्राणन कर्म वाले और अपानन के कर्म वाले को नमस्कार है। परागमन स्वभाव से स्थित प्रतीचीन गमन वाले और सब व्यापारों के कर्ता तुमको नमस्कार है ॥ ८ ॥

हे प्राण ! इस शरीर से तुम्हे प्रेम है। तुम्हारी अग्नि-षोमात्मक प्रेयसी और अमरत्व से युक्त जो औषधि हैं, उन सबके पास से अमृत गुण देने वाली औषधि प्रदान कर ॥ ९ ॥

जैसे पिता अपने पुत्र को ढकता है उसी भाँति प्राण मनुष्यादि को ढकते हैं। जो जंगमात्मक वस्तु प्राणन व्यापार वाली हैं और जो स्थावरात्मक वस्तु प्राणन व्यापार से रहित है परन्तु प्राण उनमे निरुद्धगति से वास करता है। इन सब जंगम स्थावर जीवों सहित विश्व का स्वामी प्राण ही है ॥ १० ॥

प्राणो मृत्युः प्राणस्तक्मा प्राणं देवा उपासते ।
प्राणो ह सत्यवादिनमुत्तमे लोक आ दधत् ॥ ११ ॥
प्राणो विराट् प्राणो देष्ट्री प्राणं सर्व उपासते ।
प्राणो ह सूर्यश्चन्द्रमाः प्राणमाहुः प्रजापतिम् ॥ १२ ॥
प्राणापानौ व्रीहियवावनड्वान् प्राण उच्यते ।
यवे ह प्राण आहितोऽपानो व्रीहिरुच्यते ॥ १३ ॥
अपानति प्राणति पुरुषो गर्भे अन्तरा ।
यदा त्वं प्राण जिन्वस्यथ स जायते पुनः ॥ १४ ॥
प्राणमाहुर्मातरिश्वानं वातो ह प्राण उच्यते ।
प्राणे ह भूतं भव्यं च प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥
आथर्वणीराङ्गिरसीर्दैवीर्मनुष्यजा उत ।
ओषधयः प्र जायन्ते यदा त्वं प्राण जिन्वसि ॥ १६ ॥
यदा प्राणो अभ्यवर्षीद् वर्षेण पृथिवीं महीम् ।
ओषधयः प्र जायन्तेऽथो याः काश्च वीरुधः ॥ १७ ॥
यस्ते प्राणेदं वेद यस्मिंश्चासि प्रतिष्ठितः ।
सर्वे तस्मै बलिं हरानमुष्मिँल्लोक उत्तमे ॥ १८ ॥
यथा प्राण बलिहृतस्तुभ्यं सर्वाः प्रजा इमाः ।
एवा तस्मै बलिं हरान् यस्त्वा शृणवत् सुश्रवः ॥ १९ ॥
अन्तर्गर्भश्चरति देवतास्वाभूतो भूतः स उ जायते पुनः ।
स भूतो भव्यं भविष्यत् पिता पुत्रं प्र विवेशा शचीभिः ॥ २० ॥

प्राण ही मृत्यु है तथा प्राण ही कष्ट दायी ज्वरादि रूप तक्मा है इन्द्रियां प्राण की आराधना करती हैं तथा वही प्राण सत्यशील को श्रेष्ठ लोक की प्राप्ति कराता है ॥ ११ ॥
प्राण ही विराट है प्राण ही देष्ट्री है । सभी प्राण की उपासना करते हैं । प्राण ही सूर्य-चन्द्रमा है तथा प्राण ही प्रजापति है ॥ १२ ॥

प्रणायान प्राण की ही वृत्ति है वही व्रीहि और यव है। वृत्तिमान प्राण अनड्वान कहलाता है। विधाता ने जो में प्राणवृत्ति और व्रीहि में अपानवृत्ति वाला प्राण स्थापित किया है। इन दोनो के द्वारा ही प्राणियो के समस्त कार्य व्यापार चलते हैं। अतः व्रीहि यव और अनड्वान रूप से प्राण को ही कहते हैं॥ १३ ॥

हे प्राण! शरीर धारी मनुष्य स्त्री के गर्भ मे तुम्हारे प्रवेश मे ही प्राण और अपान व्यापार को करता है। तुम गर्भ स्थित बच्चे को माता द्वारा भोजन किए आहार से ही पोषित करते हो। फिर यह पुरुष पुण्य पाप का फल भोगने के लिए भूमि पर जन्म लेता है। १४॥

मातारिश्वा वायु ही प्राण है। संसार का आधारभूत वायु ही प्राण है। ससार के आधार भूत प्राण मे भूतकाल मे उत्पन्न ससारऔर भविष्य में उत्पन्न होने वाला ससार आश्रम रूप मे रहता है। सपूर्ण विश्व ही इस प्राण मे स्थित है॥ १५॥

हे प्राण! जब तुम वर्षा द्वारा तृप्त करते हो, तब अथर्वा, अंगरा गोत्री और देवगणों द्वारा रचीगई तथा मनुष्यो द्वारा प्रकट की गई सब औषधियाँ उत्पन्न होती हैं॥ १६॥

जब प्राण वर्षा केरूप में पृथ्वी पर बरसात है उसके बाद ही व्रीहि जो तथा लता रूप औषधियाँ उत्पन्न होती हैं॥१७॥

हे प्राण! तू जिस विद्वान में प्रविष्ट होता है और जो तेरी उक्त महिमा से परिचित है सब देवता उस विद्वान को श्रेष्ठ लोक मे अमरता पदान करते है॥ १८॥

हे प्राण! देवता मनुष्यादि जैसे तुम्हारे उपभोग के योग्य अन्न लाते हैं वैसे ही तुम्हारी महिमा से परिचित विद्वान के लिए भी लावें॥ १९॥

मनुष्यों में ही नहीं, देवताओं में भी प्राण रूप गर्भ से घूमता है। सब ओर व्याप्त होकर प्राण ही उत्पन्न होता है। इस नित्य वर्तमान प्राण ने भूतकाल की और भविष्य की वस्तुओं में भी पिता का पुत्र में अपने अवयवों से प्रविष्ट होने के समान अपनी सामर्थ्य से प्राप्त कर लिया है ॥ २० ॥

एकं पादं नोत्खिदति सलिलाद्धंस उच्चरन् ।
यदंग स तमुत्खिदेन्नैवाद्य न श्वः स्यान्न रात्री नाहः
स्यान्न व्युच्छेत् कदा चन ॥ २१ ॥
अष्टाचक्रं वर्तत एकनेमि सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पश्चा ।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं कतमः स केतुः ॥ २२ ॥
यो अस्य विश्वजन्मन ईशे विश्वस्य चेष्टतः ।
अन्येषु क्षिप्रधन्वने तस्मै प्राण नमोऽस्तु ते ॥ २३ ॥
यो अस्य सर्वजन्मन ईशे सर्वस्य चेष्टतः ।
अतन्द्रो ब्रह्मणा धीरः प्राणो मानु तिष्ठतु ॥ २४ ॥
ऊर्ध्वः सुप्तेषु जागार ननु तिर्यङ् नि पद्यते ।
न सुप्तमस्य सुप्तेष्वनु शुश्राव कश्चन ॥ २५ ॥
प्राण मा मत् पर्यावृतो न मदन्यो भविष्यसि ।
अपां गर्भमिव जीवसे प्राण बध्नामि त्वा मयि ॥ २६ ॥

शरीर में स्थित प्राण ही हंस है। वह इस शरीर से प्राणवृत्ति द्वारा ऊपर की ओर जाता हुआ अपानवृत्ति वाले एक पाँव को नहीं उठाता। यदि वह ऐसा करे तो शरीर से प्राण निकल जाने पर शरीर का काल विभाग न हो और न अन्धकार ही दूर हो। अतः संसार को प्राणयुक्त रखने के लिए वे अपने एक पाद को स्थिर रखते हैं ॥ २१ ॥

अष्ट चक्र युक्त शरीर प्राण रूप एक नेमि वाला कहा जाता है। यह चक्र अनेक अक्षों से मिला हुआ है। ऐसे रक्षा-

त्मक शरीर को पहले पूर्णभाग में तदुपरान्त अपर भाग मे व्याप्त होकर भोगता है । यह प्राण आधे अंश से प्राणियो को उत्पन्न करता है और उसके दूसरे भाग का रूप निर्धारण शक्ति से परे है ॥ २२ ॥

यह प्राण जो विश्व का स्वामी है, वह शरीर धारियो के शरीर में शीघ्रता से प्रतिष्ठित होता है । हे प्राण ! तुम्हें नमस्कार है ॥ २३ ॥

जो प्राण संसार का स्वामी है, वह सर्वत्र प्रतिक्षण सचेष्ट रहता है । वह प्राण अविच्छन्न रूप से मेरे शरीर मे वर्तमान रहे ॥ २४ ॥

हे प्राण ! सोते हुए प्राणियो की रक्षा की निमित्त तुम सचेष्ट रहो । प्राणी सोता है, परन्तु प्राण को सोते हुए किसी ने नही सुना ॥ २५ ॥

हे प्राण ! तुम मुझसे विमुख न हो । मैं जीवन धारण के लिये तुम्हें अपने शरीर मे रोकता हूँ । वेदवाना अग्नि को जिस प्रकार देह में धारण किया जाता है उसी प्रकार मैं तुम्हें शरीर मे धारण करता हूँ ॥ २६ ॥

५ सूक्त (तीसरा अनुवाक)

(ऋषि-ब्रह्मा देवता-ब्रह्मचारी । छन्द त्रिष्टुप्, शक्वरी, बृहती, जगती, अनुष्टुप, उष्णिक्)

ब्रह्मचारीष्णश्चरति रोदसी उभे तस्मिन् देवा संमनसो भवन्ति ।
स दाधार पृथिवीं दिवं च स आचार्यं तपसा पिपर्ति ॥ १ ॥
ब्रह्मचारिणं पितरो देवजनाः पृथग् देवा अनुसंयन्ति सर्वे ।
गन्धर्वा एनमन्वायन् त्रयस्त्रिंशत् त्रिशताः षट्सहस्राः
सर्वान्त्स देवांस्तपसा पिपर्ति ॥ २ ॥

आचार्य उपनयमानो ब्रह्म ारिण कृणुते गर्भमन्त: ।
तं रात्री ि स्त्र उदरे बिभर्ति तं जात द्रष्टुमभिसंयन्ति देवा:॥३॥
इयं समित् पृथिवी द्यौद्वितीयोतान्तरिक्षं समिधा पृणाति ।
ब्रह्मचारी समिधा मेखलया श्रमेण लाकांस्तपसा पिपर्ति ॥ ४ ॥
पूर्वो जा ो ब्रह्मणो ब्रह्मचारी घर्मं वसानस्तपसोदतिष्ठत् ।
तस्माज्जात ब्राह्मण ब्रह्म ज्येष्ठ देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम् ॥५॥
ब्रह्मचार्येति स ि धा समिद्ध कार्ष्णं वसानो दीक्षितो दीर्घश्मश्रु: ।
स सद्य एति पूर्वस्मादुत्तरं समुद्रं लोकान्त्सगृभ्य मुहुराचरिक्रत् ॥६
ब्रह्मचारो जनय । ब्रह्मापो लोक प्रजापति परमेष्ठिन विराजम् ।
गर्भो भूत्वामृतस्य योनाविन्द्रो ह भूत्वासुरांस्तत्र्हं ॥ ७ ॥
आचार्य स्ततक्ष नभसी उभे इमे उर्वी गम्भीरे पृथिवीं दिवं च ।
ते रक्षति तपसा ब्रह्मचारी तस्मिन् देवा: संमनसो भवन्ति । ८॥
इमां भूमि पृथिवी ब्रह्मचारी भिक्षामा जभार प्रथमो दिवं च ।
ते कृत्वा समिधावुपास्ते तयोरापिता भुवनानि विश्वा ॥ ९ ॥
अर्वागन्य परो अन्यो दिवस्पृष्ठाद् गुहा निधी निहितौ ब्राह्मणस्य ।
तौ रक्षति तपसा ब्रह्मचा ी तत् केवलं कृणुते ब्रह्म विद्वान् ॥१०॥

आकाश पृथ्वी दोनों लोकों को अपने तपसे प्रभावित करने वाले ब्रह्मचारी को समस्त देवगण अनुकूल होते है। वह अपने तपसे आकाश का पोषण करता तथा अपने गुरु का भी पोषण करता है ॥ १ ॥

पितर इन्द्र आदि देवता ब्रह्मचारी की रक्षा के निमित्त सदैव तत्पर रहते हैं। विश्वा वसु आदि भी इसका अनुसरण करते हैं। तेंतीस देवता, इनकी विभूति रूप तीन सौ तीन देवता और छ सहस्र देवता, इन सबका ब्रह्मचारी अपने तप द्वारा पोषण करता है ॥ २ ॥

उपनयन करने वाला आचार्य, विद्यामय शरीर के गर्भ में उसे स्थापित करता हुआ, तीन रात तक ब्रह्मचारी को अपने उदर मे रखता है चौथे दिन देवगण उस विद्या देह से उत्पन्न ब्रह्मचारी के सन्मुख अभिमुख होते हैं ॥ ३ ॥

पृथ्वी इस ब्रह्मचारी की प्रथम तथा आकाश दूसरी समिधा है। द्यावा पृथ्वी के मध्य अग्नि में स्थापित हुई समिधा से ब्रह्मचारी ससार को तृप्ति प्रदान करता है। इस प्रकार ब्रह्मचारी समिधा मेखला, मौजी श्रम, इन्द्रिय निग्रहात्मक खेद और देह को सतापित करने वाले नियमो का पालन करता हुआ पृथ्वी आदि लोको का पोषण करता है ॥ ४ ॥

ब्रह्मचारी ब्रह्म से भी पहले उत्पन्न हुआ, वह तेजोमय रूप धारण कर तप से युक्त हुआ। उस ब्रह्मचारी रूप से तपते हुए ब्रह्म द्वारा श्रेष्ठ वेदात्मक ब्रह्म प्रकट हुआ और उसके द्वारा प्रतिपादित अग्नि आदि देवता भी अपने अमृतत्व आदि गुणो के सहित प्रकट हुए ॥ ५ ॥

प्रातः साय अग्नि मे होमी समिधा और उसकी दीप्ति से हुए तेजस्वी मृगचर्म धारी जो ब्रह्मचारी अपने नियमों का पालन करता है वह शीघ्र ही पूर्व समुद्र से उत्तर समुद्र पर पहुँचता है और सब लोको को अपने समक्ष करता है ॥ ६ ॥

ब्रह्मचारी से ब्राह्मण जाति की उत्पत्ति होती है। वही गगा आदि नदियाँ स्वर्ग प्रजापति परमेष्ठी और विराट को उत्पन्न करता है। वह मरण धर्म से रहित ब्रह्म की तीन गुणो से युक्त प्रकृति मे गर्भ रूप होकर सब प्राणियो को प्रकट करता और इन्द्र रूप मे असुरो का सहार करता है ॥ ७ ॥

यह द्यावा पृथ्वी विशाल है। इस द्यावा पृथ्वी के उत्पत्ति

कर्त्ता आचार्य की भी ब्रह्मचारी रक्षा करता है। समस्त देवगण ऐसे ब्रह्मचारी पर अनुग्रहशील होते हैं । ८ ।

पृथ्वी और आकाश को ब्रह्मचारी ने भिक्षा रूप में ग्रहण किया और फिर उसने उस द्यावा पृथ्वी को समिधा बना कर अग्नि की उपासना की। संसार के समस्त जीवधारी इन्हीं आकाश के आश्रय में रहते हैं ॥ ९ ।

ब्रह्मचारी वेदात्मक और देवात्मक निधियों की अपने तप से रक्षा करते हैं। वेदवेत्ता ब्राह्मण शब्द और उसके अर्थ से सम्बन्धित दोनों निधियों को ब्रह्मरूप करता है । १० ॥

अर्वागन्य इतो अन्यः पृथिव्या अग्नी समेतो नभसी अन्तरेमे ।
तयोः श्रयन्ते रश्मयोऽधि दृढास्ताना तिष्ठति तपसा ब्रह्मचारी ॥ ११ ॥

अभिक्रन्दन् स्तनयन्नरुणः शितिङ्गो बृहच्छेपोऽनु भूमौ जभार ।
ब्रह्मचारी सिञ्चति सानौ रेतः पृथिव्या तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ॥ १२ ॥

अग्नौ सूर्ये चन्द्रमसि मातरिश्वन् ब्रह्मचर्यप्सु समिधमता दधाति ।
तासामर्चींषि पृथगभ्रे चरन्ति तासामाज्यं पुरुषो वर्षमापः ॥१३॥

आचार्यो मृत्युर्वरुणः सोम ओषधयः पयः ।
जीमूता आसन्सत्वानस्तैरिदं स्वराभृतम् ॥ १४ ॥

अमा घृतं कृणुते केवलमाचार्यो भूत्वा वरुणो यद्यदैच्छत् प्रजापतौ।
तद् ब्रह्मचारी प्रायच्छत् स्वान्मित्रो अध्यात्मनः ॥ १५ ॥

आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापतिः ।
प्रजापतिर्वि राजति विराडिन्द्रोऽभवद् वशी ॥ १६ ॥

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति ।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ॥ १७ ॥

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् ।
अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिगीर्षति ॥ १८ ॥
ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत ।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत् ॥ १६ ॥
ओषधयो भूतभव्यमहोरात्रे वनस्पतिः ।
संवत्सरः सहर्तुभिस्ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥ २० ॥

उदय न हुआ सूर्यरूप अग्नि पृथ्वी के नीचे रहता है पार्थिव अग्नि का निवास स्थान पृथ्वी है। सूर्य के उदय होने पर यह दोनों अग्नियाँ अन्तरिक्ष पर मिलती हैं। दोनो की रश्मियाँ संयुक्त होकर दृढ होती हुई आकाश पृथ्वी को आश्रित होती हैं। इन दोनों अग्नियो से पूर्ण ब्रह्मचारी अपनी दीप्ति से अभिदेवता होता है ॥ ११ ॥

वृष्टि जल से पूर्ण वरुणदेव अपने वीर्य को पृथ्वी में सींचते हैं। ब्रह्मचारी इस वीर्य को अपने तेज से उच्च प्रदेश में सींचता है जिससे चारो दिशाऐं वृद्धि को प्राप्त होती हैं ॥१२॥

ब्रह्मचारी, पार्थिव अग्नि मे चन्द्रमा सूर्य वायु एव जलमें समिधाऐं डालता है। इस अग्नि आदि का तेज भिन्न भिन्न रूप से आकाश और पृथ्वी के मध्य स्थित होता है। ब्रह्मचारी द्वारा वृद्धि को प्राप्त अग्नि, वर्षा जल घृत प्रजा आदि कार्य को सपन्न करते हैं ॥ १३ ॥

आचार्य ही मृत्यु है वही वरुण है, वही सोम है। दुग्ध ब्रीहि, जौ और ओषधियाँ आचार्य के अनुग्रह से ही प्राप्त होती हैं अथवा यह स्वय ही आचार्य रूप हैं ॥ १४ ॥

आचार्य रूप से वरुण ने जिस जल को धारण किया, वही वरुण प्रजापति से जिस अभीष्ट की कामना करते थे,

उसे मित्र ने ब्रह्मचारी रूप से आचार्य को दक्षिणा मे प्रदान किया । १५ ॥

भिक्षा दान देने के फलस्वरूप आचार्य ब्रह्मचारी रूप से प्रकट हुए, वही अपने तप से प्रजापति हुए । प्रजापति से विराट होकर परमात्मा बने ॥ १६ ।

वेद ही ब्रह्म हैं, तथा वेदो का अध्ययन करने वाला कार्य भी ब्रह्म हैं । इसी ब्रह्मचर्य के तप के प्रभाव से राजा अपने राज्य की समृद्धि करता है तथा आचार्य भी ब्रह्मचर्य के द्वारा ब्रह्मचारी को अपना शिष्य बनाने की इच्छा प्रकट करता है ॥ १७ ॥

जो अविवाहित है ऐसी स्त्री ब्रह्मचर्य के द्वारा श्रेष्ठ पति को प्राप्त करती है । अनड्वान आदि भी ब्रह्मचर्य द्वारा ही श्रेष्ठ स्वामी को प्राप्त करता है । अश्व ब्रह्मचर्य से ही सेवनीय तृणो की इच्छा प्रकट करता है । १८ ॥

अग्नि आदि देवगणो ने ब्रह्मचर्य द्वारा मृत्यु को पृथक किया, ब्रह्मचर्य के द्वारा ही इन्द्र ने देवगणों को स्वर्ग की प्राप्ति कराई । १९ ॥

व्रीहि, यव, ओषधियाँ वनौषधियाँ, दिवस-रात्रि, स्थावर जंगम सृष्टि, षट ऋतु और बारह मास का वर्ष ब्रह्मचर्य के तपसे ही क्रियाशील हैं ॥ २० ॥

पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या ग्राम्याश्च ये ।
अपक्षा. पक्षिणश्च ये ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥ २१ ॥
पृथक् सर्वे प्राजापत्या प्राणानात्मसु बिभ्रति ।
तान्त्सर्वान् ब्रह्म रक्षति ब्रह्मचारिण्याभृतम् ॥ २२ ॥
देवानामेतत् परिषूतमनभ्यारूढं चरति रोचमानम् ।
तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम् ॥२३

ब्रह्मचारी ब्रह्म भ्राजद् बिभर्ति तस्मिन् देवा अधि विश्वे समोताः।
प्राणापानौ जनयन्नाद् व्यानं वाचं मनो हृदयं ब्रह्म मेधाम् ॥२४॥
चक्षुः श्रोत्रं यशो अस्मासु धेह्यन्नं रेतो लोहितमुदरम् ॥ २५ ॥
तानि कल्पद् ब्रह्मचारी सलिलस्य पृष्ठे तपोऽतिष्ठत्
तप्यमानः समुद्रे ।
स स्नातो बभ्रुः पिंगलः पृथिव्यां बहु रोचते ॥ २६ ॥

द्यावा पृथ्वी के समस्त प्राणी, पंख वाले और बिना पंख वाले पशु आदि सबकी उत्पत्ति ब्रह्मचर्य के प्रभाव से है ॥ २१ ॥

प्रजापति द्वारा उत्पन्न देवगण मनुष्य आदि समस्त प्राणियों का धारण पालन करते हैं । आचार्य के मुखसे निकला वेदात्मक ब्रह्म ही ब्रह्मचारी में स्थित होकर सब जीवधारियों का रक्षण करता है ॥ २२ ॥

वह परमब्रह्म देवताओं से परोक्ष नहीं है। वह अपने ब्रह्मरूप से ही प्रकाशित होता है। वह श्रेष्ठतम है। देवता भी अमरणशील होकर प्रकट हुए हैं ॥ २३ ॥

ब्रह्मचारी वेदात्मक ब्रह्म को धारण करता और समस्त जीवधारियों के प्राण अपान को प्रकट करने वाला है। फिर व्यान नामक वायु को शब्दात्मिका वाणी को अन्त करण और उसके निवास रूप हृदय को वेदात्मक ब्रह्म और विद्यात्मिका बुद्धि को वही ब्रह्मचारी उत्पन्न करता है ॥ २४ ॥

हे ब्रह्मचारी ! तुम हम श्रोताओं में, नेत्र, श्रोत्र यश और वैभव की स्थापना करो ॥ २५ ॥

अन्न वीर्य रक्त आदि की कल्पना करता हुआ ब्रह्मचारी तपस्या में लगा हुआ स्नान से सदा पवित्र रहता है और वह अपने तेज से दीप्त युक्त होता है ॥ २६ ॥

समश्नुवीन् या इदं ब्रूमोऽपो देवीः प्रजापतिम् ।
पितॄन् यमश्रेष्ठान ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ११ ॥
ये देवा दिविषदो अन्तरिक्षसदश्च ये ।
पृथिव्यां शक्रा ये श्रितास्ते नो मुञ्चन्त्वंहस. ॥ १२ ॥
आदित्या रुद्रा वसवो दिवि देवा अथर्वाणः ।
अंगिरसो मनीषिणस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १३ ॥
यज्ञं ब्रूमो यजमानमृचः सामानि भेषजा ।
यजूंषि होत्रा ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहस. ॥ १४ ॥
पञ्च राज्यानि वीरुधां सोमश्रेष्ठानि ब्रूमः ।
दर्भो भङ्गो यव. सहस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १५ ॥
अरायान् ब्रूमो रक्षांसि सर्पान पुण्यजनान पितॄन ।
मृत्युनेकशतं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १६ ॥
ऋतून् ब्रूम ऋतुपतीनार्तवानुत हायनान् ।
समाः संवत्सरान् मासास्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १७ ॥
एत देवा दक्षिणतः पश्चात् प्राञ्च उदेत् ।
पुरस्तादुत्तराच्छक्रा विश्वे देवाः समेत्य ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१८॥
विश्वान् देवानिदं ब्रूमः सत्यसंधानृतावृधः ।
विश्वाभिः पत्नीभिः सह ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १९ ॥
सर्वान् देवानिद ब्रूमः सत्यसंधानृतावृधः ।
सर्वाभिः पत्नीभि सह ते ना मुञ्चन्त्वंहसः ॥ २० ॥
भूत ब्रूमो भूतपति भूतानामुत यो वशी ।
भूतानि सर्वा संगत्य ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ २१ ॥
या देवी पञ्च प्रदिशो ये देवा द्वादशर्तव ।
संवत्सरस्य ये दंष्ट्रास्ते नः सन्तु सदा शिवा ॥ २२ ॥
यन्मातली रथक्री नममृत वेद भेषजम् ।
तदिन्द्रो अप्सु प्रावेशयत् तदापो दत्त भेषजम् ॥ २३ ॥

हम इस स्तुति को सप्त ऋषियो से कहते हैं। हम जल देवता, प्रजापति और पितरो की स्तुति करते हैं वे हमें पाप दोषों से मुक्त करें ॥ ११ ॥

आकाश पृथ्वी और अन्तरिक्ष के पराक्रमी देवता हमारी पाप दोषो से रक्षा करें ॥ १२ ॥

द्वादश सूर्य, एकादश रुद्र, अष्टवसु द्युलोक के देवगण महर्षि अथवा आंगिरस आदि महर्षि हमारी स्तुति से प्रसन्न होकर हमारी पाप दोषो से रक्षा करें। १३ ॥

हम यज्ञ यजमान तथा यज्ञ मे विनियुक्त ऋचाओ की की स्तुति करते है। स्तोत्रो का सपन्न करने वाले सामो की ओषधियो की और होमो की हम स्तुति करते हैं, वे हमे पाप से छुड़ावें ॥ १४ ॥

पत्र, काण्ड, फल पुष्प और मूल इन पाँच राज्य वाली औषधियो मे श्रेष्ठ सोमलता है, उसकी दश, भग यव और सहदेवी आदि औषधियो की हम स्तुति करते है, यह हमको पाप दोपो से मुक्त करें। १५ ॥

दान मे बाधक दुष्टो की, कष्टदायी राक्षसो की, पिशाचो की, सर्पो की, पितरो का तथा एक सौ एक मृत्यो के स्वामी देवताओ की हम स्तुति करते हैं ॥ १६ ॥

ऋतुओ वसु रुद्र आदित्य ऋभु, मरुतो तथा ऋतुओ में उत्पन्न पदार्थों का, चन्द्र सवत्सरो और सौर सवत्सरो और मासो को हम स्तुति करते है, वे हमारी पाप दोपो से रक्षा करें ॥ १७ ॥

हे देवगण ! तुम दक्षिण, उत्तर, पश्चिम या पूर्व दिशाओ में स्थित हो। अपनी अपनी दिशाओ से शीघ्र पधार कर हमें पाप दोषो से मुक्त करो ॥ १८ ॥

सूक्त ६

(ऋषि—शन्ताति । देवता—अग्न्यादयो मन्त्रोक्ता । छन्द—अनुष्टुप)

अग्नि ब्रूमो वनस्पतीनोषधीरुत वीरुध. ।
इन्द्र बृहस्पति सूर्यं ते नो मुञ्चन्त्वंहस. ॥ १ ॥
ब्रूमो राजन वरुण मित्र विष्णुमथो भगम् ।
अ श विवस्वन्त ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहस ॥ २ ॥
ब्रूमो देवा सवितार धातारमुत पूषणम् ।
त्वष्टारमग्रिय ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहस ॥ ३ ॥
गन्धर्वाप्सरसो ब्रूमो अश्विना ब्रह्मणस्पतिम् ।
अर्यमा नाम यो देवस्ते नो मुञ्चन्त्वंहस ॥ ४ ॥
अहोरात्रे इद ब्रूम सूर्याचन्द्रमसावुभा ।
विश्वानादित्यान ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहस. ॥ ५ ॥
वात ब्रूम. पर्जन्यमन्तरिक्षमथो दिश ।
आशाश्च सर्वा ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहस ॥ ६ ॥
मुञ्चन्तु मा शपथ्या दहोरात्रे अथो उषा ।
सोमो मा देवो मुञ्चन्तु यमाहुश्चन्द्रमा इति ॥ ७ ॥
पार्थिवा दिव्या पशव आरण्या उत ये मृगा ।
शकुन्तान् पक्षिण ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहस ॥ ८ ॥
भवाशर्वाविद ब्रूमो रुद्र पशुपतिश्च य ।
इषूर्या एषां सविद्म ता न सन्तु सदा शिवा ॥ ९ ॥
दिवं ब्रूमो नक्षत्राणि भूमि यक्षाणि पर्वतान् ।
समुद्रा नद्यो वेशन्तास्ते नो मुञ्चन्त्वंहस ॥ १० ॥

अभीष्ट फल की प्राप्ति हेतु हम अग्निदेव की स्तुति करते हैं। हम [illegible] वृक्षों और [illegible] सब वनौषधि [illegible]

करते हैं। इन्द्र वहस्पति और सूर्य की भी हम स्तुति करते हैं, वे पाप दोषो से हमारी रक्षा करें ॥ १ ॥

वरुण, मित्र, विष्णु, भग, अंश और विवस्वान की हम स्तुति करते हैं वे पाप दोषो से हमारी रक्षा करें ॥ २ ॥

हम सूर्य धाता पूषा और त्वष्टादेव की स्तुति करते हैं वे हमारी पाप दोषो से रक्षा करें ॥ ३ ॥

हम गन्धर्व अप्सराओ अश्विद्वय ब्रह्मा और अर्यमा की स्तुति करते है, वे हमारी पाप दोषो से रक्षा करें ॥ ४ ॥

दिन और रात के स्वामी सूर्य और चन्द्र तथा अदिति के सभी पुत्रो को हम स्तुति करते हैं। वे हमे पाप दोषो से मुक्त करें ॥ ५ ॥

हम वायु पर्जन्य, दिशा विदिशा के देवताओ को भी स्तुति करते हैं, वे हमारी पाप दोषो से रक्षा करें ॥ ६ ॥

दिवस रात्रि के अभिमानी देवता मुझे सौगन्धात्मक दोष से युक्त करें। उषा काल के अभिमानी देवता चन्द्रमा रूप सोम मुझे सौगन्ध के कारण लगे पाप दोष से मुक्त करें ॥ ७ ॥

आकाश के प्राणी, पृथ्वी के जीवधारी पशु पक्षी आदि की भी हम स्तुति करते हैं। वे हमारी पाप दोषो से रक्षा करें ॥ ८ ॥

भव और शर्व की ओर देखते हुए हम यह कहते हैं, रुद्र और पशुपतिदेव की हम स्तुति करते हैं। इसके वे वाण जिन्हे हम जानते हैं, हमारे लिए सुखकारी हो ॥ ९ ॥

हम आकाश, नक्षत्र पृथ्वा पुण्य क्षेत्र पर्वत समुद्र नदी सरोवर आदि की स्तुति करते हैं। वे हमको पाप दोष से मुक्त करें ॥ १० ॥

सप्तऋषीन् वा इदं ब्रूमोऽपो देवीः प्रजापतिम् ।
पितॄन् यमश्रेष्ठान् ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ११ ॥
ये देवा दिविषदो अन्तरिक्षसदश्च ये ।
पृथिव्यां शक्रा ये श्रितास्ते नो मुञ्चन्त्वंहस ॥ १२ ॥
आदित्या रुद्रा वसवो दिवि देवा अथर्वाणः ।
अङ्गिरसो मनीषिणस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १३ ॥
यज्ञं ब्रूमो यजमानमृच सामानि भेषजा ।
यजूंषि होत्रा ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहस ॥ १४ ॥
पञ्च राज्यानि वीरुधां सोमश्रेष्ठानि ब्रूम. ।
दर्भो भङ्गो यव सहस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १५ ॥
अरायान् ब्रूमो रक्षांसि सर्पान् पुण्यजनान् पितॄन् ।
मृत्युनेकशत ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १६ ॥
ऋतून् ब्रूम ऋतुपतीनार्तवानुत हायनान् ।
समा. संवत्सरान् मासांस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १७ ॥
एत देवा दक्षिणत. पश्चात् प्राञ्च उदेत् ।
पुरस्तादुत्तराच्छक्रा विश्वे देवा समेत्य ते नो मुञ्चन्त्वंहस. ॥१८॥
विश्वान् देवानिद ब्रूम· सत्यसंधानृतावृध. ।
विश्वाभि. पत्नीभिः सह ते नो मुञ्चन्त्वंहस ॥ १६ ॥
सर्वान् देवानिद ब्रूमः सत्यसंधानृतावृधः ।
सर्वाभि पत्नीभि सह ते ना मुञ्चन्त्वंहस. ॥ २० ॥
भूत ब्रूमो भूतपति भूतानामुत यो वशी ।
भूतानि सर्वा सगत्य ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ २१ ॥
या देवी पञ्च प्रदिशो ये देवा द्वादशर्तव ।
संवत्सरस्य ये दंष्ट्रास्ते न. सन्तु सदा शिवा ॥ २२ ॥
यन्मातली रथक्री नममृत वेद भेषजम् ।
तदिन्द्रो अप्सु प्रावेशयत् तदापो दत्त भेषजम् ॥ २३ ॥

हम इस स्तुति को सप्त ऋषियो से कहते हैं। हम जल देवता, प्रजापति और पितरो की स्तुति करते हैं वे हमें पाप दोषो से मुक्त करें। ११ ॥

आकाश पृथ्वी और अन्तरिक्ष के पराक्रमी देवता हमारी पाप दोषो मे रक्षा करें। १२ ॥

द्वादश सूर्य, एकादश रुद्र, अष्टावसु द्युलोक के देवगण महर्षि अथवा आंगिरस आदि महर्षि हमारी स्तुति से प्रसन्न होकर हमारी पाप दोषो से रक्षा करें। १३ ॥

हम यज्ञ यजमान तथा यज्ञ मे विनियुक्त ऋचाओं की की स्तुति करते है। स्तोत्रो का सम्पन्न करने वाले सामो की औषधियो की और होत्रो की हम स्तुति करते हैं, वे हमें पाप से छुडावें ॥ १४ ॥

पत्र, काण्ड, फल पुष्प और मूल इन पाँच राज्य वाली औषधियो मे श्रेष्ठ सोमलता है, उसकी दर्भ भग यव और सहदेवी आदि औषधियो की हम स्तुति करते हैं, वह हमको पाप दोषो से मुक्त करें। १५ ॥

दान मे बाधक दुष्टो की, कष्टदायी राक्षसो की, पिशाचो की, सर्पो की, पितरो का तथा एक सौ एक मृत्यो के स्वामी देवताओ की हम स्तुति करते हैं ॥ १६ ॥

ऋतुओ वसु रुद्र आदित्य ऋभु, मरुतो तथा ऋतुओ में उत्पन्न पदार्थो का, चन्द्र सवत्सरो और सौर सवत्सरो और मासो को हम स्तुति करते है, वे हमारी पाप दोषो से रक्षा करें ॥ १७ ॥

हे देवगण ! तुम दक्षिण, उत्तर, पश्चिम या पूर्व दिशाओ मे स्थित हो। अपनी अपनी दिशाओ से शीघ्र पधार कर हमे पाप दोषो से मुक्त करो ॥ १८ ॥

हम अपनी स्त्रियों सहित विश्वेदेवा की स्तुति करते हुए प्रार्थना करते हैं कि वे हमें पाप दोषों से मुक्त करें ॥ १६ ॥

हम यज्ञ की वृद्धि करने वाले देवताओंकी, उनकी पत्नियों सहित स्तुति करते हुए याचना करते हैं कि वे हमें पाप दोषों से मुक्त करें ॥ २० ॥

हम भूत, भूतेश्वर और भूतों के नियामक देवता की स्तुति करते हुए उनसे याचना करते हैं कि वे मिलकर यहाँ पधारें और हमारी पाप दोषों से रक्षा करें ॥ २१ ॥

पाँच दिशाऐं, बारह मास संवत्सर तथा हिंसात्मक दाढों को हम स्तुति करते हैं। वे हमारे लिये सुखकारी हों ॥ २२ ॥

इन्द्र का सारथि मातलि जिस अमरता प्रदान करने वाली औषधि से परिचित है, उसे रथ के स्वामी इन्द्र ने जल में डाल दिया था। हे जलो ! तुम मातलि द्वारा प्राप्य और इन्द्र द्वारा जल मे डाली गई औषधि को हमें प्रदान करो ॥ २३ ॥

७ सूक्त (चौथा अनुवाक)

(ऋषि-अथर्वा। देवता- उच्छिष्टः, अध्यात्मम् । छन्द- अनुष्टुप्; उष्णिक्; बृहती)।

उच्छिष्टे नाम रूपं चोच्छिष्टे लोक आहितः।
उच्छिष्ट इन्द्रश्चाग्निश्च विश्वमन्तः समाहितम् ॥ १ ॥
उच्छिष्टे द्यावापृथिवी विश्वं भूतं समाहितम्।
आपः समुद्र उच्छिष्टे चन्द्रमा वात आहितः ॥ २ ॥
सन्नुच्छिष्टे असश्चोभौ मृत्युर्वाजः प्रजापतिः।
लौक्या उच्छिष्ट आयत्ता व्रश्च द्रश्चापि श्रीर्मयि ॥ ३ ॥
दृढो दृंहस्थिरो न्यो ब्रह्म विश्वसृजो दश।
नाभिमिव सर्वतश्चक्रमुच्छिष्टे देवताः श्रिताः ॥ ४ ॥

ऋक् साम यजुरुच्छिष्ट उद्‌गाय प्रस्तुतं स्तुतम् ।
हिङ्कार उच्छिष्टे स्वरः साम्नो मेडिश्च तन्मयि ॥ ५ ॥
ऐन्द्राग्न पावमानं महानाम्नीर्महाव्रतम् ।
उच्छिष्टे यज्ञस्याङ्गान्यन्तर्गर्भ इव मातरि ॥ ६ ॥
राजसूय वाजपेय मग्निष्टोमस्तदध्वरः ।
अर्काश्वमेधा वुच्छिष्टे जीव बर्हिर्मदिन्तम ॥ ७ ॥
अग्न्याधेयमथो दीक्षा कामप्रश्छन्द सा सह ।
उत्सन्ना यज्ञा सत्राण्युच्छिष्टेऽधि समाहिता ॥ ८ ॥
अग्निहोत्रं च श्रद्धा च वषट् कारो व्रत तपः ।
दक्षिणेष्टं पूर्तं चोच्छिष्टेऽधि समाहिताः ॥ ९ ॥
एकरात्रो द्विरात्र सद्य क्री प्रक्रीरुक्थ्य ।
ओतं निहितमुच्छिष्टे यज्ञस्याणूनि विद्यया ॥ १० ॥

उच्छिष्ट मे पृथ्वी आदि समस्त लोक व्याप्त हैं, उसी मे इन्द्र और अग्नि स्थित है और उसी उच्छिष्ट के मध्य परमात्मा द्वारा समस्त सृष्टि को स्थापित किया हुआ है ॥ १ ॥

द्यावा पृथ्वी उस उच्छिष्ट में आहित है तथा इनके समस्त निवासी भी इसी उच्छिष्ट मे समाए हुए है। जल समुद्र चन्द्रमा और वायु यह सभी देवगण उसी उच्छिष्ट रूप परमात्मा मे निहित हैं ॥ २ ॥

सत और असत तथा इनसे सबधित मृत्यु देवता, उनका वल तथा उनके रचियिता प्रजापति, लोकों में निवास करने वाली प्रजायें वरुण देव और अमरत्व से युक्त सोम, यह सभी उस बचे हुए ओदन के आश्रय रूप स्थित हैं। उसी के प्रभाव से सम्पत्ति मेरे आश्रित हो ॥ ३ ॥

पुष्ट देहधारी देवता, स्थिर लोक और वहां के निवासी, विश्व के कारण रूप ब्रह्म विश्व रचियिता नवग, ब्रह्म और

उनका भी रचयिता दसम ब्रह्म इस उच्छिष्ट के उसी भांति आश्रित रहते हैं जैसे रथ चक्र की नाभि सब ओर से आश्रय-रूप होकर रहती है ॥ ४ ॥

उद्गीथ, प्रस्तुत, स्तुत और हिं ध्वनि युक्त ऋक साम और यजुर्वेद के मन्त्र उच्छिष्ट रूप ब्रह्म में आहित हैं ॥ ५ ॥

इन्द्राग्नि की स्तुति वाला स्तोत्र सोम का स्तोत्र, महा-नाम्नी ऋचाएँ, महाव्रत यज्ञ के यह अ ग माता के गर्भ में स्थित जीव के समान इसी उच्छिष्ट में समाहित हैं ॥ ६ ॥

राजसूय, वाजपेय,अग्निष्टोम, अध्वर अर्क एव अश्वमेध और जीव बर्हि यह समस्त प्रकार के यज्ञ उच्छिष्ट में ही व्याप्त हैं ॥ ७ ॥

अग्न्याधेय, दीक्षा उत्सव यज्ञ और सोमयागात्मक सत्र यह सब ओदन रूप उच्छिष्ट के ही आश्रित है ॥ ८ ॥

अग्नि होत्र श्रद्धा, वषटकार व्रत, तप दक्षिणा और अभीष्ट पूर्ति, यह सभी उस उच्छिष्ट मे व्याप्त हैं ॥ ९ ॥

एक रात्रि और दो रात्रियों मे होने वाला सोम यज्ञ रात्रान्ती प्रकी और उक्थ यह सभी उच्छिष्ट में बचे हुए यज्ञ के सूक्ष्म रूपो सहित ब्रह्म के ही आश्रय में स्थित हैं ॥ १० ॥

चतूरात्र पञ्चरात्र षड्रात्रश्चोभयः सह ।
षोडशी सप्तरात्रश्चोच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे ये यज्ञा अमृते हिताः ॥११
प्रतीहारो निधन विश्वजिच्चाभिजिच्च य. ।
साह्नातिरात्रावुच्छिष्टे द्वादशाहोऽपि तन्मयि ॥ १२ ॥
सूनृता सनति क्षेम स्वधोर्जामृत सहः ।
उच्छिष्टे सर्वे प्रत्यञ्च. कामा. कामेन तातृपुः ॥ १३ ॥
नव भूमीः समुद्रा उच्छिष्टेऽधि श्रिता दिविः ।

आ सूर्यो भात्युच्छिष्टेऽहोरात्रे अपि तन्मयि ॥ १४ ॥
उपहव्यं विषूवन्तं ये च यज्ञा गुहा हिताः ।
बिभर्ति भर्ता विश्वस्योच्छिष्टो जनितुः पिता ॥ १५ ॥
पिता जनितुरुच्छिष्टोऽसोः पौत्रः पितामहः ।
स क्षियति विश्वस्येशानो वृषा भूम्यामतिघ्न्य ॥ १६ ॥
ऋतं सत्यं तपो राष्ट्रं श्रमो धर्मश्च कर्म च ।
भूतं भविष्यदुच्छिष्टे वीर्यं लक्ष्मीर्बलं बले ॥ १७ ॥
समृद्धिरोज आकूतिः क्षत्रं राष्ट्रं षडुर्व्यः ।
संवत्सरोऽध्युच्छिष्ट इडा प्रैषा ग्रहा हविः ॥ १८ ॥
चतुर्होतार आप्रियश्चातुर्मास्यानि नीविदः ।
उच्छिष्टे यज्ञा होत्राः पशुबन्धास्तदिष्टयः ॥ १९ ॥
अर्धमासाश्च मासाश्चार्तवा ऋतुभिः सह ।
उच्छिष्टे घोषिणीरापः स्तनयित्नुः श्रुतिर्मही ॥ २० ॥

चतुरात्र, पंचरात्र, षडरात्र तथा इनके दुगने दिनों वाले षोडशी और सप्तरात्र यज्ञ और सभी अमृतोपम फल प्रदान करने वाले यज्ञ इसी उच्छिष्ट से उत्पन्न हुए हैं ॥ ११ ॥

प्रतिहार निधन विश्वजित, अभिजित, साह्न, अतिरात्र द्वादशाह यह समस्त यज्ञ उसी उच्छिष्ट रूप ब्रह्म के आश्रित हैं। यह सब यज्ञ मुझमे स्थित हों ॥ १२ ॥

सूनृता, सनति, क्षेम, स्वधा, उर्जा, अमृत सह, यह सभी चाहने योग्य फल ब्रह्म के आश्रित हैं। यह सभी अभीष्ट फल सहित यजमान को तुष्ट करने वाले हैं ॥ १३ ॥

नव खंडों वाली पृथ्वी, सप्त समुद्र और आकाश उस उच्छिष्ट रूप ब्रह्म के ही आश्रित हैं। सूर्य भी उसी ब्रह्म के आश्रित बन कर दीप्तवान होते हैं तथा दिवस रात्रि भी उसी के आश्रय मे है। यह सब मुझमें हो । १४ ॥

उपहृव्य, निपूवान और अज्ञात यज्ञो को भी यह उच्छिष्ट रूप ब्रह्म धारण करते हैं। वही ओदन ससार का पालन कर्ता तथा यजमान का पिता रूप है ।। १५ ।।

यह उच्छिष्ट अपने उत्पत्ति कर्ता को अन्य लोक मे दिव्य लोक प्राप्त कराने वाला होने के कारण उसका पिता है। यही ओदन प्राण का पौत्र रूप है परन्तु अन्य लोको मे प्राण का पिता मह हैं। अत वह उच्छिष्ट सब का स्वामी है तथा काम्यवषक बन पृथ्वी पर निवास करता है ।। १६ ।।

ऋत सत्य तप राष्ट्र श्रम धर्म कर्म भूत भविष्य वीर्य लक्ष्मी और बल यह सब उस उच्छिष्टात्मक ब्रह्म के आश्रय में रहते है ।। १७ ।।

समृद्धि ओज, आकूति, क्षात्र तेज, राष्ट्र सवत्सर और छ. उर्वियाँ, यह सभी मेरे रक्षक हो। इडा प्रैप, ग्रह हवि यह सभी उस उच्छिष्ट के आश्रित हैं ।। १८ ।।

चतुर्होता, आप्रिय, चतुर्मासात्मक, विश्वेदेवा, यह सभी उच्छिष्ट माण ब्रह्म में समाहित हैं ।। १९ ।।

अर्धमाह, मास, ऋतुऐ आर्तव, ध्वनिशील जल, घोषयुक्त मेघ पृथ्वी यह सभी उस उच्छिष्ट रूप ब्रह्म के ही आश्रित हैं ।। २० ।।

शर्करा सिकता अश्मान ओषधयो वीरुधस्तृणा ।
अभ्राणि विद्युतो वर्षमुच्छिष्टे सश्रिता श्रिता ।। २१ ।।
राद्धि प्राप्ति समाप्तिर्व्याप्तिमह एधतु ।
अप्याप्तिरुच्छिष्टे भूतिश्चाहिता निहिता हिता ।। २२ ।।
यच्च प्राणति प्राणेन यच्च पश्यति चक्षुषा ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ।। २३ ।।

ऋचः सामानि च्छन्दासि पुराणं यजुवा सह ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रित ॥ २४ ॥

प्राणापानौ चक्षु. श्रोत्रमक्षितिश्च या ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥ २५ ॥

आनन्दा मोदा प्रमुदोऽभी मोदमुदश्च ये ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रित ॥ २६ ॥

देवा पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश्च ये ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रित ॥ २७ ॥

सर्कस, सिकता, पाषाण औषधि, लता तृण मेघ विद्युत और सभी समवते पदार्थ उसी उच्छिष्ट रूप ब्रह्म के आश्रित हैं ॥ २१ ॥

राद्धि प्राप्ति, समाप्ति व्याप्ति तेज अभिवृद्धि समृद्धि मत्याप्ति यह सभी उच्छिष्य माण ब्रह्म मे आश्रित है ॥ २२ ॥

प्राणधारी जीव नेत्रों से देखने वाले प्राणी, स्वर्ग के देवता, पृथ्वी के देवता, यह सभी उस उच्छिष्ट रूप ब्रह्म से ही उत्पन्न हुए हैं ॥ २३ ॥

ऋक, साम छन्द पुराण यजुर्वेद, आकाश के देवता यह सभी उस उच्छिष्यमाण ब्रह्म से ही उत्पन्न हुए हैं ॥ २४ ॥

प्राण, अपान चक्षु, कान, अक्षय और दिव्य लोक के सभी देवता उच्छिष्ट से ही उत्पन्न हुए हैं ॥ २५ ॥

आनन्द मोद, प्रमोद अभिमोदमुद और स्वर्ग स्थित देवता, यह सभी उच्छिष्ट से उत्पन्न हुए हैं ॥ २६ ॥

देवता, पितर मनुष्य, गन्धर्व, अप्सरा और स्वर्ग के सब देवता इस उच्छिष्ट से ही प्रादुर्भूत हुए ॥ २७ ॥

८ सूक्त

(ऋषि— कौरुपथि । देवता— मन्यु अध्यात्मम् । छन्द—अनुष्टुप् पंक्ति) ।

यन्मन्युर्जायामावहत् संकल्पस्य गृहादधि ।
क आसं जन्याः के वराः क उ ज्येष्ठवरोऽभवत् ॥ १ ॥
तपश्चैवास्तां कर्म चान्तर्महत्यर्णवे ।
त आसं जन्यास्ते वरा ब्रह्म ज्येष्ठवरोऽभवत् ॥ २ ॥
दश साकमजायन्त देवा देवेभ्यः पुरा ।
यो वै तान् विद्यात् प्रत्यक्षं स वा अद्य महद् वदेत् ॥ ३ ॥
प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या ।
व्यानोदानौ वाङ् मनस्ते वा आकूतिमावहन् ॥ ४ ॥
आजाता आसन्नृतवोऽथो धाता बृहस्पतिः ।
इन्द्राग्नी अश्विना तर्हि कं ते ज्येष्ठमुपासत ॥ ५ ॥
तपश्च वास्तां कर्म चान्तर्महत्यर्णवे ।
तपो ह जज्ञे कर्मणस्तत् ते ज्येष्ठमुपासत ॥ ६ ॥
येत आसीद् भूमिः पूर्वा यामद्धातय इद् विदुः ।
यो वै तां विद्यान्नामथा स मन्येत पुराणवित् ॥ ७ ॥
कुत इन्द्रः कुतः सोमः कुतो अग्निरजायत ।
कुतस्त्वष्टा समभवत् कुतो धाताजायत ॥ ८ ॥
इन्द्रादिन्द्रः सोमात् सोमो अग्नेरग्निरजायत ।
त्वष्टा ह जज्ञे त्वष्टुर्धातुर्धाताजायत ॥ ९ ॥
ये त आसन् दश जाता देवा देवेभ्यः पुरा ।
पुत्रेभ्यो लोकं दत्त्वा कस्मिंस्ते लोक आसते ॥ १० ॥

मन्यु ने संकल्प के घर से जाया का वरण किया । उससे पूर्व सृष्टि न होने के कारण वर पक्ष तथा कन्या पक्ष कौन थे ?

कन्या का विवाह रचाने वाले बराती कौन थे तथा उद्वाहक कौन था ? ॥ १ ॥

तप और कर्म ही वर पक्ष और कन्या पक्ष वाले थे, यही बराती थे तथा उद्वाहक स्वयं ब्रह्म था ॥ २ ॥

प्रथम दस देव उत्पन्न हुए। जिसने इन देवताओं को स्पष्ट रूप से जान लिया वही ब्रह्म का उपदेश करने का अधिकारी है ॥ ३ ॥

प्राण, अपान नामक वृत्तियाँ, चक्षु कान, अक्षिति क्षिति व्यान उदान वाणी मन आकूति यह सभी इच्छाओं को अभिमुख करके उन्हें पूरा करते हैं ॥ ४ ॥

सृष्टिकाल में ऋतुऐं न थी। तब इन धाता आदि ने किस बडे कारण भूत उत्पादक की याचना की ? तप और कर्म ही उपकरण रूप थे। कर्म से तप की उत्पत्ति हुई। अतः वे धाता आदि अपने द्वारा किये हुए महान कर्म की ही अपने उत्पादन के लिए प्रार्थना करते हैं ॥ ६ ॥

वर्तमान पृथ्वी से पूर्व जो पृथ्वी थी, उसे तपस्या द्वारा सर्वज्ञ ऋषि ही जानते हैं। जो विद्वान विगत युग की पृथ्वी में स्थित वस्तुओं के नाम से परिचित हैं, वही इस वर्तमान पृथ्वी को जानने की सामर्थ्य रखता है ॥ ७ ॥

इन्द्र किस निमित्त उत्पन्न हुए ? सोम अग्नि त्वष्टा और धाता की उत्पत्ति का क्या कारण था ? ॥ ८ ॥

विगत काल में जैसा इन्द्र था, वैसा ही वर्तमान युग में हुआ है। जैसे सोम, अग्नि त्वष्टा और धाता प्राचीन युग मे थे, वैसे ही इस युग में भी हुए ॥ ९ ॥

जिन अग्नि आदि देवताओं से प्राणापान रूप दस देवता

उत्पन्न हुए, वे अपने पुत्रों को अपना स्थानापन्न बना किस लोक में निवास करते हैं ॥ १० ॥

यदा केशानस्थि स्नाव मांसं मज्जानमाभरत् ।
शरीरं कृत्वा पादवत् क लोकमनु प्राविशत् ॥ ११ ॥
कुत केशान् कुतः स्नाव कुतो अस्थीन्याभरत् ।
अङ्गा पर्वाणि मज्जानं को मांसं कुत आभरत् ॥ १२ ॥
संसिचो नाम ते देवा ये संभारान्त्समभरन् ।
सर्वं संसिच्य मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥ १३ ॥
ऊरू पादावष्ठीवन्तौ शिरो हस्तावथो मुखम् ।
पृष्टीर्बर्जह्ये पार्श्वे कस्तत् समदधादृषि ॥ १४ ॥
शिरो हस्तावथो मुख जिह्वां ग्रीवाश्च कीकसाः ।
त्वचा प्रावृत्य सर्वं तत् संधा समदधान्मही ॥ १५ ॥
यत्तच्छरीरमशयत् संधया संहितं महत् ।
येनेदमद्य रोचते को अस्मिन् वर्णमाभरत् ॥ १६ ॥
सर्वे देवा उपाशिक्षन् तदजानाद् वधू सती ।
ईशा वशस्य या जाया सास्मिन् वर्णमाभरत् ॥ १७ ॥
यदा त्वष्टा व्यतृणत् पिता त्वष्टुर्य उत्तरः ।
गृहं कृत्वा मर्त्यं देवा. पुरुषमाविशन् ॥ १८ ॥
स्वप्नो वै तन्द्रीर्निर्ऋतिः पाप्मानो नाम देवताः ।
जरा खालत्यं पालित्यं शरीरमनु प्राविशन् ॥ १९ ॥
स्तेयं दुष्कृतं वृजिनं सत्यं यज्ञो यशो बृहत् ।
बलं च क्षत्रमोजश्च शरीरमनु प्राविशन् ॥ २० ॥

सृष्टि रचना काल में जब परमात्मा ने केश अस्थि, नसें मांस तथा मज्जा को एकत्रित किया तो उनसे शरीर का निर्माण कर उसने किस लोक में प्रवेश किया ? ॥११॥

किस उपादान से केश सचित कि ? स्नायु कहाँ से उत्पन्न किया ? अस्थियाँ कहा से एकत्रित की तथा मज्जा और मांस कहाँ से प्राप्त किया ? यह सब कुछ स्वय अपने से ही प्राप्त किया गया, ऐसा और दूसरा कौन कर सकता है ? ॥ १२ ॥

ससिच नामक देवता मरण शील देह को रक्त मे डुबो कर उसे पुरुष का आकार प्रदान कर स्वय उसी मे प्रविष्ट हो गये ॥ १३ ॥

घुटनो पर वर्तमान जघाऐ, घुटनो के नीचे पाँव जाँघो और पाँवो के बीच घुटने, शिर हाथ मुख वर्जह्य पसलियाँ और पीठ इन सबको आपस मे किसने सयुक्त किया ? । १४ ॥

शिर हाथ, मुख जीभ कण्ठ और अस्थियो को चर्म से आच्छादित कर देवताओ ने अपने अपने कर्म मे प्रवृत्त किया ॥ १५ ॥

सघात्री देव के द्वारा जिसके शरीरांग इस प्रकार सयुक्त हैं, वह शरीरो मे वर्तमान है वह शरीर जिस काले गोरे रग से युक्त है, उसमें किस देवता ने वर्ण की उत्पत्ति की ? ॥ १६ ॥

इस देह से सभी देवताओ को प्रेम है, अत वधू रूप आद्या ने देवताओ की इस कामना को जानकर छ कोश देह में पीत गौर आदि वर्णों की स्थापना की ॥ १७ ॥

इस सृष्टि के रचने वाले ने जब नेत्र कान आदि छेदो का निर्माण किया तब त्वष्टा के द्वारा बहुत से छिद्र युक्त पुरुष [शरीर को गृह बनाकर प्राण अपान और इन्द्रिय ने प्रवेश] किया ॥ १८ ।

स्वप्न निद्रा आलस्य, निऋ ति, पाप इस पुरुष शरीर मे घुस गये और आयु नाशक जरा चक्षु मन खालित्य पालित्य आदि दर्शील देवता भी उसमे, प्रविष्ट हो गये ॥ १९ ॥

योगी दुष्ट कर्म, पाप, सत्य, यज्ञ, गौरव, पराक्रम, क्षात्र धर्म और ओज भी मानव शरीर में प्रविष्ट हो गये। २० ॥

भूतिश्च वा अभूतिश्च रातयोऽरातयश्च याः ।
क्षुधश्च सर्वास्तृष्णाश्च शरीरमनु प्राविशन् ॥ २१ ॥
निन्दाश्च वा अनिन्दाश्च यश्च हन्तेति नेति च ।
शरीरं श्रद्धा दक्षिणाश्रद्धा चानु प्राविशन् ॥ २२ ॥
विद्याश्च वा अविद्याश्च यच्चान्यदुपदेश्यम् ।
शरीरं ब्रह्म प्राविशदृचः सामाथो यजुः ॥ २३ ॥
आनन्दा मोदाः प्रमुदोऽभीमोदमुदश्च ये ।
हसो नरिष्टा नृत्तानि शरीरमनु प्राविशन् ॥ २४ ॥
आलापाश्च प्रलापाश्चाभीलापलपश्च ये ।
शरीरं सर्वे प्राविशन्नायुजः प्रयुजो युजः ॥ २५ ॥
प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या ।
व्यानोदानौ वाङ् मनः शरीरेण त ईयन्ते ॥ २६ ॥
आशिषश्च प्रशिषश्च संशिषो विशिषश्च याः ।
चित्तानि सर्वे संकल्पाः शरीरमनु प्राविशन् ॥ २७ ॥
आस्नेयीश्च वास्तेयीश्च त्वरणाः कृपणाश्च याः ।
गुह्याः शुक्रा स्थूला अपस्ता बीभत्सावसादयन् ॥ २८ ॥
अस्थि कृत्वा समिधं तदष्टापो असादयन् ।
रेतः कृत्वाज्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥ २९ ॥
या आपो याश्च देवता या विराड् ब्रह्मणा सह ।
शरीरं ब्रह्म प्राविशच्छरीरेऽधि प्रजापतिः ॥ ३० ॥
सूर्यश्चक्षुर्वातः प्राणं पुरुषस्य वि भेजिरे ।
अथास्येतरमात्मानं देवाः प्रायच्छन्नग्नये ॥ ३१ ॥
तस्माद् वै विद्वान् पुरुषमिदं ब्रह्मेति मन्यते ।
सर्वा ह्यस्मिन् देवता गावो गोष्ठइवासते ॥ ३ ॥

प्रथमेन प्रमारेण त्रेधा विष्वङ् वि गच्छति ।
अदएकेन गच्छत्यद एकेन गच्छतीहैकेन नि षेवते ॥ ३३ ॥
अप्सु स्तोमासु वृद्धासु शरीरमन्तरा हितम् ।
तस्मिञ्छवोऽध्यन्तरा तस्माच्छवोऽध्युच्यते ॥ ३४ ॥

उन्नति, अवनति, मिल, मृत्यु, क्षुधा, तृषा आदि सब इस मानव शरीर में प्रविष्ट हो गये ॥ २१ ॥

निंदा, अनिंदा, आनन्ददायक वस्तु, आनन्द विहीन वस्तु, विश्वास, धन, समृद्धि, दक्षिणा, अविश्वास आदि भी मनुष्य देह में घुस गये ॥ २२ ॥

विद्या, अविद्या, उपदेश्य, ऋक साम यजुर्वेद आदि सबने इस मनुष्य देह में प्रवेश किया ॥ २३ ॥

हर्ष, आनन्द, मोद, प्रमोद, हास्य शब्द स्पर्श विष, नतन भी मानव देह में घुस गये ॥ २४ ॥

आलाप, प्रलाप अभिलाप, आयोजन, प्रयोजन, योजन, इन सभी ने मानव देह में प्रवेश किया ॥ २५ ॥

प्राण, अपान, नेत्र, श्रोत्र, अक्षिति, क्षिति, व्यान, उदान मन वाणी यह सभी मानव शरीर में प्रविष्ट हो अपने अपने कार्यों मे रत होते हैं ॥ २६ ॥

आशिष, प्राशिष, शासन तथा मन की समस्त वृत्तियों ने मनुष्य देह में प्रवेश किया ॥ २७ ॥

स्नान जल, प्राण पालक जल, त्वरण जल, अल्पजल, गुहास्थित जल, वीर्य रूपी जल, स्थूल जल और सब के प्रयोग में आने वाला जल-सभी अपने कर्म सहित मानव शरीर में घुसे ॥ २८ ॥

प्राणियों को अस्थियों की समिन्धन साधन बनाकर इन

हे देवगणो ! तुम हमारे लिए विजय शील बनो एव युद्ध के लिए तत्पर हो जाओ। तुम्हारे संरक्षण में हमारे सब वीर भली भाँति रक्षित रहें ॥ २ ॥

हे अर्बुदे ! तुम और न्यर्बुदि दोनों अपने स्थान को छोड़कर युद्धरत हो और आदान-सदाम नामक रज्जुओ से शत्रु सेना को अपने अधीन करो ॥ ३ ॥

अर्बुदि और न्यर्बुदि नामक सर्प देवताओ से समस्त ससार व्याप्त है। उन्होंने अपने शरीर द्वारा समस्त विश्व एव पृथ्वी को आबद्ध कर रखा है। यह दोनो देव युद्ध विजय के कार्य में सवदा रत रहते हैं ॥ ४ ॥

इन महान अर्बुदि और न्यर्बुदि द्वारा मैं अपनी सेना सहित निर्जित शत्रु के वल पर आक्रमण करूँगा। हे अर्बुदे ! तुम अपनी सेना लेकर शत्रु वाहिनी को विनष्ट करते हुए अपनी सर्प देह से लपेट लो। ५।

हे न्यर्बुदि नामक सर्प देव ! तुम दृष्टि क्षीण करने वाले उत्पातो को शत्रु पर प्रेषित करते हुए हविर्दान के पश्चात हमारी वाहिनी सहित उठ पड़ो ॥ ६ ॥

हे अर्बुदे ! जब तुम मेरे विपक्षी को डस कर मार डालो ! तत्पश्चात उसकी ओर मुह करके उसकी स्त्री अपने वक्ष को पीटती तथा रोदन करती हुई आभूषण उतार कर केशों को खोलती हुई अश्रुपात करें ॥ ७ ॥

हे अर्बुदे ! काटने के बाद विष का प्रभाव होने पर शत्रु पत्नी हाथ पाँव की हड्डियो को दबा कर करुण पूर्ण शब्द कहे फिर विष को निष्प्रभावी करने के निमित्त पुत्र भाई आदि किसी से कहे, ऐसा ज्ञान उस न रहे ॥ ८ ॥

हे अर्बुदे! तेरे द्वारा काटे जाने पर हमारे शत्रु के मरण की प्रतीक्षा में लगे गिद्ध श्येन काक आदि पक्षी उसके मांस को खाकर तुष्ट हों ॥ ९ ॥

हे अर्बुदे! गीदड व्याघ्र मक्खी और मांस के सड़ने पर उत्पन्न होने वाले कृमि शत्रु को तेरे द्वारा डस लेने पर उसके मृतक शरीर पर पहुँच कर तृप्ति को प्राप्त हों ॥ १० ॥

आगृह्णीतं सं बृहतं प्राणापानान् न्यर्बुदे ।
निवाशा घोषाः सं यन्त्वमित्रेषु समीक्षयन् रदिते अर्बुदे तव ॥ ११ ॥
उद् वेपय सं विजन्तां भियामित्रान्त्सं सृज ।
उरुग्राहैर्बाह्वङ्कैर्विध्यामित्रान् न्यर्बुदे ॥ १२ ॥
मुह्यन्त्वेषां बाहवश्चित्ताकूतं च यद्धृदि ।
मैषामुच्छेषि किं चन रदिते अर्बुदे तव ॥ १३ ॥
प्रतिघ्नानाः सं धावन्तूरः पटूरावाघ्नानाः ।
अघारिणीर्विकेश्यो रुदत्यः पुरुषे हते रदिते अर्बुदे तव ॥ १४ ॥
श्वन्वतीरप्सरसो रूपका उतार्बुदे ।
अन्तःपात्रे रेरिहतीं रिशां दुर्णिहितैषिणीम् ।
सर्वास्ता अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय ॥ १५ ॥
खडूरेऽधिचङ्क्रमां खर्विकां खर्ववासिनीम् ।
य उदारा अन्तर्हिता गन्धर्वाप्सरसश्च ये । सर्पा इतरजना रक्षांसि ॥ १६ ॥
चतुर्दंष्ट्राञ्छ्यावदतः कुम्भमुष्कां असृङ्मुखान् ।
स्वभ्यसा ये चोद्भ्यसाः ॥ १७ ॥
उद् वेपय त्वमर्बुदेऽमित्राणाममूः सिचः ।
जयांश्च जिष्णुश्चामित्रां जयतामिन्द्रमेदिनौ ॥ १८ ॥

अष्ट भाँति के जलों ने शरीर में प्रवेश किया और उसमें वीय-रूप घृत को उत्पन्न किया। इस प्रकार इन्द्रियों और उसके स्वामी देवताओं ने मानव श ीर मे प्रवेश किया ॥ २९ ॥

पूर्वोक्त जल, इन्द्र विराट देवता ब्रह्मतेज युक्त देवता देह मे प्रविष्ट हुए, तत्पश्चात ससार के कारण भूत ब्रह्म भी दर्शनीय रूप से प्रविष्ट हुए। उस शरीर मे पुत्र आदि उत्पन्न करने वाला जीव स्थित रहता है ॥ ३० ॥

सूय न नेत्रो तथा वायु ने घ्राणेन्द्रिय को स्वीकार किया और इसके छ वोश वाले शरीर को सब देवता अग्नि को भाग रूप मे प्रदान करते हैं ॥ ३१ ॥

अत ज्ञानी पुरुष शरीर को भीतर बाहर व्याप्त होकर ब्रह्म ही मानता है क्यो कि समस्त देवता इस शरीर में उसी भाँति रहते हैं। जैसे गौऐं गोष्ठ मे रहती हैं ॥ ३२ ॥

प्रथम उत्पन्न शरीर के पतन पर यह त्यक्त देहआत्मा तीन प्रकार से नियमो मे बध जाता है। पुण्य से स्वर्ग ोर पाप े नरक की प्राप्ति तथा पाप पुण्य दोनो के योग से इस पृथ्वी में उत्पन्न होकर सुख दुख रूप भोगा को भोगता है। ३३ ॥

शुष्क जगत को सिंचित करने वाले प्रवृद्ध जलों मे ब्रह्माण्ड सबधी देह स्थित है। उसके भीतर और ऊपर ईश्वर स्थित है। वह देह से अधिक होने के कारण सूत्रात्मा कहाता ॥ ३४ ।

६ सूक्त (पाचवाँ अनुवाक)

(ऋषि—काङ्कयन । देवता—अर्बुद । छन्दः शक्वरी, अनुष्टुप्, उष्णिक्, जगती, पंक्ति, त्रिष्टुप, गायत्री)

। बाहवो या इषवो धन्वनां वीर्याणि च ।

असीन् परशूनायुधं चित्ताकूतं च यद्धृदि ।
सर्वं तदर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय ॥ १ ॥
उत्तिष्ठत स नह्यध्वं मित्रा देवजना यूयम् ।
संदृष्टा गुप्ता वः सन्तु या नो मित्राण्यर्बुदे ॥ २ ॥
उत्तिष्ठतमा रभेथामादानसंदानाभ्याम् ।
अमित्राणां सेना अभि धत्तमर्बुदे ॥ ३ ॥
अर्बुदिर्नाम यो देव ईशानश्च न्यर्बुदिः ।
याभ्यामन्तरिक्षमावृतमियं च पृथिवी मही ।
ताभ्यामिन्द्रमेदिभ्या महं जितमन्वेमि सेनया ॥ ४ ॥
उत्तिष्ठ त्वं देवजनार्बुदे सेनया सह ।
भञ्जन्नमित्राणां सेनां भोगेभिः परि वारय ॥ ५ ॥
सप्त जातान् न्यर्बुद उदाराणां समीक्षयन् ।
तेभिष्ट्वमाज्ये हुते सर्वैरुत्तिष्ठ सेनया ॥ ६ ॥
प्रतिघ्नानाश्रुमुखी कृधुकर्णी च क्रोशतु ।
विकेशी पुरुषे हते रदिते अर्बुदे तव ॥ ७ ॥
संकर्षन्ती करूकरं मनसा पुत्रमिच्छन्ती ।
पतिं भ्रातरमात् स्वान् रदिते अर्बुदे तव ॥ ८ ॥
अलिक्लवा जाष्कमदा गृध्राः श्येनाः पतत्रिणः ।
ध्वाङ्क्षाः शकुनयस्तृप्यन्त्वमित्रेषु समीक्षयन् रदिते अर्बुदे तव ॥ ९ ॥
अथो सर्वं श्वापदं मक्षिका तृप्यतु क्रिमिः ।
पौरुषेयेऽधि कुणपे रदिते अर्बुदे तव ॥ १० ॥

हमारे शूर वीरों के हाथ जो शस्त्र उठाने में भली भांति समर्थ हैं वे खड्ग फरसा धनुष बाण आदि धारण किये हुए हैं। हे अर्बुद! तू उन्हें हमारे शत्रुओं को दिखा जिससे वे डर जांय ॥ १ ॥

प्रम्लीमा मृदितः शयां हृतोमित्रो न्यर्बुदे ।
अग्निजिह्वा धूमशिखा जयन्तीर्यन्तु सेनया ॥ १९ ॥
तयार्बुदे प्रणुत्तानामिन्द्रो हन्तु वरंवरम् ।
अमित्राणा शचीपतिर्मामीषां मोचि कश्चन ॥ २० ॥

हे न्यर्बुदे एव अर्बुदे ! तुम दोनो शत्रुओ के प्राणो का हरण कर उन्हे जड मूल से नष्ट कर डालो तुम्हारे डस लेने पर शत्रु चीत्कार करें ॥ ११ ॥

हे न्यर्बुदे ! तुम हमारे विपक्षियों को कम्पायमान करो वे अपने स्थान से च्युत होते हुए सतापित हो। उनको डराते हुए उन्हे क्रिया विहीन बना दो ॥ १२ ॥

हे अर्बुदे ! तुम्हारे द्वारा डस लेने पर शत्रु की भुजाऐं विष के प्रभाव से निस्तेज हो जांय। शत्रु अपनी कामनाओ को भूल जाय। उनके पास रथ अश्व गज आदि कुछ भी शेष न रहे ॥ १३ ॥

हे अर्बुदे ! तेरे द्वारा काटे जाने पर शत्रु पत्नियाँ अपना वक्ष पीटती हुई केशो को खोलकर पति विछोह में रुदन करती हुई अपने पतियो को ओर गमन करे ॥ १४ ॥

हे अर्बुदे ! तुम क्रीडार्थ श्वानों को साथ मे रखने वाली अप्सराओ एव अपनी माया रूप वाहिनो को शत्रुओ को दिखाओ उल्कापात और विकृतांग दैत्यो को हमारे शत्रुओ को दिखाओ ॥ १५ ॥

द्युलोक मे दूर तक विचरण करने वाली माया रूपिणि को शत्रुओ को दिखाओ। अपनी माया से अगोचर यक्ष राक्षस गन्धर्व आदि को शत्रुओ को दिग्दर्शन करा भयभीत करो ॥१६॥

सर्व रूप देवता इतरजन, काले दाँत वाले राक्षस घटाण्ड

कोश वाले रक्त से सने मुख वाले राक्षसों को भी अपनी माया द्वारा शत्रुओं को दिग्दर्शन कराओ ॥ १७ ॥

हे अर्बुदे ! तुम शत्रु सेनाओं को विष के प्रभाव से उसे शोकाकुल बनाओ। उन कम्पित करो। तुम दोनों इन्द्र के सखा हो। हमारे विरोधियों को पराजित करते हुए, हमें विजयी बनाओ ॥ १८ ॥

हे न्यर्बुदे ! भय से काम्पायमान हमारा शत्रु अगों के टूटने पर मृतक हो निद्रा में डूब जाय। अग्नि की धूमशिखा युक्त सेनाऐं हमारी वाहिनी के साथ चलें ॥ १९ ॥

हे अर्बुदे ! हमारे शत्रुओं में जो श्रेष्ठ है, उन्हें छाँटकर इन्द्र देव नष्ट कर डालें। उनमें से एक भी जीवित न बचे । २०॥

उत्कसन्तु हृदयान्यूर्ध्वः प्राण उदीषतु ।
शौष्कास्यमनु वर्तताममित्रान् म त मित्रिणः ॥ २१ ॥
ये च धीरा ये चाधीराः पराञ्चो बधिराश्च ये ।
तमसा ये च तूपरा अथो बस्ताभिवासिन. ॥ २२ ॥
अर्बुदिश्च त्रिषन्धिश्चामित्रान् नो वि विध्यताम् ।
यथैषामिन्द्र वृत्रहन् हनाम शचीपतेऽमित्राणां सहस्रशः ॥ २३ ॥
वनस्पतीन् वानस्पत्यानोषधीरुत वीरुधः ।
गन्धर्वाप्सरसः सर्पान् देवान् पुण्यजनान् पितॄन् ।
सर्वांस्तां अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदाराश्च प्र दर्शय ॥ २५ ॥
ईशां वो मरुतो देव आदित्यो ब्रह्मणस्पति. ।
ईशां व इन्द्रश्चाग्निश्च धाता मित्रः प्रजापतिः ।
ईशा व ऋषयश्चक्रुरमित्रेषु समीक्षयन रदिते अर्बुदे तव ॥२४॥
तेषां सर्वेषामीशाना उत्तिष्ठत स नह्यध्व मित्रा देवजना यूयम् ।
इमं संग्रामं संजित्य यथालोकं वि तिष्ठध्वम् ॥ २६ ॥

शत्रुओं के शरीर से अन्तःकरण और प्राण वायु अलग हो। भय के कारण वे सूख जांय। हमारे सहयोगियों को यह भय मिश्रित सूखा प्राप्त न हो ॥ २१ ॥

वीर, कायर युद्ध भागने वाले कर्तव्य विमूढ जो सैनिक हमारे पक्ष मे है, उन्हें हे अर्बुद ! अपनी माया से शत्रुओं को हराने में आगे करो ॥ २२ ॥

हे इन्द्र ! हमारे शत्रुओं को सब प्रकार से विनष्ट करने का यत्न करो। त्रिसधि नामक देवता और अर्बुद हमारे विपक्षियों को नाना प्रकार से विनष्ट करें ॥ २३ ॥

हे अर्बुदे ! वृक्षों से उत्पन्न वस्तु व्रीहि जो लता गन्ध अप्सरायें और पूर्व पुरुषों को हमारे शत्रुओं को दिग्दर्शन कराओ और उन्हें अन्तरिक्ष के उत्पातों को दिखाते हुए डराओ ॥ २४ ॥

हे शत्रुओं ! मरुद्गण तुम्हें दण्ड दें, इन्द्र एवं अग्नि तुम पर अपना नियन्त्रण रखें, ब्रह्मणस्पति धाता मित्र प्रजापति अथर्वा अङ्गिरा आदि तुम्हें शिक्षा दें। तुम्हारे द्वारा दर्शित होने पर इन्द्रादि भी शत्रु को दण्ड देने वाले हों। २५ ॥

हे देवगण ! तुम हमारे सखा रूप हो हमारे शत्रुओं को शिक्षा देने के लिए तत्पर हो तथा इस संग्राम को विजय कर अपने अपने स्थान को प्रतिमुख हो जाओ ॥ २६ ॥

१० सूक्त

(ऋषि— भृग्वङ्गिरा। देवता—त्रिषन्धि। छन्द.— बृहती जगती, पंक्ति अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, शक्वरी, गायत्री,)

उत्तिष्ठत स ऽह्यध्वमुदारा केतुभिः सह ।
सर्पा इतरजना रक्षांस्यमित्राननु धावत ॥ १ ॥

ईशां वो वेदराज्यं त्रिषन्धे अरुणैः केतुभिः सह ।
ये अन्तरिक्षे ये दिवि पृथिव्यां ये च मानवाः ।
त्रिषन्धेस्ते चेतसि दुर्णामान उपासताम् ॥ २ ॥
अयोमुखाः सूचीमुखा अथो विकङ्कतीमुखाः ।
क्रव्यादो वातरंहस आ सजन्त्वमित्रान् वज्रेण त्रिषन्धिना ॥३॥
अन्तर्धेहि जातवेद आदित्य कुणपं बहु ।
त्रिषन्धेरियं सेना सुहितास्तु मे वशे ॥ ४ ॥
उत्तिष्ठ त्वं देवजनार्बुदे सेनया सह ।
अयं बलिर्व आहुतस्त्रिषन्धेराहुतिः प्रिया ॥ ५ ॥
शितिपदी सं द्यतु शरव्येयं चतुष्पदी ।
कृत्येऽमित्रेभ्यो भव त्रिषन्धेः सह सेनया ॥ ६ ॥
धूमाक्षी सं पततु कृधुकर्णी च क्रोशतु ।
त्रिषन्धेः सेनया जिते अरुणाः सन्तु केतवः ॥ ७ ॥
अवायन्तां पक्षिणो ये वयांस्यन्तरिक्षे दिवि ये चरन्ति ।
श्वापदो मक्षिकाः सं रभन्तामामादो गृध्राः कुणपे रदन्ताम् ॥८॥
यामिन्द्रेण संधां समधत्था ब्रह्मणा च बृहस्पते ।
तयाहमिन्द्रसंधया सर्वान् देवानिह हुव इतो जयत मामुतः ॥ ९ ॥
बृहस्पतिराङ्गिरस ऋषयो ब्रह्मसंशिताः ।
असुरक्षयणं वधं त्रिषन्धिं दिव्याश्रयन् ॥ १० ॥

हे सेनापतियो ! तुम अपनी ध्वजाओं सहित इस युद्ध के निमित्त तत्पर हो जाओ। कवच आदि रक्षा साधनों से युक्त हो संग्राम भूमि के लिए प्रयाण करो। हे देवगणो ! हे राक्षसो ! तुम हमारे शत्रुओं को पीछे हटाते हुए दौड़ो ॥ १ ॥

हे शत्रुओ ! त्रिसंधि नामक वज्र का अभिमानी देवता तुम्हारे राज्य को दण्डनीय समझें। हे त्रिसधे ! तुम अपनी लाल

ध्वजा सहित उठो और अन्तरिक्ष आकाश और पृथ्वी ने उत्पात रूप केतुओं सहित उठो ॥ २ ॥

हे त्रिसंधे ! तुम्हारे हृदय में जो दुष्ट जीव निवास करते हैं, वे हमारे शत्रुओं की कामना करें। वे जीव लोह चोंच, सुई सदृश्य नोक वाली चोंच तथा कांटे दार मुख वाले होते हैं। वे मास, भोजी पक्षी तुम्हारी प्रेरणा पाकर वायु सदृश्य वेग से शत्रुओं पर छा जांय ॥ ३ ॥

हे अग्ने ! सूर्य को ढक लो त्रिसंधि देवता की सेना सब प्रकार से मेरे आधीन हो। हम अपने विपक्षियों पर इस सेना को सहायता से विजय प्राप्त करें। ४ ॥

हे ब्वुदे ! अपनी वाहिनी सहित उठो। यह हमारे द्वारा अर्पित आहुति तुम्हें तृप्ति कारक हो त्रिसंधि देव की वाहिनी भी हमारी हवि से तृप्त होती हुई हमारे शत्रुओं का संहार कर डाले ॥ ५ ॥

यह चार पाद वाली गौ वाण रूप होकर शत्रु पर प्रहार करें। हे कृत्या रूप वाली श्वेत पदेन धेनु ! शत्रुओं के प्रति तू साक्षात कृत्या का रूप धारण कर और त्रिसंधि देव की वाहिनी भी तेरे इस कर्म में पूर्ण सहायक हो ॥ ६ ॥

मायावी धुऐं से शत्रु सेना की आंखें ढक जांय और फिर उनका पतन होने लगे। उनकी सुनने की शक्ति नगाड़ो के घोष से नष्ट हो। जब त्रिसंधि देव शत्रु पराजय की कामना से अपने केतु को रक्त वर्ण का करें तब शत्रु क्रन्दन करने लगे ॥ ७ ॥

शत्रु दल के संहार होने पर आकाश के पक्षी उनका मांस खाने के लिये नीचे उतर कर आवें। गीदड़ और मक्षिकायें उन पर हमला करें। कच्चे मांस के खाने वाले गिद्ध उन्हे अपनी चोंचो और पंजो से विदीर्ण कर डालें ॥ ८ ॥

हे बृहस्पते ! तुमने इन्द्र और प्रजापति से जो संधान किया प्राप्त की है, उसके द्वारा मैं इस संग्राम में इन्द्र आदि देव गणों का आह्वान करता हूँ। हे देवगणो ! हमारी सेना को विजयी बनाओ और शत्रु सेना को पराजित करो ॥ ६ ॥

अगिरा पुत्र बृहस्पति तथा अपनी मंत्र शक्ति से तेज को प्राप्त हुए अन्य महर्षिगण भी असुर विनाशक हिंसा साधन रूप वज्र की सहायता लेते हैं ॥ १० ॥

येनासौ गप्त आदित्य उभाविन्द्रश्च तिष्ठतः ।
त्रिषन्धिंदेवा अभजन्तौजसे च बलाय च ॥ ११ ॥
सर्वाल्लोकान्त्समजयन् देवा आहुत्यानया ।
बृहस्पतिरांगिरसो वज्रं यमसिञ्चतासुरक्षयणं वधम् ॥ १२ ॥
बृहस्पति रांगिरसो वज्रं यमसिञ्चतासुरक्षयणं वधम् ।
तेनाहममूं सेनां नि लिम्पामि बृहस्पतेऽमित्रान् हन्म्योजसा ॥१३॥
सर्वे देवा अत्यायन्ति ये अश्नन्ति वषट्कृतम् ।
इमां जुषध्वमाहुतिमितो जयत मामुतः ॥ १४ ॥
सर्वे देवा अत्यायन्तु त्रिषन्धेराहुतिः प्रिया ।
संधां महतीं रक्षत ययाग्रे असुरा जिताः ॥ १५ ॥
वायुरमित्राणामिष्वग्राण्याञ्चतु ।
इन्द्र एषां बाहून् प्रति भनक्तु मा शकन् प्रतिधामिषुम् ।
आदित्य एषामस्त्रं वि नाशयतु चन्द्रमा युतामगतस्य पन्थाम् ॥ १६ ॥
यदि प्रेयुर्देवपुरा ब्रह्म वर्माणि चक्रिरे ।
तनूपानं परिपाणं कृण्वाना यदुपोचिरे सर्वं तदरसं कृधि ॥ १७ ॥
क्रव्यादानुवर्तयन् मृत्युना च पुरोहितम् ।
त्रिषन्धे प्रेहि सेनया जयामित्रान् प्र पद्यस्व ॥ १८ ॥

त्रिषन्धे तमसा त्वममित्रान् परि वारय ।
पृषदाज्यप्रणुत्तानां मामीषां मोचि कश्चन ॥ १६ ॥
शितिपदी स पतत्वमित्राणाममूः सिचः ।
मुह्यन्त्वद्यामूः सेना अमित्राणां न्यर्बुदे ॥ २० ॥

राक्षसों के उपद्रवों को विनष्ट कर त्रिषन्धि देवताओं ने जिस आदित्य का संरक्षण प्रदान किया, वही आदित्य और इन्द्र इन्हीं त्रिसंधि देवों के पराक्रम के बल पर स्वर्ग में निडर होकर रहते हैं। देवता, त्रिसंधि के ओज और पराक्रम की प्राप्ति हेतु सेवा करते हैं ॥ ११ ॥

अंगिरा पुत्र बृहस्पति ने जिस संहार साधन को सींचकर निर्मित किया था, इन्द्र आदि देवगणों ने उस प्रपदाज्य यज्ञ द्वारा राक्षसों का विनाश कर सब लोकों की प्राप्ति की । १२ ॥

राक्षसों के संहार साधन जिस वज्र को अंगिरा पुत्र बृहस्पति ने निर्मित किया था, हे बृहस्पते ! मैं उसी मन्त्राभिषिक्त वज्र की सहायता से शत्रु सेना का संहार करता हूँ । १३ ॥

हवियों को पाने वाले इन्द्र आदि देवता शत्रुओं को जीत कर हमारे समीप पधार रहे हैं। वे शत्रुओं को पराजित करें और हमें विजयी बनायें ॥ १४ ॥

हमारी गृह हवि त्रिसंधि देव को तुष्ट करें। शत्रुओं को पार कर इन्द्र आदि समस्त देव हमारे निकट पधारें। हे देवगण ! हमारी विजय प्राप्ति की प्रतिज्ञा को पूर्ण कराओ। तुमने इसी प्रतिज्ञा द्वारा शत्रुओं को पराजित किया था ॥ १५ ॥

इन्द्र देव इन शत्रुओं की भुजाओं को शस्त्र उठाने योग्य न रखें। वायु इन शत्रुओं द्वारा छोड़ गये तीरों के अगले भाग पर पहुँच कर उन्हें निष्प्रभावी करें जिससे वे अपने बाणों को

पुनः न चल पावें। सूर्य इन्हें अन्धा बनावे तथा चन्द्रमा उस पथ को छिपा दे जिससे वे हमारी ओर आने वाले हों ॥ १६ ॥

हे देवगण! शत्रुओं ने यदि पहले से ही मंत्राभिषित रक्षा साधन रूप कवच धारण कर लिया हो तो तुम उनके मंत्रों को प्रभावहीन बना दो ॥ १७ ॥

हे त्रिसंधि देव! हमारे सम्मुख खडे इस शत्रु को मांस भोजी पिशाच के सम्मुख करो। तुम उस पर अपनी वाहिनी सहित आक्रमण करते हुए शत्रु के मध्य में प्रविष्ट हो जाओ ॥ १८ ॥

हे त्रिसंधे! अपनी माया से अन्धकार उत्पन्न कर शत्रुओं को चहुँ ओर से घेर लो। और प्रपदाज्य के द्वारा इन्हें पीछे धकेल दो। इन शत्रुओं मे से एक भी जिवित न बचे ॥ १६ ॥

हमारे शस्त्रो से आहत शत्रु सेना मे श्वेत पाद वाली गौ कूद पड़े। हे न्यर्बुदे! दूर से ही दिखाई पड़ने वाली शत्रु सेना भ्रमित हो कर्तव्य विमूढ़ हो जाय ॥ २० ॥

मूढा अमित्रा न्यर्बुदे जह्येषां वरंवरम्।
अनया जहि सेनया ॥ २१ ॥
यश्च कवची यश्चाकवचोमित्रो यश्चाज्मनि ।
ज्यापाशैः कवचपाशैरज्मनाभिहतः शयाम् ॥ २२ ॥
ये वर्मिणो येऽवर्माणो अमित्रा ये च वर्मिणः ।
सर्वांस्तां अर्बुदे हताञ्छ्वानोऽदन्तु भूम्याम् ॥ २३ ॥
ये रथिनो ये अरथा असादा ये च सादिनः ।
सर्वानदन्तु तान् हतान् गृध्राः श्येनाः पतत्रिणः ॥ २४ ॥
सहस्रकुणपा शेतामामित्री सेना समरे वधानाम् ।
विविद्धा ककजाकृता ॥ २५ ॥

मर्माविध रोरुवत सुपर्णैरदन्तु दुश्चित मृदित शयानम् ।
य इमां प्रतीचीमाहुतिममित्रो नो युयुत्सति ॥ २६ ॥

यां देवा अनुतिष्ठन्ति यस्या नास्ति विराधनम् ।
तयेन्द्रो हन्तु वृत्रहा वज्रेण त्रिषन्धिना ॥ २७ ॥

हे अर्बुदे ! तुम अपनी माया से हमारे शत्रुओं को कर्तव्य विमूढ बनाओ । शत्रुओं में जो श्रेष्ठ हैं, उन्हें छाँट छाँट कर नष्ट करो । हमारी सेना द्वारा भी उनका सहार कराओ ॥ २१ ॥

कवच धारी, कवच रहित, नग्न, रथारुढ, जो भी शत्रु हो वह पाशो द्वारा बांधे जाकर चेष्टा हीन हों निद्रा मग्न हो जाँय ॥ २२ ॥

हे अर्बुदे ! कवचधारी, कवचहीन अनेक रक्षा साधनो से सपन्न हमारे जो शत्रु हैं वे तुम्हारे द्वारा विनाश को प्राप्त हों और तत्पश्चात उन्हें श्वान और गीदड भक्षण कर डालें ॥ •३ ॥

हे अर्बुदे ! रथारुढ, रथविहीन अश्वारोही एव अश्व हीन जो शत्रु हैं, वे सब तुम्हारे अनुग्रह से विनाश को प्राप्त हों और उ ह गिद्ध आदि मांस भक्षी पक्षी नोच नोच कर खा ड लें ॥ २४ ॥

हमारी सेना के समीप आने वाली शत्रु सेना बुरी तरह आहत हो और विनाश को प्राप्त होती हुई प्रणित जन्म को प्राप्त करें ॥ २५ ॥

हमारो प्रयदाज्य आहुति को लौटा कर जो शत्रु हमसे युद्ध करने की अभिलापा रखता है उसका हृदय हमारे बाणा से विदीर्ण हो तथा वह रुदन करता हुआ पृथ्वी पर गिरे और उसे गिद्ध श्वान गीदड आदि भक्षण कर ड ल । २६ ॥

जिस प्रवदाज्य हवि को वज्र उत्पन्न करने के निमित्त देवगण सपन्न करते है तथा जो हवि कभी निष्प्रभावी नही होती उस हवि से उत्पन्न वज्र द्वारा देवों के स्वामी इन्द्र हमारे विपक्षियो का विनाश करें ॥ २७ ॥

॥ एकादश काण्ड समाप्तम ॥

द्वादश काण्ड

१ सूक्त (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—भूमि । छन्द—त्रिष्टुप्, जगती, पंक्ति अष्टि, शक्वरी, बृहती अनुष्टुप, गायत्री)

सत्य बृहदृतमुग्र दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञ पृथिवीं धारयन्ति ।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरु लोक पृथिवी न कृणोतु ॥ १ ॥

असबाध मध्यतो मानवाना यस्या उद्वत प्रवत सम बहु ।
नानावीर्या ओषधीर्या बिभर्ति पृथिवी न प्रथता राध्यता न ॥ २ ॥

यस्या समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्न कृष्टय सबभूवु ।
यस्यामिद जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमि पूर्वपेये दधातु ॥३॥

यस्याश्चतस्र प्रदिश पृथिव्या यस्यामन्न कृष्टय सबभूवु ।
या बिभर्ति बहुधा प्राणदेजत् सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु ॥४॥

यस्या पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्या देवा असुरानभ्यवर्तयन् ।
गवामश्वाना वयसश्च विष्ठा भग वर्च पृथिवी नो दधातु ॥ ५ ॥

विश्वम्भरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी ।
वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्रऋषभा द्रविणे नो दधातु ॥६॥

यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम् ।
सा नो मधु प्रियं दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥ ७ ॥

यार्णवेऽधि सलिलमग्र आसीद् यां मायाभिरन्वचरन् मनीषिणः ।
यस्या हृदयं परमे व्योमन्त्सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः ।
सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे ॥ ८ ॥

यस्यामापः परिचराः समानीरहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति ।
सा नो भूमिर्भूरिधारा पयो दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥ ९ ॥

यामश्विनावमिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे ।
इन्द्रो यां चक्र आत्मनेऽनमित्रां शचीपतिः ।
सा नो भूमिर्वि सृजतां माता पुत्राय मे पयः ॥ १० ॥

ब्रह्म तपस्या, सत्य, यज्ञ दीक्षा और वृहत् जल पृथ्वी को धारण करते हैं। ऐसी यह भूत और भवितव्य प्राणियों की पोषण करने वाली पृथ्वी हमको स्थान प्रदान करे ॥ १ ॥

जिस पृथ्वी में चढ़ाई, उतराई और समतल स्थान है तथा जो अनेक सामर्थ्यों से युक्त औषधियों को धारण करती हैं, वह पृथ्वी हमें भले प्रकार से प्राप्त हो और हमारी इच्छाओं को पूर्ण करे ॥ २ ॥

समुद्र नदी और जलो से परिपूर्ण पृथ्वी जिसमें कृषि-कार्य तथा अन्न होता है, जिसके फलस्वरूप यह प्राणवान विश्व तुष्टि प्राप्त करता है। वह पृथ्वी हमको फल रूप-रस पैदा होने वाले प्रदेश में स्थापित करे ॥ ३ ॥

जो पृथ्वी चार दिशायें रखती है तथा जिनमें कृषिकार्य

और अन्न होता है तथा जो प्राणवान विश्व की आश्रयदाता है वह पृथ्वी हमको गौ और अन्न से संपन्न करे ॥ ४ ॥

पूर्वजों द्वारा जिस पृथ्वी पर अनेक कार्य किये गये तथा जिस पृथ्वी पर देवगणो ने असुरों से युद्ध किया, तथा जो पृथ्वी गौ अश्व और पक्षियो को आश्रय स्थल है, वह पृथ्वी हमे वर्च और वैभव प्रदान करे ॥ ५ ॥

जो पृथ्वी धनो को धारण करने वाली, ससार की पोषण कर्त्री, सवर्ण को वश मे धारण करने वाली और ससार की आश्रयस्थली है वह वैश्वानर अग्नि को धारण करने वाली पृथ्वी हमको धन प्रदान करे ॥ ६ ॥

जिस पृथ्वी की रक्षा देवगण सदैव सचेष्ट होकर करते हैं वह पृथ्वी हमको सुन्दर एव मधुर धनो तथा तेज से सपन्न करे ॥ ७ ॥

जो पृथ्वी समुद्र में थी, विद्वजन परिश्रम करते हुए जिस पृथ्वी पर विचरण करते हैं, जिसका हृदय आकाश मे स्थित है, वह अमृतोपम पृथ्वी हमको महान राष्ट्र, पराक्रम, और कान्ति में स्थित करे ॥ ८ ॥

जिस पृथ्वी में जल समगति से प्रतिक्षण प्रवाहमान रहते हैं, ऐसी भूरि धारा पृथ्वी हमको दुग्धवत सार रूप फल और तेज से युक्त करे ॥ ९ ॥

जिस पृथ्वी को अश्विनीकुमारो ने निर्मित किया विष्णु ने जिस पर विक्रमण किया इन्द्र ने जिसे अपने वश मे करके शत्रु रहित किया। वह पृथ्वी पुत्र को दूध पिलाने वाली माता के समान दूध वत सार रूप जल हमे प्रदान करे ॥ १० ॥

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु ।

बभ्रुं कृष्णा रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमि पृथिवीमिन्द्रगुप्ता ।
अजीतोऽहतोअक्षतोऽध्यष्ठां पृथिवीमहम् ॥ ११ ॥
यत् ते मध्य पृथिवि यच्च नभ्य यास्त ऊर्जस्तन्व सबभूवु ।
तासु नो धेह्यभि न पवस्व माता भूमि पुत्रो अह पृथिव्या ।
पर्जन्य पिता स उ न पिपर्तु ॥ १२ ॥
यस्यां वेदि परिगृह्णन्ति भूम्यां यस्या यज्ञ तन्वते विश्वकर्माण ।
यस्या मीयन्ते स्वरव पृथिव्यामूर्ध्वा शुक्रा आहुत्या पुरस्तात् ।
सा नो भूमिर्वर्धयद् वर्धमाना ॥ १३ ॥
यो नो द्वेषत् पृथिवि स पृतन्याद् योऽभिदासान्मनसा यो वधेन ।
त नो भूमे रन्धय पूर्वकृत्वरि ॥ १४ ॥
त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्व बिभर्षि द्विपदस्त्व चतुष्पद ।
तवेमे पृथिवि पञ्च मानवा येभ्यो ज्योतिरमृत मर्त्येभ्य उद्यन् सूर्यो
रश्मिभिरातनोति ॥ १५ ॥
ता न प्रजा स दुह्रता समग्रा वाचो मधु पृथिवि धेहि
मह्यम् ॥ १६ ॥
विश्वस्व मातरमोष धीना ध्रुवां भूमि पृथिवीं धर्मणा धृताम् ।
शिवां स्योनामनु चरेम विश्वहा ॥ १७ ॥
महत् सधस्थ महती बभूविथ महान् वेग एजथुर्वेपथुष्टे ।
महांस्त्वेन्द्रो रक्षत्यप्रमादम् ।
सा नो भूमे प्र रोचय हिरण्यस्येव सदृशि मा नो द्विक्षत
कश्चन ॥ १८ ॥
अग्निर्भूम्यामोषधीष्वग्निमापो बिभ्रत्यग्निरश्मसु ।
अग्निरन्त पुरुषेषु गोष्वश्वेष्वग्नय ॥ १९ ॥
अग्निर्दिव आ तपत्यग्नेर्देवस्योर्वन्तरिक्षम् ।
अग्निमर्तास इन्धते हव्यवाह घृतप्रियम् ॥ २० ॥

हे पृथ्वी तेरे पहाड हिम प्रदेश, और वन हमारे लिए सुखकारी हो। अनेक वर्णं वाली इन्द्रगुप्ता पृथ्वी पर मैं यक्ष्मा रहित एव अपारजेय रूप से सर्वदा प्रतिष्ठित रहूँ ।। ११ ।।

हे पृथ्वी तेरे नाभि प्रदेश से शरीर को पुष्ट करने वाले जो पदार्थ उत्पन्न होते हैं उनमे मुझे स्थापित करो । मेरी माता भूमि और पिता आकाश हमको पवित्रता प्रदान करते हुए पुष्ट करें ।। १२ ।।

जिस पृथ्वी मे वेदो निर्मित कर सपूर्ण कर्मों वाले यज्ञ को करते हैं, जिस पृथ्वी पर हवि देने से पूर्व ही यज्ञ स्तम्भ खडे किए जाते हैं, वह समृद्ध पृथ्वी हमे समृद्धि प्रदान करे ।। १३ ।।

हे पृथ्वी ! जो हमारा शत्रु सेना एकत्र कर हमको तेज हीन करता हुआ हमारी हिंसा की कामना करे, तुम उसे हमारे हितार्थ नष्ट कर डालो ।। १४ ।।

हे पृथ्वी ! तुम जन्म धारण करने वाले प्राणी तुम्हारे ऊपर ही विचरण करते हैं । तुम जिन पशुओं और मनुष्यो का पालन करती हो उन्हे सूर्य अपनी किरणो द्वारा जीवन भर वस्तुऐं प्रदान करते हैं । हे पृथ्वी ! वे पचजन भी तुम्हारे ही हैं ।। १५ ।।

सूर्य किरणे हमारे निमित्त प्रजा का और वाणियो का दोहन कर । हे पृथ्वी ! मुझे सुन्दर पदार्थ प्रदान करो ।। १६ ।।

औषधियो को जन्म देने वाली, विश्व की विभूति रूपा धर्म द्वारा आश्रित मगलमयी सुखकारी पृथ्वी पर हम सर्वदा विचरण करें ।। १७ ।।

बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम् ।
अजीतोऽहतोअक्षतोऽध्यष्ठां पृथिवीमहम् ॥ ११ ॥
यत् ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं यास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूवुः ।
तासु नो धेह्यभि नः पवस्व माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः ।
पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु ॥ १२ ॥
यस्यां वेदिं परिगृह्णन्ति भूम्यां यस्यां यज्ञं तन्वते विश्वकर्माणः ।
यस्यां मीयन्ते स्वरवः पृथिव्यामूर्ध्वाः शुक्रा आहुत्याः पुरस्तात् ।
सा नो भूमिर्वर्धयद् वर्धमाना ॥ १३ ॥
यो नो द्वेषत् पृथिवि यः पृतन्याद् योऽभिदासान्मनसा यो वधेन ।
तं नो भूमे रन्धय पूर्वकृत्वरि ॥ १४ ॥
त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः ।
तवेमे पृथिवि पञ्च मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्य उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति ॥ १५ ॥
ता नः प्रजाः सं दुह्रतां समग्रा वाचो मधु पृथिवि धेहि मह्यम् ॥ १६ ॥
विश्वस्वं मातरमोषधीनां ध्रुवां भूमिं पृथिवीं धर्मणा धृताम् ।
शिवां स्योनामनु चरेम विश्वहा ॥ १७ ॥
महत् सधस्थं महती बभूविथ महान् वेग एजथुर्वेपथुष्टे ।
महांस्त्वेन्द्रो रक्षत्यप्रमादम् ।
सा नो भूमे प्र रोचय हिरण्यस्येव संदृशि मा नो द्विक्षत कश्चन ॥ १८ ॥
अग्निर्भूम्यामोषधीष्वग्निमापो बिभ्रत्यग्निरश्मसु ।
अग्निरन्तः पुरुषेषु गोष्वश्वेष्वग्नयः ॥ १९ ॥
अग्निर्दिव आ तपत्यग्नेर्देवस्योर्वन्तरिक्षम् ।
अग्निमर्तास इन्धते हव्यवाहं घृतप्रियम् ॥ २० ॥

हे पृथ्वी तेरे पहाड हिम प्रदेश, और वन हमारे लिए सुखकारी हो। अनेक वर्णं वाली इन्द्रगुप्ता पृथ्वी पर मैं यक्ष्मा रहित एवं अपराजेय रूप से सर्वदा प्रतिष्ठित रहूँ ॥ ११ ॥

हे पृथ्वी तेरे नाभि प्रदेश से शरीर को पुष्ट करने वाले जो पदार्थ उत्पन्न होते हैं उनमे मुझे स्थापित करो। मेरी माता भूमि और पिता आकाश हमको पवित्रता प्रदान करते हुए पुष्ट करें ॥ १२ ॥

जिस पृथ्वी मे वेदी निर्मित कर सम्पूर्ण कर्मो वाले यज्ञ को करते है, जिस पृथ्वी पर हवि देने से पूर्व ही यज्ञ स्तम्भ खडे किए जाते हैं, वह समृद्ध पृथ्वी हमे समृद्धि प्रदान करे ॥ १३ ॥

हे पृथ्वी ! जो हमारा शत्रु सेना एकत्र कर हमको तेज हीन करता हुआ हमारी हिंसा की कामना करे, तुम उसे हमारे हितार्थ नष्ट कर डालो ॥ १४ ॥

हे पृथ्वी ! तुम जन्म धारण करने वाले प्राणी तुम्हारे ऊपर ही विचरण करते हैं। तुम जिन पशुओ और मनुष्यो का पालन करती हो उन्हे सूर्य अपनी किरणो द्वारा जीवन भर वस्तुऐं प्रदान करते हैं। हे पृथ्वी ! वे पचजन भी तुम्हारे ही हैं ॥ १५ ॥

सूर्य किरणे हमारे निमित्त प्रजा का और वाणियो का दोहन कर। हे पृथ्वी ! मुझे सुन्दर पदार्थ प्रदान करो ॥ १६ ॥

औषधियो को जन्म देने वाली, विश्व की विभूति रूपा धर्म द्वारा आश्रित मगलमयी सुखकारी पृथ्वी पर हम सर्वदा विचरण करें ॥ १७ ॥

हे पृथ्वी ! तू महति निवास भूमि है, तेरा वेग और कापन भी महत्व पूर्ण है। इन्द्र तेरी रक्षा करें। तू हमे सबका प्रिय बना। जैसे सोने को सब प्यार करते हैं उसी भाँति सब हम से प्रेम करें ॥ १८।

जल अग्नि को धारण करता है पृथ्वी मे अग्नि है जल मे पुरुष मे और गो अश्वादि पशुओं मे भी अग्नि रहती है ॥ १९ ॥

स्वर्ग मे अग्नि तपते हैं अन्तरिक्ष में भी अग्नि है और मृतकशील मनुष्य हव्यवाहु अग्नि को प्रज्वलित करते है ॥ २० ॥

अग्निवासाः पृथिव्य सितज्ञ्रुरित्वषीमन्त सशितं मा कृणोतु ॥२१॥
भूम्यां देवेभ्यो ददति यज्ञं हव्यमरकृतम् ।
भूम्यां मनुष्या जीवन्ति स्वधयान्नेन मर्त्याः ।
सा नो भूमिः प्राणमायुर्दधातु जरदष्टिं मा पृथिवी कृणोतु ॥२२॥
यस्ते गन्ध पृथिवि सबभूव य बिभ्रत्योषधयो यमाप ।
यं गन्धर्वा अप्सरश्च भेजिरे तेन मा सुरभिं ।
कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन ॥ २३ ॥
यस्ते गन्धः पुष्करमाविवेश यं सजभ्रुः सूर्याया विवाहे ।
अमर्त्याः पृथिवि गन्धमग्रे तेन मा सुरभिं ।
कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन ॥ २४ ॥
यस्ते गन्ध पुरुषेषु स्त्रीषु पुंसु भगो रुचि ।
यो अश्वषु वीरेषु यो मृगेषूत हस्तिषु ।
कन्यायां वर्चो यद् भूमे तेनास्मां अपि स सृज
मा नो द्विक्षत कश्चन ॥ २५ ॥
शिला भूमिरश्मा पांसु सा भूमिः संधृता धृता ।
तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः ॥ २६ ॥

यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा ।
पृथिवीं विश्वधायसं धृतामच्छावदामसि ॥ २७ ॥
उदीराणा उतासीनास्तिष्ठन्त प्रक्रामन्तः ।
पद्भ्यां दक्षिणसव्याभ्यां मा व्यथिष्महि भूम्याम् ॥ २८ ॥
विमृग्वरीं पृथिवीमा वदामि क्षमां भूमिं ब्रह्मणा वावृधानाम् ।
ऊर्जं पुष्टं बिभ्रतीमन्नभागं घृतं त्वाभि नि षीदेम भूमे ॥ २९ ॥
शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु यो नः सेदुरप्रिये तं नि दध्मः ।
पवित्रेण पृथिवि मोत् पुनामि ॥ ३० ॥

जिस धूम मे अग्नि है, उस धूम की ज्ञाता पृथ्वी मुझे वच युक्त करे ॥ २१ ॥

पृथ्वी पर यज्ञो में देवगणा के लिए हवि अर्पित की जाती है, इस पृथ्वी पर मृत्युशील प्राणी अन्न जल से जीवन यापन करते हैं । यह पृथ्वी हमको प्राण और आयु प्रदान करती हुई जरावस्था तक जीवन यापन करने वाला बनाय ॥ २२ ॥

हे पृथ्वी ! तेरी जिस गन्ध को औषधि और जल धारण किये हुए हैं जिसका आनन्द गन्धर्व और अप्सरायें लेती हैं मुझे उसी गन्ध से सुरभित बना । कोई मेरा द्वेषी न हो ॥२३॥

हे पृथ्वी ! अपनी कमल सदृश गन्ध से जिसको सूर्या के विवाहोत्सव पर मृत्युशील मानवो ने धारण किया था, मुझे सुरभित कर । मेरा कोई शत्रु न रहे । २४ ॥

हे पृथ्वी ! अपनी उस गन्ध से जो पुरुषो, अश्वो, वीरो मृग हाथी और कन्या मे है, मुझे भी सुरभित करो मेरा वैरी कोई न हो ॥ २५ ॥

मैं हिरण्यवक्षा रूप पृथ्वी को नमस्कार करता हूँ जो शिला भूमि पाषाण और धूल आदि रूपो का धारण करने वाली है ॥ २६ ॥

वनस्पति उत्पन्न करने वाले वृक्ष जिस धर्म आश्रिता पृथ्वी पर निर्भय खड़े होकर औषध आदि के रूप में सब की सेवा करते हैं, ऐसी पृथ्वी को हम स्तवन करते हैं ॥ २७॥

हम अपने सीधे या बायें पैर से चलते हुए, खड़े अथवा बैठे हुए कभी दुखी न हों ॥ २८ ॥

क्षमाशील, परम पवित्र मंत्र द्वारा प्रवृद्ध पृथ्वी की स्तुति करता हूँ। हे पृथ्वी ! तू अन्न और बल को धारण कर्त्री है, मैं तुझे घृताहुति अर्पित करता हूँ ॥ २९ ॥

पवित्र जल हमारे शरीर को सींचे, तथा शरीर पर से जाने वाला जल शत्रु को प्राप्त हो। हे पृथ्वी ! मैं अपने शरीर को पवित्रे द्वारा शुद्ध करता हूँ ॥ ३० ॥

यास्ते प्राची. प्रदिशो या उदीचीर्यास्ते भूमे अधराद्
या च पश्चात् ।
स्योनास्ता मह्यं चरते भवन्तु मा नि पप्तं भुवने
शिश्रियाणः ॥ ३१ ॥
मा नः पश्चान्मा पुरस्तान्नुदिष्ठा मोत्तरादधरादुत ।
स्वस्ति भूमे नो भव मा विदन् परिपन्थिनो वरीयो यावया
वधम् ॥ ३२ ॥
यावत् तेऽभि विपश्यामि भूमे सूर्येण मेदिना ।
तावन्मे चक्षुर्मा मेष्टोत्तरामुत्तरां समाम् ॥ ३३ ॥
यच्छयानः पर्यावर्ते दक्षिणं सव्यमभि भूमे पार्श्वम् ।
उत्तानास्त्वा प्रतीचीं यत् पृष्टीभिरधिशेमहे ।
मा हिंसीस्तत्र नो भूमे सर्वस्य प्रतिशीवरि ।. ३४ ॥
यत् ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु ।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम् ॥ ३५ ॥

ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद्धेमन्तः शिशिरो वसन्तः ।
ऋतवस्ते विहिता हायनीरहोरात्रे पृथिवि नो दुह्राताम् ॥ ३६ ॥
याप सर्पं विजमाना विमृग्वरी यस्यामासन्नग्न्यो ये अप्स्वन्तः ।
परा दस्यून् ददती देवपीयूनिन्द्रं वृणाना पृथिवी न वृत्रम् ।
शक्राय दध्रे वृषभाय वृष्णे ॥ ३७ ॥
यस्यां सदोहविर्धाने यूपो यस्यां निमीयते ।
ब्रह्माणो यस्यामर्चयन्त्यृग्भिः साम्ना यजुर्विदः ।
युज्यन्ते यस्यामृत्विजः सोममिन्द्राय पातवे ॥ ३८ ॥
यस्या पूर्वे भूतिकृत ऋषयो गा उदानृचुः ।
सप्त सत्रेण वेधसो यज्ञेन तपसा सह ॥ ३९ ॥
सा नो भूमिरा दिशतु यद्धन कामयामहे ।
भगो अनुप्रयुङ्क्तामिन्द्र एतु पुरोगवः ॥ ४० ॥

हे पृथ्वी ! तुम्हारी पूर्व पश्चिम आदि चारो दिशाएं मुझे विचरण शक्ति प्रदान करें । मैं इस लोक मे निवास करता हुआ कभी पतित न हूँ ॥ ३१ ॥

हे पृथ्वी ! मेरे पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर चारो ओर स्थित रह । मुझे राक्षस प्राप्त न कर सकें तथा भयकर हिंसा से मेरी रक्षा करते हुए मेरे निमित्त कल्याणकारी हो ॥ ३२ ॥

मेरे नेत्र पवित्र जब तक नष्ट न हो, जब तक मैं तुझे सूर्य के समक्ष देखता रहूँ ॥ ३३ ॥

हे पृथ्वी सोते हुए मैं करवट लूं अथवा सीधा होकर सोऊं मेरी कोई हिंसा न करे ॥ ३४ ॥

हे पृथ्वी ! मैं तेरे जिस स्थल को खोदूं, वह शीघ्र ही पहले जैसा होजाय क्योंकि मैं तेरे मर्म को पूर्ण करने में

हे पृथ्वी ! ग्रीष्म वर्षा शरद हेमन्त शिशिर और वसन्त यह छ ऋतु, दिन-रात, वर्ष यह सब हमारे लिए काम्य-वर्षक हों ॥ ३६ ॥

जो पृथ्वी सर्प के हिलने पर कम्पित होती है, विद्युत रूप से अग्नि जिस पृथ्वी में निवास करता है, जिसने वृत्रासुर को त्याग कर इन्द्र का वरण किया था, जो देव द्विषियो के लिए हितकारी नहीं अपितु सुस्पष्ट वीर्यवान पुरुष के अधीन रहती है ॥ ३७ ॥

जिस पृथ्वी पर ऋक, साम यजुर्वेद के मंत्रो द्वारा देवताओं का पूजन और इन्द्र को सोमपान कराने का कार्य सपन्न होता है। जिस पृथ्वी पर यज्ञ मडप स्थापित किया जाता है तथा जिसमें यूप खडे होते हैं ॥ ३८ ॥

जिस पृथ्वी पर भूतो के निर्माण कर्ता महर्षियो ने सात सत्र वाले यज्ञयाग और स्तुतियों द्वारा देवोपासना की थी ॥ ३९ ॥

वह भूमि हमें इच्छित धन प्रदान करे। भाग्य हमारे लिए प्रेरणादायक हो और इन्द्र हमारे परम पूजनीय हों ॥ ४० ॥

यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैलबाः ।
युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभिः ।
सा नो भूमि प्र णुदतां सपत्नानसपत्नं मा पृथिवी कृणोतु ॥४१॥
यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पञ्च कृष्टयः ।
भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे ॥ ४२ ॥
यस्याः पुरो देवकृताः क्षेत्रे यस्या विकुर्वते ।
प्रजापतिः पृथिवीं विश्वगर्भामाशामाशां रण्यां नः कृणोतु ॥ ४३ ॥
निधिं बिभ्रती बहुधा गुहा वसु मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे ।
वसूनि नो वसुदा रासमाना देवी दधातु सुमनस्यमाना ॥ ४४ ॥

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम् ।
सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती ॥ ४५ ॥
यस्ते सर्पो वृश्चिकस्तृष्टदंश्मा हेमन्तजब्धो भृमलो गुहा शये ।
क्रिमिर्जिन्वत् पृथिवि यद्यदेजति प्रावृषि तन्नः सर्पन्मोप
सृपद् यच्छिवं तेन नो मृड ॥ ४६ ॥
ये ते पन्थानो बहवो जनायना रथस्य वर्त्मानसश्च यातवे ।
यैः संचरन्त्युभये भद्रपापास्तं पन्थानं जयेमानमित्रतस्करं
यच्छिवं तेन नो मृड ॥ ४७ ॥
मल्वं बिभ्रती गुरुभृद् भद्रपापस्य निधनं तितिक्षुः ।
वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय वि जिहीते मृगाय ॥ ४८ ॥
ये त आरण्या. पशवो मृगा वने हिता सिंहा
व्याघ्रा पुरुषादश्चरन्ति ।
उलं वृकं पृथिवि दुच्छुनामित ऋक्षीकां रक्षो अप
बाधयास्मत् ॥ ४९ ॥
ये गन्धर्वा अप्सरसो ये चारायाः किमीदिनः ।
पिशाचान्त्सर्वा रक्षांसि तानस्मद् भूमे यावय ॥ ५० ॥

जिस पृथ्वी पर मनुष्य नाचते गाते हैं जिस पृथ्वी पर युद्ध लड़े जाते हैं जिस पर कहीं रोना होता है तो कहीं शहनाई भी बजती है, वह पृथ्वी मुझे शत्रु रहित करे ॥ ४१ ॥

जिस पृथ्वी पर पाँच कृषियाँ हैं, जिस पृथ्वी पर धन, धान्य उपजते हैं उस वर्षा रूप मेघ से पुष्ट की जाने वाली पृथ्वी को हमारा नमस्कार है ॥ ४२ ॥

देवताओं द्वारा उत्पन्न हिंसक पशु जिस पृथ्वी में अनेक क्रीड़ा करते हैं, जो सम्पूर्ण विश्व को अपने में व्याप्त रखती है, उस पृथ्वी की दिशाओं को प्रजापति हमारे लिए कल्याणकारी बनावें ॥ ४३ ॥

निधियों की धारणकर्त्री पृथ्वी हमें निवास मणि एवं स्वर्ण आदि प्रदान करे। वह धनदाता हम पर प्रसन्न होकर वरदायिनी बने ॥ ४४ ॥

विभिन्न धर्मों एवं विभिन्न भाषा भाषी लोगों को निवास प्रदान करने वाली पृथ्वी, स्थिर धेनुवत मेरे निमित्त धन की सहस्रों धाराओं का दोहन करे ॥ ४५ ॥

हे पृथ्वी ! तुम पर निवास करने वाले सर्पों का दंश प्यास लगाने वाला होता है। जो विच्छू हैं वे हेमन्त ऋतु में अपना डंक नीचे किये हुए गुफा में सोते रहते हैं वर्षा ऋतु में आनन्द से विचरण करने वाले यह जीव मेरे निकट न आवें। मेरे निकट कल्याणकारी जीव ही आवें उनसे मुझे सुख मिले ॥ ४६ ॥

हे पृथ्वी ! मनुष्यों और रथादि के चलने के मार्ग हैं, उन मार्गों पर पुण्यात्मा और दुष्टजन सभी चलते हैं। जो चोर और शत्रुओं से रहित मार्ग हैं, वही मंगलमय मार्ग हमें प्राप्त हों। उन्हीं के द्वारा तुम हमें सुख प्रदान करो। ४७।

पापात्मा और धर्मात्मा के शवों को तथा शत्रु को भी धारण करने वाली जिस पृथ्वी को वाराह खोज रहे थे, वह उन वाराह को ही प्राप्त हुई ॥ ४८ ॥

जो हिंसक पशु व्याघ्र आदि घूमते हैं, उनको तथा उल, वृक, ऋक्षीका और राक्षसों को हमसे पृथक कर बाधा दो ॥ ४९ ॥

हे पृथ्वी ! गन्धर्व, अप्सरा राक्षस किमदिन, पिशाच आदि को हमसे पृथक कर ॥ ५० ॥

या द्विपाद· पक्षिण संपतन्ति हंसा सुपर्णा शकुना वयांसि।

यस्यां वातो मातरिश्वेयते रजांसि कृण्वंश्च्यावयंश्च वृक्षान् ।
वातस्य प्रवामुपवामनु वात्यर्चि. ॥ ५१ ॥
यस्यां कृष्णमरुणं च संहिते अहोरात्रे विहिते भूम्यामधि ।
वर्षेण भूमिः पृथिवी वृतावृता सा नो दधातु भद्रया प्रिये
धामनिधामनि ॥ ५२ ॥
द्यौश्च म इदं पृथिवी चान्तरिक्षं च मे व्यचः ।
अग्निः सूर्य आपो मेधां विश्वे देवाश्च सं ददुः ॥ ५३ ॥
अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम् ।
अभीषाडस्मि विश्वाषाडाशामाशां विषासहिः ॥ ५४ ॥
अदो यद् देवि प्रथमाना पुरस्ताद् देवैरुक्ता व्यसर्पो महित्वम् ।
आ त्वा सुभूतमविशत् तदानीमकल्पयथाः प्रदिशश्चतस्रः ॥ ५५ ॥
ये ग्रामा यदरण्यं याः सभा अधि भूम्याम् ।
ये संग्रामाः समितयस्तेषु चारु वदेम ते ॥ ५६ ॥
अश्व इव रजो दुधुवे वि तान् जनान् य आक्षियन् ।
पृथिवीं यादजायत ।
मन्द्राग्रेत्वरी भुवनस्य गोपा वनस्पतीनां गृभिरोषधीनाम् ॥ ५७ ॥
यद् वदामि मधुमत् तद् वदामि यदीक्षे तद् वनन्ति मा
त्विषीमानस्मि जूतिमानवान्यान् हन्मि दोधतः ॥ ५८ ॥
शन्तिवा सुरभिः स्योना कीलालोध्नी पयस्वती ।
भूमिरधि ब्रवीतु मे पृथिवी पयसा सह ॥ ५९ ॥
यामन्वैच्छद्धविषा विश्वकर्मान्तरर्णवे रजसि प्रविष्टाम् ।
भुजिष्यं पात्रं निहितं गुहा यदाविर्भोगे अभवन्मातृमद्भ्यः ॥६०॥
त्वमस्यावपनी जनानामदितिः कामदुघा पप्रथाना ।
यत् त ऊनं तत् त आ पूरयाति प्रजापतिः प्रथमजा
ऋतस्य ॥ ६१ ॥

उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्य सन्तु पृथिवि प्रसूता ।
दीर्घं न आयु प्रतिबुध्यमाना वय तुभ्य बलिहृत स्याम ।। ६२ ।।
भूमे मातर्नि धेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम् ।
संविदाना दिवा कवे श्रियां मा धेहि भूत्याम् ।। ६३ ।।

जिस पृथ्वी पर दो पाद वाले पक्षी हंस कौए गिद्ध आदि विचरण करते हैं जिस पृथ्वी पर वायु धूल उड़ाते और वृक्षों को गिराते हैं और वायु के तेज होने पर अग्नि भी उनके साथ गमन करते हैं ।। ५१ ।।

जिस पृथ्वी पर काले और लाल दिन रात संयुक्त रूप से रहते हैं, जो पृथ्वी वर्षा से आवृत होती है, वह पृथ्वी हमको सुन्दर मन से हमारे इच्छित स्थान को प्राप्त करावे ।। ५२ ।।

द्यावा पृथ्वी अन्तरिक्ष अग्नि सूर्य जल मेघ तथा गर्भ देवताओं ने मुझे विचरण करने की शक्ति प्रदान की है ।। ५३ ।।

मैं शत्रुतिरस्कारक रूप में पृथ्वी पर श्रेष्ठ एव प्रख्यात हूँ । मैं शत्रुओं का सन्मुख जाकर दमन करूँ । मैं प्रत्येक दिशा मे निवास करने वाले शत्रु को अपने अधीन करू ।। ५४ ।।

हे पृथ्वी ! तुम्हारे व्यापक होने से पूर्व देवगणो ने तुमसे विस्तृत होने को कहा था उस समय भूतो ने तुममें प्रवेश किया, तभी चार दिशाओं का निर्माण हुआ ।। ५५ ।।

पृथ्वी पर जो ग्राम, जगल और सभाएं हैं, जहाँ युद्ध की मत्रणाएं तथा संग्राम होते हैं, उन सब मे हम, हे पृथ्वी ! हम तेरी याचना करते हैं ।। ५६ ।।

पृथ्वी मे उत्पन्न हुए पदार्थ पृथ्वी मे ही रहते हैं उन पर अश्व के समान धूल उड़ाते हैं । यह भूमि मदा और इत्वरी है ।

तथा वनस्पति और औषधियो के अभय से संसार का पालन करने वाली हैं ॥ ५७ ॥

मैं जो कुछ कहूँ मधुर कहूँ। जिसे देखूँ वह मेरा प्रिय हो। मैं कीतिवान और वेगवान हूँ तथा दूसरों की रक्षा करता हुआ, जो मुझे भयभीत करे, उसका सहार कर डालूँ ॥ ५८ ॥

सुखप्रद, अन्न और दूध से युक्त पृथ्वी दुग्ध के समान सार पदार्थ वाली होती हुई मेरे पक्ष में रहे ॥ ५९ ॥

जिस पृथ्वी को राक्षसों के बन्धन से विश्वकर्मा ने हवि द्वारा युक्त करने की इच्छा व्यक्त की तो गुप्त रहने वाला भुजिप्य पात्र उपयोग के समय दृष्टिगत हुआ ॥ ६० ॥

हे पृथ्वी ! तू काम्यवर्धक है। इस ससार की क्षेत्र रूपा एव व्यापकशील है, तेरे क्षीण होने वाले भाग को प्रजापति पूर्ण करते हैं ॥ ६१ ॥

तेरे द्वीप भी हमारे लिए क्षय रोग से रहित हों। हम दीर्घ आयुष्य होकर तुझ हवि प्रदान करने वाले हो ॥ ६२ ॥

हे पृथ्वी माता ! मुझे कल्याणकारी स्थित में युक्त करो हे विज्ञ ! मुझे धन और ऐश्वय में प्रतिष्ठित करते हुए स्वर्ग को प्राप्त कराओ ॥ ६३ ॥

सूक्त २ (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि—भृगु. । देवता—अग्नि., मन्त्रोक्ता:,मृत्यु: । छन्द—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् पङ्क्ति:, जगती, बृहती, गायत्री)

नडमा रोह न ते अत्र लोक इदं सीसं भागधेयं त एहि ।
यो गोषु यक्ष्म. पुरुषेषु यक्ष्मस्तेन त्वं साकमधराङ् परेहि ॥ १ ॥

अघशंसदुः शंसाभ्यां करेणानुकरेण च ।
यक्ष्म च सर्वं तेनेता मृत्युं च निरजामसि ॥ २ ॥

निरितो मृत्युं निर्ऋतं निररातिमजामसि ।
यो नो द्वेष्टि तमद्ध्यग्ने अक्रव्याद् यमु द्विष्मस्तमु ते प्र सुवामसि ॥ ३ ॥

यद्यग्निः क्रव्याद् यदि वा व्याघ्र इमं गोष्ठं प्रविवेशान्योकाः ।
तं माषाज्यं कृत्वा प्र हिणोमि दूरं स गच्छत्वप्सुषदोऽप्यग्नीन् ॥ ४ ॥

यत् त्वा क्रुद्धा प्रचक्रुर्मन्युना पुरुषे मृते ।
सुकल्पमग्ने तत् त्वया पुनस्त्वोद्दीपयामसि ॥ ५ ॥

पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः पुनर्ब्रह्मा वसुनीतिरग्ने ।
पुनस्त्वा ब्रह्मणस्पतिराधाद् दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥ ६ ॥

यो अग्निः क्रव्यात् प्रविवेश नो गृहमिमं पश्यन्नितरं जातवेदसम् ।
तं हरामि पितृयज्ञाय दूरं स घर्ममिन्धां परमे सधस्थे ॥ ७ ॥

क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं यमराज्ञो गच्छतु रिप्रवाहः ।
इहायमितरो जातवेदा देवो देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥ ८ ॥

क्रव्यादमग्निमिषितो हरामि जनान् दृंहन्तं वज्रेण मृत्युम् ।
नि तं शास्मि गार्हपत्येन विद्वान् पितॄणां लोके अपि भागो अस्तु ॥ ९ ॥

क्रव्यादमग्निं शशमानमुक्थ्यं प्र हिणोमि पथिभिः पितृयाणैः ।
मा देवयानैः पुनरा गा अत्रैवैधि पितृषु जागृहि त्वम् ॥ १० ॥

हे क्रव्याद अग्ने ! तू नड पर आरूढ़ हो । मनुष्यों तथा गौ में जो यक्ष्मा है, उनके साथ ही तू यहाँ से पृथक हो । तू अपने भाग्य सीमा पर आ ॥ १ ॥

पाप और कुभावनाओ का विनाश करने वाले कर और अनुकर से मैं यक्ष्मा को अलग करता हूँ तथा मृत्यु को भी दूर भगाता हूँ । २ ॥

हे अक याद् अग्ने ! हम पाप देवता निॠंतु और मृत्यु को पृथक करते हैं तथा अपने शत्रुओ को भी दूर भगाते हैं। जो हमारा वैरी है उसे तुम्हारी ओर प्रेषित करते है तुम उनका भक्षण करो ।। ३ ।।

यदि क्रव्यद् अग्नि अथवा व्याघ्र हमारे गोष्ठ में प्रविष्ट हुआ है तो मैं उसे माप आज्य द्वारा अलग करता हूँ। वह जल-निवासिनी अग्नियो को प्राप्त हो । ४ ॥

पुरुष की मृत्यु के कारण क्रोधित प्राणियो ने तुम्हे प्रज्वलित किया वह कार्य पूर्ण हो गया, अत तुम्हें तुम से ही प्रज्वलित करते हैं ॥ ५ ।।

हे अग्ने ! वसु, ब्राह्मणस्पति ब्रह्मा रुद्र सूर्य और वसु नीति ने तुम्हे स्वायुष्य होने के लिए पुनः प्रज्वलित किया था । ६ ॥

अन्य अग्नियो के वर्शन के लिए यदि क्रव्याद् अग्नि हमारे घर में घुसा है तो पितृयज्ञ करने के लिये मैं उसे प्रथक करता हूँ। वह दिव्य आकाश मे स्थित होकर घर्म वृद्धि का हेतु बने ॥ ७ ॥

मैं क्रव्याद् अग्नि को पृथक करता हूँ। वह पाप सहित यमस्थान को प्राप्त हो। जातवेदा अग्नि यहाँ स्थित होकर देवगणो के लिए हवि ले जाय ।। ८ ।।

मैं अपने मन्त्र रूप वज्र से क्रव्याद अग्नि को पृथक करता हूँ। गार्हपत्य अग्नि के द्वारा मैं इस अग्नि का शासन करता हूँ। यह पितरो का भाग होता हुआ उनके लोक मे स्थित हो ।। ९ ॥

उक्त के प्रशासक क्रव्याद् अग्नि को मैं पितृयान मार्ग द्वारा प्रेरित करता हूँ। हे क्रव्याद! तू पितरों में ही प्रवृद्ध हो और वहीं जागता रह। देवयान मार्ग द्वारा पुनः यहाँ न पधारें। १० ॥

समिन्धते सक्सुकं स्वस्तये शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः।
जहाति रिप्रमत्येन एति समिद्धो अग्निः सुपुना पुनाति ॥ ११ ॥
देवो अग्निः सक्सुको दिवस्पृष्ठान्यारुहत्।
मुच्यमानो निरेणसोऽमोगस्माँ अशस्त्याः ॥ १२ ॥
अस्मिन् वयं सकसुके अग्नौ रिप्राणि मृज्महे।
अभूम यज्ञियाः शुद्धाः प्राण आयूंषि तारिषत् ॥ १३ ॥
सकसुको विकसुको निर्ऋथो यश्च निस्वरः।
ते ते यक्ष्मं सवेदसो दूराद् दूरमनीनशन् ॥ १४ ॥
यो नो अश्वेषु वीरेषु यो नो गोष्वजाविषु।
क्रव्यादं निर्णुदामसि यो अग्निर्जनयोपनः ॥ १५ ॥
अन्येभ्यस्त्वा पुरुषेभ्यो गोभ्यो अश्वेभ्यस्त्वा।
निः क्रव्यादं नुदामसि यो अग्निर्जीवितयोपनः ॥ १६ ॥
यस्मिन् देवा अमृजत यस्मिन् मनुष्या उत।
तस्मिन् घृतस्तावो मृष्ट्वा त्वमग्ने दिवं रुह ॥ १७ ॥
समिद्धो अग्न आहुत स नो माभ्यपक्रमीः।
अत्रैव दीदिहि द्यवि ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥ १८ ॥
सीसे मृड्ढ्वं नडे मृड्ढ्वमग्नौ सकसुके च यत्।
अथो अव्यां रामायां शीर्षक्तिमुपबर्हणे ॥ १९ ॥
सीसे मलं सादयित्वा शीर्षक्तिमुपबर्हणे।
अव्यामसिक्न्यां मृष्ट्वा शुद्धा भवत यज्ञियाः ॥ २० ॥

पवित्रता प्रदान करने वाले अग्नि देव शोधन हेतु शवभक्षक अग्नि को प्रज्वलित करते हैं तब यह अपने पाप का त्याग करता हुआ गमन करता है। उसे यह पवित्र अग्नि शुद्ध करते हैं ॥ ११ ॥

शवभक्षक अग्नि स्वयं पाप से मुक्त होते और अमंगल से हमारी रक्षा करते हुए स्वर्ग की ओर प्रयाण करते हैं ॥ १२ ॥

इस शवभक्षक अग्नि द्वारा हम अपने पापों का विमोचन करते हैं। हम पवित्र हो गये, अतः अब यह अग्नि हमको पूर्ण आयु प्रदान करें। १३ ॥

संकसुक, विकसुक, निर्ऋथ और निस्वर अग्नि यक्ष्मा के साथ ही दूरस्थ प्रयाण कर गये और वहाँ जाकर विनाश को प्राप्त हुए। १४ ॥

जो क्रव्याद् अग्नि हमारे अश्व गो आदि पशुओं तथा पुत्र पौत्रादि में प्रविष्ट हुआ है। उसे हम पृथक करते हैं ॥ १५ ॥

जो क्रव्याद् जीवन-क्रम को नष्ट भ्रष्ट करने वाले हैं, उसे हम मंत्र शक्ति से पृथक करते हैं। हे क्रव्याद् अग्ने ! हम तुझे मनुष्यों और पशुओं से दूर भगाते हैं ॥ १६ ॥

हे अग्ने ! जिसके द्वारा देवता और मनुष्य पवित्र होते हैं उनके द्वारा तू भी पवित्र होकर स्वर्ग की ओर प्रयाण कर ॥ १७ ॥

हे गार्हपत्य अग्ने ! तुम हमसे पृथक न होओ। तुम भली भाँति प्रकाशित हो रहे हो। तुम हमें सूर्य के चिरकाल पर्यन्त दर्शन कराने के निमित्त प्रज्वलित रहो ॥ १८ ॥

हे पुरुषो ! शिर रोग को सीसे में, नड नामक घास में, संकसुक में और भेड़ तथा स्त्री में भी शुद्ध करो ॥ १९ ॥

हे पुरुषो ! शिर पीडा को तकिऐ मे स्थित करो, मल को सीसे में और काली भेड में पवित्र करके स्वयं भी पवित्र होओ ॥ २० ॥

परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्त एष इतर देवयानात् ।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमीहेमे वीरा बहवो भवन्तु ॥ २१ ॥

इमे जीवा वि मृतैराववृत्रन्नभूव भद्रा देवहूतिर्नो अद्य ।
प्राञ्चो अगाम नृतये हसाय सुवीरासो विदथमा वदेम ॥ २२ ॥

इम जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम् ।
शतं जीवन्त शरदः पुरूचीस्तिरो मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥ २३ ॥

आ रोहतायुर्जरसं वृणाना अनुपूर्वं यतमाना यतिस्थ ।
तान् वस्त्वष्टा सुजनिमा सजोषाः सर्वमायुर्नयतु जीवनाय ॥२४॥

यथाहान्यनुपूर्वं भवन्ति यथर्तव ऋतुभिर्यन्ति साकम् ।
यथा न पूर्वमपरो जहात्येवा धातरायूंषि कल्पयैषाम् ॥ २५ ॥

अश्मन्वती रीयते सं रभध्व वीरयध्व प्र तरता सखायः ।
अत्रा जहीत ये असन् दुरेवा अनमीवानुत्तरेमाभि वाजान् ॥२६॥

उत्तिष्ठता प्र तरता सखायोऽश्मन्वती नदी स्यन्दत इयम् ।
अत्रा जहीत ये असन्नशिवाः शिवान्त्स्योनानुत्तरेमाभि वाजान् ॥ २७ ॥

वैश्वदेवीं वर्च आ रभध्वं शुद्धा भवन्त शुचयः पावकाः ।
अतिक्रामन्तो दुरिता पदानि शतं हिमाः सर्ववीरा मदेम ॥ २८ ॥

उदीचीनैः पथिभिर्वायुमद्भिरतिक्रामन्तोऽवरान् परेभि ।
त्रिः सप्त कृत्व ऋषयः परेता मृत्युं प्रत्यौहन् पदयोपनेन ॥ २९ ॥

मृत्यो. पदं योपयन्त एत द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ।
मृत्युं नुदता सधस्थेऽथ जीवासो विदथमा वदेम ॥३०॥

हे मृत्यो ! तू देवयान मार्ग को छोड़कर अन्य मार्ग से जा। तू दर्शन एव श्रवण शक्तियो से संपन्न है तो सुनले कि यहाँ हमारे अनेकों वीर पुत्रादि रहेगे ।। २१ ।।

यह प्राणी मृत्यु मँहगाने वाली शक्ति से संपन्न हो गये। हम श्रेष्ठ शूर वीरो से युक्त हो, नृत्य गायन एवं हास्य में सलग्न है। हम यज्ञ का यशोगान करते हुए कहते है कि देव-गणों का हवि अर्पित करना आज मंगलमय हो गया । २२ ।।

हे मनुष्यों तुम पाषाण से अपनी मृत्यु का दमन करो। मैं तुम्हे जो रक्षा साधन रूप कवच देता हूँ, उसे कोई दूसरा प्राप्त न कर सके। तुम शतायुष्य हो। २३ ।।

हे मनुष्यो ! तुम जराअवस्था तक जीवन यापन करने की कामना करो। तुम श्रेष्ठ जन्म वाले और समान प्रीति वाले हो। तुम्हें दीर्घजीवन यापन के निमित्त त्वष्टा देव पूर्ण आयु प्रदान करें ।। २४ ।।

जैसे ऋतुऐं क्रमानुसार आती हैं, जैसे दिवस एक के बाद दूसरा आता है, जैसे नूतन पूर्व का त्याग नही करता, उसी भाँति हे धाता ! इन्हें दीर्घायु बनाओ ।। २५ ।।

हे मित्रो ! यह पाषाण युक्त नदी दिखाई पड़ रही है, इसे वीरता पूर्वक लाँघ जाओ और अपने दुष्कर्मों को इसी में छोड़ दो। तत्पश्चात हम रोग विनाशक वेगो से मुक्त हो ।। २६ ।।

हे मित्रो ! यह पाषाण युक्त नदी शब्द ध्वनि कर रही है उठो और पार करो तथा अपने दुष्कर्मों को इसी मे डाल दो। हम इसके मगल दायक और सुखद वेगो से पार हों ।। २७ ।।

हे शोधक अग्नियो ! पवित्र होते समय समस्त देवगणों

की स्तुति करो। ऋग्वेद की ऋचाओं से पाप मुक्त होते हुए हम सौ हेमन्तों तक पुत्रादि सहित प्रसन्नता पूर्वक जीवन यापन करें।२८॥

वायु से पूर्ण उत्तरायण मार्ग में परलोक गमन की इच्छा से जाने वाले ऋषियों ने नीच मनुष्यों को पार किया था। उन्होंने मृत्यु को भी इक्कीस बार पैरों द्वारा लाँघा था॥ २९॥

मृत्यु के लक्ष्य को भ्रष्ट करने में समर्थ ऋषिगण आयु से परिपूर्ण हैं। तुमभी इस मृत्यु को दूर करो। फिर हम जीवित रहते हुए लोक में यज्ञ का यशोगान करें॥ ३०॥

इमा नारीरविधवा सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं स्पृशन्ताम्।
अनश्रवो अनमीवा सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे॥ ३१॥
व्याकरोमि हविषाहमेतौ तौ ब्रह्मणा व्यहं कल्पयामि।
स्वधां पितृभ्यो अजरां कृणोमि दीर्घेणायुषा समिमान्त्सृजामि॥ ३२॥
यो नो अग्निः पितरो हृत्स्वन्तराविवेशामृतो मर्त्येषु।
मय्यहं तं परि गृह्णामि देवं मा सो अस्मान् द्विक्षत मा वयं तम्॥ ३३॥
अपावृत्य गार्हपत्यात् क्रव्यादा प्रेत दक्षिणा।
प्रियं पितृभ्य आत्मने ब्रह्मभ्यः कृणुता प्रियम्॥ ३४॥
द्विभागधनमादाय प्र क्षिणात्यवर्त्या।
अग्निः पुत्रस्य ज्येष्ठस्य यः क्रव्यादनिराहितः॥ ३५।
यत् कृषते यद् वनुते यच्च वस्नेन विन्दते।
सर्वं मर्त्यस्य तन्नास्ति क्रव्याच्चेदनिराहितः॥ ३६॥
अयज्ञियो हतवर्चा भवति नैनेन हविरत्तवे।
छिनत्ति कृष्या गोर्धनाद् यं क्रव्यादनुवर्तते॥ ३७॥

स्पृहुर्ग्ध्य प्र बदत्यार्ति मर्त्या नीत्य ।
क्रव्याद् यानग्निरन्तिकादनुविद्वान् वितावति ॥ ३८ ॥
ग्राह्या गृहा सं सृज्यन्ते स्त्रिया यन्म्रियते पतिः ।
ब्रह्मं व विद्वानेष्योवः क्रव्याद निरावधत् ॥ ३९ ॥
यद रिप्र शमलं चकृम यच्च दुष्कृतम् ।
आपो मा तस्माच्छुम्भन्त्वग्नेः सकसुकाच्च यत् ॥ ४० ।

यह नारियाँ श्रेष्ठ स्वामियो को प्राप्त करें तथा विधवा न हो । ये अश्रु विहीन हो और घृत से सपन्न हो । यह सुन्दर आभूषणो को धारण करने वाली हो तथा सतान उत्पन्न करने के निमित्त मनुष्य योनि मे ही रहे ॥ ३१ ॥

मैं इन दोनों को मत्र बल के द्वारा सामर्थ्य प्रदान करता हूँ। पितरो की स्वधा को क्षीणता रहित करता हुआ इन्हे दीर्घायुष्य बनाता हूँ ।। ३२ ॥

हे पितरो ! हमारे हृदय में अक्षय फल का दाता अग्नि निवास करता है। यह हमारा वैरी न हो। हम भी उसके प्रति शत्रुभाव न रखें ।। ३३ ।

हे प्राणियो ! मत्रो द्वारा गार्हपत्य अग्नि से अलग रहो और मध्य द्र अग्नि से दक्षिण दिशा को प्राप्त होओ। वहाँ अपने और पितरो के निमित्त प्रिय कार्य ही करो ।। ३४ ।।

जो पुरुष क्रव्याद् अग्नि का सेवन नही छोडता, वह अपने ज्येष्ठ पुत्र के तथा अपने मन सहित विनाश को प्राप्त होता है ।। ३५ ।।

जो पुरुष क्रव्याद अग्नि का सेवन करना नही छोडता, उनकी गौ, सेवनीय वस्तुऐ तथा अन्य सभी मूल्यवान वस्तुऐ जो उनके पास होवे न होने के बराबर हो जाती है ।। ३६ ।।

की स्तुति करो। ऋग्वेद की ऋचाओं से पाप मुक्त होते हुए हम सौ हेमन्तों तक पुत्रादि सहित प्रसन्नता पूर्वक जीवन यापन करें ।२८॥

वायु से पूर्ण उत्तरायण मार्ग में परलोक गमन की इच्छा से जाने वाले ऋषियों ने नीच मनुष्यों को पार किया था । उन्होंने मृत्यु को भी इक्कीस बार पैरों द्वारा लाँघा था ॥ २९ ॥

मृत्यु के लक्ष्य को भ्रष्ट करने में समर्थ ऋषिगण आयु से परिपूर्ण हैं । तुमभी इस मृत्यु को दूर करो । फिर हम जीवित रहते हुए लोक में यज्ञ का यशोगान करें ॥ ३० ॥

इमा नारीरविधवा सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं स्पृशन्ताम् ।
अनश्रवो अनमीवा सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे ॥ ३१ ॥
व्याकरोमि हविषाहमेतौ तौ ब्रह्मणा व्यहं कल्पयामि ।
स्वधां पितृभ्यो अजरां कृणोमि दीर्घेणायुषा
समिमान्त्सृजामि ॥ ३२ ॥
यो नो अग्निः पितरो हृत्स्वन्तराविवेशामृतो मर्त्येषु ।
मय्यहं तं परि गृह्णामि देवं मा सो अस्मान् द्विक्षत मा वयं
तम् ॥ ३३ ॥
अपावृत्य गार्हपत्यात् क्रव्यादा प्र त दक्षिणा ।
प्रियं पितृभ्य आत्मने ब्रह्मभ्यः कृणुता प्रियम् ॥ ३४ ॥
द्विभागधनमादाय प्र क्षिणात्यवर्त्या ।
अग्निः पुत्रस्य ज्येष्ठस्य यः क्रव्यादनिराहितः ॥ ३५ ॥
यत् कृषते यद् वनुते यच्च वस्नेन विन्दते ।
सर्वं मर्त्यस्य तन्नास्ति क्रव्याच्चेदनिराहितः ॥ ३६ ॥
अयज्ञियो हतवर्चा भवति नैनेन हविरत्तवे ।
छिनत्ति कृष्या गोर्धनाद् यं क्रव्यादनुवर्तते ॥ ३७ ॥

मुहुर्मुध्ये स सदत्याति मर्त्यो नीत्य ।
क्रव्याद् यानग्निरग्निकावतुविद्वान् वितारति ॥ ३८ ॥
ग्राह्या गृहा सं सृज्यन्ते स्त्रिया यन्म्रियते पतिः ।
ब्रह्मैव विद्वानेष्योयः क्रव्याद निरादधत् ॥ ३९ ॥
यद रिप्र शमल चकृम यच्च दुष्कृतम् ।
आपो मा तस्माच्छुम्भन्त्वग्नेः सकसुकाच्च यत् ॥ ४० ।

यह नारियाँ श्रेष्ठ स्वामियों को प्राप्त करें तथा विधवा न हों। ये अश्रु विहीन हों और घृत से सपन्न हों। यह सुन्दर आभूषणों को धारण करने वाली हों तथा सतान उत्पन्न करने के निमित्त मनुष्य योनि में ही रहें ॥ ३१ ॥

मैं इन दोनों को मत्र बल के द्वारा सामर्थ्य प्रदान करता हूँ। पितरों की स्वधा को क्षीणता रहित करता हुआ इन्हें दीर्घायुष्य बनाता हूँ ॥ ३२ ॥

हे पितरो ! हमारे हृदय में अक्षय फल का दाता अग्नि निवास करता है। वह हमारा वैरी न हो। हम भी उसके प्रति शत्रुभाव न रखें ॥ ३३ ।

हे प्राणियो ! मत्रो द्वारा गार्हपत्य अग्नि से अलग रहो और क्रव्याद् अग्नि से दक्षिण दिशा को प्राप्त होओ। वहाँ अपने और पितरों के निमित्त प्रिय कार्य ही करो ॥ ३४ ॥

जो पुरुष क्रव्याद् अग्नि का सेवन नहीं छोडता, वह अपने ज्येष्ठ पुत्र के तथा अपने धन सहित विनाश को प्राप्त होता है ॥ ३५ ॥

जो पुरुष क्रव्याद् अग्नि का सेवन करना नहीं छोडता, उसकी खेती, सेवनीय वस्तुएं तथा अन्य सभी मूल्यवान वस्तुएं जो भी उसके पास होवे न होने के बराबर हो जाती है ॥ ३६ ॥

जो पुरुष क्रव्याद् अग्नि का प्रयोग करना नहीं छोड़ता, उसे यज्ञ करने का अधिकार नहीं है, उसका वर्च नष्ट हो जाता है और आह्वान करने पर देवता उसके निकट नहीं पधारते। क्रव्याद् अग्नि जिसके साथ रहता है, उसे खेती, गौ और वैभव से हीन करता है। ३७ ॥

क्रव्याद अग्नि जिसका साथी होकर उष्णता प्रदान करता है, वह पुरुष महान विपत्तियों का शिकार होता है। उसे आवश्यक वस्तुओं के लिए दीन वाणी में बार बार याचना करनी पड़ती है ॥ ३८ ॥

जो क्रव्याद् अग्नि को पूर्ण रूपेण स्वीकार करता है उसके लिए गृह कारागार वत बन जाता है और स्त्री का स्वामी मृत्यु को प्राप्त होता है। उस समय विद्वान के आदेश का पालन करना चाहिए। ३९ ॥

जो पाप हम कर चुके हैं, उस पाप से और शवमक्षक अग्नि के स्पर्श दोष से जल मुझे पवित्र करें ॥ ४० ॥

ता अधरादुदीचीराववृत्रन् प्रजानतीः पथिभिर्देवयानैः ।
पर्वतस्य वृषभस्याधि पृष्ठे नवाश्चरन्ति सरितः पुराणीः ॥ ४१ ॥

अग्ने अक्रव्यान्निः क्रव्यादं नुदा देवयजनं वह ॥ ४२ ॥

इमं क्रव्यादा विवेशायं क्रव्यादमन्वगात् ।
व्याघ्रौ कृत्वा नानानं तं हरामि शिवापरम् ॥ ४३ ॥

अन्तर्धिर्देवानां परिधिर्मनुष्याणामग्निर्गार्हपत्यः ।
उभयानन्तरा श्रितः ॥ ४४ ॥

जीवानामायुः प्र तिर त्वमग्ने पितॄणां लोकमपि गच्छन्तु ये मृताः ।
सुगार्हपत्यो वितपन्नरातिमुषामुषां श्रेयसीं धेह्यस्मै ॥ ४५ ॥

सर्वानग्ने सहमानः सपत्नानैषामूर्जं रयिमस्मासु धेहि ॥ ४६ ॥

इमनिन्द्र वह्नि पप्रिमन्वारभध्वं स वो निर्वक्षद् दुरितादवद्यात् ।
तेनाप हत शरुमापतन्तं तेन रुद्रस्य परि पातास्ताम् ॥ ४७ ॥
अनड्वाहं प्लवमन्वारभध्वं स वो निर्वक्षद् दुरितादवद्यात् ।
आ रोहत सवितुर्नावमेतां षड्भिरुर्वीभिरमतिं तरेम ॥ ४८ ॥
अहोरात्रे अन्वेषि बिभ्रत् क्षेम्यस्तिष्ठन् प्रतरणः सुवीरः ।
ते देवेभ्य आ वृश्चन्ते पापं जीवन्ति सर्वदा ।
क्रव्याद् यानग्निरन्तिकादश्व इवानुवपते नडम् ॥ ५० ॥

जो जल देवयान मार्गों से दक्षिण व उत्तर की ओर व्याप्त होते हैं तथा नूतन रूप धारण कर वृष्टि रूप से पहाड़ो पर नदी रूप धारण कर लेते हैं ॥ ४१ ॥

हे अक्रव्याद् एवं गार्हपत्य अग्ने ! तुम क्रव्याद् अग्नि को हमसे पृथक करो एवं देवोपासना की सामग्री को देवगणों तक पहुँचाओ ॥ ४२ ॥

इस पुरुष ने क्रव्याद् को आत्मसातकर उसी का अनुगामी हो गया है। मेरी समझ से यह दोनों कर्म व्याघ्र कर्म के समान हैं। इस अशुभ क्रव्याद् अग्नि को मैं दूर करता हूँ ॥ ४३ ॥

देवताओं की अन्तर्धि और मनुष्यों की परिधि रूप गार्हपत्य अग्नि देवताओं और मनुष्यों के मध्यस्थ है ॥ ४४ ॥

हे अग्ने ! जीवित प्राणियों की आयु वृद्धि करो। मृतकों को पितर लोक प्रेषित करो। गार्हपत्य अग्नि हमारे शत्रुओं को जलावे। हे गार्हपत्य अग्ने ! कल्याणकारी उषा की हममें स्थापना करो ॥ ४५ ॥

हे अग्ने ! सब हमारे शत्रुओं को अपने अधीन करते हुए उनके धन और शक्ति को हम में स्थापना करो ॥ ४६ ॥

इस महिमावान अग्नि की स्तुति करो। यह तुम्हें पापों दोषो से मुक्त करें। उसके द्वारा रुद्र के शर को पृथक करते हुए अपनी रक्षा करो ॥ ४७ ॥

हवि रूप बोझ को ले जाने वाली नौका के सदृश्य अग्नि की स्तुति करो। ये पाप दोषो से तुम्हें मुक्त करें। सविता की नौका पर आरूढ होकर छः उर्वियों द्वारा अमिति को पार करें। ४८ ॥

हे गार्हपत्य अग्ने! तुम दिन रात के आश्रय रूप होते हुए प्राप्त होते हो। तुम मंगलमय होते हुए पुत्र पौत्रादि धन से सपन्न करते हो। तुम्हारी उपासना आसान है। तुम हमे स्वस्थ रखते हुए और प्रसन्नचित्त से पर्यंक पर चढाते हुए दीर्घकाल-तक प्रज्वलित होते रहो। ४९ ॥

जो अश्व द्वारा घास को कुचलने के समान क्रव्याद् अग्नि कुचलता है, वे पाप द्वारा अपनी जीविका चलाने वाले पुरुष देव यज्ञों के घातक हैं ॥ ५० ॥

येऽश्रद्धा धनकाम्या क्रव्यादा समासते ।
ते वा अन्येषां कुम्भीं पर्यादधति सर्वदा ॥ ५१ ॥
प्रेव पिपतिषति मनसा मुहुरा वर्तते पुनः ।
क्रव्याद् यानग्निरन्तिकादनुविद्वान् वितावति ॥ ५२ ॥
अवि: कृष्णा भागधेयं पशूनां सीसं क्रव्यादपि चन्द्रं त आहुः ।
माषा पिष्टा भागधेयं ते हव्यमरण्यान्या गह्वरं सचस्व ॥ ५३ ॥
इषीकां जरतीमिष्ट्वा तिल्पिञ्जं दण्डनं नडम् ।
इध्मं कृत्वा यमस्याग्निं निरादधौ ॥ ५४ ॥
प्रत्यञ्चमर्कं प्रत्यर्पयित्वा प्रविद्वान् पन्थां वि ह्याविवेश ।
परामीषामसून् दिदेश दीर्घेणायुषा समिमान्त्सृजामि ॥ ५५ ॥

जो धन की कामना से क्रव्याद् अग्नि की उपासना करते हैं, वे पुरुष सदैव अन्यों द्वारा हानि ही उठाते हैं ॥ ५१ ॥

जिस पुरुष के पास आकर क्रव्याद् अग्नि तपता है, वह बार-बार पुनर्जन्म के चक्कर मे फसा रहता है तथा निम्न अधम योनि मे जन्म लेता है ॥ ५२ ॥

हे क्रव्याद् अग्ने ! काली भेड़ सीसा और चन्द्रमा को विद्वान लोग तेरा भाग कहते हैं और पिसे हुए उड़द भी तेरे हव्य रूप हैं। अतः तू घोर जगल मे चला जा ॥ ५३ ॥

पुरानी सीक दडन, तिल्पिञ्ज और घास को इन्द्र ने ईंधन बनाया और उसके द्वारा यम को इस अग्नि को दूर हटा दिया ॥ ५४ ॥

विद्वान गार्हपत्य अग्नि सूर्य को अर्पित कर, देवयान मार्ग द्वारा प्रविष्ट हुए, और जिनके प्राणो को दिया, मैं उन यजमानो को चिर आयुष्य बनाता हूँ ॥ ५५ ॥

सूक्त ३ (तीसरा अनुवाक)

(ऋषि—यमः । देवता—स्वर्ग, ओदना, अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप् जगती, पक्ति ; बृहती, धृतिः)

पुमान् पुंसोऽधि तिष्ठ चर्मेहि तत्र ह्वयस्व यतमा प्रिया ते ।
यावन्तावग्रे प्रथमं समेयथुस्तद् वां वयो यमराज्ये समानम् ॥ १ ॥

तावद् वां चक्षुस्तति वीर्याणि तावत् तेजस्ततिधा वाजिनानि ।
अग्नि शरीरं सचते यदैधोऽधा पक्वान्मिथुना सं भवाथः ॥ २ ॥

समस्मिँल्लोके समु देवयाने स स्मा समेत यमराज्येषु ।
पूतौ पवित्रैरुप तद्ध्वयेथां यद्यद् रेतो अधि वां संबभूव ॥ ३ ॥

आपस्पुत्रासो अभि सं विशध्वमिमं जीवं जीवधन्याः समेत्य ।
तासां भजध्वममृतं यमाहुर्यमोदनं पचति वां जनित्री ॥ ४ ॥
यं वां पिता पचति यं च माता रिप्रान्निर्मुक्त्यै शमलाच्च वाचः ।
स ओदनः शतधारः स्वर्ग उभे व्याप नभसी महित्वा ॥ ५ ॥
उभे नभसी उभयांश्च लोकान् ये यज्वनामभिजिताः स्वर्गाः ।
तेषां ज्योतिष्मान् मधुमान् यो अग्रे तस्मिन् पुत्रैर्जरसि सं श्रयेथाम् ॥ ६ ॥
प्राचींप्राचीं प्रदिशमा रभेथामेतं लोकं श्रद्दधानाः सचन्ते ।
यद् वां पक्वं परिविष्टमग्नौ तस्य गुप्तये दम्पती सं श्रयेथाम् ॥७॥
दक्षिणां दिशमभि नक्षमाणौ पर्यावर्तेथामभि पात्रमेतत् ।
तस्मिन् वां यमः पितृभिः संविदानः पक्वाय शर्म ।
बहुलं नि यच्छात् ॥ ८ ॥
प्रतीची दिशामियमिद् वरं यस्यां सोमो अधिपा मृडिता च ।
तस्यां श्रयेथां सुकृतः सचेथामधा पक्वान्मिथुना सं भवाथः ॥ ९ ॥
उत्तरं राष्ट्रं प्रजयोत्तरावद् दिशामुदीची कृणवन्नो अग्रम् ।
पाङ्क्तं छन्दः पुरुषो बभूव विश्वैर्विश्वाङ्गैः सह सं भवेम ॥ १० ॥

हे पुंसवेयान ! तू इस पशुचर्म पर आसीन हो और अपने इष्ट बान्धवों को आमंत्रित कर । पहले जितने श्रेष्ठ पुरुषों ने ऐसा किया, उनका और तुम्हारा एक जैसा फल हो ॥ १ ॥

यह अग्नि ही स्वर्ग में तुम्हारे शरीरों का निर्माण करेगा । उस समय तुम पके हुए ओदन के प्रभाव से इसी रूप से स्वर्ग में स्थित होंगे । तुममें सद्यजात शिशु के समान दर्शन शक्ति और वैसा ही तेज होगा और शब्दात्मक यज्ञ को भी इस प्रकार करने योग्य होंगे ॥ २ ॥

ओदन के प्रभाव से इस लोक में तुम दोनो मिलकर रहो, देवयान मार्ग में तथा यम राज्य मे भी तुम्हारा साथ न छूटे। इन पवित्र यज्ञों द्वारा तुम शुद्ध हो चुके हो। तुमने जिस कार्य के लिए भी सिंचन किया, उन उन कार्यों का फल भोगो ॥ ३ ॥

हे दम्पत्तियो ! वीर्य रूपी जल के तुम पुत्र हो। तुम इस जीवन में धन्य होते हुए प्रविष्ट होओ। तुम्हारा उत्पादक जल ही ओदन को पकाता है। उसी जल के अमृतोपम अंश का तुम सेवन करो ॥ ४ ॥

माता पिता यदि वाणी दोष या अन्य पाप दोष से मुक्त होने के लिए ओदन पकाते हैं तो वह ओदन अपने प्रभाव से आकाश और पृथ्वी मे व्याप्त होता है ॥ ५ ॥

हे दम्पत्ति द्यावा पृथ्वी मे यजमान जिन लोको की प्राप्ति करते हैं, उनमे जो दीप्यमान और श्रेष्ठ लोक हैं इस लोक या द्यावा पृथ्वी मे तुम सतान से सपन्न हुए जरावस्था तक जीवन यापन करो ॥ ६ ॥

हे पति पत्नी ! तुम पूर्व की ओर प्रयाण करो जिधर पुण्यात्मा ही चढ पाते हैं। तुमने जो पका हुआ ओदन अग्नि मे रखा है, उसकी रक्षा के निमित्त स्थित रहो ॥ ७ ॥

हे दम्पत्ति ! तुम दक्षिण की ओर जाकर इस पात्र की परिक्रमा करते हुए पधारो। उस समय पितरो से सहमत होते हुए यमराज तुम्हारे ओदन के लिए अनेक प्रकार के कल्याण प्रदान करें ॥ ८ ॥

पश्चिम दिशा मे स्वामी और सुखप्रद सोम हैं, अत यह दिशा श्रेष्ट है। इसमे तुम पके हुये ओदन को रखकर पुण्य कर्मों का फल प्राप्त करो। फिर इस पके हुए ओदन के प्रभाव से पृथ्वी और स्वर्ग मे तुम दोनो प्रकट होओ ॥ ९ ॥

श्रेष्ठ उत्तर दिशा जो प्रजाओं से युक्त है हमको श्रेष्ठ प्रदान करे। पंक्ति छन्द ओदन के रूप में प्रकट होता है। हम भी द्यावा पृथ्वी में अपने सभी अंगों सहित प्रकट हों ॥ १० ॥

ध्रुवेयं विराण्नमो अस्त्वस्यै शिवा पुत्रेभ्य उत मह्यमस्तु ।
सा नो देव्यदिते विश्ववार इर्य इव गोपा अभि रक्ष पक्वम् ॥११॥

पितेव पुत्रानभि स स्वजस्व नः शिवा नो वाता इह वान्तु भूमौ ।
यमोदनं पचतो देवते इह तन्नस्तप उत सत्यं च वेत्तु ॥ १२ ॥

यद्यत् कृष्णः शकुन एह गत्वा त्सरन् विषक्तं बिल आससाद ।
यद्वा दास्यार्द्रहस्ता समङ्क्त उलूखलं मुसलं शुम्भतापः ॥१३॥

अयं ग्रावा पृथुबुध्नो वयोधाः पूतः पवित्रैरप हन्तु रक्षः ।
आ रोह चर्म महि शर्म यच्छ मा दम्पती पौत्रमघं नि गाताम् ॥ १४ ॥

वनस्पतिः सह देवैर्न आगन् रक्षः पिशाचाँ अपबाधमानः ।
स उच्छ्रयातै प्र वदाति वाचं तेन लोकाँ अभि सर्वाञ्जयेम ॥ १५ ॥

सप्त मेधान् पशवः पर्यगृह्णन् य एषां ज्योतिष्माँ उत यश्चकर्श ।
त्रयस्त्रिंशद् देवतास्तान्त्सचन्ते स नः स्वर्गमभि नेष लोकम् ॥१६॥

स्वर्गं लोकमभि नो नयासि सं जायया सह पुत्रैः स्याम ।
गृह्णामि हस्तमनु मैत्वत्र मा नस्तारीन्निर्ऋतिर्मो अरातिः ॥ १७॥

ग्राहिं पाप्मानमति ताँ अयाम तमो व्यस्य प्र वदासि वल्गु ।
वानस्पत्य उद्यतो मा जिहिंसीर्मा तण्डुलं वि शरीर्देवयन्तम् ॥१८॥

विश्वव्यचा घृतपृष्ठो भविष्यन्त्सयोनिर्लोकमुप याह्येतम् ।
वर्षवृद्धमुप यच्छ शूर्पं तुषं पलावानप तद् विनक्तु ॥ १९ ॥

त्रयो लोकाः संमिता ब्राह्मणेन द्यौरेवासौ पृथिव्यन्तरिक्षम् ।
अंशून् गृभीत्वान्वारभेथामा प्यायन्तां पुनरा यन्तु शूर्पम् ॥ २० ॥

यह धरणीय, अटल अखंड पृथ्वी जो विराट रूप है हमारे लिए कल्याणकारी हो। यह हमारे पुत्रों का कल्याण करे और नियुक्त पहरेदार के समान यह इस परिपक्व ओदन की रक्षा करे ॥ ११ ॥

हे पृथ्वी ! जैसे पिता अपने पुत्र का स्नेहालिगन करता है उसी भाँति तुम इस ओदन का आलिंगन करो। यहाँ कल्याण कारी वायु प्रवाहित हो। तुम हमारे ओदन को तपाओ और हमारे शुभ सङ्कल्प को जानो ॥ १२ ॥

काक ने धोखे से इसमे बिल बनाया हो अथवा दासी ने भीगे हुए हाथ से मूसल उलूखल का स्पर्श किया हो तो यह जल कल्याणकारी हो । १३ ॥

यह दृढ पाषाण हविधारक है। पवित्र द्वारा शुद्ध होकर राक्षसों को नष्ट करे। हे ओदन तू चर्म पर आता हुआ शुभकारी हो। इन दम्पति को इनकी सन्तति सहित पाप दोषों न छू पावे । १४ ।

यह राक्षसों और पिशाचों का दमन करता हुआ वनस्पति देवताओं सहित हमको प्राप्त हुआ। यह उच्च घोष वाला हमको समस्त लोकों को जीतने वाला बनावें । १५ ॥

इन अन्नों में जो पतला परन्तु महा कान्तिवान है ऐसे सात चावलों को पशु के समान लोगों ने ग्रहण किया है। यह तंतीस देवताओं द्वारा सेवन किया जाता है। यह ओदन हमें स्वर्ग को प्राप्ति करावे। १६ ॥

हे ओदन ! तू हमें स्वर्ग लिए जा रहा है वहाँ हम स्त्री-पुरुषों सहित प्रकट हों पाप देवता निवृत्त और शत्रु वहाँ हमको अपने अधीन न करें। इसी कारण तू मेरे साथ ही चल, मैं तेरे कर का थामता हूँ ॥ १७ ॥

हे वनस्पते ! पाप से उत्पन्न शोक रूप अन्धकार का हरण करता हुआ तू मिष्ट भाषण करता है। हम अपने पापों से मुक्त हों। यह वनस्पति देवता मेरी और स्वर्ग लोक प्राप्त कराने वाले ओदन की भी हिंसा न करें ॥ १८ ॥

हे ओदन ! तू घृत पृष्ट हुआ परलोक में हमारे साथ प्रकट होने को हमारे पास पधार और वर्षा ऋतु में प्रवृद्ध उपकरण वाले सूप को प्राप्त हो। वे तुझसे तुष को दूर करें। तू सबके द्वारा आदर पाने योग्य है॥ १९ ॥

द्यावा पृथ्वी और अन्तरिक्ष इन तीनों लोकों ब्राह्मण द्वारा ही प्राप्त किया जाता है। हे दम्पति ! चावलों को फटकना प्रारम्भ करो। यह धान भी फटकते हुए सूप को प्राप्त हों॥ २० ॥

पृथग् रूपाणि बहुधा पशूनामेकरूपो भवसि स समृद्ध्या ।
एता त्वचं लोहिनीं तां नुदस्व ग्रावा शुम्भाति मलगइव वस्त्रा ॥ २१ ॥
पृथिवीं त्वा पृथिव्यामा वेशयामि तनूः समानो विकृता त एषा ।
यद्यद् द्युत्तं लिखितमर्पणेन तेन मा सुस्रोर्ब्रह्मणापि तद् वपामि ॥ २२ ॥
जनित्रीव प्रति हर्यासि सूनुं सं त्वा दधामि पृथिवीं पृथिव्या ।
उखा कुम्भी वेद्यां मा व्यथिष्ठा यज्ञायुधैराज्येनातिषक्ता ॥ २३ ॥
अग्निः पचन् रक्षतु त्वा पुरस्तादिन्द्रो रक्षतु दक्षिणतो मरुत्वान् ।
वरुणस्त्वा दृंहाद्धरुणे प्रतीच्या उत्तरात् त्वा सोमः सं ददातै ॥ २४ ॥
पूताः पवित्रैः पवन्ते अभ्राद् दिवं च यन्ति पृथिवीं च लोकान् ।
ता जीवला जीवधन्याः प्रतिष्ठाः पात्र आसिक्ताः पर्यग्निरिन्धाम् ॥ २५ ॥

आ यन्ति दिवः पृथिवीं सचन्ते भूम्याः सचन्ते अध्यन्तरिक्षम् ।
शुद्धाः सतीस्ता उ शुम्भन्त एव ता नः स्वर्गमभि लोकं नयन्तु ॥ २६ ॥
उतेव प्रभ्वीरुत संमितास उत शुक्राः शुचयश्चामृतासः ।
ता ओदनं दंपतिभ्यां प्रशिष्टा आपः शिक्षन्तीः पचता सुनाथाः ॥ २७ ॥
संख्याता स्तोकाः पृथिवीं सचन्ते प्राणापानैः संमिता ओषधीभिः ।
असंख्याता ओप्यमानाः सुवर्णाः सर्वं व्यापुः शुचयः शुचित्वम् ॥ २८ ॥
उद्योधन्त्यभि वल्गन्ति तप्ताः फेनमस्यन्ति बहुलांश्च बिन्दून् ।
योषेव दृष्ट्वा पतिमृत्वियायैतैस्तण्डुलैर्भवता समापः ॥ २९ ॥
उत्थापय सीदतो बुध्न एनानद्भिरात्मानमभि सं स्पृशन्ताम् ।
अमासि पात्रैरुदकं यदेतन्मितास्तण्डुलाः प्रदिशो यदीमाः ॥ ३० ॥

तू एक ही रूप आकृति का है जब कि पशु विभिन्न आकृतियों वाले होते हैं। तू पाषाण के द्वारा अपनी भूसी को अलग कर ॥ २१ ॥

हे मूसल ! तू पृथ्वी से निर्मित है, अतः तू पृथ्वी ही है। पृथ्वी और तेरा शरीर एक जैसा ही है। अतः मैं पृथ्वी द्वारा पृथ्वी पर ही प्रहार करता हूँ। हे ओदन ! मूसल से प्रहारित होने से तेरे शरीरांग में जो पीड़ा होती है, उससे तू तुष से पृथक होकर छूट जा। मैं तुझे मंत्र द्वारा अग्नि के समर्पित करता हूँ ॥ २२ ॥

जिस भाँति माता अपने पुत्र को प्राप्त करती है, उसी भाँति मैं तुझ मूसल रूप पृथ्वी को पृथ्वी से ही युक्त करता हूँ। वेदी मे भी ओखली रूप कुम्भी है अतः दुखी न हो। तू यज्ञ के आयुधों द्वारा घृत से मिलाई जा चुकी है ॥ २३ ॥

अग्नि पाचन कर्म में तेरी सहायता करे इन्द्र पूर्व से, मरुद्गण दक्षिण की ओर से, वरुण पश्चिम से तथा सोम उत्तर दिशा की ओर से तेरी रक्षा करें। २४॥

पुण्य कर्मों के फलस्वरूप शोधित हुए जल पवित्रकारी हैं। वे मेघ रूप में आकाश मे जाते और फिर पृथ्वी पर आकर मनुष्यो को प्राप्त होते हैं। प्राणी को सुखी करने वाले पात्र में स्थित होते हैं। अग्नि इन आसिक्त होने वाले जलो को सब प्रकार के प्रकाशित करें॥ २५॥

आकाश से आने वाले यह जल पृथ्वी की सेवा करते हैं और पृथ्वी से पुनः आकाश को लौट जाते हैं। यह पवित्र जल पवित्रता प्रदान करने वाला है। यह हमको भी दिव्य लोक की प्राप्ति करावे॥ २६॥

यह श्वेत वर्ण वाले, दीप्यमान अमृतवत परमात्मा रूप हैं। हे जलो! इस दम्पत्ति द्वारा डाले जाने पर ओदन को पवित्र करते हुए पकाओ॥ २७॥

प्राण अपान वायु के समान स्वरूप औषधियो से युक्त पृथ्वी का सेवन करते हैं और शोभनीय प्राणियो मे प्रविष्ट अपार जल शुद्ध करते हुए सब मे व्याप्त होते हैं॥ २८॥

तप्त करने पर यह जल ध्वनि उत्पन्न करते, फेन और बूँदों को उड़ाते हुए युद्ध जैसा उपक्रम करते हैं। हे जलो! जैसे पति को देखकर स्त्री उससे युक्त होती है, वैसे ही तुम ऋतुभाग के निमित्त चावलो से युक्त होओ॥ २९॥

हे ओदन की अधिष्ठात्री देवी! मूसल के नीचे दुखी होते इन चावलो को उठाओ। यह जल से मिश्रित हों। हे यजमान! तू जलो को पात्रो द्वारा नाप रहा है। इधर यह

चावल भी नप चुके हैं । इन्हें जल मे मिश्रित करने की आज्ञा प्रदान कर ।। ३० ।।

प्र यच्छ पर्शुं त्वरया हरौषमहिंमन्त ओषधीर्दान्तु पर्वन् ।
यासा सोमः परि राज्यं बभूवामन्युता नो वीरुधो भवन्तु ॥३१॥
नव बर्हिरोदनाय स्तृणीत प्रिय हृदयश्चक्षुषो वल्गवस्तु ।
तस्मिन् देवाः सह दैवीर्विशन्त्विम प्राश्नन्त्वृतुर्भिनिषद्य ॥ ३२ ॥
वनस्पते स्तीर्णमा सीद बर्हिरग्निष्टोमैः समितो देवताभिः ।
त्वष्ट्रेव रूपं सुकृत स्वधित्यैना एहाः परि पात्रे ददृश्राम् ।। ३३ ।।
षष्ट्यां शरत्सु निधिपा अभीच्छात् स्वः पक्वेनाभ्यश्नवातै ।
उपैन जीवान् पितरश्च पुत्रा एतं स्वर्गं गमयान्तमग्नेः ।। ३४ ॥
धर्ता ध्रियस्व धरुणे पृथिव्या अच्युतं त्वा देवताश्च्यावयन्तु ।
तं त्वा दम्पती जीवन्तौ जीवपुत्रावुद्‌ वासयातः पर्यग्निधानात् ॥ ३५ ॥
सर्वान्त्समागा अभिजित्य लोकान् यावन्तः कामाः समतीतृपस्तान् ।
वि गाहेथामायवन च दर्विरेकस्मिन् पात्रे अध्युद्धरैनम् ॥ ३६ ॥
उप स्तृणीहि प्रथय पुरस्ताद् घृतेन पात्रमभि घारयैतत् ।
वाश्रे वोस्रा तरुण स्तनस्युमिम देवासो अभिहिङ्कृणोत ॥३७॥
उपास्तरीरकरो लोकमेतमुरुः प्रथतामसमः स्वर्गः ।
तस्मिञ्छ्रयातै महिष सुपर्णो देवा एन देवताभ्यः प्र यच्छान् ॥ ३८ ॥
यद्यज्जाया पचति त्वत् परःपरः पतिर्वा जायेत्वत् तिरः ।
स तत् सृजेथा सह वां तदस्तु सपादयन्तौ सह लोकमेकम् ॥३९॥
यावन्तो अस्याः पृथिवीं सचन्ते अस्मत् पुत्राः परि ये सबभूवुः ।
सर्वांस्तां उप पात्रे ह्वयेथां नाभिं जानानाः शिशवः समायान् ॥ ४० ॥

करछुली को चलाओ तथा जो पक चुके है, उन्हें ले लो। यह किसी की हिंसा न करते हुए प्रत्येक पर्व पर औषधिरूप फल को प्रदान करें। जिन लताओं का राजा सोम है, वे लतायें दुखी करने वाली न हो ॥ ३१ ॥

ओदन के लिए नूतन कुशाऐं बिछा दो। यह कुशासन हृदय और नेत्रों को आकर्षणीय हो देवगण उस पर पंक्ति बद्ध बैठकर ओदन का भक्षण करें ॥ ३२ ॥

हे वनस्पते ! कुशा फैला दिया है, तुम आसीन हो। देवताओं ने तुम्हें अग्निष्टोम के समान समझा है। स्वधिति ने त्वष्टा के समान इसे सुन्दर रूप प्रदान किया है और अब वह पात्रों में दृष्टि गोचर होता है। ३३ ॥

इस निधि की रक्षा करने वाला यजमान इस पके हुए ओदन सेवन का फल स्वर्ग साठ वर्ष पश्चात पावे। हे यज्ञ देवता ! इस यजमान को दिव्य लोक की प्राप्ति कराते हुए इसके पितर पुत्र आदि को भी इसके समीप रखो ॥ ३४ ॥

हे ओदन ! तू धारणकर्ता है, अतः भूमि के धारक स्थान में स्थित हो। तुझ अच्युत को देवता च्युत न करें। इसी तुझे जीवित पुत्रों वाले जीवित दम्पति अग्निधान के द्वारा पुष्ट करें ॥ ३५ ॥

तू सब लोकों को विजय करता हुआ पधार। हमारी सभी कामनाओं को पूर्ण करो। दम्पत्ति करछुली को चलाते हुए ओदन को निकाल कर पात्र में रखें ॥ ३६ ॥

तुम इसे परोसकर फैलाओ तथा इसमें घृत डालो। हे देवगण ! दुग्धपान करने वाले बछड़े को देखकर दुग्धप्रद गायें उसके प्रति घोष करती है, वैसे ही तुम इस परिपक्व ओदन को देखकर ध्वनि प्रकट करो ॥ ३७ ॥

हे यजमान ! ओदन ओदन परोस कर तूने इस लोक को फल प्रद बना लिया। इसके प्रभाव से यही ओदन तुझे दिव्य लोक मे अधिक बडा होकर प्राप्त हो। हे पति पत्नी ! यह श्रेष्ठ महिमाशाली विचरणशील ओदन तुम्हे स्वर्ग में स्थान प्राप्त करावें। देवगण इस यजमान को देवताओ के समीप पहुँचावें॥ ३८॥

हे पत्नी ! तू इस ओदन को पकाती है। यदि तू पति से पूर्व स्वर्ग प्राप्त करले तो स्वर्ग मे तुम दोनो मिल लेना। तुम एक ही लोक मे निवास करो और वहाँ यह ओदन भी तुम्हारे साथ ही रहे॥ ३९॥

इस स्त्री के सब पुत्रों को इस पात्र के समीप बुलाओ। वे बालक अपनी नाभि को जानते हुए यहाँ आवें॥ ४०॥

वसोर्या धारा मधुना प्रपीना घृतेन मिश्रा अमृतस्य नाभयः।
सर्वास्ता अव रुन्धे स्वर्गः षष्ट्यां शरत्सु निधिपा अभीच्छात्॥ ४१॥
निधिं निधिपा अभ्येनमिच्छादनीश्वरा अभितः सन्तु येऽन्ये।
अस्माभिर्दत्तो निहितः स्वर्गस्त्रिभिः काण्डैस्त्रीन्त्स्वर्गानरुक्षत्॥ ४२॥
अग्नी रक्षस्तपतु यद् विदेवं क्रव्याद् पिशाच इह मा प्र पास्त।
नुदाम एनमप रुध्मो अस्मदादित्या एनमङ्गिरसः सचन्ताम्॥ ४३॥
आदित्येभ्यो अङ्गिरोभ्यो मध्विदं घृतेन मिश्रं प्रति वेदयामि।
शुद्धहस्तौ ब्राह्मणस्य निहत्यैतं स्वर्गं सुकृतावपीतम्॥ ४४॥
इदं प्रापमुत्तमं काण्डमस्य यस्माल्लोकात् परमेष्ठी समाप।
आ सिञ्च सर्पिर्घृतवत् समङ्ध्येष भागो अङ्गिरसो नो अत्र॥ ४५॥

सत्याय च तपसे देवताभ्यो निधिं शेवधिं परि दद्म एतम् ।
मा नो द्यूतेऽव गान्मा समित्यां मा स्मान्यस्मा उत्सृजता पुरा
मत् ॥ ४६ ॥
अहं पचाम्यहं ददामि ममेदु कर्मन् करुणेऽधि जाया ।
कौमारो लोको अजनिष्ट पुत्रो-ऽन्वारभेथां वय उत्तरावत् ॥ ४७ ॥
न किल्बिषमत्र नाधारो अस्ति न यन्मित्रैः सममम एति ।
अनूनं पात्रं निहितं न एतत् पक्तारं पक्वः पुनरा विशाति । ४८॥
प्रियं प्रियाणां कृणवाम तमस्ते यन्तु यतमे द्विषन्ति ।
धेनुरनड्वान् वयोवय आयदेव पौरुषेयमप मृत्युं नुदन्तु ॥ ४९ ॥
समग्नयो विदुरन्यो अन्यं य ओषधीः सचते यश्च सिन्धून् ।
यावन्तो देवा दिव्यातपन्ति हिरण्यं ज्योतिः पचतो बभूव ॥ ५० ॥

वासक ओदन की मधु द्वारा मोटी बनी घृत युक्त धाराएं अमृतवत हैं तथा स्वर्ग में वे स्थित रहती हैं । निधि का रक्षक उसकी साठ वर्ष पश्चात कामना करे ॥ ४१ ॥

यजमान इस निधि की इच्छा करें । हमारे द्वारा प्रदत्त थाती रूप ओदन स्वर्ग गमन करता हुआ अपने तीनों काण्डों सहित स्वर्ग की ओर प्रयाण करे ॥ ४२ ॥

मेरे कर्मफल में बाधा डालने वाले यातुधानों को अग्नि देव दुःख प्रदान करें । क्रव्याद् और पिशाच हमको दुःखी न करें । हम इस राक्षस को म[illegible] आन स रोकते हुए भगाते हैं । आंगिरस [illegible] अपने अधीन करें ॥ ४३ ॥

[illegible] और आदित्य के लिये इस घृत युक्त मधु का करता हूँ । ब्रह्मा के पवित्र कर स्वर्ग में प[illegible] [illegible] इसे स्वर्ग पहुँचावें ॥ ४४ ॥
प्रजापति ने तप्यमान [illegible] द्वारा

मैने की उस श्रेष्ठ काण्ड को प्राप्त कर लिया है। इसे घृत से सिंचित करो। यह घृत युक्त भाग हम अंगिरा ऋषियों का ही है ॥ ४५ ॥

हम इस ओदन रूप धरोहर को सत्य के निमित्त देवताओं को अर्पित करते हैं। द्युत क्रीडा में तथा समिति में भी ये हमसे अलग न हो। इसे अन्य पुरुषों को मत प्रस्तुत करो ॥ ४६ ॥

मैं पाक कर्म का ज्ञाता ही इसे दान आदि के रूप में प्रस्तुत कर रहा हूँ। इस कर्म मे मेरी पत्नी भी संलग्न है। हमारे य ँ एक शिशु रूप मे पुत्र भी है। हम इस श्रेष्ठ यज्ञ रूप अन्न का पकाना तथा दान आदि कर्मों को सम्पन्न करते हैं॥ ४७ ॥

इस यज्ञ मे कोई चालाकी नही है। यह पूर्णतया आधार रहित है। यह अपने सखाओ सहित नापता हुआ भी नही आया है। यह जो भरा हुआ पात्र रखा है, वही पाक कर्म करने वाले को पुन प्राप्त हो जाता है ॥ ४८ ॥

हे यजमान ! हम परम श्रेष्ठ फलप्रद कर्म को तेरे हितार्थ सम्पन्न करते हैं। तेरे शत्रु नरक रूप अन्धकार को प्राप्त करें। गौ वृषभ, अन्न आयु और शक्ति यह सबहमे प्राप्त होते हुए अपमृत्यु को दूर भगावें। ४९ ॥

औषधियो का सेवन कर्ता अग्नि और जलो का भक्षक अग्नि अन्योन्य के ज्ञाता हैं। यह और अन्य अग्नि भी इस कर्म के ज्ञाता हैं। देवगणो की तपस्या और सुवर्ण तथा अन्य दीप्यमान वस्तुऐ पाक कर्ता को प्राप्त होती हैं ॥ ५० ॥

एषा त्वचां पुरुषे सं बभूवानग्नाः सर्वे पशवो ये अन्ये ।
क्षत्रेणात्मानं परि धापयाथोऽमोतं वासो मुखमोदनस्य ॥ ५१ ॥

यद्क्षेषु वदा यत् समित्यां यद्वा वदा अनृतं वित्तकाम्या ।
समानं तन्तुमभि संवसानो तस्मिन्त्सर्वं शमलं सादयाथः ॥ ५२ ॥

वर्षं वनुष्वापि गच्छ देवांस्त्वचो धूमं पर्युत्पातयासि ।
विश्वव्यचा घृतपृष्ठो भविष्यन्त्सयोनिर्लोकमुप याह्येतम् ॥ ५३ ॥

तन्वं स्वर्गो बहुधा वि चक्रे यथा विद आत्मन्नन्यवर्णाम् ।
अपाजैत कृष्णां रुशतीं पुनानो या लोहिनी तां ते अग्नौ जुहोमि ॥ ५४ ॥

प्राच्यै त्वा दिशेऽग्नयेऽधिपतयेऽसिताय रक्षित्र आदित्यायेषुमते ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥ ५५ ॥

दक्षिणायै त्वा दिश इन्द्रायाधिपतये तिरश्चिराजये रक्षित्रे यमायेषुमते ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥ ५६ ॥

प्रतीच्यै त्वा दिशे वरुणायाधिपतये पृदाकवे रक्षित्रेऽन्नायेषुमते ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥ ५७ ॥

उदीच्यै त्वा दिशे सोमायाधिपतये स्वजाय रक्षित्रेऽशन्या इषुमत्यै ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥ ५८ ॥

ध्रुवायै त्वा दिशे विष्णवेऽधिपतये कल्माषग्रीवाय रक्षित्र ओषधीभ्य इषुमतीभ्य: ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतो: ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥ ५९ ॥

ऊर्ध्वायै त्वा दिशे बृहस्पतयेऽधिपतये श्वित्राय रक्षित्रे वर्षायेषुमते ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतो: ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥ ६० ॥

यह पशु चर्म से ढके दृष्टिगत होते हैं, इनकी त्वचा पहले पुरुष में थी। हे दम्पत्ति ! क्षात्र तेज से तुम अपने को पूर्ण करो और इस ओदन के मुख को वस्त्र से आच्छादित कर दो। ५१॥

द्यूत कर्म अथवा युद्ध में धन की कामना से जो तुमने झूंठ बोला है, उस पाप दोष को समान तनुओं से बने वस्त्र द्वारा ढकते हुए उसमें डाल दो ॥ ५२ ॥

तू काम्यवर्षक हो। तू देवताओं के निकट जाकर अपनी त्वचा को धूम्र व समान उछाल। तू घृत पृष्ठ होते हुए अनेक प्रकार से उत्पन्नित होता हुआ समान उत्पत्ति वाला बनकर इस पुरुष को स्वर्ग में प्राप्त हो ॥ ५३ ॥

यह ओदन स्वर्ग में अपने को अनेक आकार का बना लेने में समर्थ है। जैसे आत्मा, ज्ञातीजन को अनेक प्रकृति का बना लेता है और कृष्णा रुशती को पवित्र करता जाता है, वैसे ही मैं तेरे रूप को अग्नि में होम करता हूँ ॥ ५४ ॥

हे हम तुझे पूर्व दिशा अग्नि असित सर्प और आदित्य को अर्पित करते हैं। तुम हमारे यहाँ से प्रस्थान करने पर्यन्त

इसकी रक्षा करो। इसे जरावस्था तक हमको भाग्य रूप में प्राप्त कराओ। हमारी वृद्धावस्था ही इसे मृत्यु दे। इस पके हुए ओदन सहित हम स्वर्ग का आनन्द लें ॥ ५५ ॥

हम तुझे दक्षिण दिशा, इन्द्र तिरश्चिसर्प और यम को देते हैं। तुम हमारे यहाँ से जाने तक इसकी रक्षा करो। इसे वृद्धावस्था तक भाग्य रूप में हमें प्राप्त कराओ। हमारी वृद्धावस्था ही इसे मृत्यु दे। इस पके हुए ओदन सहित हम स्वर्ग के आनन्द प्राप्त करें ॥ ५६ ॥

हम तुझे पश्चिम दिशा, वरुण पृदाकु सर्प और अन्न को अर्पित करते हैं। तुम हमारे यहाँ से प्रस्थान करने पर्यन्त इसकी रक्षा करो। इसे जरावस्था पर्यन्त हमको भाग्य रूप में प्राप्त कराओ। हमारी वृद्धावस्था ही इसे मृत्यु दे और मरने पर इस ओदन सहित स्वर्ग में जाकर कर आनन्द प्राप्त करें ॥ ५७ ॥

हम तुझे उत्तर दिशा सोम, स्वज नामक सर्प और अशनि को अर्पित करते हैं। तुम हमारे यहाँ से प्रस्थान करने पर्यन्त इसकी रक्षा करो। इसे जरावस्था तक सौभाग्य रूप में हमें प्राप्त कराओ हमारी वृद्धावस्था ही इसे मृत्यु दे। मरणोपरान्त हम इस पके ओदन सहित स्वर्ग में जाकर आनन्द प्राप्त करें। ५८ ॥

हम तुझे ध्रुव विष्णु दिशा कल्माष ग्रीव सर्प, और इषुमती ओषधियों को देते हैं। तुम हमारे यहाँ से प्रस्थान करने पर्यन्त इसकी रक्षा करो। इस बुढ़ापे तक सौभाग्य रूप में हमें प्राप्त कराओ। हमारा बुढ़ापा इसे मृत्यु दे। मरणोपरान्त हम इस परिपक्व ओदन सहित स्वर्ग प्राप्त कर आनन्द भोगें ॥५९॥

हम तुझे ऊर्ध्व दिशा बृहस्पत्ति, श्वित्र सर्प और इषुमान वर्ष को अर्पित करते हैं। हमारे यहाँ से प्रस्थान करने पर्यन्त

तुम इसकी रक्षा करो। इसे बुढापे तक हमें सौभाग्य रूप में प्राप्त कराओ। हमारा बुढापा ही इसे मृत्यु प्रदान करे तथा मरने के पश्चात हम इस परिपक्व ओदन सहित स्वर्ग पहुँच कर आनन्द प्राप्त करें॥ ६०॥

सूक्त ४ (चौथा अनुवाक)

(ऋषि—कश्यपः। देवता - वशा। छन्द - अनुष्टुप्)

ददामीत्येव ब्रूयादनु चैनामभुत्सत।
वशां ब्रह्मभ्यो याचद्भ्यस्तत् प्रजावदपत्यवत्॥ १॥
प्रजया स वि क्रीणीते पशुभिश्चोप दस्यति।
य आर्षेयेभ्यो याचद्भ्यो देवानां गां न दित्सति॥ २॥
कूटयास्य सं शीर्यन्ते श्लोणया काटमर्दति।
बण्डया दह्यन्ते गृहाः काणया दीयते स्वम्॥ ३॥
विलोहितो अधिष्ठानाच्छक्नो विन्दति गोपतिम्।
तथा वशायाः संविद्यं दुरदम्ना ह्युच्यसे॥ ४॥
पदोरस्या अधिष्ठानाद् विक्लिन्दुर्नाम विन्दति।
अनामनात् स शीर्यन्ते या मुखेनोपजिघ्रति॥ ५॥
यो अस्याः कर्णावास्कुनोत्या स देवेषु वृश्चते।
लक्ष्म कुर्व इति मन्यते कनीयः कृणुते स्वम्॥ ६॥
यदस्याः कस्मै चिद् भोगाय बालान् कश्चित् प्रकृन्तति।
ततः किशोरा म्रियन्ते वत्सांश्च घातुको वृकः॥ ७॥
यदस्या गोपतौ सत्या लोम ध्वाङ्क्षो अजीहिडत्।
ततः कुमारा म्रियन्ते यक्ष्मो विन्दत्यनामनात्॥ ८॥
यदस्या पल्पूलनं शकृद दासी समस्यति।
ततोऽपरूपं जायते तस्मादव्येष्यदेनसः॥ ९॥

जायमानाभि जायते देवान्त्स ब्राह्मणान् वशा ।
तस्माद् ब्रह्मभ्यो देयैषा तदाहु स्वस्य गोपनम् ॥ १० ॥

याचना करने वाले ब्राह्मणों को देता हूँ ऐसा कहकर उत्तर दे तत्पश्चात वे ब्राह्मण रहे कि यह कार्य यजमान को सन्तान आदि से पूर्ण करें ॥ १ ॥

जो व्यक्ति ऋषि आदि युक्त याचित ब्राह्मणों को देवताओं के निमित्त गोदान नहीं करता वह अपनी सन्तान का बेचने वाला होता हुआ पशु विहीन हो जाता है ॥ २ ॥

वशा के कूटा नामक अंग से दान न देने वाले व्यक्ति के पदार्थ अशेष हो जाते हैं अदानी श्लोणा से काट को पीडित करता है। वण्डा से इसका घर जल जाता है और काणा से धन तिरोहित हो जाता है ॥ ३ ॥

हे वशे! तू दुरदम्ना कहलाती है। गौ के स्वामी को वशा के अधिष्ठान से विलोहित शकन और सम्मिश्र प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

गौ के स्वामी को वशा के पाँवों के अधिष्ठान से विक्लिन्दु नाम की विपत्ति मिलती है। उसके सूँघने मात्र से अनजाने ही इसके समस्त पदार्थ विनष्ट हो जाते हैं ॥ ५ ॥

इसके कानों का आस्रवण करने वाला देवताओं में काटा जाता है। जो अपने को लक्ष्य करने वाला मानता है वह अपने को छोटा बना लेता है ॥ ६ ॥

यदि किसी भोग के निमित्त इसके बालों को काटता है तो उसके युवा पुत्र मृत्यु को प्राप्त होते हैं और शृगाल उसके वत्सों का विनाश करता है ॥ ७ ॥

गो के स्वामी के सामने यदि गो के बालों को कौआ अपमानित करता है तो उसके पुत्र नष्ट होते हैं और क्षय रोग का शिकार होता है ॥ ८ ॥

यदि इसके गोबर आदि को दासी फेंकती है, तो पुरुष उस पाप दोष से मुक्त नहीं होता और कुरूपता को प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

वशा देवताओं और ब्राह्मणों के लिए ही प्रकट होती है, अतः ब्राह्मणों को दान देना ही अपनी रक्षा करना है, ऐसा विद्वान लोग कहते हैं ॥ १० ॥

य एनां वनिमायन्ति तेषां देवकृता वशा ।
ब्रह्मज्येयं तदब्रुवन् य एनां निप्रियायते ॥ ११ ॥
य आर्षेयेभ्यो याचद्भ्यो देवानां गां न दित्सति ।
आ स देवेषु वृश्चते ब्राह्मणानां च मन्यवे ॥ १२ ॥
यो अस्य स्याद् वशाभोगो अन्यामिच्छेत तर्हि सः ।
हिंस्ते अदत्ता पुरुषं याचिता च न दित्सति ॥ १३ ॥
यथा शेवधिर्निहितो ब्राह्मणानां तथा वशा ।
तामेतदच्छायन्ति यस्मिन् कस्मिंश्च जायते ॥ १४ ॥
स्वमेतदच्छायन्ति यद् वशां ब्राह्मणा अभि ।
यथैनानन्यस्मिन् जिनीयादेवास्या निरोधनम् ॥ १५ ॥
चरेदेवा त्रैहायणादविज्ञातगदा सती ।
वशां च विद्यान्नारद ब्राह्मणास्तर्ह्येष्याः ॥ १६ ॥
य एनामवशामाह देवानां निहितं निधिम् ।
उभौ तस्मै भवाशर्वौ परिक्रम्येषुमस्यतः ॥ १७ ॥
यो अस्या ऊधो न वेदाथो अस्या स्तनानुत ।
उभयेनैवास्मै दुहे दातुं चेदशकद् वशाम् ॥ १८ ॥

क्षुरबर्हनमा शये याचितां च न दित्सति ।
म्लास्मै कामाः समृध्यन्ते यामदत्वा चिकीर्षति ॥ १९ ॥
देवा वशामयाचन् मुखं कृत्वा ब्राह्मणम् ।
तेषां सर्वेषामददद्धेडं न्येति मानुषः ॥ २० ॥

विद्वानो का कथन है कि जो गौ को परम प्रिय समझते हुए उसकी सेवा करते हैं, उसके लिए वह् अघ्न्या होती है ॥ ११ ॥

जो व्यक्ति देवताओं की गाय को ऋषि प्रवर युवा ब्राह्मणो को नहीं देना चाहता, वह ब्रह्म कोप के कारण देवताओ द्वारा नाश को प्राप्त होता है ॥ १२ ॥

यदि वशा इसके लिए उपभोग्य हो तो वह अन्य की इच्छा करे। जो व्यक्ति याचक को वशा नही देता तो यह अप्रदत्त वशा उसे नष्ट कर देती है ॥ १३ ॥

थाती के समान ही वशा ब्राह्मणो की होती है, वह चाहे जिसके घर प्रकट हो जाय, यह ब्राह्मण उसके सामने जाकर उसे माँगते हैं ॥ १४ ॥

वशा के सामने आने वाले ब्राह्मण अपने ही धन के सामने आते हैं। इनको रोकना अपने को ही हानि पहुँचाना है ॥१५॥ हे नारद ! यह धेनु अविज्ञात गदा रूप में तीन वर्ष तक भक्षण को फिर इस धेनु को वशा मानता हुआ ब्राह्मणो की खोज करे ॥ १६ ॥

इस देवताओ की थाती रूप वशा को जो अवशा कहता है वह भव और शर्व के बाणों का शिकार होता है ॥ १७ ॥

जो इसके स्तनों और ऐनों को न जानते हुए वशा का दान करता है, तो यह उसे दोनों से फल देने वाली होती है ॥ १८ ॥

जो इसकी याचना करने पर भी नही देता तो पुरदम्न दशा उसे पकड़ती है। जो इसे अपने पास ही रखना चाहता है, उसके अभीष्ट पूरे नही होते ।१९॥

ब्राह्मण का मुख बना कर ही देवता वशा की याचना करते हैं। न देने वाला मनुष्य उनके क्रोध का शिकार होता है॥ २०॥

हेड पशूनां न्येति ब्राह्मणेभ्योऽददद् वशाम् ।
देवानां निहितं भागं मर्त्यश्चेन्निप्रियायते ।। २१ ॥

यदन्ये शतं याचेयुर्ब्राह्मणा गोपतिं वशाम् ।
अथैनां देवा अब्रुवन्नेवं ह विदुषो वशा ॥ २२ ।।

य एवं विदुषेऽदत्त्वाथान्येभ्यो ददद् वशाम् ।
दुर्गा तस्मा अधिष्ठाने पृथिवी सहदेवता ॥ २३ ।।

देवा वशामयाचन् यस्मिन्नग्रे अजायत ।
तामेतां विद्यान्नारदः सह देवैरुदाजत ॥ २४ ।।

अनपत्यमल्पपशुं वशा कृणोति पूरुषम् ।
ब्राह्मणैश्च याचितामथैनां निप्रियायते ।। २५ ॥

अग्नीषोमाभ्यां कामाय मित्राय वरुणाय च ।
तेभ्यो याचन्ति ब्राह्मणास्तेष्वा वृश्चतेऽददत् ।। २६ ॥

यावदस्या गोपतिर्नोपशृणुयादृचः स्वयम् ।
चरेदस्य तावद् गोषु नास्य श्रुत्वा गृहे वसेत् ॥ २७ ॥

यो अस्या ऋच उपश्रुत्याथ गोष्वचीचरत् ।
आयुश्च तस्य भूतिं च देवा वृश्चन्ति हीडिताः ॥ २८ ॥

वशा चरन्ती बहुधा देवानां निहितो निधिः ।
आविष्कृणुष्व रूपाणि यदा स्थाम जिघांसति ।। २९ ॥

आविरात्मानं कृणुते यदा स्थाम जिघांसति ।
अथो ह ब्रह्मभ्यो वशा याच्ञाय कृणुते मन ॥ ३० ॥

जो व्यक्ति देवताओं के थाती रूप भाग को अपना परम प्रिय समझता है वह ब्राह्मणों को वशा दान न करने के कारण पशुओं के क्रोध का भजन बनता है ॥ २१ ॥

गौ के स्वामी से अन्य चाहें सैंकडों ब्राह्मण वशा माँगें, परन्तु देवताओं के कथनानुसार वशा विद्वान की होती है ॥ २२ ॥

जो पुरुष विद्वान को गौ न देता हुआ अन्य को दान करता है तो उसके निमित्त पृथ्वी देवगणों सहित अप्राप्य होती है । २३ ॥

जिसके सन्मुख वशा प्रकट होती है, देवता उससे वशा माँगते हैं । यह जानकर नारद भी देवगणों सहित वहाँ पहुँच गये ॥ २४ ॥

ब्राह्मणों द्वारा याचित वशा को जो पुरुष अत्यन्त प्रिय मानता हुआ नहीं देता तो वही वशा उसे सन्तान हीन और पशु रहित कर देती है ॥ २५ ॥

ब्राह्मण अग्नि के लिए सोम, काम मित्रावरुण के निमित्त याचना करते हैं । वशा न देने पर ये उसे ही काटते हैं ॥ २६ ॥

गौ का स्वामी जब तक गौ के सम्बन्ध में कोई संकल्प न करे तब तक उसकी गौओं में विचरे, फिर उसके घर में वास न करे ॥ २७ ॥

जो संकल्प रूप वाणी के पश्चात भी अपनी गौओं में विचरण करता है वह देवताओं का तिरस्कारक उनके ही द्वारा अपनी आयु और अपने वैभव को नष्ट करता है । २८ ॥

देवताओं की धरोहर रूप वशा अनेक प्रकार से विचरण करती हुई जब स्थान को नष्ट करना चाहती है तब विभिन्न रूपों का प्रकट करती है ॥ २६ ॥

जब वह अपने स्थान का नष्ट करना चाहती है तब वह ब्राह्मणों द्वारा मांगे जाने की इच्छा करते हुए विभिन्न रूप प्रकट करती है ॥ ३० ॥

मनसा स कल्पयति पद् देवां अपि गच्छति ।
ततो ह ब्रह्माणो वशामुपप्रयन्ति याचितुम् ॥ ३१ ॥
स्वधाकारेण पितृभ्यो यज्ञेन देवताभ्यः ।
दानेन राजन्यो वशाया मातुर्हेडं न गच्छन्ति ॥ ३२ ॥
वशा माता राजन्यस्य वशा माता स्वधे तव ।
तस्या आहुरनर्पणं यद् ब्रह्मभ्यः प्रदीयते ॥३३॥
यथाज्यं प्रगृहीतमालुम्पेत् स्रुचो अग्नये ।
एवा ह ब्रह्मभ्यो वशामग्नय आ वृश्चतेऽददत् ॥ ३४ ॥
पुरोडाशवत्सा सुदुघा लोकेऽस्मा उप तिष्ठति ।
सास्मै सर्वान् कामान् वशा प्रददुषे दुहे ॥ ३५ ॥
सर्वान् कामान् यमराज्ये वशा प्रददुषे दुहे ।
अथाहुर्नारकं लोकं निरुन्धानस्य याचिताम् ॥ ३६ ॥
प्रवीयमाना चरति क्रुद्धा गोपतये वशा ।
वेहतं मा मन्यमानो मृत्योः पाशेषु बध्यताम् ॥ ३७ ॥
यो वेहतं मन्यमानोऽमा च पचते वशाम् ।
अप्यस्य पुत्रान् पौत्रांश्च याचयते बृहस्पतिः ॥ ३८ ॥
महदेषाव तपति चरन्ती गोषु गौरपि ।
अथो ह गोपतये वशाददुषे विषं दुहे ॥ ३९ ॥
प्रियं पशूनां भवति यद् ब्रह्मभ्यः प्रदीयते ।
अथो वशायास्तत् प्रियं यद् देवत्रा हविः स्यात् ॥ ४० ॥

जब वह चाहती है, तब उसकी इच्छा देवताओं के पास जाती है तब ब्राह्मण वशा की याचना करने के लिये उसके पास आते हैं ॥ ३१ ॥

पितरो के लिये स्वधा करने से देवताओं के लिये यज्ञ करने से और वशादान से क्षत्रिय माता के क्रोध का भाजन नही बनता ॥ ३२ ॥

राजन्य की माता वशा है, इनका समूह पहले प्रकट हुआ था। ब्राह्मणों को दान करने से पहले वह अनर्पण कहलाती है ॥ ३३ ॥

ग्रहण किया घृत जैसे श्रुचा से अग्नि के लिए पृथक होता है वैसे ही ब्राह्मणों को वशा न देने वाला, अग्नि के लिये पृथक होता है ॥ ३४ ॥

इस लोक में भली भांति दुहाने वाली वशा इस यजमान के पास रहती है और दान करने वाले की समस्त इच्छाओं को पूर्ण करती है ॥ ३५ ॥

यम के राज्य मे यह वशा समस्त इच्छाओ की पूर्ति करने वाली है और मांगी हुई वशा के न देने पर विद्वान लोग, नरक प्राप्ति की बात कहते हैं ॥ ३६ ॥

क्रोध युक्त वशा गौ स्वामी को भक्षण करती सी विचरण करती है। वह कहती है कि मुझे गर्भघातिनी को अपनी मानने वाला मूर्ख मृत्यु पाश में बन्धित हो ॥ ३७ ॥

जो गर्भघातिनी वशा को अपनी मानता या उसका पचन करता है, बृहस्पति उसके पौत्र पुत्रादि को लेने की इच्छा करते हैं ॥ ३८ ॥

यह वशा अन्य गौओं में ताप की वृद्धि करती हुई विचरण

करती है। यदि स्वामी इसका दान नहीं करता तो यह उसके लिए विष का दोहन करती है ॥ ३९ ॥

ब्राह्मणों को वशा दे देने पर दाता पशुओं का प्रिय होता है। वशा का भी वह प्रिय होता है। वह देवताओं में हवि रूप से प्रदान की जाती है ॥ ४० ॥

या वशा उदकल्पयन् देवा यज्ञादुदेत्य ।
तासां विलिप्त्यं भीमामुदाकुरुत नारदः ॥ ४१ ॥
ता देवा अमीमांसन्त वशेयामवशेति ।
तामब्रवीन्नारद एषा वशानां वशतमेति ॥ ४२ ॥
कति नु वशा नारद यास्त्वं वेत्थ मनुष्यजाः ।
तास्त्वा पृच्छामि विद्वांसं कस्या नाश्नीयाद ब्राह्मण ॥ ४३ ॥
विलिप्त्या बृहस्पते या च सूतवशा वशा ।
तस्या नाश्नीयाद ब्राह्मणो स आशमेन भूत्याम ॥ ४४ ॥
नमस्ते अस्तु नारदानुष्ठु विदुषे वशा ।
कतमासां भीमतमा यामदत्त्वा पराभवेत् ॥ ४५ ॥
विलिप्ती या बृहस्पतेऽथो सूतवशा वशा ।
तस्या नाश्नीयादब्राह्मणो य आशंसेत भूत्याम् ॥ ४६ ॥
त्रीणि वै वशाजातानि विलिप्ती सूतवशा वशा ।
ताः प्र यच्छेद् ब्रह्मभ्य सोऽनाव्रस्क प्रजापतौ ॥ ४७ ॥
एतद् वो ब्राह्मणा हविरिति मन्वीत याचितः ।
वशां चेदेनं याचेयुर्या भीमाददुषो गृहे ॥ ४८ ॥
देवा वशा पर्यवदन् न नोऽदादिति हीडिताः ।
एताभिऋग्भिर्भेदं तस्माद् वै स पराभवत् ॥ ४९ ॥
उतैनां भेदो नाददाद् वशामिन्द्रेण याचितः ।
तस्मात् त देवा आगसोऽवृश्चन्नहमुत्तरे ॥ ५० ॥

ये वशाया अदानाय वदन्ति परिरापिणः ।
इन्द्रस्य मन्यवे जाल्मा आ वृश्चन्ते अचित्त्या ॥ ५१ ॥
ये गोपतिं पराणीयाथाहुर्मा ददा इति ।
रुद्रस्यास्तां ते हेतिं परि यन्त्यचित्त्या ॥ ५२ ॥
यदि हुतां यद्यहुताममा च पचते वशाम्
देवान्त्सब्राह्मणानृत्वा जिह्मो लोकान्निरृच्छति ॥ ५३ ॥

यज्ञ से प्रकट होकर देवताओं ने वशा का निर्माण किया।
नारद ने तब विलप्ती नामा को स्वीकार किया ॥ ४१ ॥

उस समय देवताओं ने कहा कि यह वशा अवशा है।
परन्तु नारद ने उसे वशाओं में परम वशा बताया ॥ ४२ ॥

हे नारद ! तुम ऐसी कितनी वशाओं को जानते हो जो मनुष्यों में प्रकट होती हैं ? विद्वान होने के कारण ही मैं तुमसे यह प्रश्न करता हूँ अब्राह्मण किसके प्राशन से बचे ॥ ४३ ॥

हे बृहस्पति ! जो अब्राह्मण वैभव की इच्छा करे वह विलिप्त सूत वशा और वशा का प्राशन न करे ॥ ४४ ॥

हे नारद ! तुम्हे नमन है विद्वान की स्तुति के अनुकूल ही वशा है। इनमें भयंकर वशा कौन सी है जिसका दान न करने पर पराजय प्राप्त होती है ॥ ४५ ॥

हे बृहस्पते ! वैभव की कामना वाला अब्राह्मण विलिप्ती सूत वशा और वशा का प्राशन न करे ॥ ४६ ॥

वशाऐं तीन प्रकार की है—विलिप्ती, सूतवशा और वशा इन्हें ब्राह्मणों को दान कर दे तो वह प्रजा-पति के लिये क्षोभ-जनक नहीं होता ॥ ४७ ॥

अदाता के यह भीमावशा है तो उसे वशा की याचना करने पर यह माने कि हे ब्राह्मणो ! तुम्हारे लिए यह हवि रूप है ॥ ४८ ॥

क्रुद्ध देवो ने वशा से कहा कि इसने हमको दान नहीं किया अतः यह अदाता पराजित होता है ॥ ४९ ॥

इन्द्र की प्रर्थना करने पर भी यदि वशा को न दे तो उसके इस पाप दोष के कारण देवता उसे अहंकार मे व्याप्त कर नष्ट कर देते है ॥ ५० ।

जो वशा का दान न करने को कहते हैं, वे मूर्ख इन्द्र के क्रोध से स्वयं को नष्ट करते हैं ॥ ५१ ॥

जो लोग गौ के स्वामी से न दान करने को कहते है, वे मूर्ख रुद्र के आयुध का शिकार होते हैं ॥ ५२ ॥

हुत या अहुत वशा का पचन करने वाला देवता और ब्राह्मणों का तिरस्कारक होता है। वह इस लोक में बुरी दशा को प्राप्त होता है ॥ ५३ ॥

सूक्त ५ (१) (पाँचवाँ अनुवाक)

(ऋषि—कश्यपः । देवता—ब्रह्मगवी । छन्द—अनुष्टुप्; पंक्ति ; उष्णिक्)

श्रमेण तपसा सृष्टा ब्रह्मणा वित्तऋते श्रिता ॥ १ ॥
सत्येनावृता श्रिया प्रावृता यशसा परीवृता ॥ २ ॥
स्वधया परिहिता श्रद्धया पर्यूढा दीक्षया गुप्ता यज्ञे-
प्रतिष्ठिता लोको निधनम् ॥ ३ ॥
ब्रह्म पदवायं ब्राह्मणोऽधिपतिः ॥ ४ ॥
तामाददानस्य ब्रह्मगवीं जिनतो ब्राह्मणं क्षत्रियस्य ॥ ५ ॥
अप क्रामति सूनृता वीर्यं पुण्या लक्ष्मीः ॥ ६ ॥

तप के द्वारा निर्मित ब्रह्माश्रित इस धेनु को ब्राह्मण ने श्रम से प्राप्त किया ॥ १ ॥

यह सत्य, संपत्ति और यश से पूर्ण संयुक्त है ॥ २ ॥

यह श्रद्धा से पर्यूढ स्वधा से परिहित, दीक्षा से रक्षित तथा यज्ञ से स्थित रहती है। इसकी ओर क्षत्रिय का देखना मृत्युवत है ॥ ३ ॥

इसके द्वारा ब्रह्म पद की प्राप्ति होती है। इस गौ का स्वामी ब्राह्मण ही है ॥ ४ ।

ब्राह्मण की इस प्रकार की गौ का चुराने वाला, ब्राह्मण को दुखी करने वाले क्षत्रिय की ॥ ५ ॥

लक्ष्मी वीर्य और प्रिय वाणी नष्ट हो जाती है ॥ ६ ॥

सूक्त ५ (२)

(ऋषि – कश्यप । देवता – ब्रह्मगवी । छन्द—त्रिष्टुप, अनुष्टुप्, उष्णिक्, पंक्ति)

ओजश्च तेजश्च सहश्च बल च वाक् चेन्द्रिय च श्रीश्च धर्मश्च ॥ ७ ॥

ब्रह्म च क्षत्र च राष्ट्रं च विशश्च त्विषिश्च यशश्च वर्चश्च-द्रविण च ॥ ८ ॥

आयुश्च रूप च नाम च कीर्तिश्च प्राणश्चापानश्च चक्षुश्च श्रोत्र च ॥ ९ ॥

पयश्च रसश्चान्न चान्नाद्य च ऋत च सत्य चेष्ट च पूर्त च प्रजा च पशवश्च ॥ १० ॥

तानि सर्वाण्यप क्रामन्ति ब्रह्मगवीमाददानस्य जिनतो ब्राह्मण क्षत्रियस्य ॥ ११ ॥

ओज तेज, पराक्रम, वाणी इन्द्रियाँ लक्ष्मी और धर्म ॥ ७ ॥

ब्रह्म, क्षात्रतेज, राष्ट्र कान्ति यश और धन ॥ ८ ॥

आयु, रूप, नाम, कीर्ति प्राणायान, नेत्र एवं कान ।।८।।

दूध, रस, अन्न, अग्नि, ऋत, सत्य, इष्ट पूर्त और प्रजा । १० ।।

उस क्षत्रिय से यह सभी छिन जाते है जो ब्राह्मण की गौ को चुराकर उसकी आयु को क्षीण करता है । ११ ।

सूक्त ५ (३)

(ऋषि—कश्यपः । देवता—ब्रह्मगवी । छन्द—गायत्री; अनुष्टुप; उष्णिक; जगती, बृहती)

सैषा भीमा ब्रह्मगव्यघविषा साक्षात् कृत्या कूल्बजमावृता ।।१२।।
सर्वाण्यस्यां घोराणि सर्वे च मृत्यवः ।। १३ ।।
सर्वाण्यस्यां क्रूराणि सर्वे पुरुषवधाः ।। १४ ।।
सा ब्रह्मज्यं देवपीयु ब्रह्मगव्या दीयमाना मृत्योः पड्वीश आ द्यति ।। १५ ।।
मेनिः शतवधा हि सा ब्रह्मज्यस्य क्षितिर्हि सा ।। १६ ।।
तस्माद् वै ब्राह्मणानां गौर्दुराधर्षा विजानता ।। १७ ।।
वज्रो धावन्ती वैश्वानर उद्वीता ।। १८ ।।
हेतिः शफानुत्खिदन्ती महादेवोऽपेक्षमाणा ।। १९ ।।
क्षुरपविरीक्षमाणा वाश्यमानाभि स्फूर्जति ।। २० ।।
मृत्युर्हिङ्कृण्वत्युग्रो देवः पुच्छं पर्यस्यन्ती ।। २१ ।।
सर्वज्यानिः कर्णौ वरीवर्जयन्ती राजयक्ष्मो मेहन्ती ।। २२ ।।
मेनिर्दुह्यमाना शीर्षक्तिर्दुग्धा ।। २३ ।।
सेदिरुपतिष्ठन्ती मिथोयोधः परामृष्टा ।। २४ ।।
शरव्या मुखेऽपिनह्यमान ऋतिर्हन्यमाना ।। २५ ।।
अघविषा निपतन्ती तमो निपतिता ।। २६ ।।
अनुगच्छन्ती प्राणानुप दासयति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यस्य ।। २७ ।।

ब्राह्मण की यह गाय बडी भयकर होती है। कूल्वज से ढके हुए हिंसात्मक कर्म से युक्त यह कृत्या का रूप धारण करने वाली होती है ॥ १२ ॥

इसमे सभी भयकर कम और मृत्यु प्रद कारण व्याप्त रहते हैं ॥ १३ ॥

इसमे सब प्रकार के क्रूर कर्म और पुरुषो के सब प्रकार के वध व्याप्त रहते हैं ॥ १४ ॥

ब्राह्मण से छीनी हुई इस प्रकार की गौ ब्राह्मणद्वेषी को अपमानित करने वाले व्यक्ति को मृत्यु पाश में बाध लेती है ॥ १५ ॥

जो ब्राह्मण की आयु को कम करने वाले के लिए क्षीणताप्रद यह गौ सैकडो प्रकार से हिंसात्मक अस्त्र होती है ॥ १६ ॥

अत विज्ञजन ब्राह्मण की धेनु को घोर में जानें ॥१७॥

वह अग्नि के समान ऊर्ध्व की ओर जाती और वज्र सदृश्य दौडती है ॥ १८ ॥

वह खुरो से ध्वनि करती हुई महादेव की आयुध रूप बन जाता है ॥ १९ ॥

वह रमाती हुई तीव्र घोष करती है और तीक्ष्ण वज्र जैसा हो जाता है। २० ।

हिं शब्द उच्चारण करती हुई गौ मृत्यु के समान होती है और सब ओर पूँछ को घुमाती हुई उग्र रूप धारण कर लेती है ॥ २१ ॥

सब प्रकार से आयु को नष्ट करने वाली यह धेनु कानो हिलाती है। यह अपने मूत्र को त्यागती हुई क्षय रोग को उत्पन्न करती है ॥ २२ ॥

जब दूध निकाला जाता है तब मारक अस्त्र के समान होती है और दुही जाने के बाद शिर रोग रूप वाली, हो जाती ॥ २३ ॥

परामृष्ट होने पर परस्पर लड़ातीं और निकट खड़ी होने पर विशीर्ण करती हैं । २४ ॥

पीटने पर दुर्गतिप्रद तथा मुख ढकने पर चिन्ह अंकित करने वाली होती है ॥ २५ ॥

बैठती हुई वह धेनु अघविषा होती है और बैठी हुई विन शक व्याधि उत्पन्न करती है । २६ ॥

यह ब्राह्मण की गाय ब्राह्मण की हानि करने वाले का पीछा करती हुई उसके प्राणों का हनन करती है ॥ २७ ॥

सूक्त ५ (४)

(ऋषि—कश्यप । देवता—ब्रह्मगवी । छन्द—गायत्री, अनुष्टुप, त्रिष्टुप् बृहती, उष्णिक)

वैर विकृत्यमाना पौत्राद्य विभाज्यमाना ॥ २८ ॥
देवहेति ह्रियमाणा व्यृद्धिर्हृता ॥ २९ ॥
पाप्माधिधीयमाना पारुष्यमवधीयमाना ॥ ३० ॥
विष प्रयस्यन्ती तक्मा प्रयस्ता ॥ ३१ ॥
अघं पच्यमाना दुष्वप्न्यं पक्वा ॥ ३२ ॥
मूलबर्हणी पर्याक्रियमाणा क्षितिः पर्याकृता ॥ ३३ ॥
असंज्ञा गन्धेन शुगुद्धियमाणाशीविष उद्धृता ॥ ३४ ॥
अभूतिरुपह्रियमाणा पराभूतिरुपहृता ॥ ३५ ॥
शर्वः क्रुद्धः पिश्यमाना शिमिदा पिशिता ॥ ३६ ॥
अवर्तिरश्यमाना निर्ऋतिरशिता ॥ ३७ ॥
अशिता लोकाच्छिनत्ति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यमस्माच्चामुष्माच्च ॥३८॥

यह ब्राह्मण की अपहरण की हुई गौ पुत्र पुत्रादि का बँटवारा कराती हुई छेदन करने वाली होती है ॥ २८ ॥

चुराते समय यह अस्त्र रूप तथा चुराने के बाद नष्ट करने वाली बन जाती है ॥ २९ ॥

पाप रूप यह धेनु कठोरता उत्पन्न करती है ॥ ३० ॥

प्रयस्यती विष सदृश्य और अयस्ता जीवन को विपोत्त मे डालने वाली होती है ॥ ३१ ॥

पचनकाल मे व्यसन प्रद और पकने पर कुस्वप्न वाली होती है ॥ ३२ ॥

पर्याक्रियमाणा जड से उखाड फकती है और पराकृता क्षीण करने वाली होती हैं । ३३ ॥

उद्ध्रियमाणा शोकाकुल बनाने वाली तथा उद्धृता सर्प सदृष्य विषैली होती है जो अपनी गन्ध से सज्ञा शून्य कर देती है ॥ ३४ ॥

उपहृता पराभूति होती है और उपह्रियमाणा अभूति होती है ॥ ३५ ॥

पिश्यमाना क्रोधिन शव के समान होती है और पिशिता शिमिदा होती है ॥ ३६ ॥

प्राशन की जाती हुई गौ दरिद्रता और प्राशन किए जाने के पश्चात अधोगति प्रदान करने वाली पापदेवी निर्ऋति का रूप धारण कर लेती है ॥ ३७ ॥

ब्राह्मण को हानि पहुँचाने पर ब्राह्मण की धेनु इहलोक तथा परलोक दोनो से हीन कर देती है ॥ ३८ ॥

सूक्त ५ (५)

(ऋषि— कश्यपः । देवता—ब्रह्मगवी । छन्द—पंक्ति, अनुष्टुप्; बृहती)

तस्या आहननं कृत्या मेनिराशसनं वलग ऊबध्यम् ॥ ३९ ॥
अस्वगता परिह्णुता ॥ ४० ॥
अग्निः क्रव्याद् भूत्वा ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यं प्रविश्याति ॥ ४१ ॥
सर्वास्यांगा पर्वा मूलानि वृश्चति ॥ ४२ ॥
छिनत्त्यस्य पितृबन्धु परा भावयति मातृबन्धु ॥ ४३ ॥
विवाहाँ ज्ञातीन्त्सर्वानपि क्षापयति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यस्य क्षत्रियेणापुनर्दीयमाना ॥ ४४ ॥
अवास्तुमेनमस्वगमप्रजसं करोत्यपरापरणो भवति क्षीयते ॥ ४५ ॥
य एवं विदुषो ब्राह्मणस्य क्षत्रियो गामादत्ते ॥ ४६ ॥

इस धेनु का आशसन मारने वाला अस्त्र है। इसका आहनन कृत्या है और गोबर युक्त आधा पका हुआ चारा शपथ के समान है ॥ ३९ ॥

यह चुराई गई गाय अपने वश मे नही रहती ॥ ४० ॥

ब्राह्मण की धेनु क्रव्याद् अग्नि बन कर ब्रह्मज्य में प्रविष्ट हो उसका भक्षण करती है ॥ ४१ ॥

उसके समस्त अङ्ग और सन्धि स्थलो को छिन्न भिन्न करती है ॥ ४२ ॥

इसके पिता के बांधवों का भी छेदन करती और माता के बांधवो को अपमानित कराती है ॥ ४३ ॥

ब्राह्मण की गाय, क्षत्रिय द्वारा न वापिस करने पर ब्रह्मज्य के सब विवाहित प्रियजनो को सन्तापित करती है ॥४४॥

वह उसे सन्तान हीन एवं गृहहीन करती है। वह अपरापरण होकर विनाश को प्राप्त होती है ॥ ४५ ॥

उपरोक्त दशा क्षत्रिय की होती है जो विद्वान ब्राह्मण की गौ को चुरा लेता है ॥ ४६ ॥

सूक्त ५ (६)

(ऋषि – कश्यप। देवता ब्रह्मगवी। छन्द अनुष्टुप्, बृहती, उष्णिक् गायत्री)

क्षिप्रं वै तस्याहनने गृध्राः कुर्वत ऐलबम् ॥ ४७ ॥
क्षिप्रं वै तस्यादहनं परि नृत्यन्ति केशिनीराघ्नानाः।
पाणिनोरसि कुर्वाणा पापमैलबम् ॥ ४८ ॥
क्षिप्रं वै तस्य वास्तुषु वृकाः कुर्वत ऐलबम् ॥ ४९ ॥
क्षिप्रं वै तस्य पृच्छन्ति यत् तदासी दिदं नु तादिति ॥ ५० ॥
छिन्ध्या च्छिन्धि प्र च्छिन्ध्यपि क्षापय क्षापय ॥ ५१ ॥
आददानमाङ्गिरसि ब्रह्मज्यमुप दासय ॥ ५२ ॥
वैश्वदेवी ह्युच्यसे कृत्या कूल्बजमावृता। ५३ ।
ओषन्ती समोषन्ती ब्रह्मणो वज्र। ५४ ॥
क्षुरपविर्मृत्युर्भूत्वा वि धाव त्वम् ५५ ॥
आ दत्से जिनतां वर्च इष्टं पूर्तं चाशिषः ॥ ५६ ॥
आदाय जीतं जीताय लोकेऽमुष्मिन् प्र यच्छसि । ५७ ।
अघ्न्ये पदवीर्भव ब्राह्मणस्याभिशस्त्या ॥ ५८ ।
मेनिः शरव्या भवाघादघविषा भव । ५९ ॥
अघ्न्ये प्र शिरो जहि ब्रह्मज्यस्य कृतागसो देवपीयोरराधसः ॥६०॥
त्वया प्रमूर्णं मृदितमग्निर्दहतु दुश्चितम् । ६१ ।

जो क्षत्रिय उस गाय को ले जाता है उसको नेत्रों को गृद्ध निकालते हैं ॥ ४७ ॥

उसे भाभीभूत करने वाली चिता के समीप केश वाली स्त्रियाँ अपने वक्षो को पोटती आँसू बहाती है ।। ४८ ।।

उसके घरों मे शीघ्र ही गीदड आना आरम्भ कर देते हैं ।। ४६ ।

उसके सबन्ध में ऐसा कहा जाने लगता है कि यह उसका घर था ।। ५० ।।

तू इस गाय चुराने वाले का छेदन कर और उसे मार डाल ।। ५१ ।।

हे आंगिरस ! तू इस चुराने वाले ब्रह्मज्य का विनाश कर ।। ५२ ।।

तू कूल्वज से आवृत विश्वदेवी कृत्या प्रख्यात है ।।५३।

तू मल रूपी वज्र से भली भाँति विनाश करने वाली है ।। ५४ ।।

तू मृत्यु रूप धारण कर दौड ।। ५५ ।।

तू चोरी करने वाले की कान्ति कामना पूर्त और शुभात्मक शब्दों को नष्ट करती है ।। ५६ ।।

उस ब्राह्मण की हानि करने वाले को क्षीण आयु करने के लिए पकड कर मृत्यु को पहुँचाती है ।।५७ ।

हे अघन्ये ! ब्राह्मण के शाप के कारण तू ब्रह्मज्य के पावो के लिए बन्धन रूप हो ।। ५८ ।।

तू अस्त्र रूप बाणो के समूह को प्राप्त होती हुई उसके पाप के फलस्वरूप अघविषा होजा ।। ५६ ।।

हे अघन्ये ! तू उस देवद्वेषी के अपराध पूर्ण कार्यों को निष्फल करने के निमित्त उसे सिर विहीन कर ।। ६० ।।

तेरे द्वारा प्रमूर्ण और मर्दन किए हुए उस दुष्ट को अग्नि भस्म कर डाले ।। ६१ ।।

सूक्त ५ (७)

(ऋषि—कश्यप । देवता—ब्रह्मगवी । छन्द,—अनुष्टुप्, गायत्री, पङ्क्ति, त्रिष्टुप्, उष्णिक्)

वृश्च प्र वृश्च स वृश्च दह प्र दह सं दह ॥ ६२ ॥
ब्रह्मज्य देव्यघ्न्ये आ मूलादनुसंदह ॥ ६३ ॥
यथायाद् यमसादनात् पापलोकान् परावतः ॥ ६४ ॥
एवा त्वं देव्यघ्न्ये ब्रह्मज्यस्य कृतागसो देवपीयोरराधसः ॥ ६५ ॥
वज्रेण शतपर्वणा तीक्ष्णेन क्षुरभृष्टिना ॥ ६६ ॥
प्र स्कन्धान् प्र शिरो जहि ॥ ६७ ॥
लोमान्यस्य सं छिन्धि त्वचमस्य वि वेष्टय ॥ ६८ ॥
मांसान्यस्य शातय स्नावान्यस्य सं वृह ॥ ६९ ॥
अस्थीन्यस्य पीडय मज्जानमस्य निर्जहि ॥ ७० ॥
सर्वास्याङ्गा पर्वाणि वि श्रथय ॥ ७१ ॥
अग्निरेनं क्रव्यात् पृथिव्या नुदतामुदोषतु वायुरन्तरिक्षान्महतो वरिम्णः ॥ ७२ ॥
सूर्य एनं दिवः प्र णुदतां न्योषतु ॥ ७३ ॥

हे अघ्न्ये ! ब्रह्मज्य को काट, भस्म कर, उसका जड़ सहित नाश कर ॥ ६२,६३ ॥

हे अघ्न्ये ! उस दोषी देव हिंसक, कार्य में बाधक ब्रह्मज्य के कन्धों को एवं सिर को भी तेज धार वाले शस्त्र से काट डाल जिससे वह सुदूर स्थित पाप लोकों के लिए प्रस्थान करें । ६४,६५,६६,६७ ॥

इनके बालों को काटकर चमड़े को उधेड़ दे ॥ ६८ ॥

इसके मांस को काट कर नसों को सुखा दो ॥ ६९ ॥

इसकी अस्थियों में दाह और मज्जा में क्षय व्याप्त कर ॥ ७० ॥

इसके शरीर के अंगो और सन्धि स्थलो को ढीला कर दे ॥ ७१ ॥

वायु इसे अन्तरिक्ष और पृथ्वी से भी दूर भगा दें और क्रव्याद् अग्नि इसे जला डाले ॥ ७२ ॥

सूर्य भी इसे स्वर्ग मे ढकेल दें और जला डालें ॥ ७३ ॥

॥ द्वादश काण्ड समाप्तम् ॥

त्रयोदश काण्ड

सूक्त १ (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि— ब्रह्मा । देवता—अध्यात्मम् रोहित', आदित्यः, मरुत', अग्नि, अग्न्यादयो मन्त्रोक्ता । छन्द—त्रिष्टुप्, जगती, पंक्तिः, गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती)

उदेहि वाजिन् यो अपस्वन्तरिद राष्ट्रं प्र विश सूनृतावत् ।
यो रोहितो विश्वमिदं जजान स त्वा राष्ट्राय सुभृतं बिभर्तु ॥१॥
उद्वाज आ गन् यो अप्स्वन्तर्विश आ रोह त्वद्योनयो याः ।
सोमं दधानोऽप ओषधीर्गाश्चतुष्पदो द्विपद आ वेशयेह ॥ २ ॥
यूयमुग्रा मरुत. पृश्निमातर इन्द्रेण युजा प्र मृणीत शत्रून् ।
आ वो रोहितः शृणवत् सुदानवस्त्रिषप्तासो मरुतः स्वादुसंमुदः ॥ ३ ॥
रुहो रुरोह रोहित आ रुरोह गर्भो जनीनां जनुषामुपस्थम् ।

ताभिः सरब्धमन्वविन्दन् षडुर्वीर्गातुं प्रपश्यन्निह राष्ट्रमाहाः ॥ ४ ॥
आ ते राष्ट्रमिह रोहितोऽहार्षीद् व्यास्यन्मृधो अभयं ते अभूत् ।
तस्मै ते द्यावा पृथिवी रेवतीभिः कामं दुहातामिह शक्वरीभिः ॥ ५ ॥
रोहितो द्यावापृथिवी जजान तत्र तन्तुं परमेष्ठी ततान ।
तत्र शिश्रियेऽज एकपादोऽदृंहद् द्यावापृथिवी बलेन ॥ ६ ॥
रोहितो द्यावापृथिवी अदृंहत् तेन स्व स्तभितं तेन नाकः ।
तेनान्तरिक्षं विमिता रजांसि तेन देवा अमृतमन्वविन्दन् ॥ ७ ॥
वि रोहितो अमृशद् विश्वरूपं समाकुर्वाणः प्ररुहो रुहश्च ।
दिवं रूढ्वा महता महिम्ना सं ते राष्ट्रमनक्तु पयसा घृतेन ॥ ८ ॥
यास्ते रुहः प्ररुहो यास्त आरुहो याभिरापृणासि दिवमन्तरिक्षम् ।
तासां ब्रह्मणा पयसा वावृधानो विशि राष्ट्रे जागृहि रोहितस्य ॥ ९ ॥
यास्ते विशस्तपसः संबभूवुर्वत्सं गायत्रीमनु ता इहागुः ।
तास्त्वा विशन्तु मनसा शिवेन समाता वत्सो अभ्येतु रोहित ॥ १० ॥

हे सूर्य ! तुम अन्तरिक्ष में अस्त प्रकट होओ। सुन्दर सत्य रूप वाणी से युक्त होकर इस राष्ट्र मे पधारो। ऐसे इन सूर्य ने संसार को प्रकाश प्रदान किया, वह तुम्हें राष्ट्र के पालन कर्त्ता के रूप में पुष्ट करें ॥ १ ॥

जल मे वास करने वाली प्रजायें और शक्तिशाली अन्न तुम्हें प्राप्त हों। तुम उन पर चढो और सोम को धारण करते हुए जल, औषधि, मनुष्य और पशुओं को इस राष्ट्र मे प्रविष्ट करो ॥ २ ॥

हे मरुद्गण ! तुम इन्द्र के मित्र हो। तुम शत्रु का नाश करो।

तुम स्वादिष्ट पदार्थों से तुष्ट होने वाले हो और सुन्दर वृष्टि को प्रदान करते हो। सूर्य तुम्हारी बात सुनें ॥ ३ ॥

सूर्य प्रकट होते हुए चढ़ रहे हैं। यह उत्पादकों के शरीरांग में पत्नियों के गर्भ रूप से उत्पन्न होते हैं। छः ऊर्वियों की प्राप्ति के लिए नित्य प्रति राष्ट्र को देखते हुए वे उर्वियों को प्राप्त करते हैं ॥ ४ ॥

तेरे राष्ट्र पर सूर्य उदय हो गये। अतः तू युद्ध का भय न कर। द्यावा पृथ्वी धन प्रदाता ऋचाओं द्वारा तेरे निमित्त कामनाओं का दोहन करें ॥ ५ ॥

सूर्य ने आकाश पृथ्वी को प्रकट किया प्रजापति ने उसमे तन्तु को बढ़ाया। वहाँ एक पाद अज ने सहारा लेकर द्यावा पृथ्वी को बल से युक्त किया ॥ ६ ॥

सूर्य ने आकाश पृथ्वी को कठोरता प्रदान किया, दुख विहीन स्वर्ग को स्थिरता प्रदान की। उसी ने अन्तरिक्ष तथा अन्य सब लोकों का निर्माण किया और देवताओं ने इसी से अमरता प्राप्त की ॥ ७ ॥

रुह और प्ररूह को भली भांति प्रकट करने वाले सूर्य सब शरीरों को स्पर्श किया। वह सूर्य अपनी महिमा से तेरे राष्ट्र को घृत-दूध से पूर्ण करें। ८ ।

अपनी जिन रोहण प्ररोहण और अरोहण शील प्रजा और लता आदि द्वारा तुम अन्तरिक्ष के प्राणियों का पालन पोषण करते हो, उनके दुग्धवत सार कर्म के द्वारा मित्र बल से प्रवृद्ध हुए तुम सूर्य के राष्ट्र में चेतन शील रहो। ९ ॥

तप बल से उत्पन्न एवं गायत्री रूप वत्स द्वारा यहाँ लाई प्रजायें मंगलमय हृदय से तुम में प्रविष्ट हो तथा इनका सूर्य वत्स तुम्हारे पास पधारे ॥ १० ॥

ऊर्ध्वो रोहितो अधि नाके अस्थाद् विश्वा रूपाणि जनयन्
युवा कविः
तिग्मेनाग्निर्ज्योतिषा वि भाति तृतीये चक्रे रजसि
प्रियाणि ॥ ११ ॥
सहस्रशृङ्गो वृषभो जातवेदा घृताहुतः सोमपृष्ठः सुवीरः ।
मा मा हासीन्नाथितो नेत् त्वा जहानि गोपोषं
च मे वीरपोषं च धेहि ॥ १२ ॥
रोहितो यज्ञस्य जनिता मुखं च रोहिताय वाचा
श्रोत्रेण मनसा जुहोमि ।
रोहितं देवा यन्ति सुमनस्यमानाः स मा रोहैः
सामित्यैं रोहयतु ॥ १३ ॥
रोहितो यज्ञं व्य दधाद् विश्वकर्मणे तस्मात्
तेजांस्युप मेमान्यागुः ।
वोचेयं ते नाभिं भुवनस्याधि मज्मनि ॥ १४ ॥
आ त्वा रुरोह बृहत्युत पङ्क्तिरा ककुब् वर्चसा जातवेदः ।
आ त्वा रुरोहोष्णिहाक्षरो वषट्कार आत्वारुरोह
रोहितोरेतसा सह ॥ १५ ॥
अयं वस्ते गर्भं पृथिव्या दिवं वस्तेऽयमन्तरिक्षम् ।
अयं ब्रध्नस्य विष्टपि स्वर्लोकान् व्या नशे ॥ १६ ॥
वाचस्पते पृथिवी नः स्योना स्योना योनिस्तल्पा नः सुशेवा ।
इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन्
पर्यग्निरायुषा वर्चसा दधातु ॥ १७ ॥
वाचस्पत ऋतवः पञ्च ये नो वैश्वकर्मणाः परि ये संबभूवुः ।
इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन् परि
रोहित आयुषा वर्चसा दधातु ॥ १८ ॥

वाचस्पते सौमनस मनश्च गोष्ठे नो गा जनय योनिषु प्रजाः ।
इहैव प्राण सख्ये नो अस्तु तत्वा परमेष्ठिन्
पर्यहमायुषा वचसा दधामि ॥ १६ ॥
परि त्वा धातु सविता देवो अग्निर्वर्चसा मित्रावरुणावभि त्वा ।
सर्वा अरातीरवक्रामन्नेहीद राष्ट्रमकर' सूनृतावत् ॥ २० ॥

जब वे सूर्य उर्ध्व होकर स्वर्ग मे पहुँचते हैं, तब वे अपने विभिन्न रूपो को प्रकट करते हैं। उनकी ही तीक्ष्ण ज्योति से अग्नि ज्योतिमान है। वे तीसरे लोक में प्रिय फलो को प्रकट करते हैं ॥ ११ ॥

सहस्त्रो सीग वाले घृत से आहूत, काम्यवर्षक, सोमपृष्ठा सुवीर जातवेदा अग्नि हमस अलग न हो। मुझे गौओ और पुत्र पौत्रादि से सपन्न करें ॥ १२ ॥

सूर्य यज्ञ का प्राकट्य करते हैं। वे यज्ञ के मुखरूप है, मन वचन और कर्म से मैं उन सूर्य के निमित्त हवि अर्पित करता हूँ। आनन्द मग्न सब देवगण सूर्य के निकट पहुँचते हैं। वे मुझे सग्राम के निमित्त श्रेष्ठ मनोवल प्रदान करें ॥ १३ ॥

सूर्य ने विश्वकर्मा के निमित्त यज्ञ का पोषण किया, उस यज्ञ के द्वारा वह तेज मुझमें प्रविष्ट हो रहे हैं। मैं तुम्हारी नाभि को लोक की मज्जा पर बताता हूँ ॥ १४ ॥

हे अग्ने। बृहती पक्ति और ककुप छदो ने तथा उष्णहा और अक्षर ने तुममे प्रवेश किया है और वषटकार ने भी तुम में प्रवेश कर लिया है। सूर्य भी तुममे अपने तेज सहित प्रवेश करते है ॥ १५ ॥

सूर्य पृथ्वी के गर्भ को आकाश और अन्तरिक्ष को भी आवृत कर लेते हैं। यह समस्त जग के बंधक सभी स्वर्गों मे प्रतिष्ठित होते हैं ॥ १६ ॥

हे वाचस्पते ! हमको पृथ्वी, योनि, एव शंय्या सुखकारी हो प्राण सखा रूप हो हममें व्याप्त हो। हे प्रजापते ! अग्नि तुम्हें आयु और तेज से युक्त होकर धारण करें ॥ १७ ॥

हे वाचस्पते ! हमारे कर्म द्वारा जो पाँच ऋतुएं उत्पन्न हुई उनमें हमारा प्राण मित्र रूप से स्थित हो। हे प्रजापते ! तुम्हें सूर्य अपने तेज और आयु से धारण करे ॥ १८ ॥

हे वाचस्पते ! हम प्रसन्न चित्त रहें। तुम हमारे गोष्ठ में गौओं को प्रतिष्ठित करो और हमारी योनियों में सन्तानों को उत्पन्न करो। प्राण सखा रूप हो हममें व्याप्त हों मैं आयु और तेज से तुम्हें धारण करता हूँ ॥ १९ ॥

हे नृप ! सविता देव तुम्हारा सब भांति पोषण करें। अग्नि, मित्र और वरुण तुम्हें शक्ति प्रदान करें। तुम समस्त शत्रुओं को अपने अधीन करते हुए इस राष्ट्र में आकर सत्य मिष्ट वाणी को पुष्ट करो ॥ २० ॥

यं त्वा पृषती रथे प्रष्टिर्वहति रोहित ।
शुभा यासि रिणन्नपः ॥ २१ ॥

अनुव्रता रोहिणी रोहितस्य सूरिः सुवर्णा बृहती सुवर्चाः ।
तया वाजान् विश्वरूपां जयेम तया विश्वाः पृतना अभि ष्याम ॥ २२ ॥

इदं सदो रोहिणी रोहितस्यासौ पन्थाः पृषती येन याति ।
तां गन्धर्वाः कश्यपा उन्नयन्ति तां रक्षन्ति कवयोऽप्रमादम् ॥ २३ ॥

सूर्यस्याश्वा हरयः केतुमन्तः सदा वहन्त्यमृताः सुखं रथम् ।
घृतपावा रोहितो भ्राजमानो दिवं देवः पृषतीमा विवेश ॥ २४ ॥

यो रोहितो वृषभस्तिग्मशृङ्गः पर्यग्निं परि सूर्यं बभूव ।

यो विष्टभ्नाति पृथिवीं दिवं च तस्माद् देवा अधि सृष्टी सृजन्ते ॥ २५ ॥
रोहितो दिवमारुहन्महतः पर्यर्णवात् ।
सर्वा रुरोह रोहितो रुहः ॥ २६ ॥
वि मिमीष्व पयस्वतीं घृताचीं देवानां धेनुरनपस्पृगेषा ।
इन्द्र. सोमं पिबतु क्षेमो अस्त्वग्निः प्र स्तौतु वि मृधो नुदस्व । २७ ॥
समिद्धो अग्निः समिधानो घृतवृद्धो घृताहुतः ।
अभीषाड् विश्वाषाडग्निः सपत्नान् हन्तु ये मम ॥ २८ ॥
हन्त्वेनान् प्र दहत्वरिर्यो नः पृतन्यति ।
क्रव्यादाग्निना वयं सपत्नान् प्र दहामसि ॥ २९ ॥
अवाचीनानव जहीन्द्र वज्रेण बाहुमान् ।
अधा सपत्नान् मामकानग्नेस्तेजोऽभिरादिषि ॥ ३० ।

हे सूर्य ! पृपती तुम्हें पृष्टि रथ मे धारण करती है । तुम जलों में चलते हुए कल्याण के निमित्त गमन शील हो ॥ २१ ॥

आरूढ होते रोहित की रोहिणी अनुव्रता है, वह सुन्दर वर्ण वाली बृहती और सुन्दर तेज से युक्त है, उसी के द्वारा हम अनेक रूपों वाले प्राणियो पर विजय प्राप्त करते हैं । उसी के अनुग्रह से हम सेनाओ को अपने अधीन करें ॥ २२ ॥

यह रोहिणी और रोहित का निवास स्थान है इसी मार्ग द्वारा पृपती जाती है । गन्धर्व उसे ऊपर ले जाते हैं । चतुर व्यक्ति इसका सचेष्टता से रक्षण करते हैं ॥ २३ ।

वेगवान और ज्ञान युक्त सूर्य के अश्व उसके अमर रथ को आसानी से खीचते हैं । अभीष्ट पूरक सूर्य पृपती स्वर्ग मे पहुँच गये ॥ २४ ॥

वे रोहित इच्छाओ को पूर्ण करने वाले हैं तथा तीक्ष्ण

किरणों से युक्त हैं। जो अग्नि देव सूर्य की ओर रहते और द्यावा पृथ्वी को स्थिर रखते हैं, उन्हीं के बल से देवगण सृष्टि की रचना करते हैं ॥ २५ ॥

वे सूर्य समुद्र के द्वारा आकाश पर आरोहण करते और रोहणशील पदार्थों पर भी चढ़ते हैं ॥ २६ ॥

तू देवताओं की पयस्वनी उपासनीय गौ का मान सम्मान करने के कारण अनयस्पृक् है। अग्नि तेरा कल्याण करें और इन्द्र सोमरस का पान करें। तत्पश्चात तू शत्रुओं को रणक्षेत्र से भगा दे ॥ २७ ॥

यह अग्नि प्रज्वलित होकर घृत द्वारा वृद्धि को प्राप्त हुए है। इनमे घृत की आहुति अर्पित की गई है। वे शत्रुओं को पराजित करने वाले है, अत मेरे शत्रुओं का विनाश करें ॥ २८ ॥

इन सब शत्रुओं का अग्नि देव विनाश करें। जो शत्रु सेना सहित आकर हमारा विनाश करना चाहे उसे अग्नि देव जला डालें। हम क्रव्याद् अग्नि के द्वारा शत्रुओं को भस्म करते हैं ॥ २९ ॥

हे इन्द्र तुम अपने बाहुबल से हमारे शत्रुओं का विनाश करो और हे अग्ने ! तुम अपनी ज्वालाओं से उन्हें भस्म कर डालो ॥ ३० ॥

अग्नेसपत्नानधरान् पादयास्मद् व्यथया सजातमुत्पिपानं बृहस्पते ।

इन्द्राग्नी मित्रावरुणावधरे पद्यन्तामप्रतिमन्यूयमानाः ॥ ३१ ॥

उद्यंस्त्वं देव सूर्य सपत्नानव मे जहि ।

अवैनानश्मना जहि ते यन्त्वधमं तमः ॥ ३२ ॥

वत्सो विराजो वृषभो मतीनामा रुरोह शुक्रपृष्ठोऽन्तरिक्षम् ।
घृतेनार्कमभ्यर्चन्ति वत्स ब्रह्म सन्त ब्रह्मणा वर्धयन्ति ॥ ३३ ॥
दिव च रोह पृथिवीं च रोह राष्ट्रं च रोह द्रविण च रोह ।
प्रजां च रोहामृतं च रोह रोहितेन तन्व सं स्पृशस्व । ३४ ॥
ये देवा राष्ट्रभृतोऽभितो यन्ति सूर्यम् ।
तैष्टे रोहितः संविदानो राष्ट्रं दधातु सुमनस्यमानः ॥ ३५ ॥
उत त्वा यज्ञा ब्रह्मपूता वहन्त्यध्वगतो हरयस्त्वा वहन्ति ।
तिरः समुद्रमति रोचसे अर्णवम् ॥ ३६ ॥
रोहिते द्यावापृथिवी अधि श्रिते वसुजिति गोजिति संधनाजिति।
सहस्रं यस्य जनिमानि सप्त च वोचेय ते नाभि भुवनस्याधि मज्मनि ॥ ३७ ॥
यशा यासि प्रदिशो दिशश्च यशाः पशूनामुत चर्षणीनाम् ।
यशाः पृथिव्या अदित्या उपस्थेऽहं भूयासं सवितेव चारुः ॥ ३८ ॥
अमुत्र सन्निह वेत्थेतः संस्तानि पश्यसि ।
इतः पश्यन्ति रोचन दिवि सूर्यं विपश्चितम् ॥ ३९ ॥
देवो देवान् मर्चयस्यन्तश्चरस्यर्णवे ।
समानमग्निमिन्धते तं विदुः कवयः परे ॥ ४० ॥

हे अग्ने ! तुम हमारे शत्रुओं को पतित करो । हे बृहस्पते! तुम उन्नति को प्राप्त समान जन्म वाले शत्रु को शोकाकुल करो हे इन्द्राग्नि ! और मित्रावरुण देवताओ ! हमारे विरोधी शत्रु पतित हों ॥ ३१ ॥

हे उदयशील सूर्य ! तुम हमारे शत्रु को नष्ट करो । इन्हें पाषाणों से मार डालो । यह मृत्यु के समान घोर अन्धकार को प्राप्त हों ॥ ३२ ॥

विराट के वत्स सूर्य अन्तरिक्ष पर चढ़ते हैं । सूर्य रूप

किरणों से युक्त हैं। जो अग्नि देव सूर्य की ओर रहते और द्यावा पृथ्वी को स्थिर रखते हैं, उन्हीं के बल से देवगण सृष्टि की रचना करते हैं ॥ २५ ॥

वे सूर्य समुद्र के द्वारा आकाश पर आरोहण करते और रोहणशील पदार्थों पर भी चढ़ते हैं ॥ २६ ॥

तू देवताओं की पयस्वनी उपासनीय गौ का मान सम्मान करने के कारण अनयस्पृक् है। अग्नि तेरा कल्याण करें और इन्द्र सोमरस का पान करें। तत्पश्चात तू शत्रुओं को रणक्षेत्र से भगा दे ॥ २७ ॥

यह अग्नि प्रज्वलित होकर घृत द्वारा वृद्धि को प्राप्त हुए हैं। इनमे घृत की आहुति अर्पित की गई है। वे शत्रुओं को पराजित करने वाले हैं, अत मेरे शत्रुओं का विनाश करें ॥ २८ ॥

इन सब शत्रुओं का अग्नि देव विनाश करें। जो शत्रु सेना सहित आकर हमारा विनाश करना चाहे उसे अग्निदेव जला डालें। हम क्रव्याद् अग्नि के द्वारा शत्रुओं को भस्म करते हैं ॥ २९ ॥

हे इन्द्र तुम अपने बाहुबल से हमारे शत्रुओं का विनाश करो और हे अग्ने ! तुम अपनी ज्वालाओं से उन्हें भस्म कर डालो ॥ ३० ॥

अग्नेसपत्नानधरान् पादयास्मद् व्यथया सजातमुत्पिपान बृहस्पते ।
इन्द्राग्नी मित्रावरुणावधरे पद्यन्तामप्रतिमन्यूयमानाः ॥ ३१ ॥
उद्यंस्त्वं देव सूर्य सपत्नानव मे जहि ।
अवैनानश्मना जहि ते यन्त्वधमं तमः ॥ ३२ ॥

वत्सो विराजो वृषभो मतीनामा रुरोह शुक्रपृष्ठोऽन्तरिक्षम् ।
घृतेनार्कमभ्यर्चन्ति वत्सं ब्रह्म सन्तं ब्रह्मणा वर्धयन्ति ॥ ३३ ॥
दिवं च रोह पृथिवीं च रोह राष्ट्रं च रोह द्रविणं च रोह ।
प्रजां च रोहामृतं च रोह रोहितेन तन्वं सं स्पृशस्व ॥ ३४ ॥
ये देवा राष्ट्रभृतोऽभितो यन्ति सूर्यम् ।
तैष्टे रोहितः संविदानो राष्ट्रं दधातु सुमनस्यमानः ॥ ३५ ॥
उत् त्वा यज्ञा ब्रह्मपूता वहन्त्यध्वगतो हरयस्त्वा वहन्ति ।
तिरः समुद्रमति रोचसे अर्णवम् ॥ ३६ ॥
रोहिते द्यावापृथिवी अधि श्रिते वसुजिति गोजिति संधनाजिति।
सहस्रं यस्य जनिमानि सप्त च वोचेय ते नाभिं भुवनस्याधि मज्मनि ॥ ३७ ॥
यशा यासि प्रदिशो दिशश्च यशाः पशूनामुत चर्षणीनाम् ।
यशाः पृथिव्या अदित्या उपस्थेऽहं भूयासं सवितेव चारुः ॥ ३८ ॥
अमुत्र सन्निह वेत्थेतः संस्तानि पश्यसि ।
इतः पश्यन्ति रोचनं दिवि सूर्यं विपश्चितम् ॥ ३९ ॥
देवो देवान् मर्चयस्यन्तश्चरस्यर्णवे ।
समानमग्निमिन्धते तं विदुः कवयः परे ॥ ४० ॥

हे अग्ने ! तुम हमारे शत्रुओं को पतित करो । हे बृहस्पते! तुम उन्नति को प्राप्त समान जन्म वाले शत्रु को शोकाकुल करो हे इन्द्राग्नि ! और मित्रावरुण देवताओ ! हमारे विरोधी शत्रु पतित हों ॥ ३१ ॥

हे उदयशील सूर्य ! तुम हमारे शत्रु को नष्ट करो । इन्हें पाषाणों से मार डालो । यह मृत्यु के समान घोर अन्धकार को प्राप्त हों ॥ ३२ ॥

विराट के वत्स सूर्य अन्तरिक्ष पर चढ़ते हैं । सूर्य रूप

वत्स जब ग्रहण हो जाते हैं तब भी वे मन्त्र द्वारा प्रवृद्ध किये जाते हैं ॥ ३३ ॥

हे राजन् ! तुम पृथ्वी पर प्रतिष्ठित रहो राष्ट्र और धन के स्वामी बनो। प्रजाओं के लिए छत्र के समान आश्रय प्रदान करो। तुम अमृत पर अधिष्ठित होते हुए सूर्य से स्पर्श करने वाले होओ और स्वर्ग पर चढ़ो ॥ ३४ ॥

राष्ट्र का पोषण करने वाले जो देवता सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाते हैं, उनसे सहमति होते हुए रोहित देव तुम्हारे राष्ट्र को शक्ति सम्पन्न करें ॥ ३५ ॥

हे सूर्य यह मसामिदीक्षित यज्ञ तुम्हारा वहन करते हैं, और मार्ग में गमनशील अश्व भी तुम्हारा वहन करते हैं। तुम आडे होकर समुद्र को परम शोभायुक्त बनाते हो ॥ ३६ ॥

वसुजित, गोजित सर्वजित नामक रोहित में आकाश पृथ्वी व्याप्त हैं। मैं उनके सात हजार प्रादुर्भावों का वर्णन करता हुआ उन्हें लोक की मज्जा का वपन मानता हूँ ॥३७॥

तुम अपनी कीर्ति के द्वारा दिशा प्रदिशाओं में विचरण करते हो। कीर्ति के द्वारा ही मनुष्यों और पशुओं में गमन करते हो। मैं सविता देव के समान ही अखण्डनीया पृथ्वी की गोद में कीर्तिवान बनूं ॥ ३८ ॥

तुम लोक परलोक में वास करते हुए भी यहाँ की सब बातों को जानते हो। तुम यहाँ और वहाँ के सब प्राणियों को देखते हो और सभी प्राणी स्वर्ग में स्थित सूर्य के यहाँ से दर्शन करते हैं ॥ ३९ ॥

देवत होकर भी तुम देवों को कर्म करने की प्रेरणा देते हुए अन्तरिक्ष में विचरण करते हो। समान अग्नि को प्रज्वलित करने वाले उच्च कोटि के विद्वज्जन उनसे परिचित हैं ॥ ४० ॥

अधः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात् ।
सा कद्रीची क स्विदर्धं परागात् क्व स्वित् सूते नहि यूथे अस्मिन्। ४१ ॥
एकपदी द्विपदी सा चतुष्पद्यष्टापदी नवपदी बभूवुषी ।
सहस्राक्षरा भुवनस्य पङ्क्तिस्तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति ॥ ४२ ॥
आरोहन् द्यामभृत प्राव मे वचः ।
उत् त्वा यज्ञा ब्रह्मपूता वहन्त्यध्वगतो हरयस्त्वा वहन्ति ॥ ४३ ॥
वेद तत् ते अमर्त्य यत् त आक्रमण दिवि ।
यत् ते सधस्थं परमे व्योमन् ॥ ४४ ॥
सूर्यो द्यां सूर्य. पृथिवीं सूर्य आपोऽति पश्यति ।
सूर्यो भूतस्यैक चक्षुरा रुरोह दिव महीम् ॥ ४५ ॥
उर्वीरासन् परिधयो वेदिर्भूमिरकल्पत ।
तत्रैतावग्नी आधत्त हिम घ्रंस च रोहितः ॥ ४६ ॥
हिम घ्रंस चाधाय यूपान् कृत्वा पर्वतान् ।
वर्षाज्यावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥ ४७ ॥
स्वर्विदो रोहितस्य ब्रह्मणाग्निः समिध्यते ।
तस्माद् घ्रंसस्तस्माद्धिमस्तस्माद् यज्ञोऽजायत ॥ ४८ ॥
ब्रह्मणाग्नी वावृधानौ ब्रह्मवृद्धौ ब्रह्माहुतौ ।
ब्रह्मोद्धावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥ ४९ ॥
सत्ये अन्यः समाहितोऽप्स्वन्यः समिध्यते ।
ब्रह्मेद्धावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥ ५० ॥

एक पाँव से अन्न तथा दूसरे पाद से बछडे को धारण करती हुई शुभ्र वर्णा गौ उठती है, वह किसी अर्धभाग में जाकर अलग रहती है, समूह मे जाकर नही रहती ॥ ४१ ॥

वह मध्यम से एकाकार हुई एक पदी मध्यम आदित्य के साथ द्विपदी, चारों दिशाओं से संयुक्त होकर चतुष्पदी अवान्तर दिशाओं से मिलकर अष्टपदी और दिशा-विदिशा एवं सूर्य से संयुक्त होकर नवपदी हो जाती है। वह मेघ का क्षरण करने वाली, महान जल वाली लोक की पंक्ति रूप है ॥ ४२ ॥

हे सूर्य ! तुम अमृत हो सूर्य लोक में चढ़ते हुए मेरे वचन को पूर्ण करो। मंत्र मय यज्ञ, और मार्गगामी अश्व तुम्हारा वहन करते हैं ॥ ४३ ॥

हे अविनाशी सूर्य ! सूर्य मण्डल मे विचरण करने वा और आकाश मे उपासकों सहित जो तुम्हारा रहने का स्थान है, उससे मैं भली-भाँति परिचित हूँ ॥ ४४ ॥

सूर्य, आकाश, पृथ्वी और जल के साक्षी रूप है, वे सब प्राणियों के दर्शनात्मक शक्ति हैं। वही द्यावा पृथ्वी पर आरोहण करते हैं ॥ ४५ ॥

उर्विदो ने परिधि का रूप धारण किया तथा वेदों के रूप में पृथ्वी की कल्पना हुई। वहाँ इन अग्नियों, हिमों और दिनों को सूर्य ने स्थापित किया ॥ ४६ ॥

मूर्धन्मिक स्वर्ग को प्राप्ति की इच्छा रखने वाले पुरुष हिम और दिन का आधान कर पर्वतों को यूप बनाते हुए वर्षाज्य अग्नि की उपासना करते थे ॥ ४७ ॥

रोहित के स्वर्ग प्राप्ति कराने वाले मंत्र से अग्नि को होम करते हैं। इसी के द्वारा हिम दिवस और यज्ञ का प्राकट्य हुआ ॥ ४८ ॥

मूर्धन्मिक स्वर्ग की कामना करने वाले पुरुष महाहुत और मंत्र प्रवृद्ध अग्नियों को मंत्र से बढ़ाते हुए इन प्रज्वलित अग्नियों की उपासना करते हैं ॥ ४९ ॥

सत्य में अन्य अग्नि है, जल में दूसरी अग्नि जलती है। सूर्यात्मक स्वर्ग की प्राप्ति की इच्छा करने वाले पुरुषों ने मंत्रों द्वारा बढ़ाई हुई उन अग्नियों की उपासना की थी ॥ ५० ॥

यं वातः परि शुम्भति यं वेन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः ।
ब्रह्मेद्धावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥ ५१ ॥
वेदिं भूमिं कल्पयित्वा दिवं कृत्वा दक्षिणाम् ।
घ्रंसं तदग्निं कृत्वा चकार विश्वमात्मन्वद् वर्षेणाज्येन रोहितः ॥ ५२ ॥
वर्षमाज्यं घ्रंसो अग्निर्वेदिर्भूमिरकल्पत ।
तत्रैतान् पर्वतानग्निर्गीर्भिरूर्ध्वाँ अकल्पयत् ॥ ५३ ॥
गीर्भिरूर्ध्वान् कल्पयित्वा रोहितो भूमिमब्रवीत् ।
त्वयीदं सर्वं जायतां यद् भूतं यच्च भाव्यम् ॥ ५४ ॥
स यज्ञः प्रथमो भूतो भव्यो अजायत ।
तस्माद्ध जज्ञ इदं सर्वं यत् किं चेदं विरोचते रोहितेन ऋषिणाभृतम् ॥ ५५ ॥
यश्च गां पदा स्फुरति प्रत्यङ् सूर्यं च मेहति ।
तस्य वृश्चामि ते मूलं न च्छायां करवोऽपरम् ॥ ५६ ॥
यो माभिच्छायमत्येषि मां चाग्निं चान्तरा ।
तस्य वृश्चामि ते मूलं न च्छायां करवोऽपरम् ॥ ५७ ॥
यो अद्य देव सूर्य त्वां च मां चान्तरायति ।
दुःष्वप्न्यं तस्मिञ्छमलं दुरितानि च मृज्महे ॥ ५८ ॥
मा प्र गाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः ।
मान्त स्थुर्नो अरातयः ॥ ५९ ॥
यो यज्ञस्य प्रसाधनस्तन्तुर्देवेष्वाततः । तमाहुतमशीमहि ॥ ६० ॥

ऐसे व्यक्ति जिसे वायु इन्द्र और ब्रह्मणस्पति सुशोभित

करना चाहते हैं, सर्या मक सूय की प्राप्ति की इच्छा रखते हुए मत्र प्रवृद्ध अग्नियो की उपासना करते हैं ॥ ५१ ॥

पृथ्वी को वेदी वनाकर आकाश को दक्षिणा रूप मे देकर और दिन को ही अग्नि मानकर रोहित ने वर्षा रूपी घृत से ससार की आत्मा सदृश बना लिया है ॥ ५२ ।

पृथ्वी को वदो, दिन को अग्नि और वर्षा को घृत बनाया गया । स्तुतियो से प्रवृद्ध हुए अग्नि ने ही इन पर्वतो को उन्नत किया । स्तुतियो से समृद्ध हुए अग्नि ने ही इन पवनो को ऊँचा बनाया ॥ ५३ ॥

स्तुतियो से प्रवृद्ध करते हुए रोहित ने पृथ्वी से कहा कि भूत और आगे जो कुछ भी हो, सब तुझमे ही उत्पन्न हो ॥५४॥

आरम्भ म यज्ञ भूत और भवितव्य के रूप मे ही प्रकट हुआ । जो कुछ रोचमान है वह सब उसी से उदय हुआ और रोहित ने भी उसे पुष्ट किया ॥ ५५ ॥

जो सूय की ओर मूत्र त्यागता है तथा जो गौ का अपने पाँव से स्पर्श करता है, मैं उसकी जड को नष्ट करता हूँ। उसके ऊपर कभी छाया नही करता ॥ ५६ ।

जो मेरे और अग्नि के मध्य होकर गमन करता है अथवा जो मेरी छाया को पार करता है, मैं उसका मूलच्छेद कर दूँगा तथा उसके ऊपर कभी छाया नही करता ॥ ५७ ॥

हे सूर्य ! हमारे तुम्हारे बीच मे जो बाधक बनकर आता है, उसे मैं पाप दुःस्वप्न और बुरे कर्मों मे प्रवृत्त करता हूँ ॥ ५८ ॥

हे इन्द्र ! जिस यज्ञ विधि में सोम का प्रयोग किया जाता

है, हम उस पद्धति से विमुख न हों तथा हमारा राष्ट्र शत्रु हीन हो। ५९॥

जो यज्ञ देवताओं में सुव्यापक है, हम उस यज्ञ की वृद्धि करने वाले हों॥ ६०॥

सूक्त २ (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि— ब्रह्मा। देवता—अध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः। छन्द—त्रिष्टुप्; अनुष्टुप्, जगती, पंक्ति, गायत्री)

उदस्य केतवो दिवि शुक्रा भ्राजन्त ईरते।
आदित्यस्य नृचक्षसो महिव्रतस्य मीढुषः॥ १॥
दिशां प्रज्ञानां स्वरयन्तमर्चिषा सुपक्षमाशुं पतयन्तमर्णवे।
स्तवाम सूर्यं भुवनस्य गोपां यो रश्मिभिर्दिश आभाति सर्वाः॥ २॥
यत् प्राङ् प्रत्यङ् स्वधया यासि शीभं नानारूपे अहनी कर्षि मायया।
तदादित्य महि तत् ते महि श्रवो यदेको विश्वं परि भूम जायसे॥ ३॥
विपश्चितं तरणिं भ्राजमानं वहन्ति यं हरितः सप्त बह्वीः।
स्रुताद् यमत्त्रिर्दिवमुन्निनाय तं त्वा पश्यन्ति परियान्तमाजिम्॥ ४॥
मा त्वा दभन् परियान्तमाजिं स्वस्ति दुर्गाँ अति याहि शीभम्।
दिवं च सूर्य पृथिवीं च देवीमहोरात्रे विमिमानो यदेषि॥ ५॥
स्वस्ति ते सूर्य चरसे रथाय येनोभावन्तौ परियासि सद्यः।
यं ते वहन्ति हरितो वहिष्ठाः शतमश्वा यदि वा सप्त बह्वीः॥६॥
सुखं सूर्य रथमंशुमन्तं स्योनं सुवह्निमधि तिष्ठ वाजिनम्।
यं ते वहन्ति हरितो वहिष्ठाः शतमश्वा यदि वा सप्त बह्वीः॥ ७॥

सप्त सूर्यो हरितो यातवे रथे हिरण्यत्वचसो बृहतीरयुक्त ।
अमोचि शुक्रो रजसः परस्ताद् विधूय देवस्तमो दिवमारुहत् ।८॥

उत् केतुना बृहता देव आगन्नपावृक् तमोऽभि ज्योतिरश्रैत् ।
दिव्यः सुपर्णः स वीरो व्यख्यददितेः पुत्रो भुवनानि विश्वा ॥ ९ ॥

उद्यन् रश्मीना तनुषे विश्वा रूपाणि पुष्यसि ।
उभा समुद्रौ क्रतुना वि भासि सर्वाल्लोकान्
परिभूर्भ्राजमानः ॥ १० ॥

महान कमशील सेवन समय साक्षि रूप सूर्य की उज्ज्वल किरणें आकाश में दप्यमान होती हुई सूर्य को ऊंचा करती हैं ॥ १ ॥

ज्ञानमयी दिशाओं में अपने तेज से घाव कराने वाले सुन्दर पक्ष युक्त किरणों द्वारा प्रकाश प्रदान करने वाले, लोक रक्षक सूर्य की हम स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

हे सूर्य ! तुम अन्नपूर्ण आहुतियों से पूर्व पश्चिम दिशाओं में जाते हो । अपने तेज से दिन और रात्रि को विभिन्न रूप प्रदान करते हो ! तुम विश्व भर मे एक मात्र उच्चतम हो । यह तुम्हारी अत्यन्त प्रशंसनीय कीर्ति है ॥ ३ ॥

जिन तेज युक्त और भवसिंधु के पार कराने वाले सूर्य को सदा किरणें वहन करती हैं जिन्हें ब्रह्म समुद्र से ऊपर को सूर्य लोक में लाता है । ऐसे तुम्हें हम 'आजि' में प्रवेश करते हुए देखते हैं ।४॥

हे सूर्य ! तुम द्यावा पृथ्वी में दिन और रात्रि का मान करते हुए विचरण करते हो । तुम शीघ्रता से सुखपूर्वक कठिन मार्गो को पार करो । तुम्हारे 'आजि' में प्रवेश कर लेने पर तुम्हें कोई अपने वश मे न कर सके ॥ ५ ॥

हे सूर्य ! तुम जिस रथ से दोनों सिरों को शीघ्र प्राप्त करते हो, उस रथ का कल्याण हो। तुम्हारे सौ, सात या अनेक अश्व तुम्हें वहन करते हैं ॥ ६ ।

हे सूर्य ! तुम अग्नि के समान दीप्तवान तीव्रगामी रथ पर आरूढ़ होओ। तुम्हारे इस रथ को सौ, सात या अनेक हरित वर्ण के अश्व खींचते हैं ।७॥

सूर्य अपने गमन के लिए स्वर्णिम त्वचा वाले सप्त विशाल हर्यश्वों को योजित करते और तम का विनाश करते हुए लोक से दूर उन्हें छोड़ कर सूर्य लोक में वापिस आ जाते हैं। ८॥

वे सूर्य महान केतु के द्वारा आते हैं। वे ज्योति का सहारा लेकर तम का विनाश करते हैं वे सुन्दर वर्ण वाले अदिति के पुत्र सब लोकों में प्रख्यात हैं ॥ ९ ।

हे सूर्य ! उदय होते ही किरणों को व्यापक करके सभी सुन्दर पदार्थों का तुम पोषण करते हो। तुम गमन करते हुए दोनों समुद्रों तथा सभी भुवनों को दीप्यमान करते हो ॥ १० ॥

पूर्वापरं चरतो मायवैतो शिशू क्रीडन्तौ परि यातो अर्णवम् ।
विश्वान्यो भुवना विचष्टे हैरण्यैरन्य हरितो वहन्ति ॥ ११ ॥
दिवि त्वात्रिरधारयत् सूर्या मासाय कर्तवे ।
स एषि सुधृतस्तपन् विश्वा भूतावचाकशत् ॥ १२ ॥
उभावन्तौ समर्षसि वत्स संमातराविव ।
नन्वेतदितः पुरा ब्रह्म देवा अमी विदुः ॥ १३ ॥
यत् समुद्रमनु श्रितं तत् सिषासति सूर्यः
अध्वास्य विततो महान् पूर्वश्चापरश्च यः ॥ १४ ॥
तं समाप्नोति जूतिभिस्ततो नाप चिकित्सति ।
तेनामृतस्य भक्षं देवानां नव रुन्धते ॥ १५ ॥

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ।
दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ १६ ॥
अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः ।
सूराय विश्वचक्षसे ॥ १७ ॥
अदृश्रन्नस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु ।
भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥ १८ ॥
तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य ।
विश्वमा भासि रोचन ॥ १९ ॥
प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषीः ।
प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे ॥ २० ॥

अपनी माया के द्वारा बालकों की भाँति क्रीड़ा करते हुए यह दोनों समुद्र की ओर प्रस्थान करते हैं। इनमें से एक समस्त लोकों को प्रकाश प्रदान करता है तथा दूसरों को स्वर्णिम अश्व वहन करते हैं ॥ ११ ॥

हे सूर्य ! तीनों तापों से युक्त अत्रि ऋषि ने तुम्हें मास समूह के निमित्त स्वर्ग लोक में स्थापित किया, तुम वहीं हो। तुम तपते हुये जाते और सब भूतों को प्रकाश प्रदान करते हो ॥ १२ ॥

जिस भाँति बालक सुगमता से अपने माता पिता के समीप पहुँचता है उसी भाँति तुम दोनों समुद्र के समीप पहुँचे हो। सभी देवगण पुरातन ब्रह्म से अवगत होते हैं ॥ १३ ॥

समुद्र तक जाने वाले पथ का सूर्य दान करते हैं। इनका पूर्व अन्य मार्ग है वह अत्यन्त व्यापक और महान है ॥ १४ ॥

हे सूर्य ! तुम उस पथको शीघ्रगामी अश्वों द्वारा प्राप्त करते हो। तुम उनसे सचेष्ट रहते हुए देवताओं के अमृत पान में बाधक नहीं होते ॥ १५ ॥

सभी जन्म जात प्राणियों के ज्ञाता सूर्य को सभी के दर्शन के निमित्त किरणें ऊपर उठाती हैं ॥ १६ ॥

रात्रि के अवसान पर जैसे चोर पलायन कर जाते है, उसी भाँति नक्षत्र भी सबके दृष्टा सूर्य के कारण रात्रि के साथ ही गमन कर जाते है ॥ १७ ॥

सूर्य को ज्ञान प्रदान करने वाली किरणें अग्नि की भाँति प्रकाशित होती हुई प्रत्येक व्यक्ति के पीछे दृष्टिगत होती है ॥ १८ ॥

हे सूर्य ! तुम नौका सदृष्य हो । तुम सबको देखते ज्योति प्रदान करने और विश्व को प्रकाशित करने वाले हो ॥ १९ ॥

हे सूर्य ! तुम प्रत्येक मानवी और दिव्य प्रजाओं के सन्मुख उदय होते हो । सभी को देखने के लिए स्पष्टत. प्रकट होते हो ॥ २० ॥

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु ।
त्वं वरुण पश्यसि ॥ २१ ॥
वि द्यामेषि रजस्पृथ्वहर्मिमानो अक्तुभि ।
पश्यन् जन्मानि सूर्य ॥ २२ ।
सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य ।
शोचिष्केशं विचक्षणम् ॥ २३ ॥
अयुक्त सप्त शुन्ध्युव. सूरो रथस्य नप्त्य' ।
ताभिर्याति स्वयुक्तिभि ॥ २४ ॥
रोहितो दिवमारुहत् तपसा तपस्वी ।
स योनिमैति स उ जायते पुन' स देवानामधिपतिर्बभूव ॥ २५ ॥
यो विश्वचर्षणिरुत विश्वतोमुखो यो विश्वतस्पाणिरुत
विश्वत पृथः ।
सं बाहुभ्यां भरति सं पतत्रैर्द्यावापृथिवी जनयन् देव एकः ॥२६॥

एकपाद् द्विपदो भूयो वि चक्रमे द्विपात् त्रिपादमभ्येति पश्चात् ।
द्विपाद्ध षट्पदो भूयो वि चक्रमे त एकपदस्तन्वं समासते ॥२७॥
अतन्द्रो यास्यन् हरितो यदास्थाद् द्वे रूपे कृणुते रोचमानः ।
केतुमानुद्यन्त्सहमानो रजांसि विश्वा आदित्य प्रवतो
वि भासि ॥ २८ ॥
बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि ।
महांस्ते महतो महिमा त्वमादित्य महाँ असि ॥ २९ ॥
रोचसे दिवि रोचसे अन्तरिक्षे पतङ्ग पृथिव्यां रोचसे रोचसे
अप्स्वन्तः ।
उभा समुद्रौ रुच्या व्यापिथ देवो देवासि महिषः स्वर्जित् ॥ ३० ॥

हे पाप नाशक सूर्य ! तुम पूर्वोत्पन्न शुभ कर्म वाले पुरुषों के मार्ग में जाने वाले शुभ कर्म वालों को अपनी अनुग्रह पूर्ण दृष्टि से देखते हो ॥ २१ ॥

हे सूर्य ! सब जीवों पर अनुग्रह करने के लिए तुम उन्हें देखते हुए और रात दिन को बनाते हुए आकाश पृथ्वी और अन्तरिक्ष में अनेक भांति विचरण करते हो ॥ २२ ॥

हे सूर्य ! तेजस्वी रश्मियों वाले रथ में सात हरित वर्ण अश्व तुम्हें वहन करते हैं ॥ २३ ॥

सूर्य ने पवित्राप्रद सात अश्वों को अपने रथ में योजित किया है वह उनके द्वारा अपनी युक्तियों से प्रस्थान करते हैं ॥ २४ ॥

सूर्य अपने तेजसे स्वर्ग में आरोहण करते हैं, वे योनि को प्राप्त होते और उदय होते हैं । वही देवताओं के अधिपति हैं ॥ २५ ॥

अनेक मुख वाले, सबके द्रष्टा नयन और भुजा वाले, अलौकिक देवता सूर्य अपनी फैलती हुई रश्मियों से द्यावा

पृथ्वी को प्रकट करते हुए अपनी भुजाओं से सबका पालन पोषण करते हैं ।। २६ ।।

एक पाद द्विपादों में त्रिपादो मे प्राप्त होता है फिर द्विपाद षटपादो मे विक्रमण करता है वह एक पाद ब्रह्म को इष्ट मानते हैं ।। २७ ।।

अज्ञान रहित सूर्य गमन करते हुए जब विश्राम लेते हैं तब अपने दो रूप बनाते हैं। हे सूर्य ! तुम प्रकट होकर सब लोकों को अधीन करते हुए दीप्यमान होते हो ।। २८ ।।

हे सूर्य ! तुम महान हो तुम्हारी महिमा भी महान है, यह सब सत्य हैं ।। २९ ।।

हे सूर्य ! तुम स्वर्ग, अन्तरिक्ष पृथ्वी और जल मे भी प्रकाशित होते हो। तुम अपनी दीप्ति से दोनों समुद्रों को व्याप्त करते हो । तुम स्वर्ग विजय करने वाले पूज्य देवता हो ।। ३० ।।

अर्वाङ् परस्तात् प्रयतो व्यध्व आशुर्विपश्चित् पतयन् पतङ्गः ।
विष्णुर्विचित्तः शवसाधितष्ठन् प्र केतुना सहते विश्वमेजत् ॥३१॥
चित्राश्चिकित्वान् महिषः सुपर्ण आरोचयन् रोदसी अन्तरिक्षम् ।
अहो रात्रे परि सूर्यं वसाने प्रास्य विश्वा तिरतो वीर्याणि ॥३२॥
तिग्मो विभ्राजन् तन्वं शिशानोऽरंगमासः प्रवतो रराणः ।
ज्योतिष्मान् पक्षी महिषो वयोधा विश्वा आस्थात् प्रदिशः कल्पमानः ।। ३३ ।।
चित्रं देवानां केतुरनीकं ज्योतिष्मान् प्रदिशः सूर्य उद्यन् ।
दिवाकरोऽति द्युम्नैस्तमांसि विश्वातारीद् दुरितानि शुक्रः ।।३४।।
चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्राद् द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ।। ३५ ।।

उच्चा पतन्तमरुणं सुपर्णं मध्ये दिवस्तरणिं भ्राजमानम् ।
पश्याम त्वा सवितारं यमाहुरजस्रं ज्योतिर्यदविन्ददत्रिः ॥ ३६ ॥
दिवस्पृष्ठे धावमानं सुपर्णमदित्या पुत्रं नाथकाम उप यामि भीतः ।
स नः सूर्य प्र तिर दीर्घमायुर्मा रिषाम सुमतौ ते स्याम ॥ ३७ ॥
सहस्राह्ण्यं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम् ।
स देवान्सर्वानुरस्युपदद्य संपश्यन् याति भुवनानि विश्वा ॥३८॥
रोहितः कालो अभवद् रोहितोऽग्रे प्रजापतिः ।
रोहितो यज्ञानां मुखं रोहितः स्वराभरत् ॥ ३९ ॥
रोहितो लोको अभवद् रोहितोऽत्यतपद् दिवम् ।
रोहितो रश्मिभिर्भूमिं समुद्रमनु सं चरत् ॥ ४० ॥

सूर्य दक्षिण दिशा को ओर गमन करते हुए शीघ्र ही मार्ग को तै करते हैं। यह महान देव महान ज्ञानी हैं। यह अपने बल पर प्रतिष्ठित होते हुए अपने ज्ञान के बल से ही चतनशील विश्व को अपने अधीन करते हैं॥ ३१ ॥

महिमा शाली सूर्य परम ज्ञानी और उपासनीय हैं वे शोभनमार्ग से गमन करते हैं। द्यावा पृथ्वी अन्तरिक्ष को प्रकाशित करत हुए दिन और रात्रि को आश्रय प्रदान करते हैं। इन्ही के बल से सब पार होते हैं॥ ३२ ।

यह सूर्य तिरछे होकर प्रकाशित होते हैं। यह शरीर क उष्णता प्रदान करते हैं यह सुदर गमनशील, दीप्यमान ऐश्वर्यवान और अन्न को पुष्ट करने वाले हैं। यह दिशाओं को प्रकट करते हैं॥ ३३ ॥

यह देवताओं के ध्वजा रूप सूय दर्शन करने योग्य हैं। प्रकट होकर दिशाओ को प्रकाश प्रदान करते हैं। यह

समस्त अधकारों का विनाश करते हुए अपने प्रकाश से ही दिन को प्रकट करते हैं। यह पापो को दूर करने वाले हैं ॥ ३४ ॥

किरणों का प्रशंसनीय यूप मित्रावरुण का नेत्र रूप है। सूर्य समस्त जीव-धारियों का आत्मारूप है। यह सभी भूतो मे प्रविष्ट सूर्य द्यावा पृथ्वी और अन्तरिक्ष को अपने में समेटे हुए हैं ॥ ३५ ॥

ऊपर की ओर गमन शील अरुण वर्ण वाले शोभनीय सूर्य के हम आकाश के मध्य गमन करते हुए सर्वदा दर्शन करें। हे सूर्य! तुम दीप्यमान को दुखों से मुक्त अत्रि ऋषि प्राप्त करते हैं ॥ ३६ ॥

मैं भयभीत होकर आकाश मे तीव्रगामी सूर्य का स्तवन करता हुआ उनके आश्रय को प्राप्त होता हूँ। हे सूर्य! हम तुम्हारी श्रेष्ठ अनुग्रह बुद्धि में रहे एव मृत्युभय से मुक्त हों। हमें दीर्घआयु प्रदान करो ॥ ३७ ॥

इन पाप विनाशक, श्रेष्ठ गमन शील, स्वर्ग गामी सूर्य के दोनों अयन सहस्रो दिवस तक भी नियमवद्ध रहते हैं यह सूर्य समस्त देवगणों को अपने में लीनकर, भूतमात्र को देखते हुए गमन करते हैं ॥ ३८ ॥

रोहित काल थे, वही प्रजापति थे, वही यज्ञो के मुखरूप हैं और वही रोहित अब स्वर्ग का पालन करते हैं ॥ ३९ ॥

वे स्वर्ग में तपने वाले रोहित अपनी किरणो के द्वारा समुद्र मे और पृथ्वी मे विचरण करते हैं। वे दर्शनीय है। ४०॥

सर्वा दिश. समचरद् रोहितोऽधिपतिर्दिवः ।
दिवं समुद्रमाद् भूमिं सर्वं भूतं वि रक्षति ॥ ४१ ॥
आरोहञ्छुक्रो बृहतीरतन्द्रो द्वे रूपे कृणुते रोचमानः ।

चित्रिश्चिकित्वान् महिषो वात माया यावतो लोकानभि यद् विभाति ॥ ४२ ॥

अन्यन्यदेति पर्यन्यदस्यतेऽहोरात्राभ्यां महिष. कल्पमान ।
सूर्य वयं रजसि क्षियन्तं गातुविद हवामहे नाधमानाः ॥ ४३ ॥

पृथिवीप्रो महिषो नाधमानस्य गातुरदब्धचक्षुः परि विश्व बभव ।
विश्वं संपश्यन्त्सुविदत्रो यजत्र इदं शृणोतु यदहं ब्रवीमि ॥ ४४ ॥

पर्यस्य महिमा पृथिवीं समुद्र ज्योतिषा विभ्राजन् परि द्यामन्तरिक्षम् ।
सर्वं संपश्यन्त्सुविदत्रो यजत्र इद शृणोतु यदहं ब्रवीमि ॥ ४५ ॥

अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।
यह्वाइव प्र वयामुज्जिहाना. प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ ॥४६॥

वे स्वर्ग के स्वामी हैं, वे समस्त दिशाओं में विचरण करते और स्वर्ग से समुद्र की ओर गमन करते हैं। यह सब जीवों की और पृथ्वी की रक्षा करते हैं ॥ ४१ ॥

यह सूर्य और अश्वों पर अपने दो रूप बनाते हैं। यह पूजनीय, महिमामय, और रोचमान हैं। यह सुन्दर गमन शील सभी लोकों को दीप्यमान करने वाले हैं ॥ ४२ ॥

दिन रात्रियों के द्वारा सूर्य का एक रूप सामने आता और दूसरा चला जाता है। स्वर्ग पथ में गमन शील, अन्तरिक्ष निवासी सूर्य का हम आह्वान करते हैं ॥ ४३ ॥

जिनकी दृष्टि कभी क्षीण नहीं होती, पृथ्वी के पोषण-कर्ता और महिमामय सूर्य ससार के चहुँ ओर व्याप्त हैं। वे जगत के द्रष्टा महान ज्ञानी और पूजने योग्य हैं। वे मेरे वचन को सुनें ॥ ४४ ॥

पृथ्वी समुद्र और अन्तरिक्ष में अपनी दीप्ति द्वारा व्याप्त

सूर्य सबके कर्मों के द्रष्टा हैं। उनकी कीर्ति सब ओर व्याप्त है। वे श्रेष्ठ विद्यावान और पूजनीय हैं। वे मेरे वचनों को सुनें ॥ ४५ ॥

गौ की भाँति आने वाली उषा के समय यह अग्नि मनुष्य की समिधाओं द्वारा ज्ञातव्य होते हैं। इनकी उर्ध्वगामी किरणें स्वर्ग की ओर शीघ्रता से गमन करती हैं। मैं उन्हीं सूर्य का आश्रय ग्रहण करता हूँ ॥४६॥

सूक्त ३ (तीसरा अनुवाक)

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—अध्यात्मम्, रोहित, आदित्य। छन्द - कृति, अष्टित्रिष्टुप्)

य इमे द्यावापृथिवी जजान यो द्रापिं कृत्वा भुवनानि वस्ते ।
यस्मिन् क्षियन्ति प्रदिशः षडुर्वीर्याः पतङ्गो अनु विचाकशीति ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद्वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ १ ॥
यस्माद् वाता ऋतुथा पवन्ते यस्मात् समुद्रा अधि विक्षरन्ति ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद्वेपय रोहित प्रक्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ २ ॥
यो मारयति प्राणयति यस्मात् प्राणन्ति भुवनानि विश्वा ।
उद् वेपय रोहित प्रक्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥३॥
यः प्राणेन द्यावा पृथिवी तर्पयत्यपानेन समुद्रस्य जठरं यः पिपर्ति ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्रक्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ ४ ॥
यस्मिन् विराट् परमेष्ठी प्रजापति रग्निर्वैश्वानरः सह
पङ्क्त्या श्रितः ।
यः परस्य प्राणं परमस्य तेज आददे ।

तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥५॥
यस्मिन् षड्उर्वीः पञ्च दिशो अधि श्रिताश्चतस्र आपो यज्ञस्य त्रयोऽक्षराः ।
यो अन्तरा रोदसी क्रुद्धश्चक्षुषैक्षत ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥६॥
यो अन्नादो अन्नपतिर्बभूव ब्रह्मणस्पतिरुत यः ।
भूतो भविष्यद् भुवनस्य यस्पतिः ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥७॥
अहोरात्रैर्विमितं त्रिंशदङ्गं त्रयोदशं मासं यो निर्मिमीते ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥८॥
कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत् पतन्ति ।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्य ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥९॥
यत् ते चन्द्रं कश्यप रोचनावद् यत् संहितं पुष्कलं चित्रभानु ।
यस्मिन्त्सूर्या आर्पिताः सप्त साकम् ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥१०॥

इस द्यावा पृथ्वी को जिन्होंने उत्पन्न किया, जो समस्त लोकों को आवृत्त करते हैं जिनमें छः उर्वियाँ और दिशाएँ स्थित हैं तथा जिन दिशाओं को वे ही दीप्यमान करते [illegible] [illegible] [illegible] जो [illegible] करता है

या विज्ञ ब्राह्मण की हत्या करता है, उस ब्राह्मण को हे रोहित देव ! तुम कम्पित करो तथा उसे क्षीण करते हुए बंधन में ग्रस्त कर लो ॥ १ ॥

जिस देवता के प्रभाव से ऋतु अनुसार वायु प्रवाहित होती है तथा समुद्र प्रभावित होते हैं ऐसे क्रोधित सूर्य का जो तिरस्कार करता या विज्ञ ब्राह्मण की हत्या करता है उस ब्रह्मज्य को ही हे रोहित देव ! कम्पायमान करते हुए क्षीण करो और बन्धन मे ग्रसित करलो ॥ २ ॥

जो मनुष्य में प्राण भरते हैं, जो मनुष्यो की हिंसा करते हैं, जिनके द्वारा सब प्राणी श्वास प्रश्वास लेते हैं, उन क्रोधित देवता का जो अपमान करता है, जो विद्वान ब्राह्मण की हत्या करता है उस ब्रह्मज्य को हे रोहित देव ! कम्पायमान करते हुए क्षीण करो एव बन्धन में बांध लो ॥ ३ ॥

जो देवता, प्राण, आकाश एव पृथ्वी को तुष्ट करता और अपमान से समुद्र के पेट को पालता है उन क्रोधित देवता के अपराधी और विद्वान ब्राह्मण के हिंसा करने वाले ब्रह्मज्य को हे रोहित देव ! कम्पित करते हुए क्षीण करो और बन्धन मे बाँध लो ॥ ४ ॥

जिसमे विराट परमेष्टी वैश्वानर पक्ति, प्रजा और अग्नि सहित वास करते है जिसने प्राण और श्रेष्ठ तेज को धारण किया है, उन क्रोध में भरे देवता के अपराधी और विद्वान ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहित देव । कम्पित करते हुए क्षीण करो बन्धन मे डालो ॥ ५ ॥

पाँच दिशाऐं, छ उर्वियाँ चार जल और यज्ञ के तीन अक्षर जिसके आश्रयभूत है, जो द्यावा पृथ्वी के मध्य में अपने

क्रुद्ध पूर्ण नेत्रों से देखता है, उन क्रोधवन्त रोहितदेव के अपराधी और विद्वान ब्राह्मण की हिंसा करने वाले ब्रह्मज्य को हे देव! कम्पायमान करते हुए क्षीण करो और अपने पाश में बाँध लो ॥ ६ ॥

जो ब्रह्मण स्पति हैं जो अन्न के पालक और भक्षक भी हैं, जो भूत भवितव्य और भुवनो के स्वामी हैं उन क्रोधवन्त देवता के अपराधी और विद्वान ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे र हित देव! कम्पित करते हुए क्षीण करो और अपने पाश मे बाध लो ॥ ७ ॥

जिन्होंने तीस दिन रात्रि का समूह बनाकर तेरहवें अधिक मास को बनाया, ऐसे क्रोधवन्त देव के तिरस्कारक और विद्वान ब्राह्मण से हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहित देव! कम्पायमान करो और उसे क्षीण करते हुए अपने पाशों मे बांध लो ॥ ८ ॥

सूर्य की सुन्दर किरणें जल को सोख कर स्वर्ग को जाती और दक्षिणायन में जल स्थान से वापिस होती हैं। उन क्रोधित देवता के अपराधी और विद्वान ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहित देव! कम्पायमान करते हुए क्षीण करो एव अपने बन्धन में बांध लो ॥ ९ ॥

हे कश्यप! तुम्हारे रोचमान चित्रभानु मे सप्त सूर्य संयुक्त हैं। ऐसे क्रोधवन्त देव के तिरस्कार और विद्वान ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहित देव। कम्पित करते हुए उसे क्षीण करो और अपने बन्धन मे बाध लो ॥ १० ॥

बृहदेनमनुवस्ते पुरस्ताद् रथन्तरं प्रति गृह्णाति पश्चात्।
ज्योतिर्वसाने सदमप्रमादम् ।

तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ ११ ॥

बृहदन्यतः पक्ष आसीद् रथन्तरमन्यतः सबले सध्रीची ।
यद् रोहितमजनयन्त देवाः ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ १२ ॥

स वरुणः सायमग्निर्भवति स मित्रो भवति प्रातरुद्यन् ।
स सविता भूत्वान्तरिक्षेण याति स इन्द्रो भूत्वा तपति मध्यतो दिवम् ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ १३ ॥

सहस्राह्ण्यं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम् ।
स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य सम्पश्यन् याति भुवनानि विश्वा ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ १४ ॥

अयं स देवो अप्स्वन्तः सहस्रमूलः पुरुशाको अत्रिः ।
य इदं विश्वं भुवनं जजान ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ १५ ॥

शुक्रं वहन्ति हरयो रघुष्यदो देवं दिवि वर्चसा भ्राजमानम् ।

यस्योर्ध्वा दिवं तन्वस्तपन्त्यर्वाङ् सुवर्णैः पटरैर्वि भाति ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मण जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ १६ ॥

येनादित्यान् हरितः संवहन्ति येन यज्ञेन बहवो यन्ति प्रजानन्तः ।
यदेकं ज्योतिर्बहुधा विभाति ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं, ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ १७ ॥

सप्त युञ्जति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा ।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ १८ ॥

अष्टधा युक्तो वहति वह्निरुग्रः पिता देवानां जनिता मतीनाम् ।
ऋतस्य तन्तुं मनसा मिमानः सर्वा दिशः पवते मातरिश्वा ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मण जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ १९ ॥

सम्यञ्चं तन्तुं प्रदिशोऽनु सर्वा अन्तर्गायत्र्याममृतस्य गर्भे ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मण जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ २० ॥

जिसके समान मति होकर वृहत आवृत्त करता और रथन्तर उसे धारण करता है, यह दोनों ही दीप्तियों से सदा आच्छादित रहते हैं । ऐसे क्रोधित देव के तिरस्कारक और

विद्वान ब्राह्मण की हिंसा करने वाले ब्रह्मज्य को हे रोहित देव ! तुम कम्पित करते हुए उसे क्षीण करो और अपने पाशों मे जकड लो ॥ ११ ॥

देवगणों द्वारा रोहित को जन्म देते समय ब्रहत एक और रथन्तर और दूसरी ओर से पक्ष हुआ। यह दोनों ही महान पराक्रमी और सध्रोची है। ऐसे क्रोधवन्त देव के अपमान कर्ता और विद्वान ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहित देव ! कम्पायमान करते हुए क्षीण करो और अपने पाशो में जकड लो ॥ १२ ॥

वह वरुण म यकाल अग्नि होता और प्रातःकाल प्रकट होता हुआ सखा रूप हो जाता है। वह सविता रूप से अन्तरिक्ष मे और इन्द्र रूप से स्वर्ग में प्रतिष्ठित होता है। ऐसे क्रोधवन्त देव के अपमान कर्ता एव विद्वान ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहित देव ! कम्पायमान करते हुए उसे क्षीण करो एव उसे अपने पाशो मे जकड लो ॥ १३ ॥

इस पाप विनाशक, स्वर्गगामी सूर्य के दोनो अयन सहस्रों दिवस तक नियम बद्ध रहते हैं। यह सब देवताओं को स्वयं में लीन करके सब जीवो को देखते हुए गमन करते हैं। ऐसे क्रोधित देव के तिरस्कारक एव विद्वान ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहित देव ! कम्पायमान करते हुए उसे क्षीण करो एव अपने पाशो में जकड़ लो। १४ ॥

सब लोकों को जिसने दीप्यमान किया वे देव जल में निवास करते हैं। वही सहस्रों के मूल रूप और तीनों तापों से मुक्त अग्नि हैं। ऐसे क्रोधयुक्त देव का अपराधी एवं विद्वान ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहित देव ! तुम कम्पायमान

करते हुए क्षीण करो एव उसे अपने पाशों मे जकड़ लो ॥ १५ ॥

स्वग मे अपन तेज से प्रकाशित हुए सूर्य को उनकी तीव्र-गामिनी रश्मियाँ निमल रस प्राप्त कराती हैं, उनके ऊर्ध्व देह भाग रूप किरणें स्वग को ऊष्णता प्रदान करती हैं और जो स्वर्णिम किरणो द्वारा प्रकाश फैलाते हैं उन क्रोधवन्त देव का अपमान कर्ता और विद्वान ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहित देव ! तुम कम्पायमान करते हुए क्षीण करो और पाशों में जकड लो ॥१६॥

जिनस प्रभावित होकर सूर्य के अश्व सूय का वाहन करते और जिनसे प्रभावित होकर विद्वान यज्ञादि कर्मों की ओर प्रवृत्त होते हैं, जो एक ज्योति रूप होते हुए भी अनेक रूप से दीप्यमान हैं। ऐसे क्रोधवन्त देव के तिरस्कारक और विद्वान ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहित देव ! कम्पायमान करते हुए क्षीण करो और अपने बन्धन में जकड लो। १७ ॥

खिसकने वाली किरणें अन्य दीप्तियों को तेजरहित करके रथ चक्र वाले सूर्य के रथ मे युक्त होती हैं। यह सूर्य सप्त ऋषियों द्वारा नमस्कार प्राप्त कर विचरण करते हैं। वह ग्रीष्म वर्षा और हेमन्त, इन तीन ऋतुओं वाले वर्ष को बनाते हैं। सब लोक इसी वात के आश्रय म रहते हैं। ऐसे इन क्रोधवन्त देवता के अपराध कर्ता और विद्वान ब्राह्मण की हिंसा करने वाले ब्रह्मज्य का हे रोहित देव ! कम्पायमान करते हुए क्षीण करो और उसे अपने बन्धन में बाँध लो ॥ १८ ॥

आठ प्रकार से प्रवाहित होने वाले वह्नि उग्र हैं वे देवताओं के पोषणकर्त्ता और बुद्धियों को उत्पन्न करते हैं और

जल का परिमाण करते हुए वायु समस्त दिशाओं को पवित्र करते हैं। ऐसे इन क्रोधवन्त देवता के तिरस्कार और विद्वान ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहित देव ! कम्पायमान करते हुए क्षीण करो और पाशों से बांधो ॥ १९ ॥

गायत्री, अमृत गर्भ और समस्त दिशाओं में पूजनीय जल तन्तु को वायु शुद्ध करते हैं। उन क्रोधित देव के अपमान कर्ता और विद्वान ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहित देव ! कम्पायमान करते हुए तुम उसे क्षीण करो और अपने पाशों से बांध लो ॥ २० ॥

निम्रुचस्तिस्रो व्युषो ह तिस्रस्त्रीणि रजांसि दिवो अङ्ग तिस्रः ।
विद्मा ते अग्ने त्रेधा जनित्रं त्रेधा देवानां जनिमानि विद्म ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ २१ ॥

वि य और्णोत् पृथिवीं जायमान आ समुद्रमदधादन्तरिक्षे ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ २२ ॥

त्वमग्ने क्रतुभिः केतुभिर्हितोऽर्कः समिद्ध उदरोचथा दिवि ।
किमभ्यार्चन्मरुतः पृश्निमातरो यद् रोहितमजनयन्त देवाः ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ २३ ॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
योऽस्येशे द्विपदो यश्चतुष्पदः ।

तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ २४ ।

एकपाद् द्विपदो भूयो वि चक्रमे द्विपात् त्रिपादमभ्येति पश्चात् ।
चतुष्पाच्चक्रे द्विपदामभिस्वरे स यश्यन् पङ्क्तिमुपतिष्ठमानः ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ २५ ॥

कृष्णायाः पुत्रो अर्जुनो रात्र्या वत्सोऽजायत ।
स ह द्यामधि रोहति रुहो रुरोह रोहितः ॥ २६ ॥

हे अग्ने ! हम तुम्हारी तीनो उत्पत्तियो से परिचित हैं। तुम्हारी तीन गतियाँ भस्म करने वाली हैं। हम तीनो लोको और स्वर्ग के तीनो पदो को भी जानते है। ऐसे उन क्रोधित देवता के अपमान कर्ता और विद्वान ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहित देव ! कम्पायमान करते हुए क्षीण करो और अपने बन्धन मे जकड लो ॥ २१ ॥

जो उत्पन्न होकर भूमि को आवृत्त करता और जल को अन्तरिक्ष मे स्थित करता है ऐसे उन क्रोधित देव के तिरस्कारक और विद्वान ब्राह्मण की हिंसा करने वाले ब्रह्मज्य को हे रोहित देव। तुम कम्पायमान करते हुए क्षीण करो और अपने वन्धनो में उसे बाँध लो ॥ २२ ॥

हे अग्ने ! तुम ज्ञान यज्ञो में प्रदीप्त किये जाते हो और स्वर्ग में अर्चन साधन रूप होते हो। वरुण प्रश्निम तृक मरुद्गणों ने तुम्हारी उपासना की थी तथा वे देवता रोहित से मिले थे ? ऐसे उन क्रोधित देवता के अपमानकर्ता और विद्वान ब्राह्मण के

हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहित देव ! तुम कम्पित करते हुए क्षीण करो और उसे अपने पाशों से बांध लो ॥ २३ ॥

शक्ति प्रदाता, आत्म बल प्रेरक, जिनके बल की देवता पूजा करते हैं और जो प्राणमात्र के ईश्वर हैं, ऐसे क्रोधित देव के अपमानकर्ता और विद्वान ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहित देव! तुम कम्पायमान करते हुए क्षीण करो और उसे अपने पाशों में बाँध लो ॥ २४ ॥

एक पाद द्विपादों में, द्विपाद त्रिपादों मे और फिर द्विपाद षट्पादों मे विक्रमण करता है, वे एक पादात्मक ब्रह्म को उपासना करते हैं। ऐसे उन क्रोधित देव के अपराधी और विद्वान ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहित देव! तुम कम्पायमान करते हुए उसे क्षीण करो और उसे अपने बन्धनों में जकड़ लो ॥ २५ ॥

काली निशा का पुत्र अर्जुन सूर्य हुआ वह आकाश मे चढ़ता है और वही रोहित रोहणशील पदार्थों पर आरूढ़ होता है ॥ २६ ॥

सूक्त ४ (१) चौथा अनुवाक

(ऋषि– ब्रह्मा। देवता अध्यात्मम्। छन्द—अनुष्टुप् गायत्री; उष्णिक्)

स एति सविता स्वर्दिवस्पृष्ठेऽवचाकशत् ॥ १ ॥
रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥ २ ॥
स धाता स विधर्ता स वायुर्नभ उच्छ्रितम् ।
रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥ ३ ॥
सोऽर्यमा स वरुण स रुद्रः महादेवः ।
रश्मिभिर्नभ आभृत महेन्द्र एत्यावृतः ॥ ४ ॥

सो अग्निः स उ सूर्यः स उ एव महायमः ।
रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥ ५ ॥
तं वत्सा उप तिष्ठन्त्येकशीर्षाणो युता दश ।
रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥ ६ ॥
पश्चात् प्राञ्च आ तन्वन्ति यदुदेति वि भासति ।
रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥ ७ ॥
तस्यैष मारुतो गणः स एति शिक्याकृतः ॥ ८ ॥
रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः । ९ ॥
तस्येमे नव कोशा विष्टम्भा नवधा नवधा हिताः ॥ १० ॥
स प्रजाभ्यो वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न ॥ ११ ॥
तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव ॥ १२ ॥
एते अस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति ॥ १३ ॥

वही सूर्य आकाश के पृष्ठ पर दीप्यमान होते हुए पधारते हैं ॥ १ ॥

इन्होंने अपनी किरणों से आकाश को आवृत कर लिया और वे किरणों से युक्त होकर उदय हो रहे हैं ॥ २ ॥

वही धाता, विधर्ता वायु और अच्छिद्र आकाश हैं ॥ ३ ॥

वही अर्यमा, वही वरुण वही रुद्र और वही महादेव हैं ॥ ४ ॥

वही अग्नि, वही सूर्य और वही महान यम हैं ॥ ५ ॥

एक सिर वाले दस वत्स उन्हीं की पूजा करते हैं ॥ ६ ॥

वह प्रकट होते ही चमकने लगते हैं और पीछे से उनकी पूजनीय किरणें उनके चारों ओर व्याप्त हो जाती हैं ॥ ७ ।

छींके के आकार वाला इनका एक ही गण मारुत आ रहा है ॥ ८ ॥

इन्होंने अपनी किरणों से आकाश को आवृत कर लिया है, यह महान इन्द्र के द्वारा किरणों से ढके हुए पधार रहे हैं ॥ ९ ॥

उनके विष्टम नौ, कोश नौ, प्रकार से ही अवस्थित हैं ॥ १० ॥

वह चल अचल सब प्रजाओं के द्रष्टा और सभी के साक्षी हैं ॥ ११ ॥

यह सब उसे ही प्राप्त होता है, वह एक वृत्त अकेला एक है ॥ १२ ॥

सब देवता इन एक को ही वरण करते हैं ॥ १३ ।

सूक्त ४ (२)

(ऋषि – ब्रह्मा । देवता – अध्यात्मम् । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति, अनुष्टुप; गायत्री, उष्णिक्)

कीर्तिश्च यशश्चाम्भश्च नभश्च ब्राह्मणवर्चसं चान्नं चान्नाद्यं च ॥ १४ ॥

य एतं देवमेकवृतं वेद ॥ १५ ॥

न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते । य एतं देवमेकवृतं वेद ॥ १६ ॥

न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते । य एतं देवमेकवृतं वेद ॥ १७ ॥

नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते । य एतं देवमेकवृतं वेद ॥ १८ ॥

स सर्वस्मै वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न ।
य एतं देवमेकवृतं वेद ॥ १९ ॥

तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव ।
य एतं देवमेकवृतं वेद ॥ २० ॥

सर्वे अस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति ।
य एतं देवमेकवृतं वेद ॥ २१ ॥

कीर्ति, यश, आकाश जल, ब्रह्मतेज, अन्न और अन्न को पचाने की क्रिया उसे ही प्राप्त होती है जो इन एकवृत से परिचित है ॥ १४-१५ ॥

इन एक वृत का जानने वाला द्वितीय तृतीय या चतुर्थ नहीं कहलाता है ॥ १६ ॥

इन वृत का जानने वाला पंचम षष्ठ या सप्तम नहीं कहलाता ॥ १७ ॥

जो इन एक वृत को जानता है, वह अष्टम या नवम् नहीं कहलाता ॥ १८ ॥

इन एक व्रत का जानने वाला चल अचल सभी का द्रष्टा होता है । १९ ॥

यह अलौकिक एक वृत ही है, यह सब उसे ही प्राप्त होते हैं ॥ २० ॥

इनमें सभी देवता एक वृत कहलाते हैं ॥ २१ ॥

सूक्त ४ (३)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता-अध्यात्मम् । छन्द-त्रिष्टुप्, गायत्री, पंक्ति, अनुष्टुप)

ब्रह्म च तपश्च कीर्तिश्च यशश्चाम्भश्च नभश्च ब्राह्मणवर्चसं चान्नं-चान्नाद्यं च य एतं देवमेकवृतं वेद ॥ २२ ॥
भूतं च भव्यं च श्रद्धा च रुचिश्च स्वर्गश्च स्वधा च ॥ २३ ॥
य एतं देवमेकवृतं वेद ॥ २४ ॥
स एव मृत्युः सोमृतं सोभ्व्यं स रक्षः ॥ २५ ॥
स रुद्रो वसुवनिर्वसुदेये नमोवाके वषट्कारोऽनु संहितः ॥ २६ ॥
तस्येमे सर्वे यातव उप प्रशिषमासते ॥ २७ ॥
[illegible]

ब्रह्म, तप, कीर्ति, यश जल, आकाश ब्रह्मतेज अन्न और अन्न पचाने की क्रिया ॥ २२ ॥

भूत भविष्य श्रद्धा रुचि स्वर्ग और स्वधा ॥ २३ ॥

एक वृत के जानने वाले को उक्त सभी प्राप्य है ॥ २४ ॥

वही मृत्यु अमृत, अभ्व और वही राक्षस है ॥ २५ ॥

वही रुद्र वसुओ मे वसुवानि और नमस्कार युक्त वाणी मे वषटकार है ॥ २६ ॥

सभी कष्टो को देने वाले भी उनकी ही आज्ञा में चलते हैं ॥ २७ ॥

चन्द्रमा सहित यह सब नक्षत्र भी उसी के अधीन रहते हैं ॥ २८ ॥

सूक्त ४ (४)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता-अध्यात्मम् । छन्द-गायत्री, अनुष्टुप्, उष्णिक्, बृहती)

स वा अह्नोऽज यत तस्मादहरजायत ॥ २९ ।
स वै रात्र्या अजायत तस्माद् रात्रिरजायत ॥ ३० ॥
स वा अन्तरिक्षा-जायत तस्मादन्तरिक्षमजायत ॥ ३१ ॥
स वै वायोरजायत तस्माद् वायुरजायत ॥ ३२ ॥
स वै दिवोऽजायत तस्माद् द्यौरध्यजायत ॥ ३३ ॥
स वै दिग्भ्योऽजायत तस्माद् दिशोऽजायन्त ॥ ३४ ॥
स वै भूमेरजायत तस्माद् भूमिरजायत ॥ ३५ ॥
स वा अग्ने रजायत तस्मादग्निरजायत ॥ ३६ ॥
स वा अद्भ्योऽजायत तस्मादापोऽजायन्त ॥ ३७ ॥
स वा ऋग्भ्योऽजायत तस्मादृचोऽजायन्त ॥ ३८ ॥
स वै यज्ञादजायत तस्माद् यज्ञोऽजायत ॥ ३९ ॥

स यज्ञस्तस्य यज्ञः स यज्ञस्य शिरस्कृतम् ॥ ४० ॥
स स्तनयति स वि द्योतते स उ अश्मानमस्यति ॥ ४१ ॥
पापाय वा भद्राय वा पुरुषायासुराय वा ॥ ४२ ॥
यद्वा कृणोष्योषधीर्यद्वा वर्षसि भद्रया यद्वा जन्यमवीवृधः ॥ ४३ ॥
तावांस्ते मघवन् महिमोपो ते तन्वः शतम् ॥ ४४ ॥
उपो ते बद्धे बद्धानि यदि वासि न्यर्बुदम् ॥ ४५ ॥

वह दिन से तथा दिन उनसे उत्पन्न हुआ ॥ २९ ॥

रात्रि भी उनसे प्रकट हुई तथा वे रात्रि से उत्पन्न हुए ॥ ३० ॥

अन्तरिक्ष उनसे उत्पन्न हुआ, तथा वे अन्तरिक्ष से प्रकट हुए ॥ ३१ ॥

वायु से वे प्रकट हुए तथा वायु उनसे उत्पन्न हुआ ॥ ३२ ॥

आकाश से वे प्रकट हुए और आकाश उनसे प्रकट हुआ ॥ ३३ ॥

दिशाओं से वे उत्पन्न हुए और उनसे दिशाएं उत्पन्न हुईं ॥ ३४ ॥

पृथ्वी उनसे प्रकट हुई और वे पृथ्वी से प्रकट हुए ॥ ३५ ॥

अग्नि से वे उत्पन्न हुए और उनसे अग्नि उत्पन्न हुआ ॥ ३६ ॥

जल उनसे प्रकट हुआ और वे जल से प्रकट हुए ॥ ३७ ॥

वे ऋचाओं से उत्पन्न हुए तथा ऋचाएं उनसे उत्पन्न हुईं ॥ ३८ ॥

यज्ञ से वे उत्पन्न हुए तथा उनसे यज्ञ प्रकट हुआ ॥ ३९ ॥

यज्ञ उनका है वे यज्ञ एवं यज्ञ के शीर्ष रूप हैं ॥ ४० ॥

वही चमकते और कड़कते हैं वही उपल गिराते हैं ॥ ४१ ॥

तुम दुष्टों को सज्जन पुरुषों को, राक्षसों को और औषधियों को उत्पन्न करते हो, मंगलमयी वृष्टि रूप में बरसते और उत्पन्न हुओं की वृद्धि करते हो ॥ ४२ ४३ ॥

तुम मघवन हो, तुम सैंकड़ो शरीरों से मुक्त हो और महिमा द्वारा महान हो ॥ ४४ ॥

तुम सैंकड़ो बँधे हुओं के बांधने वाले तथा अन्त रहित हो ॥ ४५ ॥

सूक्त ४ (५)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता-अध्यात्मम् । छन्द गायत्री, उष्णिक्, बृहती; अनुष्टुप्)

भूयानिन्द्रो नमुराद् भूयानिन्द्रासि मृत्युभ्यः ॥ ४६ ॥
भूयानरात्याः शच्याः पतिस्त्वमिन्द्रासि विभूः प्रभूरिति-त्वोपास्महे वयम् ॥ ४७ ॥
नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ॥ ४८ ॥
अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥ ४९ ॥
अम्भो अमो महः सह इति त्वोपास्महे वयम् ।
नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ।
अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥ ५० ॥
अम्भो अरुण रजतं रजः सह इति त्वोपास्मह वयम ।
नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ।
अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥ ५१ ॥

वे इन्द्र नमुर से महान हैं। हे इन्द्र ! तुम मृत्यु के कारणों से भी श्रेष्ठ हो ॥ ४६ ॥

हे इन्द्र ! तुम दान प्रतिबंधिका शक्ति से भी उत्कृष्ट हो,

तुम परम ऐश्वर्यवान और अदिति हो। हम तुम्हारी उपासना करते हैं ॥ ४७ ॥

हे इन्द्र ! मुझे कीर्ति, तेज और ब्रह्मतेज से देखो। तुमको नमस्कार है ॥ ४८-४६ ॥

जल, पौरुष, महत्ता और सम्पन्नता के रूप में हम तुम्हारी उपासना करते हैं ॥ ५० ॥

जल, अरुण, रजत, रज और सहस्व में हम तुम्हारी पूजा करते हैं। तुम हमको अन्नवान होकर देखो। हम तुम्हें नमस्कार करते हैं ॥ ५१ ॥

सूक्त ४ (६)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—अध्यात्मम् । छन्द-अनुष्टुप्, गायत्री, उष्णिक्, बृहती)

उरुः पृथु सुभूर्भुव इति त्वोपास्महे वयम् ।
नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ।
अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥ ५२ ॥
प्रथो वरो व्यचो लोक इति त्वोपास्महे वयम् ।
नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ।
अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥ ५३ ॥
भवद्वसुरिद्वसु: संयद्वसुरायद्वसुरिति त्वोपास्महे वयम् ॥ ५४ ॥
नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ॥ ५५ ॥
अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥ ५६ ॥

उरु, पृथु सुभू और भुव रूप में हम तुम्हारी पूजा करते हैं ॥ ५२ ॥

प्रथ, वर, व्यच तथा लोक रूप में हम तुम्हारी पूजा करते हैं ॥ ५३ ॥

भवश्वम्, इन्द्रम्, सप्तम्म् और आपदवम् के रूप म हम तुम्हारी पूजा करते हैं ॥ ५४ ॥

हे इन्द्र ! मुझे अन्न, यश, तेज और ब्रह्मतेज से देखो। तुम्हारे निमित्त मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ५५-५६ ॥

॥ त्रयोदशं काण्डं समाप्तम् ॥

चतुर्दश काण्ड

सूक्त १ (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि - सावित्री सूर्या । देवता—आत्मा, सोमः, विवाहः, वधूवासः संस्पर्शमोचनम्, विवाहमन्त्राशिष । छन्द—अनुष्टुप्; पङ्क्ति, त्रिष्टुप् जगती, जगती; बृहती; उष्णिक्)

सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः ।
ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधि श्रितः ॥ १ ॥
सोमेनादित्या बलिनः सोमेन पृथिवी मही ।
अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः ॥ २ ॥
सोमं मन्यते पपिवान् यत् संपिषन्त्योषधिम् ।
सोमं यं ब्रह्माणो विदुर्न तस्याश्नाति पार्थिवः ॥ ३ ॥
यत् त्वा सोम प्रपिबन्ति तत आ प्यायसे पुनः ।
वायुः सोमस्य रक्षिता समानां मास आकृतिः ॥ ४ ॥
आच्छद्विधानैर्गुपितो बार्हतैः सोम रक्षितः ।
ग्राव्णामिच्छृण्वन् तिष्ठसि न ते अश्नाति पार्थिवः ॥ ५ ॥
चित्तिरा उपबर्हणं चक्षुरा अभ्यञ्जनम् ।
द्यौर्भूमिः कोश आसीद् यदयात् सूर्या पतिम् ॥ ६ ॥

रैभ्यासीदनुदेयी नाराशंसी न्योचनी ।
सूर्याया भद्रमिद् वासो गाथयैति परिष्कृता ॥ ७ ॥
स्तोमा आसन् प्रतिधयः कुरीरं छन्द ओपशः ।
सूर्याया अश्विना वराग्निरासीत् पुरोगवः । ८ ॥
सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा ।
सूर्यां यत् पत्ये शंसन्तीं मनसा सवितादवात् ॥ ९ ॥
मनो अस्या अन आसीत् द्यौरासीदुत च्छदिः ।
शुक्रावनड्वाहावास्तां यदयात् सूर्या पतिम् । १० ॥

सत्य के कारण ही पृथ्वी सूर्य और आकाश में चन्द्रमा स्थित हैं। सूर्य से आकाश स्थित है ॥ १ ॥

सोम के कारण यह पृथ्वी उपासनीय है उन्हीं से सूर्य बलयुक्त है। इसीकारण यह सोम नक्षत्रों के समीप स्थित हैं॥ २ ॥

जो सोमरूप औषधि को पीसकर पीते हैं वे अपने को सोमपायी समझते हैं। यह सोमयाग ही सोम नहीं है। ज्ञानीजन जिस सोम के ज्ञाता हैं, उसे साधारण प्राणी भक्षण नहीं कर सकते ॥ ३ ॥

हे सोम ! लोग तुम्हारा पान करते हैं फिर भी तुम वृद्धि को प्राप्त होते रहते हो। संवत्सरों से मास रूप वायु इस सोम का रक्षण करता है ॥ ४ ॥

हे सोम ! बृहती छन्दात्मक कर्मों से तथा अन्य छन्द विधानों से तुम रक्षित हो, और सोम कूटने के पाषाण के शब्द से स्थिर होते हो। संसारी जीव तुम्हारा सेवन करने में असमर्थ हैं ॥ ५ ॥

जब सूर्या पति के निकट पहुँची, तब ज्ञान उपबर्हण, चक्षु अभ्यंजन और द्यावा पृथ्वी कोष बने ॥ ६ ॥

न्योचिनी रैम्या सूर्या के साथ गई। वह गाथाओं से सजकर सूर्या के वस्त्रों को लेकर चलती थी ॥ ७ ॥

उस समय छन्द स्तोत्र के लक्षण वेश जाल बने स्तुतियाँ प्रतिधि हुए, अग्नि पुरोगव और अश्विनीकुमार सूर्या के पति हुए ॥ ८ ॥

पति की इच्छा रखने वाली सूर्या को जब सूर्य ने प्रदान किया तो सोम वधूयु हुए और अश्विनीकुमार वर हुए ॥ ९ ॥

जब सूर्या का पति से साक्षात्कार हुआ तब मन रथ हुआ, शुभ्रना वृषभ तथा द्यौ गृह हुए ॥ १० ॥

ऋक्सामाभ्यामभिहितौ गावौ ते सामनावितान् ।
श्रोत्रे ते चक्रे आस्तां दिवि पन्थाश्चराचरः ॥ ११ ॥
शुची ते चक्रे यात्या व्यानो अक्ष आहतः ।
अनो मनस्मयं सूर्यारोहत् प्रयति पतिम् ॥ १२ ॥
सूर्याया वहतुः प्रागात् सविता यमवासृजत् ।
मघासु हन्यन्ते गाव फल्गुनीषु व्युह्यते ॥ १३ ॥
यदश्विना पृच्छामानावयात त्रिचक्रेण वहतुं सूर्यायाः ।
क्वैकं चक्रं वामासीत क्व देष्ट्राय तस्थथु ॥ १४ ॥
यदयातं शुभस्पती वरेयं सूर्यामुप ।
विश्वे देवा अनु तद् वाम जानन् पुत्रः पितरमवृणीत पूषा ॥ १५ ॥
द्वे ते चक्रे सूर्ये ब्रह्माण ऋतुथा विदु ।
अथैकं चक्रं यद गु[illegible]हातद् इद् विदु ॥ १६ ॥
अर्यमणं यजामहे सुबन्धुं पतिवेदनम्
उर्वारुकमिव बन्धनात् प्रेतो मुञ्चामि नामुतः ॥ १७ ॥
प्रेतो मुञ्चामि नामतः सुबद्धाममुतस्करम् ।
यथेयमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगासति ॥ १८ ॥

प्रत्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद् येन त्वाबध्नात् सविता सुशेवाः।
ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोके स्योनं ते अस्तु सहसं
भलायै ॥ १९ ॥
भगस्त्वेतो नयतु हस्तगृह्याश्विना त्वा प्र वहतां रथेन।
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमा
वदासि ॥ २० ॥

ऋक साम से अभिहित दो गौ-साम प्राप्त हुए। आकाश के मार्ग ने उन्हें तेरे कान बनाया ॥ ११ ॥

हे सूर्य! दीप्यमान सूर्य और चन्द्रमा चक्र तथा व्यान अक्ष बने। तब तू मनस्मय रथ पर चढ़ कर स्वामी गृह को गमन करने लगी ॥ १२ ॥

सविता ने सूर्या को दहेज दिया। फाल्गुनी नक्षत्र में वृषभों से रथ को वहन कराया जाता तथा मघा नक्षत्र में उन्हें चलाया जाता है ॥ १३ ॥

हे अश्विनी कुमारो! जब तुम सूर्या का वहन करनेके लिए अपने तीन चक्र वाले रथ से पधारे थे जब तुमसे प्रश्न किया गया था कि तुम्हारा एक पहिया कहाँ है? तुम अपने अपने कर्मों में व्यस्त हुओ में से किनके पास ठहरे थे? हे अश्विनी कुमारों! सूर्या को उत्कृष्ट जान कर जब तुम उससे विवाह करने को पधारे तब विश्वेदेवों ने तुम्हें जाना और नरक से रक्षा करने वाले सूर्य ने पालक का वरण किया ॥ १५ ॥

हे सूर्य! तेरे दोनों पहिए ऋतु अनुसार ब्राह्मणों द्वारा जाने जाते हैं। तेरे एक गूढ चक्र के जानने वाले विद्वान ही हैं ॥ १६ ॥

श्रेष्ठ बन्धु-बान्धवों से युक्त रखने वाले और पति प्राप्त कराने वाले अर्यमा देव को हम उपासना करते हैं। ककड़ी के

डंठल से पृथक होने के समान मैं इस कन्या को यहाँ पृथक करता हूँ परन्तु इसे पतिकुल से अलग नही करता ॥ १७ ॥

मैं इसे अलग करता हूँ, पतिकुल से भली भाँति युक्त करता हूँ। हे इन्द्र ! यह कन्या सौभाग्य शालिनी और श्रेष्ठ पुत्री हो ॥ १८ ॥

सूर्य ने जिस वरुण पाश से तुझे बाँध रखा था, मैं तुझे उससे मुक्त करता हूँ। तू मिष्ट भाषिणी, सत्य रूप, उत्कृष्ट कर्मों के फल वाले लोक मे सुखी हो। १६ ॥

सौभाग्य प्रदता भग देव तेरा कर पकड़ कर और अश्विनीकुमार तुझे रथ में ले जाँय। तू अपने गृह को प्राप्त कर, पोषण करने वाली तथा सबको अपने अधीन करने वाली हो तथा मधुर भाषिणी रहे ॥ २० ॥

इह प्रियं प्रजायै ते समृध्यतामस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि ।
एना पत्या तन्वं सं स्पृशस्वाथ जिर्विर्विदथमा वदासि ॥ २१ ॥
इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम् ।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वस्तकौ ॥ २२ ॥
पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परि यातोऽर्णवम्
विश्वान्यो भुवना विचष्ट ऋतूंरन्यो विदधज्जायसे नवः ॥ २३ ॥
नवोनवो भवसि जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेष्यग्रम् ।
भागं देवेभ्यो वि दधास्यायन् प्र चन्द्रमस्तिरसे दीर्घमायुः ॥ २४ ॥
परा देहि शामुल्यं ब्रह्मभ्यो वि भजा वसु ।
कृत्यैषा पद्वती भूत्वा जाया विशते पतिम् ॥ २५ ॥
नीललोहितं भवति कृत्यासक्तिर्व्यज्यते ।
एधन्ते अस्या ज्ञातयः पतिर्बन्धेषु बध्यते ॥ २६ ॥
अश्लीला तनूर्भवति रुशती पापयामुया ।
पतिर्यद् वध्वो वाससः स्वमङ्गमभ्यूर्णुते ॥ २७ ॥

आशसन विशसनमथो अधिविकर्तनम् ।
सूर्यायाः पश्य रूपाणि तानि ब्रह्मोत शुम्भति ॥ २८ ॥
तृष्टमेतत् कटुकमपाष्ठवद् विषवन्नैतदत्तवे ।
सूर्यां यो ब्रह्मा वेद स इद् वाधूयमर्हति ॥ २९ ।
स इत् तत् स्योनं हरति ब्रह्मा वासः सुमङ्गलम् ।
प्रायश्चित्तिं यो अध्येति येन जाया न रिष्यति ॥ ३० ॥

तू अपने गृह मे गार्हपत्य अग्नि के लिए सचेष्ट रहे। अपने इस पति स्पर्श करने वाली हो। तेरी सन्तान के लिए प्रिय पदार्थ प्रवृद्ध हो। तू पूर्णायु पर्यन्त बोलने वाली हो ।२१॥

तुम दोनों साथ रहो कभी पृथक न हो जीवन पर्यन्त अनेक भांति के भोजन तुम्हें प्राप्त होते रहें। अपनी सन्तति के साथ क्रीड़ा रत हो तथा कल्याण से युक्त होते हुए सदा प्रसन्न रहो ॥ २२॥

यह सूर्य और चन्द्रमा शिशु क्रीडा सदृश्य पूर्व पश्चिम मे गमन करते हैं। इनमे से एक लोकों को देखता हुआ ऋतुओं को उत्पन्न करता और नये रूप से उदय होता है ॥ २३॥

हे चन्द्र! तुम मास मे स्थित हुए सर्वदा नूतन ही हो। अपनी कला को घटाते बढाते प्रतिपदा आदि तिथियों को बनाते हो। तुम उषाकाल में सबसे आगे आकर देवगणों को भाग देते और दीर्घ जीवन प्रदान करते हो ॥ २४॥

यह कृत्यासी पति मे प्रविष्ट होती है। हे वर! तुम शामुल्य देते हुए ब्राह्मण को धन दो ॥ २५॥

इस नीले लाल वस्त्र में कृत्या की आसक्ति उद्भूत होती है। इस वधू के प्रियजन समृद्ध होते है किन्तु पति की समृद्धि अवरुद्ध हो जाती है ॥ २६॥

वधु के वस्त्र से अपने को आवृत करने वाला पति पाप दोष का भागी होता है और उसका शरीर घृणास्पद हो जाता है ॥ १७ ॥

आशसन, विशसन, और आधी विकर्त्तन सूर्या के इन रूपों का अवलोकन करो इन्हे ब्रह्मा ही सुशोभित करता है ॥ २८ ॥

यह वस्त्र प्यास लगाता है, कटु है अपाष्ठवद् है और विष तुल्य है । सूर्या का ज्ञाता ब्रह्मा ही वधु के वस्त्र के योग्य है ॥ २९ ॥

जिस वस्त्र से प्रायश्चित होता है, जिससे पत्नी मरती नही, उस कल्याणकारी वस्त्र का धारण करने वाला ब्रह्मा है ॥ ३० ॥

युव भगं स भरत समृद्धमृतं वदन्तावृतोद्येषु ।
ब्रह्मणस्पते पतिमस्यै रोचय चारु संभलो वदतु वाचमेताम् ॥३१॥

इहेदसाथ न परो गमाथेम गाव. प्रजया वर्धयाथ ।
शुभ यतीरुस्रियाः सोमवर्चसो विश्वे देवाःक्रन्निह वो मनांसि ॥ ३२ ॥

इम गावः प्रजया स विशाथाय देवानां न मिनाति भ.गम् ।
अस्मै वः पूषा मरुतश्च सर्वे अस्मै वो धाता सविता सुवाति ॥ ३३ ॥

अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्थानो येभिः सखायो यन्ति नो वरेयम् ।
सं भगेन समर्यम्णा स धाता सृजतु वर्चसा ॥ ३४ ॥

यच्च वर्चो अक्षेषु सुरायां च यदाहितम् ।
यद् गोस्वश्विना वचस्तेनेमां वर्चसावतम् ॥ ३५ ॥

येन महानघ्न्या जघनमश्विना येन वा सुरा ।
येनाक्षा अभ्यषिच्यन्त तेनेमां वर्चसावतम् ॥ ३६ ॥

यो अनिध्मो दीदयदप्स्वन्तर्यं विप्रास ईडते अध्वरेषु ।
अपां नपान्मधुमतीरपो दा याभिरिन्द्रो वावृधे वीर्यावान् ॥ ३७ ॥
इदमहं रुशन्तं ग्राभं तनूदूषिमपोहामि ।
यो भद्रो रोचनस्तमुदचामि ॥ ३८ ॥
आस्यै ब्राह्मणाः स्नपनीर्हरन्त्ववीरघ्नीरुदजन्त्वापः ।
अर्यम्णो अग्निं पर्येतु पूषन् प्रतीक्षन्ते श्वशुरो देवरश्च ॥ ३९ ॥
शं ते हिरण्यं शमु सन्त्वापः शं मेथिर्भवतु शं युगस्य तर्द्म ।
शं त आपः शतपवित्रा भवन्तु शमु पत्या तन्वं सं स्पृशस्व ॥ ४० ॥

तुम दोनो सत्य भाषण करते हुए सौभाग्यशाली होओ। हे *ब्रह्मणस्पते ! तुम इसके लिए पति को स्वीकार करो और* वह भी अपनी अनुमति प्रकट करो ॥ ३१ ॥

तुम मत जाओ, यहाँ बैठो, यह मगल मयी गौ हैं। तुम दोनो ही सन्तान से प्रवृद्ध हो, विश्वे देवता तुम्हारे मनों को पवित्र बनावें ॥ ३२ ॥

यह गौऐं इसे प्राप्त हों। इस देवभाग को बँटवारा नहीं होना। तुम्हे पूषा मरुद्गण धाता और सविता देव भी इसको प्रेरित करें ॥ ३३ ॥

जिन पथो से हमारे मित्रगण गमन करते हैं, वे मार्ग निष्कटक और सुगम हों। धाता तुम्हे तेज और सौभाग्य प्रदान करे ॥ ३४ ॥

जो तेज गौओ मे, पाशों में और सुरा मे है उस तेज से हे अश्विद्वय ! तुम इसके रक्षक बनो ॥ ३५ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! जिस तेज मे सुरा और पाशो का अभिमिचन हुआ और जिस वर्च से जघन महान्‌न्या का, उस

जो ज्वलित न होकर भी जलों में हिंसक कर्मों से संपन्न हैं, जिसकी यज्ञों में ब्राह्मण स्तुति करते हैं और जो जलों के पोषक हैं ऐसे तुम मधुर जलों को प्रदान करो, इसी के द्वारा इन्द्र देव वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥ ३७ ॥

शरीर को दूषित करने वाले मल को मैं पृथक करता हूँ और कल्याणकारी शोधनीय पदार्थों को ग्रहण करता हूँ ॥ ३८ ॥

ब्राह्मण इसके स्नान करने के निमित्त जलों को लावें। वीरों को संहार करने वाले जल इसे प्राप्त हों। हे पूषा देव! अर्यमा से यह अग्नि प्राप्त करे। इसके ससुर और देवर इसकी प्रतीक्षा में हैं ॥ ३९ ॥

हे वधु! तेरे लिए जल मंगलमय हों, सुवर्ण सुखकारी हो अन्नकोश सुखदाता हो, सुमंगल प्राप्त करती हुई अपने पति शरीर का स्पर्श कर ॥ ४० ॥

खे रथस्य खेऽनसः खे युगस्य शतक्रतो।
अपालामिन्द्र त्रिष्पूत्वाकृणोः सूर्यत्वचम् ॥ ४१ ॥
आशासाना सौमनसं प्रजां सौभाग्यं रयिम्।
पत्युरनुव्रता भूत्वा सं नह्यस्वामृताय कम् ॥ ४२ ॥
यथा सिन्धुर्नदीनां साम्राज्यं सुषुवे वृषा।
एवा त्वं सम्राज्ञ्येधि पत्युरस्तं परेत्य ॥ ३ ॥
सम्राज्ञ्येधि श्वशुरेषु सम्राज्ञ्युत देवृषु।
ननान्दुः सम्राज्ञ्येधि सम्राज्ञ्युत श्वश्र्वाः ॥ ४४ ॥
या अकृन्तन्नवयन् याश्च तत्निरे या देवीरन्तां अभितोऽददन्त।
तास्त्वा जरसे सं व्ययन्त्वायुष्मतीदं परि धत्स्व वासः ॥ ४५ ॥
जीवं रुदन्ति वि नयन्त्यध्वरं दीर्घामनु प्रसितिं दीध्युर्नरः

यामं पितृभ्यो य इदं समीरिरे मयः पतिभ्यो जनये परिष्वजे ॥ ४६ ॥

स्योनं ध्रुवं प्रजायै धारयामि तेऽश्मानं देव्याः पृथिव्या उपस्थे।
तमा तिष्ठानुमाद्या सुवर्चा दीर्घं त आयुःसविता कृणोतु ॥ ४७ ॥

येनाग्निरस्या भूम्या हस्तं जग्राह दक्षिणम्।
तेन गृह्णामि ते हस्तं मा व्यथिष्ठा मया सह प्रजया धनेन च ॥ ४८ ॥

देवस्ते सविता हस्तं गृह्णातु सोमो राजा सुप्रजसं कृणोतु।
अग्निः सुभगां जातवेदाः पत्ये पत्नीं जरदष्टिं कृणोतु ॥ ४९ ॥

गृह्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः।
भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः ॥ ५० ॥

हे शतकर्मा इन्द्र! रथाङ्गन में तीन बार शोधित करके मैंने अपाला को सूर्य के समान चमकती हुई त्वचा से युक्त किया है ॥ ४१ ॥

तू सन्तान धन सौभाग्य और सुख की इच्छा रखने वाली होकर पति के अनुकूल रह और इस अमृतमय सुख को अपने अधीन कर। ४२ ॥

अमृत की वृष्टि करने वाला समुद्र नदियों के राज्य को पाता है, उसी भाँति तू पतिगृह को प्राप्त कर महारानी के समान हो ॥ ४३ ॥

तू ससुर देवर ननद और सास सभी में महारानी बन कर रह ॥ ४४ ॥

जिन स्त्रियों ने इस वस्त्र को कात बुन कर तैयार किया है, वे रमणियाँ मुझे जरावस्था वाली बनावें। हे आयुष्मती! तू इस वस्त्र को धारण कर ॥ ४५ ॥

कन्या रूप यज्ञ को जब पुरुष ले जाते है, सन्तानत्मक तनु वाला पुरुष कन्या का दुख करता है और कन्यापक्ष के प्राणी उसके लिए रुदन करते है। हे वधु ! इसे करने वाले पितरो को विमुख करते हैं। अत तू ससुर आदि वर पक्ष और मास पक्ष का आलिंगन कर ॥ ४६ ॥

मैं इस पाषाण को पृथ्वी पर स्थापित करता हूँ। तू शोभनीय रूप वाली, सबको प्रसन्न करने वाली इस पाषाण पर आसीन हो। सविता देव तुझ दीर्घ आयु प्रदान करे ॥ ४७ ॥

हे पत्नी ! जिस कारण अग्नि ने इस भूमि के सीधे हाथ को ग्रहण किया है उसी भाँति मैं तेरे कर को पकडता हूँ। तू दुखित न हो, मेरे साथ सन्तान और धन, सहित निवास कर ॥ ४८ ।

सविता देव तेरे हाथ को ग्रहण कर, सोम तुझे सन्तान-वती बनावें, अग्नि तुझे सौभाग्य प्रदान करते हुए जरावस्था तक पति के साथ जीवन यापन करने वाली बनावे । ४६ ॥

हे वधु ! तू मेरे साथ जरावस्था तक जीवन यापन करने वाली हो। इसलिए मैं तेरे हाथ को पकडता हूँ। तू सौभाग्य शालिनी हो। भग अर्यमा सविता और लक्ष्मी ने तुझे गृहस्थ धर्म के लिए मुझे प्रदान किया है ॥ ५० ॥

भगस्ते हस्तमग्रहीत् सविता हस्तमग्रहीत् ।
पत्नी त्वमसि धर्मणाह गृहपतिस्तव ॥ ५१ ॥
ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिः ।
मया पत्या प्रजावति स जीव शरदः शतम् ॥ ५२ ॥
त्वष्टा वासो व्यदधाच्छुभे कं बृहस्पते. प्रशिषा कवीनाम् ।
तेनेमां नारीं सविता भगश्च सूर्यामिव परि धत्तां प्रजया ॥ ५३ ॥

इन्द्राग्नी द्यावापृथिवी मातरिश्वा मित्रावरुणा भगो अश्विनोभा ।
बृहस्पतिर्मरुतो ब्रह्म सोम इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु ॥ ५४ ॥
बृहस्पतिः प्रथमः सूर्यायाः शीर्षे केशाँ अकल्पयत् ।
तेनेमामश्विना नारीं पत्ये सं शोभयामसि ॥ ५५ ॥
इदं तद्रूपं यदवस्त योषा जायां जिज्ञासे मनसा चरन्तीम् ।
तामन्वर्तिष्ये सखिभिर्नवग्वैः क इमान् विद्वान् वि चचर्त पाशान् ॥ ५६ ॥
अहं वि ष्यामि मयि रूपमस्या वेददित् पश्यन् मनसः कुलायम् ।
न स्तेयमद्मि मनसोदमुच्ये स्वयं श्रथ्नानो वरुणस्य पाशान् ॥ ५७ ॥
प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद् येन त्वाबध्नात् सविता सुशेवाः ।
उरुं लोकं सुगमत्र पन्थां कृणोमि तुभ्यं सहपत्न्यै वधु ॥ ५८ ॥
उद्यच्छध्वमप रक्षो हनाथेमां नारीं सुकृते दधात ।
धाता विपश्चित् पतिमस्यै विवेद भगो राजा पुर एतु प्रजानन् ॥ ५९ ॥
भगस्ततक्ष चतुरः पादान् भगस्ततक्ष चत्वार्युष्पलानि ।
त्वष्टा पिपेश मध्यतोऽनु वर्ध्रान्त्सा नो अस्तु सुमङ्गली ॥ ६० ॥
सुकिंशुकं वहतुं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम् ।
आ रोह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्योनं पतिभ्यो वहतुं कृणु त्वम् ॥ ६१ ॥
अभ्रातृघ्नीं वरुणापशुघ्नीं बृहस्पते ।
इन्द्रापतिघ्नीं पुत्रिणीमास्मभ्यं सवितर्वह ॥ ६२ ॥
मा हिंसिष्टं कुमार्यं स्थूणे देवकृते पथि ।
शालाया देव्या द्वारं स्योनं कृण्मो वधूपथम् ॥ ६३ ॥
ब्रह्मापरं युज्यतां ब्रह्म पूर्वं ब्रह्मान्ततो मध्यतो ब्रह्म सर्वतः ।

अनाव्याघां देवपुरां प्रपद्य शिवा स्योना पतिलोके वि -
राज ॥ ६४ ॥

हे जाये ! तू धर्म पूर्वक मेरी पत्नी है और मैं तेरा पति हूं क्यों कि भग और सूर्य ने तेरा हाथ ग्रहण किया है ॥ ५१ ।

बृहस्पति ने तुझे मुझे प्रदान किया है । तू मेरे साथ रहती हुई सन्तानवती हो और शतायु पर्यन्त मेरी पोष्या रह ॥ ५२ ॥

हे शुभे ! त्वष्टा ने इस मगलमय वस्त्र को बृहस्पति के आदेश से बनाया । सविता और भग देवता सूर्या के समान ही इस स्त्री को इस वस्त्र द्वारा सन्तान आदि से पूर्ण करें ॥ ५३ ॥

अश्विद्वय, इन्द्र, अग्नि, मित्र, वरुण, द्यावा पृथ्वी बृहस्पति, वायु मरुद्‌गण ब्रह्म और सोम देवता इस स्त्री को सन्तान आदि से सपन्न करें । ५४ ॥

हे अश्विद्वय ! बृहस्पति ने सूर्या के सिर का केश विन्यास किया था, उसी भाँति हम वस्त्रादि द्वारा इस स्त्री को पति के लिए अलकृत करते हैं ॥ ५५ ॥

इस रूप को योषा धारण करती है । मैं योषा से परिचित हूँ । मैं इसकी नूतन चाल वाली सखियों के अनुसार चलूँगा । यह केशों का सँवारना किस विद्वान ने किया ? ॥ ५६ ॥

मैं इसके मन रूपी हृदय को जानता हुआ और इसके सौन्दर्य का अवलोकन करता हुआ अपने से आवद्ध करता हूँ । मै चौर्य कर्म नही करता । स्वय मन लगाकर केशो को सँवारता हुआ वरुण-पाशो से मुक्त करता हूँ ॥ ५७ ॥

जिस सविता ने तुझे वरुण पाश मे बाँधा है, उससे मैं

तुझे पृथक् करता हूँ। हे जाये! मैं तेरे साथ ससार के इस व्यापक पथ को सुगम बनाता हूँ ॥ ५८ ।

जल प्रदान करो राक्षसो का सहार करो इस स्त्री को शुभ कार्य मे स्थित करो। धाता ने इस पति प्रदान किया है, विद्वान भग इसके सन्मुख हो। ५६ ॥

भग ने इसके चारो पद और चारो कपालो को निर्मित किया, मध्य में वध्रा को रचा वे हमारे लिए कल्याणकारी हो ॥ ६० ॥

हे वधु! तू वरणीय दीप्तमान, श्रेष्ठ रूप से प्रज्वलित दहेज पर आरोहण कर और इसे पति और उसके पक्ष के सब पालकों के लिए शुभकारी बना ॥ ६१ ॥

हे बृहस्पते! हे इन्द्र! हे सविता देव! इस वधु का भाई पति पशु आदि को नष्ट करने वाली न बनाओ। इसे पुत्र 'धन आदि से सपन्न रूप में हमे प्राप्त कराओ। ६२ ॥

हे देव! इस वधु को ले जाने वाले रथ को हानि न पहुँचाओ, हम शाला के द्वार पर इस वधु के माग को मगलमय बनाते हैं ॥ ६३ ॥

आगे पीछे भीतर बाहर मध्य मे सब ओर ब्राह्मण रह। तू देवताओ के निवास वाली रोगविहीन शाला को प्राप्त हो और स्वामी गृह में सौभाग्यवती होती हुई प्रसन्नता से जीवन यापन कर ॥ ६४ ॥

सूक्त २ (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि—सावित्री सूर्या। देवता—आत्मा, यक्ष्मनाशनी, दम्पत्यो परिपन्थिनाशनी, देवा। छन्द—अनुष्टुप, जगती, अष्टि, त्रिष्टुप्, बृहती, गायत्री पक्ति, उष्णिक्, शक्वरी)

तुभ्यमग्रे पर्यवहन्त्सूर्यां वहतुना सह ।
स न. पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह ॥ १ ॥

पुनः पत्नीमग्निरदादायुषा सह वर्चसा ।
दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवाति शरदः शतम् ॥ २ ॥

सोमस्य जाया प्रथमं गन्धर्वस्तेऽपरः पतिः ।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥ ३ ॥

सोमो ददद् गन्धर्वाय गन्धर्वो ददग्नये ।
रयिं च पुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम् ॥ ४ ॥

आ वामगन्त्सुमतिर्वाजिनीवसू न्यश्विना हृत्सु कामा अरंसत ।
अभूत गोपा मिथुना शुभस्पती प्रिया अर्यम्णो दुर्यां अशीमहि ॥ ५ ॥

सा मन्दसाना मनसा शिवेन रयिं धेहि सर्ववीरं वचस्यम् ।
सुगं तीर्थं सुप्रपाणं शुभस्पती स्थाणुं पथिष्ठामप दुर्मतिं हतम् ॥ ६ ॥

या ओषधयो या नद्यो यानि क्षेत्राणि या वना ।
तास्त्वा वधु प्रजावतीं पत्ये रक्षन्तु रक्षसः ॥ ७ ॥

एमं पन्थाम रुक्षाम सुगं स्वस्तिवाहनम् ।
यस्मिन् वीरो न रिष्यत्यन्येषां विन्दते वसु ॥ ८ ॥

इदं सु मे नरः शृणुत ययाशिषा दम्पती वाममश्नुतः ।
ये गन्धर्वा अप्सरसश्च देवीरेषु वानस्पत्येषु येऽधि तस्थुः ।
स्योनास्ते अस्यै वध्वै भवन्तु मा हिंसिषुर्वहतुमुह्यमानम् ॥ ९ ॥

ये वध्वश्चन्द्रं वहतुं यक्ष्मा यन्ति जनाँ अनु ।
पुनस्तान् यज्ञिया देवा नयन्तु यत आगताः ॥ १० ।

हे अग्ने ! दहेज के साथ सूर्या को तुम्हारे लिए ही लाये थे । तुम हमको सन्तानशालिनी पत्नी प्रदान करो ॥ १ ॥

अग्नि ने आयु और तेज के सहित हमें पत्नी प्रदान की है इसका पति दीर्घ आयु वाला हो और वह शतायुष्य हो ।। २ ।

तू पहले सोम की पत्नी हुई, फिर गन्धर्व की और अग्नि तेरा तीसरा पति हुआ । मैं मनुष्य रूप से तेरा चौथा पति हूँ ।। ३ ।।

सोम ने तुझे गन्धर्व को दिया गन्धर्व ने अग्नि को तथा अग्नि ने तुझे मुझे दिया तथा धन पुत्रों से भी सम्पन्न किया ।। ४ ।

हे उषा कालीन वैभव वाले अश्विद्वय ! तुम्हारे हृदय में जो अभीष्ट रहते हैं वह तुम्हारी अनुग्रह पूर्ण बुद्धि द्वारा इसको प्राप्त हो । तुम हमारे प्रिय तथा रक्षक बनो । हम सूर्य के अनुग्रह में घरों में भाग करने वाले हों ।। ५ ।।

तुम शोभनीय मन वीरों से युक्त धन का पोषण करो । हे अश्विद्वय ! तुम इस तीर्थ को सफल करते हुए मार्ग से प्राप्त दुर्मति आदि का पृथक कर दो ।। ६ ।।

हे वधु ! औषधि नदी क्षेत्र और वन तुझे सन्तान वती बनाने में योग दें और तेरे स्वामी को दुष्टजनों से रक्षा करें ।। ७ ।।

हम इस कल्याणमय वाहन वाले पथ पर गमन करते हैं इसमें वीरों का क्षय नहीं होता अपितु अन्यों का धन प्राप्त होता है ।। ८ ।।

पुरुषों ! मेरी बात सुनो, वनस्पतियों में गन्धर्व हैं अप्सरायें हैं, वे हमें सुखकारी हों और इस दायक रूप धन को विनष्ट न करें । इन आशीर्वादात्मक वाणी से यह दोनों उत्तम पदार्थों का उपभोग करें ।। ९ ।।

चन्द्रमा के समान प्रसन्नता प्रदान करने वाले दायद की ओर जो विनाशक साधन आते हैं वे जहाँ से आते हों, वहीं उन्हें यज्ञीय देवगण पहुँचावें ॥ १० ॥

मा विदन् परिपन्थिनो य आसीदन्ति दम्पती ।
सुगेन दुर्गमतीतामप द्रान्त्वरातयः ॥ ११ ॥

सं काशयामि वहतुं ब्रह्मणा गृहैरघोरेण चक्षुषा मित्रियेण ।
पर्याणद्धं विश्वरूपं यदस्ति स्योनं पतिभ्यः सविता तत् कृणोतु ॥ १२ ॥

शिवा नारीयमस्तमागन्निमं धाता लोकमस्यै दिदेश ।
तामर्यमा भगो अश्विनोभा प्रजापतिः प्रजया वर्धयन्तु ॥ १३ ॥

आत्मन्वत्युर्वरा नारीयमागन् तस्यां नरो वपत बीजमस्याम् ।
सा वः प्रजां जनयद् वक्षणाभ्यो बिभ्रती दुग्धमृषभस्य रेतः ॥ १४ ॥

प्रति तिष्ठ विराडसि विष्णुरिवेह सरस्वति ।
सिनीवालि प्र जायतां भगस्य सुमतावसत् ॥ १५ ॥

उद् व ऊर्मिः शम्या हन्त्वापो योक्त्राणि मुञ्चत ।
माहुष्कृतौ व्येनसावघ्न्यावशुनमारताम् ॥ १६ ॥

अघोरचक्षुरपतिघ्नी स्योना शग्मा सुशेवा सुयमा गृहेभ्यः ।
वीरसूर्देवृकामा सं त्वयैधिषीमहि सुमनस्यमाना ॥ १७ ॥

अदेवृघ्न्यपतिघ्नीहैधि शिवा पशुभ्यः सुयमा सुवर्चाः ।
प्रजावती वीरसूर्देवृकामा स्योनेममग्निं गार्हपत्यं सपर्य ॥ १८ ॥

उत्तिष्ठेतः किमिच्छन्तीदमागा अहं त्वेडे अभिभूः स्वाद् गृहात् ।
शून्यैषी निर्ऋते याजगन्थोत्तिष्ठाराते प्र पत मेह रंस्थाः ॥ १९ ॥

यदा गार्हपत्यमसपर्यैत् पूर्वमग्निं वधूरियम् ।
अधा सरस्वत्यै नारि पितृभ्यश्च नमस्कुरु ॥ २० ॥

दम्पत्ति के समीप आने की कामना रखने वाले दस्यु इन्हें प्राप्त न कर सकें। हम इस कठिन मार्ग को आसानी से पार करें और हमारे शत्रुओं को बुरी गति प्राप्त हो ॥ ११ ॥

मैं दायद को मन्त्रों नेत्रों और नक्षत्रों के द्वारा प्रकाशित करता हूँ। इसमें अनेक प्रकार के जो पदार्थ हैं उन्हें सवितादेव प्राप्त करने वालों को सुखकारी बनावें। १२ ॥

इस नारी के लिए धाता ने यह रूप लोक का निर्माण किया है। यह कल्याणी इसे प्राप्त हो गई है। इस वधु को अश्विद्वय अर्यमा भग और प्रजापति सन्तान से सम्पन्न करें ॥ १३ ॥

हे पुरुष ! तू इस उर्वरा नारी में बीजा रोपण कर। ऋषभ के समान तेरे वीर्य और दूध को धारण कर्ती यह तेरे निमित्त सन्तान उत्पन्न करे ॥ १४ ॥

हे सरस्वति। तू विष्णु के समान विराट हैं इसलिए तू प्रतिष्ठित हो। हे सिनीवाली ! तू भग देवता की सुन्दर मति में रहती हुई संतानोत्पत्ति कर ॥ १५ ॥

हे जलो ! अपने कर्म की तरंगों को शान्त करो, लगामों को ढीला करो। यह श्रेष्ठ कर्म वाले अवधनीय वाहन 'अशुन' न करने लगें ॥ १६ ॥

हे वधु। तू कोमल दृष्टि रखते हुए पति को क्षीण न करने वाली है। तू वीर पुत्रों को जन्म देती हुई और मन में प्रमोद मनाती हुई एवं सब के लिए सुखकारी होती हुई इस घर को प्राप्त हो। हम भी तेरे द्वारा प्रवृद्ध हों ॥ १७ ॥

हे वधू ! पति और देवरों को हानि न पहुँचाने वाली, पशुओं को हितकारी, प्रजावती, शोभनीय छटा वाली, सुखकारी

होती हुई देवरों का अहित न सोचने वाली होती हुई तू अग्नि की उपासना करे। १८।

हे निर्ऋते! यहाँ से उठकर भाग। तू किस वस्तु की कामना लेकर यहाँ आई है? मैं तुझ अपने ग्रह से भगाता हुआ तेरा सन्मान करता हूँ। तू शत्रु रूपिणी शून्य की इच्छा लेकर यहाँ उपस्थित हुई है परन्तु तू यहाँ आनन्द न कर॥ १६॥

ग्रहस्थ रूप आश्रम में प्रवेश करने से पूर्व यह वधू अग्नि की आराधना कर रही है। हे स्त्री! अब तू सरस्वती को और पितरो को नमस्कार कर॥ २०॥

शर्म वर्मैतदा हरास्यै नार्या उपस्तरे।
सिनावालि प्र जायतां भगस्य सुमतावसत्॥ २१॥
य बल्बजं न्यस्यथ चर्म चोपस्तृणीथन।
तदा रोहतु सुप्रजा या कन्या विन्दते पतिम्॥ २२॥
उप स्तृणीहि बल्बजमधि चर्मणि रोहिते।
तत्रोपविश्य सुप्रजा इममग्निं सपर्यतु॥ २३॥
आ रोह चर्मोप सीदाग्निमेष देवो हन्ति रक्षांसि सर्वा।
इह प्रजां जनय पत्ये अस्मै सुज्यैष्ठ्यो भवत् पुत्रस्त एषः॥ २४॥
वि तिष्ठन्तां मातुरस्या उपस्थान्नानारूपाः पशवो जायमानाः।
सुमङ्गल्युप सीदेममग्निं सपत्नी प्रति भूषेह देवान्॥ २५॥
सुमङ्गली प्रतरणी गृहाणां सुशेवा पत्ये श्वशुराय शंभूः।
स्योना श्वश्र्वै प्र गृहान् विशेमान्॥ २६॥
स्योना भव श्वशुरेभ्यः स्योना पत्ये गृहेभ्यः।
स्योनास्यै सर्वस्यै विशे स्योना पुष्टायैषां भव॥ २७॥
सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत।
सौभाग्यमस्मै दत्त्वा दौर्भाग्यैर्विपरेतन। २८॥

या दुर्हार्दो युवतयो याश्चेह जरतीरपि ।
वर्चो न्वस्यै सं दत्ताथास्तं विपरेतन ॥ २९ ॥

रुक्मप्रस्तरणं वह्यं विश्वा रूपाणि बिभ्रतम् ।
आरोहत् सूर्या सावित्री बृहते सौभगाय कम् ॥ ३० ॥

इस स्त्री के लिए मृगचर्म निर्मित आसन में मंगल और रक्षा को स्थापित कर। यह भगदेव इससे प्रसन्न रहें। हे सिनी वालि ! यह स्त्री सन्तान उत्पन्न करती रहे ॥ २१ ॥

तुम्हारा द्वारा रखे गये तृण और मृगचर्म पर यह प्रजावती और पति की कामना करने वाली नारी आसीन हो ॥ २२ ॥

रोहित मृगचर्म पर 'बल्वज' को विस्तृत करो, उस पर आसीन होकर यह प्रजावती स्त्री अग्नि देव की उपासना करें ॥ २३ ॥

हे नारी ! इस मृगचर्म पर आसीन होकर अग्निदेव के समीप बैठ। यह देवता समस्त दिशाओं का संहार करने में समर्थ हैं। तू इस गृह में अपनी प्रथम सन्तान को उत्पन्न कर जो तेरा सबसे बड़ा पुत्र कहा जायेगा ॥ २४ ॥

इस माता से अनेक पुत्र उत्पन्न होकर गोद में बैठें। हे कल्याणमयी स्त्री ! तू अग्नि के समीप बैठकर इन समस्त देवताओं को शोभायमान बना ॥ २५ ॥

तू मंगलमयी, पति को सुखकारी, गृह कार्य में कुशल, सास और श्वसुर की सेवा करती हुई गृह में प्रविष्ट हो ॥२६॥

तू पति के लिए सुखकारी हो घर के लिये कल्याणकारी हो, श्वसुर के लिए भी मंगलमयी हो। तू सब सन्तानों को सुख प्रदान कर और उनका पालन करने वाली हो ॥२७॥

यह वधु मंगलमयी है, सब एकत्र होकर इसे देखो।

इसके असौभाग्य को दूर करते हुए सौभाग्य प्रदान करो ॥ २८ ॥

कुत्सित विचारों वाली स्त्रियाँ तथा वृद्धाऐं इसे तेज प्रदान करती हुई चली जाँय ॥ २९ ॥

मन पसन्द विस्तर युक्त इस सुन्दर सेज पर सूर्या सुख प्राप्ति के उद्देश्य से चढ़ी था ॥ ३० ॥

आ रोह तल्पं सुमनस्यमानेह प्रजां जनय पत्ये अस्मै ।
इन्द्राणीव सुबुधा बुध्यमाना ज्योतिरग्रा उषसः प्रति जागरासि ॥ ३१ ॥
देवा अग्रे न्यपद्यन्त पत्नीः समस्पृशन्त तन्वस्तनूभिः ।
सूर्येव नारि विश्वरूपा महित्वा प्रजावती पत्या सं भवेह ॥ ३२ ॥
उत्तिष्ठेतो विश्वावसो नमसेडामहे त्वा ।
जामिमिच्छ पितृषदं न्यक्तां स ते भागो जनुषा तस्य विद्धि ॥ ३३ ॥
अप्सरसः सधमादं मदन्ति हविर्धानमन्तरा सूर्यं च ।
तास्ते जनित्रमभि ताः परेहि नमस्ते गन्धर्वर्तुना कृणोमि ॥ ३४ ॥
नमो गन्धर्वस्य नमसे नमो भामाय चक्षुषे च कृण्मः ।
विश्वावसो ब्रह्मणा ते नमोऽभि जाया अप्सरसः परेहि ॥ ३५ ॥
राया वयं सुमनसः स्यामोदितो गन्धर्वमावीवृताम
अगन्त्स देवः परमं सधस्थमगन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः ॥ ३६ ॥
सं पितरावृत्विये सृजेथां माता पिता च रेतसो भवाथः ।
मर्य इव योषामधि रोहयैनां प्रजां कृण्वाथामिह पुष्यतं रयिम् ॥ ३७ ॥
तां पूषञ्छिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या वपन्ति ।
या न ऊरू उशती विश्रयाति यस्यामुशन्तः प्रहरेम शेपः ॥ ३८ ॥
आ रोहोरुमुप धत्स्व हस्तं परि ष्वजस्व जायां सुमनस्यमानः ।

प्रजां कृण्वाथामिह मोदमानौ दीर्घं वामायुः सविता कृणोतु ।। ३९ ।।
आ वां प्रजां जनयतु प्रजापतिरहोरात्राभ्यां समनक्त्वर्यमा ।
अदुर्मङ्गली पतिलोकमा विशेमं शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ।। ४० ।।

हे कामिनी ! तू आनन्द पूर्वक इस सेज पर चढ़ और पति के लिये सन्तान उत्पन्न कर। तू समान बुद्धि से सगन रह और प्रतिदिन उषाकाल में जागने वाली हो । ३१ ।।

पूर्वकाल में देवताओं ने भी पर्यंक पर आरोहण कर अपने अंगों को पत्नी के अंगों से युक्त किया था। हे स्त्री ! तू सूर्या की भांति ही पति का संग करती हुई संतान उत्पन्न करने वाली हो ।। ३२ ।।

हे विश्वावसो ! यहाँ से उठ ! हम तुझे नमस्कार करते हैं। पितृगृह गमन करती हुई जामिम' ही तेरा भाग है उसी की उत्पत्ति को तू जान ।। ३३ ।।

प्राणियों के प्रसन्न होने वाले स्थान में हविर्धान और सूर्य को देखकर अप्सराऐं प्रसन्न होती हैं, वही तेरी उत्पत्ति का स्थान है अतः वहीं जा। मैं तुझे नमन करता हुआ गन्धर्वों के जाने के साथ ही विदा करता हूँ ।। ३४ ।।

गंधर्व के क्रोधवन्त नेत्र को नमस्कार। हे विश्वावसो ! हमारे मन्त्र और नमस्कार को ग्रहण करते हुए तुम इस नारी को अप्सराओं से दूर रखो ।। ३५ ।।

हम आनन्द प्रदान करने वाले हों। हम गन्धर्वों को ऊपर को प्रेरित करते हैं। वह देवता परम सधस्थ को प्राप्त होगया। जहाँ आयु विस्तृत होती है, हमने भी उस स्थान को प्राप्त कर लिया है ।। ३६ ।।

तुम दोनों माता पिता बनने के निमित्त ऋतुकाल में संगम करो। वीर्य द्वारा माता पिता बनो। मानवी ढंग से आरोहण करते हुए सन्तान उत्पन्न करो ॥ ३७ ॥

हे पूषा देव! जिसमें बीजारोपण होता है उस कल्याणी स्त्री को प्रेरणा दो। वह प्रेम प्रकट करती हुई अंगों को व्यापक करती हुई सन्तान उत्पन्न करने के कर्म मे प्रवृत्त हो ॥ ३८ ॥

तू अपनी पत्नी का स्पर्श कर आनन्द मग्न होते हुए तुम दोनों प्रजा उत्पन्न करने का कार्य सपन्न करो। सविता देव तुम्हे दीर्घ जीवी बनावें ॥ ३९ ॥

अर्यमा तुम्हें दिन रात से मिलावें। प्रजापति तुम्हारे निमित्त प्रजा को रचे। हे वधु! तू अमगलों से दूर रहती हुई इस गृह में प्रवेश कर और मनुष्यों और पशुओ के लिए सुखदायिनी बन ॥ ४० ॥

देवैर्दत्तं मनुना साकमेतद् वाधूयं वासो वधवश्च वस्त्रम् ।
यो ब्रह्मणे चिकितुषे ददाति स इद् रक्षांसि तल्पानि हन्ति ॥ ४१ ॥

यं मे दत्तो ब्रह्मभागं वधूयोर्वाधूयं वासो वध्वश्च वस्त्रम् ।
युवं ब्रह्मणेऽनुमन्यमानौ बृहस्पते साकमिन्द्रश्च दत्तम् ॥ ४२ ॥

स्योनाद्योनेरधि बध्यमानौ हसामुदौ महसा मोदमानौ ।
सुगू सुपुत्रौ सुगृहौ तराथो जीवावुषसो विभातीः ॥ ४३ ॥

नव वसानाः सुरभिः सुवासा उदागां जीव उषसो विभातीः ।
आण्डात् पतत्रीवामुक्षि विश्वस्मादेनसस्परि ॥ ४४ ॥

शुम्भनी द्यावापृथिवी अन्तिसुम्ने महिव्रते ।
आपः सप्त सुस्रुवुर्देवीस्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ४५ ॥

सूर्याय देवेभ्यो मित्राय वरुणाय च ।
ये भूतस्य प्रचेतसस्तेभ्य इदमकरं नमः ॥ ४६ ॥
य ऋते चिदभिश्रिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः ।
सधाता संधिं मघवा पुरुवसुर्निष्कर्ता विह्रुतं पुनः ॥ ४७ ॥
अपास्मत् तम उच्छतु नीलं पिशङ्गमुत लोहितं यत् ।
निर्दहनी या पृषातक्यस्मिन् तां स्थाणावध्या सजामि ॥ ४८ ॥
यावतीः कृत्या उपवासने यावन्तो राज्ञो वरुणस्य पाशाः ।
व्यृद्धयो या असमृद्धयो या अस्मिन् ता स्थाणावधि सादयामि ॥ ४९ ॥
या मे प्रियतमा तनूः सा मे बिभाय वाससः ।
तस्याग्रे त्वं वनस्पते नीविं कृणुष्व मा वयं रिषाम ॥ ५० ॥

देवताओं ने मनु सहित इस वधु के वस्त्र को दिया था। जो वधू के वस्त्र को दान में विद्वान ब्राह्मण को देता है वह राक्षसों का नाश करने में समर्थ होता है ॥ ४१ ॥

जो वर और वधु का वस्त्र ब्रह्मभाग के रूप में मुझे दिया गया है, हे उहस्पति तुम इन्द्र और ब्रह्मा की सहमति से इसे मुझ दे चुके हो ॥ ४२ ॥

हम दोनों ही हास्य से प्रसन्नता को और प्रसन्नता में बोध को प्राप्त हों। हम सुन्दर गतिशील बनें और सन्तति से पूर्ण हो उषाओं का पार करते रहें ॥ ४३ ॥

मैं नूतन सुन्दर और सुगन्धित वस्त्र पहन कर उषाकालों को जीवित रहता आऊं। अन्डे में जिस भाँति पक्षी युक्त होता है, उसी मैं भी समस्त पाप दोषों से मुक्त हो जाऊं ॥४४।

शोभायमान आकाश पृथ्वी के मध्य चल अचल प्राणी निवास करते हैं। यह विस्तृत कर्मशील द्यावा पृथ्वी और यह

सप्त प्रकार के प्रवाहित जल हमको पापदोषों से मुक्त करें ॥ ४५ ॥

सूर्या, देवगण, मित्रावरुण, सभी भूतों के जो जानने वाले हैं उन सबको मैं नमस्कार' करता हूँ ॥ ४६ ॥

'जन्तुओं' के निमित्त जो 'अभिश्रिप' के बिना 'आर्तदन' करता है, जो पुरुषसु, विह्रु त का निकालने वाला है और मघवा सधि को मिलाता है ॥ ४७ ॥

नीला, पीला, लाल धुँआँ हमारे वास से दूर हो। भस्म करने वाली प्रधात को को स्थाण में स्थापित करता हूँ ॥ ४८ ॥

हे वनस्पते ! वस्त्रों से सुशोभित मेरा शरीर दमकता रहे, तू उसके आगे नीची कर, हम कभी नाश को प्राप्त न हों ॥ ५० ॥

ये अन्ता यावतीः सिचो य ओतयो ये च तन्तवः ।
वासो यत् पत्नीभिरुतं तन्न स्योनमुप स्पृशात् ॥ ५१ ॥
उशती. कन्यला इमाः पितृलोकात् पतिं यतीः ।
अव दीक्षामसृक्षत स्वाहा ॥ ५२ ॥
बृहस्पतिनाव सृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
वर्चो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५३ ॥
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
तेजो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५४ ॥
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
भगो गोषु प्रविष्टो यस्तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५५ ॥
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
यशो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५६ ॥

बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
पयो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५७ ॥
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
रसो गोषु प्रविष्टो यस्तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५८ ॥
यदीमे केशिनो जना गृहे ते समनर्तिषू रोदेन कृण्वन्तोघम् ।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥ ५९ ॥
यदीयं दुहिता तव विकेश्यरुदद् गृहे रोदेन कृण्वत्यघम् ।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥ ६० ॥

किनारे, सिच तन्तु, ओतु, और पत्नियों द्वारा बुना हुआ वस्त्र हमारे लिए सुखकारी और सुखद स्पर्श वाला हो ॥ ५१ ॥

पितृग्रह से पतिग्रह को जाने वाली यह कन्याऐं कामना करती हुई दीक्षा को छोडती है ॥ ५२ ॥

बृहस्पति की यह औषधि विश्वे देवाओं द्वारा शक्ति सपना की गई है । हम उसे गौओ के तेज से युक्त करते हैं ॥ ५३ ॥

बृहस्पति की रची हुई यह औषधि विश्वेदेवताओ द्वारा पुष्ट की गई है । हम इसे गौओ के तेज से मिलाते हैं ॥ ५४ ॥

बृहस्पति द्वारा रचित यह औषधि विश्वे देवाओ द्वारा पुष्ट की गई है हम इसे गौओ के सौभाग्य से युक्त करते है ॥ ५५ ॥

बृहस्पति द्वारा रचित यह औषधि विश्वेदेवाओं द्वारा पुष्ट की गई है, हम इसे गौओ मे वतमान यश से संयुक्त करते हैं ॥ ५६ ॥

बृहस्पति द्वारा रचित यह औषधि विश्वे देवाओं द्वारा पुष्ट हुई हैं। हम इसे गौओं के वर्तमान दुग्ध से संयुक्त करते हैं ॥ ५७ ॥

बृहस्पति द्वारा रचित यह ओषधि विश्वेदेवाओं द्वारा पुष्ट हुई है, हम इसे गोरस से मिश्रित करते हैं ॥ ५८ ॥

कन्या के जाने से शोकाकुल केश वाले पुरुष तेरे घर में रुदन करते हुए घूमे हैं। उस पाप से अग्निदेव तुझे मुक्त करें ॥ ५९ ॥

तेरी पुत्री अपने बालों को बिखेर कर रोई हैं। उस पाप से सविता और अग्नि तेरी रक्षा करें ॥ ६० ॥

यज्जामयो यद्युवतयो गृहे ते समनर्तिषू रोदेन कृण्वतीरघम् ।
अग्निष्टवा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥ ६१ ॥
यत् ते प्रजायां पशुषु यद्वा गृहेषु निष्ठितमघकृद्भिरघं कृतम् ।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥ ६२ ॥
इयं नार्युप ब्रूते पूल्यान्यावपन्तिका ।
दीर्घायुरस्तु मे पतिर्जीवाति शरदः शतम् ॥ ६३ ॥
इहेमाविन्द्र सं नुद चक्रवाकेव दम्पती ।
प्रजयैनौ स्वस्तकौ विश्वमायुर्व्यश्नुताम् ॥ ६४ ॥
यदासन्द्यामुपधाने यद् वोपवासने कृतम् ।
विवाहे कृत्यां यां चक्रुरास्नाने तां नि दध्मसि ॥ ६५ ॥
यद् दुष्कृतं यच्छमलं विवाहे वहतौ च यत् ।
तत् संभलस्य कम्बले मृज्महे दुरितं वयम् ॥ ६६ ॥
संभले मलं सादयित्वा कम्बले दुरितं वयम् ।
अभूम यज्ञियाः शुद्धाः प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ ६७ ॥
कृत्रिमः कण्टकः शतदन् य एषः ।
अपास्याः केश्यं मलमप शीर्षण्यं लिखात् ॥ ६८ ॥

अङ्गादङ्गाद् वयमस्या अप यक्ष्मं नि दध्मसि ।
तन्मा प्रापत् पृथिवीं मोत देवान् दिवं मा प्रापदुर्वन्तरिक्षम् ।
अपो मा प्रापन्मलमेतदग्ने यमं मा प्रापत् पितॄंश्च सर्वान् ॥ ६९ ॥

सं त्वा नह्यामि पयसा पृथिव्याः सं त्वा नह्यामि पयसौषधीनाम् ।
सं त्वा नह्यामि प्रजया धनेन सा संनद्धा सनुहि वाजमेमम् ॥ ७० ॥

तेरी बहिनें अथवा अन्य नारियाँ आकाकुलहो, रुदन करती हुई तेरे गृह में घूमी हैं, इस पाप दोष से सविता और अग्निदेव तुझे मुक्त करें ॥ ६१ ॥

तेरे घर, सन्तान और पशुओ मे दुख व्याप्त करने वालो ने जो दुख व्याप्त किया है,उस पापसे सविता और अग्निदेव तेरी रक्षा करें ॥ ६२ ॥

खीलो का आहुति समर्पित करती हुई यह वधु इच्छा करती है कि मेरा पति दीर्घायु एव शतायुष्य हो ॥ ६३ ॥

हे इन्द्र ! इस पति पत्नी को चकवी चकवे के समान प्रीति प्रदान करो । इन्हे सुन्दर गृह और संतान से सपन्न करो । यह जीवन पर्यन्त विभिन्न सुखो को भोगते रहें ॥ ६४ ॥

संधान, उपधान, या उपवासन जो दोप लगा है, और विवाह कर्म मे जिन्होने अभिचार कृत्य किया है, इन सब पापो को स्नान करने के स्थान मे स्थित करते हैं । ६५ ॥

विवाह के समय या दहेज मे जो दोप बना है, उसे हम मधुर बोलने वाले के कम्बल मे स्थित मे करते हैं ॥ ६६ ॥

कम्बल मे दुरित और सभल में मल को स्थित करके

यह यज्ञ कर्ता पुरुष पवित्र हुए । अब देवगण हमें पूर्णायु प्रदान करें ॥ ६७ ॥

यह बनावटी रूप से निर्मित किया गया सैंकड़ों दांतों वाला कंघा इसके शीष स्थान पर पहुँचता हुआ सिर के मैल को पृथक करे ॥ ६८ ॥

इसके अंग प्रत्यंग से विनाशक दोष को पृथक करता हूँ परन्तु यह दोष मुझे न लगे । द्यावा पृथ्वी और अन्तरिक्ष देव-गण और [जल को भी यह दोष व्याप्त न हो । हे अग्ने ! यह दोष पितरों और उनके अधिष्ठाता देव यमराज को भी व्याप्त न हो ॥ ६९ ॥

हे जाये ! पृथ्वी के दूध के समान सार तत्व से और औषधियों के मूल तत्व से मैं तुझे आबद्ध करता हूँ । तू प्रजा और धन से पूर्ण होती हुई धन प्रदान करने वाली बन ॥ ७० ॥

अमोऽहमस्मि सा त्वं सामाहमस्म्यृक् द्यौरहं पृथिवी त्वम् ।
ताविह सं भवाव प्रजामा जनयावहै ॥ ७१ ॥
जनियन्ति नावग्रवः पुत्रियन्ति सुदानवः ।
अरिष्टासू सचेवहि बृहते वाजसातये ॥ ७२ ॥
ये पितरो वधूदर्शा इमं वहतुमागमन् ।
ते अस्यै वध्वै संपत्न्यै प्रजावच्छर्म यच्छन्तु ॥ ७३ ॥
येदं पूर्वागन् रशनायमाना प्रजामस्यै द्रविणं चेह दत्त्वा ।
तां वहन्त्वगतस्यानु पन्थां विराडियं सुप्रजा अत्यजैषीत् । ७४ ॥
प्र बुध्यस्व सुबुधा बुध्यमाना दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ।
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु ॥ ७५ ॥

हे जाये ! मैं साम हूँ, तू ऋक् है । मैं आकाश हूँ तू पृथ्वी है । मैं विष्णु रूप और तू लक्ष्मी रूप है । हम यहाँ साथ-साथ वास करते हुए सन्तान उत्पन्न करें ॥ ७१ ॥

हम दोनो को नदियाँ प्रकट रखें । हम कल्याणकारी दान के दाता पुत्र को प्राप्त करें । हम असीम अन्न प्राप्ति के लिए दोनो मिलकर रहते हुए प्राणो से अहिंसित रहें ॥ ७२ ॥

वधू को देखने की इच्छा से इस दायद के निकट उपस्थित होने वाले पिता इस शीलवती वधू को सतानयुक्त मगल प्रदान करने वाले हो ॥ ७३ ॥

पहले रस्सी के समान बाँधने को जो नारी इस मार्ग को प्राप्त हुई थी, उस पहले न चले हुए मार्ग मे इस वधू को सतान और धन के द्वारा ले जाँय । यह गुणवती प्रवृद्ध होती रहे ॥ ७४ ॥

हे सुबुद्ध ! जगाई जाने पर तू शत वर्ष की दीर्घ आयु प्राप्त करने के लिए जाग । गृह लक्ष्मी बनने के लिए घर चल । सविता देव तुझे दीर्घ आयु प्रदान करें ॥ ७५ ॥

॥ इति चतुर्दश काण्ड समाप्तम् ॥

पञ्चदश काण्ड

सूक्त 1 (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अध्यात्मम्, व्रात्यः । छन्द—पंक्ति, बृहती; अनुष्टुप्, गायत्री)

व्रात्य आसीदीयमान एव स प्रजापतिं समैरयत् ॥ १ ॥

स प्रजापतिः सुवर्णमात्मन्नपश्यत् तत् प्राजनयत् ॥ २ ॥

तदेकमभवत् तल्ललाममभवत् तन्महदभवत् तज्ज्येष्ठमभवत् । तद् ब्रह्माभवत् तत् तपोऽभवत् तत् सत्यमभवत् तेन प्राजायत ॥ ३ ॥

सोऽवर्धत स महानभवत् स महादेवोऽभवत् ॥ ४ ॥

स देवानामीशां पर्यैत् स ईशानोऽभवत् ॥ ५ ॥

स एकव्रात्योऽभवत् स धनुरादत्त तदेवेन्द्रधनुः ॥ ६ ॥

नीलमस्योदरं लोहितं पृष्ठम् ॥ ७ ॥

नीलेनैवाप्रियं भ्रातृव्यं प्रोर्णोति लोहितेन द्विषन्तं विध्यतीति ब्रह्मवादिनो वदन्ति ॥ ८ ॥

समूहपति ने जाते समय प्रजापति को सकेतना दी ॥ १ ॥

प्रजापति ने अपने मे आत्मा को देखकर सभी प्राणियो की उत्पत्ति की ॥ २ ॥

प्रजापति ही ज्येष्ठ, महेष, ललाम, ब्रह्म, तप और सत्य हुआ और उसी से यह उत्पन्न हुआ ॥ ३ ॥

वह वृद्धि को पा महान और महादेव बना ॥ ४ ॥

वह सभी का स्वामी समूहपति बना और जो धनुष उसने धारण किया वही इन्द्र धनुष कहलाया ॥ ५ ॥

वह देवों का स्वामी और ईशान रूप में हुआ ॥ ६ ॥

उसका पेट नीलिमा और पीठ लालिमा लिये हुये है ॥ ७ ॥

अप्रिय शत्रु को वह नीलिमा से और द्वेषी पुरुष को लालिमा रक्त से विदीर्ण करता है । ब्रह्मवादी ऐसा कहते हैं ॥ ८ ॥

सूक्त (२)

(ऋषि – अथर्वा । देवता—अध्यात्मम्, व्रात्य । छन्द—अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, पङ्क्ति, गायत्री जगती, बृहती, उष्णिक्)

स उदतिष्ठत् स प्राचीं दिशमनु व्यचलत् ॥ १ ॥
तं बृहच्च रथन्तरं चादित्याश्च विश्वे च देवा अनुव्यचलन् ॥ २ ॥
बृहते च वै स रथन्तराय चादित्येभ्यश्च विश्वेभ्यश्च देवेभ्य आ वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमपवदति ॥ ३ ॥
बृहतश्च वै स रथन्तरस्य चादित्यानां च विश्वेषां च देवानां प्रियं धाम भवति तस्य प्राच्यां दिशि ॥ ४ ॥
श्रद्धा पुंश्चली मित्रो मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥ ५ ॥
भूतं च भविष्यच्च परिष्कन्दौ मनो विपथम् ॥ ६ ॥
मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ वातः सारथी रेष्मा प्रतोदः ॥ ७ ॥
कीर्तिश्च यशश्च पुरःसरावैनं कीर्तिर्गच्छत्या यशो गच्छति य एवं वेद ॥ ८ ॥

यह पूर्व दिशा को उठकर जा रहा है ॥ ३ ॥

बृहत् साम, रथान्तर साम, सूर्य और सब देवगण उसको अग्रसर कर चलते हैं ॥ २ ॥

ऐसे विद्वान ब्राह्मण का निन्दा करने वाला बृहत्साम, रथन्तर साम, सूय और समस्त विश्व देवो की हिसा करता है ॥ ३ ॥

उसका आदर सत्कार करने वाला पुरुष बृहत्साम, रथन्तर साम, सूर्य और समस्त विश्व देवगणो की प्रिय पूर्व दिशा मे अपना प्रिय काम नियुक्त करता है ॥ ४ ॥

श्रद्धा पुश्चली, विज्ञान-वस्त्र, दिन पाग, रात्रि केश, मित्र मागध, हरित पर्वत, कल्याणी, उसकी मणि कहलाती है ॥ ५ ॥

भूत वर्तमान, भविष्य पणिकन्द और मन से विलग होता है ॥ ६ ॥

मातरिश्वा, और पवमान विवथवाह, रेश्मा कीडा और वायु सारथी से सोभायमान होते है ॥ ७ ॥

कीर्ति और यश प्रमुख होते हैं। ऐसे ज्ञाता को कीर्ति और यश की प्राप्ति होती है ॥ ८ ॥

स उदतिष्ठत् स दक्षिणां दिशमनु व्यचलत् ॥ ६ ॥
तं यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च यज्ञश्च यजमानश्च पशवश्चानुव्यचलन् ॥ १० ॥
यज्ञायज्ञियाय च वै स वामदेव्याय च यज्ञाय च यजमानाय च पशुभ्यश्चा वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति ॥ ११ ॥
यज्ञायज्ञियस्य च वै स वामदेव्यस्य च यज्ञस्य च यजमानस्य च पशूनां च प्रियं धाम भवति तस्य दक्षिणायां दिशि ॥ १२ ॥

उषाः पुंश्चली मन्त्रो मागधो विज्ञान वासोऽहरुष्णीष रात्री
केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः । १३ ॥
अमावास्या च पौर्णमासी च परिष्कन्दौ मनो विपयम् ।
मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ वातः सारथी
रेष्मा प्रतोद । ।
कीर्तिश्च यशश्च पुरः सरावैनं कीर्तिर्गच्छत्या
यशो गच्छति य एवं वेद ॥ १४ ॥

वह उठकर दक्षिण दिशा में चल दिया ॥ ९ ॥

यज्ञायज्ञिय, साम यज्ञ, यजमान, पशु और वाम देव्य, उसको अग्रगणी कर चले ॥ १० ॥

ऐसे समूह पति की निन्दा वाला, यज्ञ-यज्ञिय, यजमान साम, यज्ञ, पशु और वामदेव का दोषी कहलाता है ॥ ११ ॥

आदर करने पर उसका यज्ञायज्ञिय, साम, यज्ञ, यजमान, पशु और वामदेव्य की प्रिय दक्षिण दिशा में उसका भी अत्यन्त प्रिय धाम, वना होता है ॥ १२ ॥

विज्ञान वस्त्र, दिनपगडी, रात्रिकेश, उषा पुंश्चली, मन्त्र मागध और हरित प्रवर्त और कल्याणी मणि युक्त होता है ॥ १३ ॥

अमावस्या पूर्णिमा उसके परिष्कन्द कहलाते हैं ॥ १४ ॥

स उदतिष्ठत् स प्रतीचीं दिशमनु व्यचलत् ॥ १५ ॥
तं वैरूपं च वैराजं चापश्च वरुणश्च राजानुव्यचलन् ॥ १६ ॥
वैरूपाय च वै स वैराजाय चाद्भ्यश्च वरुणाय च राज्ञ आवृश्चते
य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति ॥ १७ ॥

वैरूपस्य च वै स वै राजस्य चापां च वरुणस्य च राज्ञः-
प्रिय धाम भवति तस्य प्रतीच्यां दिशि ॥ १८ ॥

इरा पुंश्चली हसो मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं रात्रीकेशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणि. ॥ १६ ॥
अहश्च रात्री च परिष्कन्दौ मनो विपथम् ।
मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ वातः सारथी रेष्मा प्रतोद ।
कोर्तिश्च यशश्च पुर. सरावैन कोर्तिर्गच्छत्या यशो गच्छति-य एवं वेद ॥ २० ॥

उसने उठकर पश्चिम दिशा को गमन किया ॥ १५ ॥

जल वरुण वैरुप, वैराज, उसको अग्रगणी मान कर चले ॥ १६ ॥

इस प्रकार के समूह पति निन्दक जल, वरुण, वैरुप वैराज का दोषी माना जाता है ॥ १७ ॥

(सत्कार करने वाला) जल, वरुण, वैरूप, वैराज का प्रिय और उसका दक्षिण मे प्रियधाम होता है ॥ १८ ॥

आदर को प्रकट करने वाला पृथ्वी पुश्चली विज्ञान वस्त्र, दिनपगडी, रात्रिकेश हास्य मागध; हरित प्रवर्त, कल्याणी मणि युक्त होता है ॥ १६ ॥

रात्रि एवम् दिवस परिष्कन्द रूप माने जाते हैं ॥ २० ॥

स उदतिष्ठत् स उदीचीं दिसमनु व्यचलत् ॥ २१ ॥
तं श्यैतं च नौधसं च सप्तर्षयश्च सोमश्च राजानुव्यचलन् ॥२२॥
श्यैताय च वै स नौधसाय च सप्तर्षिभ्यश्च सोमाय च राज्ञ आ वृश्चते य एवं विद्वांस व्रात्यमुपवदति ॥ २३ ॥
श्यैतस्य च वै स नौधसस्य च सप्तर्षीणां च सोमाय च राज्ञः प्रिय धाम भवति तस्योदीच्यां दिशि ॥ २४ ॥
विद्युत पुंश्चली स्तनयित्नुर्मागधो विज्ञान वासोऽहरुष्णीष रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥ २५ ॥

श्रुतं च विश्रुतं च परिस्कन्दौ मनो विपथम् ॥ २६ ॥
मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ वातः
सारथी रेष्मा प्रतोदः ॥ २७ ॥

कीर्तिश्च यशश्च पुरःसरावैनं कीर्तिर्गच्छत्या यशो
गच्छति य एवं वेद ॥ २८ ॥

वह उठकर उत्तर दिशा की ओर चला गया ॥ २१ ॥

इस प्रकार के समूहपति का निन्दक सप्तर्षि सोम, श्वेत, नोधस का दोषी कहलाता है ॥ २२ ॥

सप्तर्षि, सोम, श्वेत, और नोधस उसको अग्रसर करके चलते है ॥ २३ ॥

उत्तर मे सप्तर्षि, सोम श्वेत और नोध को प्रिय लगने वाला धाम होता है ॥ २४ ॥

विद्युत पुश्चली, विज्ञान वस्त्र, दिन पगड़ी, रात्रिकेश, स्तनयित्नु मागध, हरित पर्वत और कल्याणी मणि युक्त होती है ॥ २५ ॥

श्रुत विश्रुत, परिस्कन्द और मन विपथ होता है ॥ २६ ॥

वात सारथी, रेष्मा कीडा, मातरिश्वा, और पवमान विपथ वाद कहलाते हैं ॥ २७ ॥

कीर्ति और यश अग्रसर होते हैं । ऐसा ज्ञाता पुरुष संसार मे कीर्ति और यश युक्त होता है ॥ २८ ॥

सूक्त (३)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अध्यात्मम्, व्रात्य छन्द—गायत्री, उष्णिक्; जगती, बृहती; अनुष्टुप, पङ्क्तिः त्रिष्टुप्)

स संवत्सरमूर्ध्वोऽतिष्ठत् त देवा अब्रुवन् व्रात्य
किं नु तिष्ठसीति ॥ १ ॥
सोऽब्रवीदासन्दीं म स भरन्त्विति ॥ २ ॥
तस्मै व्रात्यायासन्दीं समभरन् ॥ ३ ॥
तस्या ग्रीष्मश्च वसन्तश्च द्वौ पादावास्तां शरच्च वर्षाश्च
द्वौ ॥ ४ ॥
बृहच्च रथन्तरं चानूच्ये आस्तां यज्ञायज्ञियं च
वामदेव्यं च तिरश्च्ये । ५ ॥
ऋचः प्राञ्चस्तन्तवो यजूंषि तिर्यञ्चः ॥ ६ ॥
वेद आस्तरणं ब्रह्मोपबर्हणम् ॥ ७ ॥
सामासाद उद्गीथोऽपश्रयः ॥ ८ ।
तामासन्दीं व्रात्य आरोहत् ॥ ६ ॥
तस्य देवजना परिष्कन्दा आसन्त्संकल्पा प्राहाय्या
विश्वानि भूतान्युपसदः ॥ १० ॥
विश्वान्येवास्य भूतान्युपसदो भवन्ति य एवं वेद ॥ ११ ॥

समूहपति वर्ष भर तक खडा हुआ तप करता रहा । देवों ने पूछा हे व्रात्य ! यह तप क्यो कर रहे हो ॥ १ ॥

देवो ने जवाब मे कहा मेरे लिये चोकरे का निर्माण करो ॥ २ ॥

तभी देवो ने उसे आमन्दी का निर्माण किया ॥ ३ ॥

उसके ग्रीष्म वर्षा नामके दो पैर और शरद् वर्षा नाम युक्त भी दो पैर हुये । ४ ।

बृहत् और रथन्तर दो अनूच्य और यज्ञ यज्ञिय और वामदेव रार्घ जीवी कहलाये ॥ ५ ॥

माया और प्राचा ने तन्तु रूप धारण किया और मधु तिर्यक बन गये ॥ ६ ॥

वेद अन्तरण और ब्रह्म उपबर्हण रूप से हुये ॥ ७ ॥

साम आसाद और उद्गीथ उपश्रय बना ॥ ८ ॥

उस चौकी पर समूहपति चढ़े ॥ ९ ॥

देवगण परिष्कन्द बने । समस्त प्राणी उपसद कहलाये ॥ १० ॥

इस बात को जानने वाले के समाज भूत उपसद होते हैं ॥ ११ ॥

सूक्त (४)

(ऋषि—अथर्वा। देवता—अध्यात्मम् व्रात्यः। छन्द—जगती; अनुष्टुप्, गायत्री; पङ्क्ति, त्रिष्टुप्; बृहती; उष्णिक्)

तस्मै प्राच्या दिशः ॥ १ ॥
वासन्तौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् बृहच्च रथन्तरं चानुष्ठातारौ ॥ २ ॥
वासन्तावेनं मासौ प्राच्या दिशो गोपायतो बृहच्च रथन्तरं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ ३ ॥

बसन्त के दो महीनों को देवो ने पूर्व दिशा रक्षक बनाया । बृहत्साम तथा रथन्तर साम को अनुष्ठाता बनाया ॥ १-२ ॥

इस प्रकार के ज्ञाता की बसन्त दो महीने की रक्षा का और बृहत्साम और रथन्तर उसकी अनुकूलता का कार्य सम्पन्न करते हैं ॥ ३ ॥

तस्मै दक्षिणाया दिशः ॥ ४ ॥
ग्रैष्मौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं चानुष्ठातारौ ॥ ५ ॥
ग्रैष्मावेनं मासौ दक्षिणाया दिशो गोपायतो यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ ६ ॥

ग्रीष्म ऋतु दक्षिण दिशा में दो महीनों को रक्षक बनाया। यज्ञा यज्ञिय तथा वामदेव्य को अनुष्ठाता रूप प्रदान किया ॥ ४-५ ॥

ऐसे ज्ञाता को दक्षिण में दो महीने ग्रीष्म रक्षा का कार्य और यज्ञायज्ञिय, वामदेव अनुकूलता का कार्य सम्पन्न करते हैं ॥ ६ ॥

तस्मै प्रतीच्या दिशः ॥ ७ ॥
वार्षिकौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् वैरूपं च वैराजं चानुष्ठातारौ ॥ ८ ॥
वार्षिकावेन मासौ प्रतीच्या दिशो गोपायतो वैरूपं च वैराजं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ ९ ॥

पश्चिम दिशा में वर्षा के दो महीनों को रक्षक बनाया और वे रूप और वैराज्य को अनुष्ठाता ॥ ७-८ ॥

ऐसा ज्ञाता पश्चिम में दो महीने वर्षा से रक्षा पाता है और वेरूप-वैराज उसके अनुकूल होते हैं ॥ ९ ॥

तस्मा उदीच्या दिशः ॥ १० ॥
शारदौ मासौ गोप्तारावकुर्वञ्छ्यैतं च नौधसं चानुष्ठातारौ ॥ ११ ॥
शारदावेन मासावुदीच्या दिशो गोपायतः श्यैतं च नौधसं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ १२ ॥

देवों ने उत्तर दिशा में शरद् के दो महीनों को नियुक्त किया और नोधस व श्येत अधिष्ठाता रूप में नियुक्त हुये ॥ १०-११ ॥

ऐसा ज्ञाता पुरुष दो महीने उत्तर से रक्षा पाता है और

नौवत तथा श्यैत उसके अनुकूल कार्य सम्पन्न करते हैं ।। १२ ।

तस्मै ध्रुवाया दिशः ।। १३ ।।

हेमन्तो मासौ गोप्तारावकुर्वन् भूमिं चाग्निं चानुष्ठातारौ ।। १४ ।।

हैमनावेन मासौ ध्रुवाया दिशो गोपायतो भूमिश्चाग्निश्चानु तिष्ठतो य एवं वेद ।। १५ ।।

ध्रुव दिशा मे हेमन्त को दो महीने का रक्षक देवों ने बनाया । पृथ्वी और अग्नि को उसका अनुष्ठाता बनाया ।। १३-१४ ।।

ऐसा ज्ञाता पुरुष दो महीने ध्रुव दिशा की ओर से हेमन्त द्वारा रक्षित होता है और पृथ्वी व अग्नि उसके अनुकूल कार्य सम्पन्न करते हैं । १५ ।।

तस्मा ऊर्ध्वाया दिशः ।। १६ ।।

शैशिरौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् दिवं चादित्यं चानुष्ठातारौ ।। १७ ।।

शैशिरावेनं मासावूर्ध्वाया दिशो गोपायतो द्यौश्चादित्यश्चानु तिष्ठतो य एवं वेद ।। १८ ।। (६) [१-४]

देवों ने शिशिर ऋतु के दो महीनों को ऊर्ध्व दिशा का रक्षक बनाया । आकाश और सूर्य को उसका अनुष्ठाता माना गया ।। १६-१७ ।।

ऐसा ज्ञाता पुरुष दो महीने ध्रुव दिशा मे शिशिर द्वारा रक्षित होता है और आकाश और सूर्य उसके अनुकूल कार्य सम्पन्न करते हैं ।। १८ ।।

सूक्त (५)

(ऋषि—अथर्वा ॥ देवता-रुद्र । छन्द —गायत्री,त्रिष्टुप्; अनुष्टुप, पंक्ति बृहती)

तस्मै प्राच्या दिशा अन्तर्देशाद् भवमिष्वासमनुष्ठातारम-कुर्वन् ॥ १ ॥

भव एनमिष्वासः प्राच्या दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति नैन शर्वो न भवो नेशानः ॥ २ ॥

नास्य पशून् न समानान हिनस्ति य एवं वेद ॥ ३ ॥ (१)

देवो ने भव को उसके निमित्त पूर्व दिशा के कोने से वाण छोडने वाला अनुष्ठाता रूप मे बनाया ॥ १ ॥

पूर्व दिशा से भव, शर्व और ईशान इसके अनुकूल होते है ॥ २ ॥

ऐसा ज्ञाता के पुरुष और पशुओ को वे नष्ट नही होने देते ॥ ३ ।

तस्मै दक्षिणाया दिशो अन्तर्देशाच्छर्वमिष्वासमनुष्ठातारम कुर्वन् ॥ ४ ॥

शर्व एनमिष्वासो दक्षिणाया दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति नैन शर्वो न भवो नेशान. । नास्य पशून न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥ ५ ॥ (२)

दक्षिण दिशा के कोने से वाण छोडने वाले के रूप मे देवो ने शव को अनुष्ठाता रूप दिया ॥ ४ ॥

ऐसे ज्ञाता को दक्षिण के कोने से शव अनुरूप रहते हैं और उसके पशु और पुरुषो को नष्ट होने से बचाते हैं ॥ ५ ॥

तस्मै प्रतीच्या दिशो अन्तर्देशात् पशुपतिमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ ६ ॥

पशुपतिरेनमिष्वासः प्रतीच्या दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः । नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ३)

पशुपति को दक्षिणी कोने मे बाण छोड़ने वाले अनुष्ठाता के रूप मे देवो ने माना ॥ ६ ॥

ऐसे ज्ञाता पुरुष को पशुपति दक्षिणी कोने से अनुकूल होते हैं और उसके पशु और पुरुषो को नष्ट होने से बचाते हैं ॥ ७ ॥

तस्मा उदीच्या दिशो अन्तर्देशादुग्रं देवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ ८ ॥

उग्र एनं देव इष्वास उदीच्या दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः । नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥ ९ ॥ (४)

उग्रदेव को उत्तरी कोने से बाण छोड़ने वाले अनुष्ठाता के रूप में देवों ने स्वीकार किया ॥ ८ ॥

ऐसे ज्ञाता पुरुष के उत्तरी कोने से उग्रदेव अनुरूप होते हैं और उसके पुरुष और पशुओं को नष्ट होने से बचाते हैं ॥ ९ ॥

तस्मै ध्रुवाया दिशो अन्तर्देशाद् रुद्रमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ १० ॥

रुद्र एनमिष्वासो ध्रुवाय दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः । नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥ ११ ॥ (५)

ध्रुव दिशा के अन्तर्देश से बाण छोड़ने के लिये अनुष्ठाता रूप मे देवो ने रुद्र को बनाया ॥ १० ॥

ऐसे ज्ञाता पुरुष ने ध्रुवी अन्तर्देश से ध्रुव अनुकूल रहते और पशु तथा पुरुषो की रक्षा करते है ॥ ११ ॥

तस्मा ऊर्ध्वाया दिशो अन्तर्देशान्महादेवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ १२ ॥

महादेव एनमिष्वासऊर्ध्वाया दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति नैन शर्वो न भवो नेशानः नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥ १३ ॥ (६)

ऊर्ध्व दिशा के कोने से बाण छोड़ने वाले के रूप मे महादेव को अनुष्ठाता बनाया ॥ १२ ॥

वे महादेव ऐसे ज्ञाता पुरुष के ऊर्ध्व कोने से अनुकूल होते हैं और उसके पुरुष और पशुओ को नष्ट होने से बचाते हैं ॥ १३ ॥

तस्मै सर्वेभ्यो अन्तर्देशेभ्य ईशानमिष्वासमनुष्ठातारम कुर्वन ॥ १४ ॥

ईशान एनमिष्वासः सर्वेभ्यो अन्तर्देशेभ्योऽनुष्ठानु तिष्ठति नैन शर्वो न भवो नेशानः एवं वेद ॥ १५ ॥

नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य ॥ १६ ॥ (७)

समस्त दिशाओ के कोनो मे देवो ने ईशान को बाण छोडने वाले अनुष्ठाता के रूप मे बनाया ॥ १४ ॥

समस्त दिशाओ के कोनो से ईशान ऐसे ज्ञाता के अनुरूप तथा पशु व पुरुषो के रक्षक होते है ॥ १५ ॥

सूक्त (६)

(ऋषि—अथर्वा। देवता—अध्यात्मम् व्रात्य.। छन्द—पंक्ति., त्रिष्टुप्, बृहती जगती, उष्णिक्, अनुष्टुप्)

स ध्रुवां दिशमनु व्यचलत्॥ १॥
तं भूमिश्चाग्निश्चौषधयश्च वनस्पतयश्च वानस्पत्याश्च वीरुधश्चानुव्यचलन् २॥
भूमेश्च वै सोऽग्नेश्चौषधीनां च वनस्पतीनां च वानस्पत्यानां च वीरुधां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद॥ ३॥ (१)

समूहपति ध्रुव दिशा में चल दिया॥ १॥

पृथ्वी अग्नि औषधि वनस्पति, वे सब उसको अग्रसर करके चले॥ २॥

ऐसे ज्ञाता इन सभी का प्रिय धाम कहलाता है॥ ३॥

स ऊर्ध्वां दिशमनु व्यचलत्। ४॥
तमृतं च सत्यं च सूर्यश्च चन्द्रश्च नक्षत्राणि चानुव्यचलन्॥५॥
ऋतस्य च वै स सत्यस्य च सूर्यस्य च चद्रस्य च नक्षत्राणां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद॥ ६॥ (२)

वह ऊर्ध्व दिशा में चल दिया॥ ४॥

सूर्य चन्द्र, नक्षत्र ऋत, सत्य उसको अग्रसर कर चले। ५॥

ऐसा ज्ञाता सूर्य चन्द्र, नक्षत्र, ऋतु और सत्य का प्रिय धाम कहलाता है॥ ६॥

स उत्तमां दिशमनु व्यचलत्॥ ७॥
तमृचश्च सामानि च यजूंषि च ब्रह्म चानुव्यचलन्॥ ८॥
ऋचां च वै स साम्नां च यजुषां च ब्रह्मणश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद॥ ९॥ (३)

वह उत्तर दिशा मे चल पड़ा ॥ ७ ॥

साम, यजु, ऋचाय, और ब्रह्म, उसको अग्रसर करके चल दिये ॥ ८ ॥

ऐसा ज्ञाता साम, यजु, ऋचा और ब्रह्म का प्रिय धाम कहलाता है ॥ ६ ॥

स बृहतीं दिशमनु व्यचलत् ॥ १० ॥
तमितिहासश्च पुराण च गाथाश्च नाराशसीश्चानुव्यचलन् ॥ ११ ॥
इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथाना च नाराशसीनां च प्रिय धाम भवति य एव वेद ॥ १२ ॥ (४)

उसने बृहती दिशा को गमन शुरू किया ॥ १० ॥

तब पुराण, इतिहास, मनुष्यो की प्रशसात्मक गाथाऐं उसके पीछे पीछे चले ॥ ११ ॥

इस बात के जानने वाला पुराण, इतिहास और गाथाओ का प्रियधाम होता है ॥ १२ ॥

स परमा दिशमनु व्यचलत् ॥ १३ ॥
तमाहवनीयश्च गार्हपत्यश्च दक्षिणाग्निश्च यज्ञस्य च यजमानस्य च पशूना च प्रिय धाम भवति य एव वेद ॥ १४-१५ ॥ (५)

उसने परम दिशा को प्रस्थान किया ॥ १३ ॥

आह्वानीय गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि उसको अग्रसर करके चले और यज्ञ यजमान और पशु भी उनके अनुयायी बने ॥ १४ ॥

ऐसा ज्ञाता आह्वानीय, गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि यज्ञ, यजमान, और पशुओ का प्रिय धाम होता है ॥ १५ ॥

सोऽनादिष्टा दिशमनु व्यचलत् ॥ १६ ॥

सूक्त (६)

(ऋषि—अथर्वा। देवता—अध्यात्मम् व्रात्य। छन्द—पंक्ति, त्रिष्टुप्, बृहती जगती, उष्णिक् अनुष्टुप्)

स ध्रुवा दिशमनु व्यचलत् ।१॥
स भूमिश्चाग्निश्चौषधयश्च वनस्पतयश्च वानस्पत्याश्च वीरुधश्चानुव्यचलन् २॥
भूमेश्च वै सोऽग्नेश्चौषधीनां च वनस्पतीनां च वानस्पत्यानां च वीरुधां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ ३ ॥ (१)

समूहपति ध्रुव दिशा मे चल दिया ॥ १ ॥
पृथ्वी अग्नि औषधि वनस्पति, व सब उसको अग्रसर करके चले ॥ २ ॥
ऐसे ज्ञाता इन सभी का प्रिय धाम कहलाता है ॥ ३ ॥

स ऊर्ध्वां दिशमनु व्यचलत् ।४॥
ऋतं च सत्यं च सूर्यश्च चन्द्रश्च नक्षत्राणि चानुव्यचलन् ॥५॥
ऋतस्य च वै स सत्यस्य च सूर्यस्य च चन्द्रस्य च नक्षत्राणां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ ६ ॥ (२)

वह ऊर्ध्व दिशा से चल दिया ॥ ४ ॥
सूर्य चन्द्र, नक्षत्र ऋत, सत्य उसको अग्रसर कर चले । ५ ॥
ऐसा ज्ञाता सूर्य चन्द्र, नक्षत्र, ऋतु और सत्य का प्रिय धाम कहलाता है ॥ ६ ॥

स उत्तमां दिशमनु व्यचलत् ॥ ७ ॥
तमृचश्च सामानि च यजूंषि च ब्रह्म चानुव्यचलन् ॥ ८ ॥
ऋचां च वै स साम्नां च यजुषां च ब्रह्मणश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ ९ ॥ (३)

वह उत्तर दिशा में चल पड़ा ॥ ७ ॥

साम, यजु, ऋचायें, और ब्रह्म, उसको अग्रसर करके चल दिये ॥ ८ ॥

ऐसा ज्ञाता साम, यजु, ऋचा और ब्रह्म का प्रिय धाम कहलाता है ॥ ६ ॥

स बृहतीं दिशमनु व्यचलत् ॥ १० ॥
तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्यचलन् ॥ ११ ॥
इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ १२ ॥ (४)

उसने बृहती दिशा को गमन शुरू किया ॥ १० ॥

तब पुराण, इतिहास, मनुष्यों की प्रशंसात्मक गाथाएं उसके पीछे पीछे चले ॥ ११ ॥

इस बात के जानने वाला पुराण, इतिहास और गाथाओं का प्रियधाम होता है ॥ १२ ॥

स परमां दिशमनु व्यचलत् ॥ ३ ॥
तमाहवनीयश्च गार्हपत्यश्च दक्षिणाग्निश्च यज्ञस्य च यजमानस्य च पशूनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ १४-१५ ॥ (५)

उसने परम दिशा को प्रस्थान किया ॥ १३ ॥

आह्वानीय गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि उसको अग्रसर करके चले और यज्ञ यजमान और पशु भी उनके अनुयायी बने ॥ १४ ॥

ऐसा ज्ञाता आह्वानीय, गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि यज्ञ, यजमान, और पशुओं का प्रिय काम होता है ॥ १५ ॥

सोऽनादिष्टां दिशमनु व्यचलत् ॥ १६ ॥

तमृतवश्चार्तवाश्च लोकाश्च लौक्याश्च मासाश्चार्धमासाश्चाहोरात्रे चानुव्यचलन् ॥ १७ ॥
ऋतूना च वै स आर्तवाना च लोकाना च लौक्याना च मासाना चार्धमासाना चाहोरात्रयोश्च प्रिय धाम भवति य एवं वेद ॥ १८ ॥ (६)

वह अनादिष्ट दिशा में चल दिया ॥ १६ ॥

ऋतुयें, पदार्थ, लोक, मास, पक्ष, दिवस और रात्रि उसको अग्रसर कर चले । १७ ।

इसके ज्ञाता पुरुष ऋतु पदार्थ, लोक, मास, पक्ष, दिन रात्रि का प्रिय धाम कहलाता है ॥ १८ ॥ (६)

सोऽनावृता दिशमनु व्यचलत् ततो नावर्त्स्यन्नमन्यत ॥ १९ ॥
त दितिश्चादितिश्चेडा चेन्द्राणी चानुव्यचलन् ॥ २० ॥
दितेश्च वै सोऽदितेश्चेडायाश्चेन्द्राण्याश्च प्रिय धाम भवति य एवं वेद ॥ २१ ॥ (७)

उसने अनावृत दिशा में गमन किया तथा वहाँ पर रहना उचित नहीं समझा ॥ १९ ॥

उसके पीछे, इडा, इन्द्राणी, दीति और अदिति भी चलीं ॥ २० ॥

इसको ज्ञाता पुरुष इडा, इन्द्राणी दिति अदिति, का प्रिय धाम कहलाता है ॥ २१ ॥

स दिशोऽनु व्यचलत् त विराडनु व्यचलत् सर्वे च देवा सर्वाश्च देवता ॥ २२ ॥

विराजश्च वै स सर्वेषां च देवानां सर्वासां च देवतानां प्रिय धाम भवति य एवं वेद ॥ २३ ॥ (८)

वह दिशाओं में चला गया और विराट आदि पुरुष उसको अग्रगामी बनाकर चले ॥ २२ ॥

ऐसे ज्ञाता पुरुष विराट आदि पुरुषों के प्रिय धाम कहलाते हैं ॥ २३ ॥

स सर्वानन्तर्देशाननु व्यचलत् ॥ २४ ॥
तं प्रजापतिश्च परमेष्ठी च पिता च पितामहश्चानुव्यचलन् ॥२५॥
प्रजापतेश्च वै स परमेष्ठिनश्च पितुश्च पितामहस्य च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ २६ ॥ (६) [११६]

उसने समस्त अन्तर देशों में गमन किया ॥ २४ ॥

प्रजापति, परमेष्ठी, पिता और पितामह भी उसको अग्रगामी कर चल दिये। ऐसा ज्ञाता पुरुष प्रजापति, परमेष्ठी, पिता और पितामह का प्रिय धाम कहलाता है ॥ २५ ॥

इस प्रकार जानने वाला प्रजापति परमेष्ठी, पिता और पितामह का प्रियधाम होता है ॥ २६ ॥

सूक्त (७)

(ऋषि—अथर्वा। देवता—अध्यात्मम्, व्रात्य। छन्द—गायत्री, बृहती, उष्णिक् पंक्ति)

स महिमा सद्रुर्भूत्वान्तं पृथिव्या अगच्छत् स समुद्रोऽभवत् ॥ १ ॥
तं प्रजापतिश्च परमेष्ठी च पितामहश्चापश्च श्रद्धा च वर्षं भूत्वानुव्यवर्तयन्त ॥ २ ॥
ऐनमापो गच्छन्त्यैनं श्रद्धा गच्छत्यैनं वर्षं गच्छति य एवं वेद ॥ ३ ॥
तं श्रद्धा च यज्ञश्च लोकश्चान्नं चान्नाद्यं च भूत्वाभिपर्यावर्तन्त ॥ ४ ॥
ऐनं श्रद्धा गच्छत्यैनं यज्ञो गच्छत्यैनं लोको गच्छत्यैनमन्नं गच्छत्यैनमन्नाद्यं गच्छति य एवं वेद ॥ ५ ॥

उसने पृथ्वी के अन्त पर सद्रुमहिमा होकर गमन किया और समुद्र रूप धारण किया ॥ १ ॥

प्रजापति परमेष्ठी पिता, पितामह, जल और श्रद्धा यह समस्त रूप मे उसके अनुरूप चलने लगे ॥ २ ॥

ऐसे ज्ञाता को जल और श्रद्धा अनुरूप होकर कार्य करने लगे ऐसे को जल, श्रद्धा और वर्षा प्राप्त होती है ॥ ३ ॥

लोक, यज्ञ, अन्न, खाद्यान्न और श्रद्धा उत्पन्न हो उसके चारो ओर विराजमान हुये ॥ ४ ॥

इस प्रकार जानने वाले को लोक, यज्ञ, अन्न अपनाया और श्रद्धा प्राप्त होती रहती हैं ॥ ५ ॥

सूक्त ८ (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अध्यात्मम्, व्रात्य । छन्द—उष्णिक्, अनुष्टुप्, पंक्ति)

सोऽरज्यत ततो राजन्योऽजायत ॥ १ ॥
स विशः सबन्धूनन्नमन्नाद्यमभ्युदतिष्ठत् ॥ २ ॥
विशां च वै स सबन्धूनां चान्नस्य चान्नाद्यस्य चप्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ ३ ॥

उसने रञ्जन कर राजा रूप धारण किया ॥ १ ॥

वह प्रजा, बन्धु अन्न और अन्नाद्य को अनुकूल रूप मे काम लाने लगा ॥ २ ॥

ऐसा ज्ञाता प्रजा और अन्य, अन्नाद्य का प्रिय धाम बन जाता है ॥ ३ ॥

सूक्त (९)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अध्यात्मम्, व्रात्य. । छन्द—जगती, गायत्री, पंक्ति)

स विशोऽनु व्यचलत् ॥ १ ॥

त सभा च समितिश्च सेना च सुरा चानुव्यचलन ॥ २ ॥
सभायाश्च वै स समितेश्च सेनायाश्च सुरायाश्च प्रियधाम भवति य एवं वेद ॥ ३ ॥

प्रजाजन के अनुरूप हो उसने व्यवहार किया ॥ १ ॥

सभा, समिति, सेना और सुरा उसके अनुरूप बने ॥ २ ॥

ऐसा ज्ञाना सभा, समिति और सेना तथा सुरा का प्रिय धाम बन जाता है ॥ ३ ॥

सूक्त (१०)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अध्यात्मम्, व्रात्य । छन्द—बृहती, पंक्ति, उष्णिक्)

तद् यस्यैव विद्वान् व्रात्यो राजोऽतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥ १ ॥
श्रेयांसमेनमात्मनो मानयेत् तथा क्षत्राय ना वृश्चते-
तथा राष्ट्राय ना वृश्चते ॥ २ ॥
अतो वै ब्रह्म च क्षत्र चोदतिष्ठता ते अब्रूतां कं प्र
विशावेति ।' ३ ॥
बृहस्पतिमेव ब्रह्म प्र विशत्विन्द्र क्षत्र तथा वा इति ॥ ४ ॥
अतो वै बृहस्पतिमेव ब्रह्म प्राविशदिन्द्र क्षत्रम् ॥ ५ ॥
इय वा उ पृथ्वी बृहस्पतिर्द्यौरेवेन्द्रः ॥ ६ ॥
अय वा उ अग्निर्ब्रह्मासावादित्यः क्षत्रं ॥ ७ ॥
ऐन ब्रह्म गच्छति ब्रह्मवर्चसी भवति । ८ ॥
यः पृथिवीं बृहस्पतिमग्निं ब्रह्मायेद । ९ ॥
ऐनमिन्द्रिय गच्छतीन्द्रियवान् भवति ॥ १० ॥
य आदित्य क्षत्रं दिवमिन्द्र वेद ॥ ११ ॥

ऐसा ज्ञाता समूहपति जिस राजा का अतिथि हो । १ ॥

सम्मान करने से वह राष्ट्र और क्षात्र शक्ति को नष्ट नही करता है ॥ २ ॥

ब्रह्म बल जो क्षात्र में प्रश्न उठा कि हम किसमें वास करें ? ॥ ३ ॥

ब्राह्मबल बृहस्पति और छात्र बल इन्द्र में प्रविष्ट होवे ॥ ४ ॥

तब ब्राह्मबल बृहस्पति मे और क्षात्र बल इन्द्र में प्रविष्ट हो गये ॥ ५ ॥

आकाश इन्द्र और पृथ्वी बृहस्पति रूप हो है ॥ ६ ॥

आदित्य क्षात्र बल और अग्नि ब्राह्म बल रूप मे स्थित हैं ॥ ७ ॥

जो पृथ्वी को बृहस्पति और अग्नि को ब्रह्म समझता है वह ब्राह्म बल और ब्रह्मचर्य को धारण करता है ॥ ८–९ ॥

जो आदित्य को छत्र और द्यौ को इन्द्र रूप समझता है वह इन्द्रियो से सम्पन्न होता है ॥ १०–११ ॥

सूक्त (११)

(ऋषि – अथर्वा देवता—अध्यात्मम्, व्रात्य । छन्द— पंक्ति, शक्वरी, बृहती, अनुष्टुप्)

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्योऽतिथिर्गृहानागच्छेत् । १ ॥
स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयाद् व्रात्य क्वाऽवात्सीर्व्रात्योदकं व्रात्य- तर्पयन्तु व्रात्य यथा ते प्रियं तथास्तु व्रात्य यथा ते वशस्त- थास्तु व्रात्य यथा ते निकामस्तथास्त्विति ॥ २ ॥
यदेनमाह व्रात्य क्वाऽवात्सीरिति पथ एव तेन देवयानान- वरुन्द्धे ॥ ३ ॥
यदेनमाह व्रात्योदकमित्यप एव तेनाव रुन्द्धे ॥ ४ ॥

यदेनमाह व्रात्य तर्पयन्त्विति प्राणमेव तेन वर्षीयांसं कुरुते ॥ ५ ॥
यदेनमाह व्रात्य यथा ते प्रियं तथास्त्विति प्रियमेव तेनाव रुन्द्धे ॥ ६ ॥
ऐनं प्रियं गच्छति प्रियः प्रियस्य भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥
यदेनमाह व्रात्य यथा ते वशस्तथास्त्विति वशमेव तेनाव रुन्द्धे ॥ ८ ॥
ऐनं वशो गच्छति वशी वशिनां भवति य एवं वेद ॥ ९ ॥
यदेनमाह व्रात्य यथा ते निकामस्तथास्त्विति निकाममेव-तेनाव रुन्द्धे ॥ १० ॥
एनं निकामो गच्छति निकामे निकामस्य भवति य एवं वेद ॥ ११ ।

ऐसा ज्ञाता समूहपति जिसके घर का अतिथि बनता है ॥ १ ॥

उसको आसन देकर ऐसे कहना चाहिये हे व्रात्य तुम कहाँ रहते हो। यह जल है हमारे घर के निवासी तुम्हे प्रसन्न चित्त करे। तुम्हे जो अच्छा लगे वह करो ॥ २ ॥

कहाँ रहने को पूछने पर देवयान मार्ग खुल जाता है ॥ ३ ॥

जल को पूछने पर उसको जल ही खुल जाता है ॥४॥

हमारे व्यक्ति तृप्त करें ऐसा कहने पर अपने प्राणों को सोचता है ॥ ५ ॥

'प्रिय होगा' ऐसा करने पर प्रिय कार्यों का उद्घाटन करता है ॥ ६ ॥

ऐसा ज्ञाता प्रिय पुरुष को पा प्रिय बन जाता है । ७ ॥

तुम्हारा वश है वैसा ही हो कहने पर उससे वश को खोल लेता है ॥ ८ ॥

ऐसे ज्ञाता दूसरों को भी अपने वश में करने में समर्थ होता है ॥ ६ ॥

तुम्हारा निकाम सा ही हो कहने वाला अपनी समस्त अभीष्टों को प्राप्त होता है ॥ १० ॥

इस प्रकार के ज्ञाता पुरुष भी अपनी मनोभिलाषा को पूर्ण करता है ॥ ११ ॥

सूक्त (१२)

(ऋषि - अथर्वा । देवता—अध्यात्मम् व्रात्यः । छन्द—गायत्री, बृहती, अनुष्टुप्; त्रिष्टुप्)

तद् यस्यैवं विद्वान व्रात्य उद्धृतेष्वग्निष्वधिश्रितेऽग्निहोत्रेऽतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥ १ ॥

स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयाद् व्रात्यातिसृज होष्यामीति ॥ २ ॥

स चातिसृजेज्जुहुयान्न चातिसृजेन्न जुहुयात् ॥ ३ ॥

स य एवं विदुषा व्रात्येनातिसृष्टो जुहोति ॥ ४ ॥

प्र पितृयाणं पन्थां जानाति प्र देवयानम् ॥ ५ ॥

न देवेष्वा वृश्चते हुतमस्य भवति ॥ ६ ॥

पर्यस्यास्मिंल्लोक आयतनं शिष्यते य एवं विदुषा व्रात्येनातिसृष्टो जुहोति ॥ ७ ॥

अथ य एवं विदुषा व्रात्येनानतिसृष्टो जुहोति ॥ ८ ॥

न पितृयाणं पन्थां जानाति न देवयानम् ॥ ९ ॥

आ देवेषु वृश्चते अहुतमस्य भवति ॥ १० ॥

नास्यास्मिंल्लोक आयतनं शिष्यते य एवं विदुषा व्रात्येनानतिसृष्टो जुहोति ॥ ११ ॥

अग्नि होम के अधिश्रित व उद्धृत होने पर यदि समूहपति आवें ॥ १ ॥

तब उसको अभ्युत्थान खुद देवें और इस प्रकार कहे—हे समूहपति ! मुझे यज्ञाज्ञा प्रदान करो ॥ २ ॥

उसके कहने पर ही आहुति प्रदान करे अन्यथा नही देवें ॥ ३ ॥

ऐसा ज्ञाता समूहपति की आज्ञा से आहुति देने पर देवमान और पितृयान म र्ग को प्राप्त करता है ॥ ४-५ ॥

देवताओ के पास ही इसकी आहुति जाती है ॥ ६ ॥

समूहपति की आज्ञा से आहुति देने पर समस्त लोक में अवशिष्ट आयतन से युक्त होता है । ७ ॥

ऐसा ज्ञाता यदि समूहपति की आज्ञा के बिना भी आहुति प्रदान करता है ॥ ८ ॥

तो वह देवयान और पितृयान को प्राप्त नही होता ॥९॥

समूहपति की बिना आज्ञा अ हुति देने पर वह व्यर्थ जाती है और देव गण उसे नष्ट कर देते है ॥ १०-११ ॥

सूक्त (१३)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अध्यात्मम्, व्रात्यः । छन्द—उष्णिक्, अनुष्टुप्, गायत्री, बृहती, पंक्ति, जगती)

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्य एकां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ॥ १ ॥

ये पृथिव्यां पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे । २ ॥

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यो द्वितीयां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ॥ ३ ॥

येऽन्तरिक्षे पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे । ४ ॥

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यस्तृतीयां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ॥ ५ ॥

ये दिवि पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे ॥ ६ ॥

तद् यस्यैव विद्वान् व्रात्यश्चतुर्थी रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ॥ ७ ॥
ये पुण्यानां पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे ॥ ८ ॥
तद् यस्यैव विद्वान् व्रात्योऽपरिमिता रात्रीरतिथिर्गृहे वसति ॥ ९ ॥
य एवापरिमिता पुण्या लोकास्तानेव तेन व रुन्द्धे ॥ १० ॥
अथ यस्याव्रात्यो व्रात्यब्रुवो नामबिभ्रत्यतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥ ११ ॥
कर्षेदेनं न चैनं कर्षेत् ॥ १२ ॥
अस्यै देवताया उदक याचामीमां देवता वासय इमीममां देवता परि वेवेष्मीत्येनं परि वेविष्यात् ॥ १३ ॥
तस्यामेवास्य तद् देवतायां हुतं भवति य एवं वेद ॥ १४ ॥

समूहपति यदि किसी के घर में रात्रि में अतिथि बनता है ॥ १ ॥

वह समूहपति के आने के फल से सभी पुण्यों को प्राप्त होता है ॥ २ ॥

ऐसा विद्वान समूहपति जिसके घर में दूसरी रात्रि में निवास करता है ॥ ३ ॥

तो उससे उत्पन्न फलों द्वारा वह अन्तरिक्ष में समस्त पुण्यों को प्राप्त करता है। ४ ॥

यदि ऐसा विद्वान समूहपति तीसरी रात्रि भी निवास करता है ॥ ५ ॥

तो उससे उत्पन्न फल से उसको समस्त लोक खुल जाता है ॥ ६ ॥

चौथी रात्रि भी जिसके घर से ऐसा विद्वान समूहपति निवास करता है। ७ ॥

तो उससे उत्पन्न फल से वह पुण्यात्मा लोगों के लोकों को खोल लेता है ॥ ८ ॥

जिसके घर में ऐसा विद्वान समूहपति अनेक रात तक निवास करता है ॥ ९ ॥

तो उससे उत्पन्न फल से उसको समस्त लोकों का मार्ग खुल जाता है ॥ १० ॥

जिसके घर व्रात्य (समूहपति) बनने वाला अव्रात्य आवें ॥ ११ ॥

तो क्या उसे भगा देवें ? नहीं, भगाना ठीक नहीं ॥१२॥

मैं इस देव को बसाता हूँ मैं इनको जल से याचना करता हूँ, मैं इस देव को परोसने का कार्य सम्पन्न कराता हूँ। यह समझ कर परोसने का कार्य सम्पन्न करें । १३ ।

सभी अतिथियों का आदर करना चाहिये। जो इस बात को जानता है उसकी आहुति इस देवगण में स्वाहुत होती है ॥ १४ ॥

सूक्त (१४)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अध्यात्मम् व्रात्य । छन्द—अनुष्टुप्, गायत्री, उष्णिक, पंक्ति त्रिष्टुप्)

स यत् प्राचीं दिशमनु व्यचलन्मारुतं शर्धो भूत्वानुव्य-चलन्मनोऽन्नादं कृत्वा ॥ १ ॥

मनसान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ २ ॥

स यद् दक्षिणां दिशमनु व्यचलदिन्द्रो भूत्वान् व्यचलद् बलमन्नादं कृत्वा ॥ ३ ॥

बलेनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ ४ ॥

स यत् प्रतीचीं दिशमनु व्यचलद् वरुणो राजा
भूत्वान् व्यचलदपोऽन्नादीः कृत्वा ॥ ५ ॥
अद्भिरन्नादीभिरन्नमत्ति य एवं वेद ॥ ६ ॥
स यदुदीचीं दिशमनु व्यचलत् सोमो राजा भूत्वानुव्यचलत्
सप्तर्षिभिर्हुत आहुतिमन्नादीं कृत्वा ॥ ७ ॥
आहुत्यान्नाद्यान्नमत्ति य एवं वेद ॥ ८ ॥
स यद् ध्रुवां दिशमनु व्यचलद् विष्णुर्भूत्वानु व्यचलत्
विराजमन्नादीं कृत्वा ॥ ९ ॥
विराजान्नाद्यान्नमत्ति य एवं वेद ॥ १० ॥

पूर्व दिशा में चलने पर उसने अपनी उग्र के अनुरूप अपने मन को अन्नाद से सम्पन्न किया ॥ १ ॥

जो इसे समझता है वह अन्नाद मन युक्त अन्न को ग्रहण करता है ॥ २ ॥

दक्षिण दिशा में चलने पर वह अपने मन में अन्नाद हो (स्वयं) इन्द्र रूप धारण कर चला ॥ ३ ॥

ऐसा ज्ञाता अन्नाद बल से अन्न सेवन करता है ॥ ४ ॥

पश्चिम दिशा में चलने पर वह अन्नाद हो वरुण रूप में हुआ ॥ ५ ॥

ऐसा ज्ञाता अन्नाद बल अन्न को ग्रहण करता है ॥ ६ ॥

उत्तर दिशा में चलने पर सप्तर्षि आहुति को पा सोम रूप धारण किया ॥ ७ ॥

ऐसा ज्ञाता अन्नाद आहुति से अन्न ग्रहण करता है ॥ ८ ॥

ध्रुव दिशा में चलने पर विराट को अन्नाद मान स्वयं विष्णु रूप धारण किया ॥ ९ ॥

ऐसा ज्ञाता अन्नाद विराट से अन्न ग्रहण करता है । १० ॥

स यत् पशूनन् व्यचलद् रुद्रो भूत्वान् व्यचलओषधीरन्नादीः कृत्वा ॥ ११ ॥
ओषधीभिरन्नादीभिरन्नमत्ति य एवं वेद ॥ १२ ॥
स यत् पितृनन् व्यचलद् यमो राजा भूत्वान् व्यचलत् स्वधाकारमन्नादं कृत्वा ॥ १३ ॥
स्वधाकारेणान्नादेनान्नमत्ति य एव वेद ॥ १४ ॥
स यन्मनुष्यानन् व्यचलदग्निर्भूत्वान् व्यचलत स्वाहाकारमन्नाद कृत्वा ॥ १५ ॥
स्वाहाकारेणान्नादेनान्नमत्ति य एव वेद ॥ १६ ॥
स यदूर्ध्वां दिशमन् व्यचलद् बृहस्पतिर्भूत्वान् व्यचलद् वषट्कारमन्नाद कृत्वा ॥ १७ ॥
वषट्कारेणान्नादेनान्नमत्ति य एव वेद ॥ १८ ॥
स यद् देवानन् व्यचलदीशानो भूत्वानुव्यचलन्मन्युमन्नाद कृत्वा ॥ १९ ॥
मन्युनान्नादेनान्नमत्ति य एव वेद ॥ २० ॥
स यत् प्रजा अनु व्यचलत् प्रजापतिर्भूत्वान् व्यचलत् प्राणमन्नाद कृत्वा ॥ २१ ॥
प्राणेनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वे० ॥ २२ ॥
स यत् सर्वानन्तर्देशानन् व्यचलत् परमेष्ठी भूत्वान् व्यचलद् ब्रह्मान्नाद कृत्वा ॥ २३ ॥
ब्रह्मणान्नादेनान्नमत्ति एव वेद ॥ २४ ॥

जब वह पशुओं की ओर चलने लगा तो औषधियों को अन्नाद बना रुद्र रूप धारण किया ॥ ११ ॥

ऐसा ज्ञाता अन्नाद ओषधियों से अन्न ग्रहण करता है ॥ १२ ॥

पितरों की ओर चलने पर स्वधा को अन्नाद कर स्वयं रूप धारण करता है ॥ १३ ॥

इस प्रकार के ज्ञाता स्वधाकार अन्नाद से अन्न ग्रहण करता है ॥ १४ ॥

मनुष्यों को ओर चलने पर स्वधा को अन्नाद बना स्वयं अग्नि रूप धारण किया ॥ १५ ॥

ऐसा ज्ञाता स्वाहाकार अन्नाद से अन्न ग्रहण करता है ॥ १६ ॥

ऊर्ध्वदिशा में गमन करने पर उसने वषट्कार को अन्नाद बना स्वय मन्य वृहस्पति बनकर चला ॥ १७ ॥

ऐसा ज्ञाता वषट्कार रूप अन्नाद द्वारा अन्य प्राप्त होता है ॥ १८ ॥

देवता की ओर चलने पर यज्ञ को अन्नाद बनाया और स्वयम् ने ईशान रूप धारण किया ॥ १९ ॥

ऐसा ज्ञाता अन्नाद यज्ञ से अन्न ग्रहण करता है ॥ २० ॥

प्रजाओं की ओर चलने पर प्राण को अन्नाद बनाया और स्वय प्रजापति बना ॥ २१ ॥

ऐसा ज्ञाता अन्नाद प्राण से अन्न ग्रहण करता है ॥ २२ ॥

सब अन्तर देशों में गमन के समय ब्रह्म को अन्नाद और स्वय प्रजापति बनकर चला ॥ २३ ॥

ऐसा ज्ञाता पुरुष आनन्द ब्रह्म के द्वारा अन्न रूप भोजन को प्राप्त करता है ॥ २४ ॥

सूक्त (१५)

(ऋषि – अथर्वा । देवता —अध्यात्मम्, व्रात्यः । छन्द — पंक्तिः; बृहती; अनुष्टुप्; गायत्री)

तस्य व्रात्यस्य ॥ १ ॥
सप्त प्राणाः सप्तापानाः सप्त व्यानाः ॥ २ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य प्रथमः प्राण ऊर्ध्वो नामायं सो अग्निः ॥ ३ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य द्वितीयः प्राणः प्रौढो नामासौ स आदित्यः ॥ ४ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य तृतीयः प्राणोऽभ्यूढो नामासौ स चन्द्रमाः ॥ ५ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य चतुर्थः प्राणो विभूर्नामाय स पवमानः ॥ ६ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य पञ्चमः प्राणो योनिर्नाम ता इमा आपः ॥ ७ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य षष्ठः प्राणः प्रियो नाम त इमे पशवः ॥ ८ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य सप्तमः प्राणोऽपरिमितो नाम ता इमाः प्रजा ॥ ९ ॥

उस समूहपति के सात प्राण, सात अपान और सात ही व्यान है ॥ १-२ ॥
इसका पहिला ऊर्ध्व प्राण अग्नि है ॥ ३ ॥
दूसरे प्रौढ प्राण आदित्य है ॥ ४ ॥
इसका तीसरा स्थान अभ्यूढ चन्द्रमा कहलाता है ॥ ५ ॥
चौथा यान विभू पवमान कहलाता है ॥ ६ ॥
इसकी पञ्चय योनि जल है ॥ ७ ॥

इसका षष्ठ प्राण प्रिय नामक पशु है ॥ ८ ॥

सका सप्तम प्राण अपरिमित प्रजा कहलाता है ॥ ६ ॥

सूक्त (१६)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अध्यात्मम्, व्रात्य । छन्द— उष्णिक्, त्रिष्टुप्, गायत्री)

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य प्रथमोऽपानः सा पौर्णमासी ॥ १ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य द्वितीयोऽपानः साष्टका । २ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य तृतीयोऽपानः सामावास्या ॥ ३ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य चतुर्थोऽपानः सा श्रद्धा ॥ ४ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य पञ्चमोऽपानः सा दीक्षा॥ ५ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य षष्ठोऽपानः स यज्ञ ॥ ६ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य सप्तमोऽपानस्ता इमा दक्षिणा ॥ ७ ॥

इसके समूहपति का प्रथम अपान पौणमासी कहलाता है ॥ १ ॥

इसका द्वितीय अपान अष्टका कहलाता है ॥ २ ॥

इसका तृतीय अपान अमावस्या और चतुर्थ श्रद्धा है ॥ ३-४ ॥

इसका पचम अपान दीक्षा और छटा अपान यज्ञ कहलाता है ॥ ५-६ ॥

इसका सप्तम अपान दक्षिणा होता है ॥ ७ ॥

सूक्त (१७)

(ऋषि—अथर्वा। देवता—अध्यात्मम् व्रात्य । छन्द— उष्णिक्, अनुष्टुप्, पंक्ति, त्रिष्टुप्)

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य प्रथमो व्यानः सेयं भूमि ॥ १ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य द्वितीयो व्यानस्तदन्तरिक्षम् ॥ २ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य तृतीयो व्यानः सा द्यौ ॥ ३ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य चतुर्थो व्यानस्तानि नक्षत्राणि । ४ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य पञ्चमो व्यानस्त ऋतव ॥ ५ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य षष्ठो व्यानस्त आर्तवाः ॥ ६ ॥
तस्य व्रात्यस्य योऽस्य सप्तमो व्यानः स संवत्सर. ॥ ७ ॥
तस्य व्रात्यस्य । समानमर्थं परि यन्ति देवाः संवत्सरं वा एतदृतवोऽनुपरियन्ति व्रात्य च ॥ ८ ॥
तस्य व्रात्यस्य । यदादित्यमभिसंविशन्त्यमावास्यां चैव तत् पौर्णमासीं च ॥ ९ ॥
तस्य व्रात्यस्य । एकं तदेषाममृतत्वमित्याहुतिरेव ॥ १० ॥

इन समूहपति का प्रथम व्यान भूमि, दूसरा व्यान अन्तरिक्ष, तीसरा व्यान द्यौ, चौथा नक्षत्र, पाँचवा ऋतुयें, छटा आर्तक, सातवाँ सम्वत्सर है ॥ १ ७ ॥

देवगण इसके समानार्थ को ग्रहण करते है। सम्वत्सर और ऋतु भी इसका अनुमान करती है ॥ ८ ॥

आदित्य मे प्रवेश करने वाली अमावस्या और पूर्णिमा की एक आहुति ही इनका अवि नाशक है ॥ ९-१० ॥

सूक्त (१८)

ऋषि--अथर्वा । देवता--अध्यात्मम्, व्रात्य । छन्द--पंक्ति, बृहती, अनुष्टुप्, उष्णिक्)

तस्य व्रात्यस्य ॥ १ ॥
यदस्य दक्षिणमक्ष्यसौ स आदित्यो यदस्य सव्यमक्ष्यसौ स चन्द्रमा. ॥ २ ॥

योऽस्य दक्षिणः कर्णोऽयं सो अग्निर्योऽस्य सव्य कर्णोऽयं स पवमानः ॥ ३ ॥

अहोरात्रे नासिके दितिश्चादितिश्च शीर्षपाने संवत्सरः शिरः ॥ ४ ॥

अह्ना प्रत्यङ् व्रात्यो रात्र्या प्राङ् नमो व्रात्याय ॥ ५ ॥

इस समूह पति का दक्षिण चक्षु आदित्य और वाम चक्षु चन्द्रमा होता है ॥ १-२ ॥

इसका दक्षिण कर्ण अग्नि और वाम वर्ण पवमान है ॥ ३ ॥

इसकी नासिका दिवस और रात्रि होती है और शीष कपाल दिति और अदिति होती है। इसका सिर सम्वत्सर कहलाता है ॥ ४ ॥

यह समूह पति दिवस में समस्त जीवों से पूजनीय है तथा रात्रि में भी पूजने योग्य है। ऐसे समूहपति को हमारा नमस्कार है ॥ ५ ॥

॥ इति पंचदश काण्ड समाप्तम् ॥

षोडश काण्ड

सूक्त १ (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—प्रजापतिः । छन्द—बृहती; त्रिष्टुप्; गायत्री; पंक्ति; अनुष्टुप्; उष्णिक्)

अतिसृष्टो अपां वृषभोऽतिसृष्टा अग्नयो दिव्याः ॥ १ ॥
रुजन् परिरुजन् मृणन् प्रमृणन् ॥ २ ॥
म्रोको मनोहा खनो निर्दाह आत्मदूषिस्तनूदूषिः ॥ ३ ॥
इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ॥ ४ ॥
तेन तमभ्यतिसृजामो योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥ ५ ॥
अपामग्रमसि समुद्रं वोऽभ्यवसृजामि ॥ ६ ॥
योऽप्स्वग्निरति तं सृजामि म्रोकं खनिं तनूदूषिम् ॥ ७ ॥
यो व आपोऽग्निराविवेश स एष यद् वो घोरं तदेतत् ॥ ८ ॥
इन्द्रस्य व इन्द्रियेणाभि षिञ्चेत् ॥ ९ ॥
अरिप्रा आपो अप रिप्रमस्मत् ॥ १० ॥
प्रास्मदेनो वहन्तु प्र दुःष्वप्न्यं वहन्तु ॥ ११ ॥
शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः शिवया तन्वोप स्पृशत त्वचं मे ॥ १२ ॥
शिवानग्नीनप्सुषदो हवामहे मयि क्षत्रं वर्च आ धत्त देवीः ॥ १३ ॥

जल में वृषभ के रूप में वह अति सृष्टा होकर और दिव्य अग्नियाँ अति सृष्ट रूप में होती हैं ॥ १ ॥

भङ्ग कर्ता, नाशक, पालन कर्ता, मन-नाशक, दाहोत्पादक, खोदने से मिलने वाला, आत्मा और शरीर दूषित करने

ाला जो जल है उसे वैरियों को देता हूँ। मैं अतिसर्जन कर से स्वयं नहीं छूता हूँ ॥ २-५ ॥

मैं जल के उत्तम भाग को समुद्र की ओर बहने को सकेत रता हूँ ॥ ६ ॥

शरीर शक्ति को नष्ट करने वाले जलो के भीतर ले जाने ाले अग्नि का भी मैं अपसर्जन कार्य करता हूँ ॥ ७ ॥

हे जलो ! प्रविष्ट हुआ अग्नि भीषण अंश रूप है ॥८॥

हम तुम्हारे अत्यधिक ऐश्वर्य शाली अंग को इन्द्रियों द्वारा सींचते हैं ॥ ९ ॥

जल हमारे पापों को दूर करे ॥ १० ॥

यह जल पाप और दुस्वप्न को कूड़ा कर्कट के समान बहा ले जाय ॥ ११ ॥

हे जलो ! कृपा दृष्टि से मुझे देखकर कल्याण मयी अंग को मुझ प्रदान करो ॥ १२ ॥

हम जलमयी अग्नियो को बुलाते हैं। यह दिव्य जल हमको क्षात्रबल वाली जो शक्तियाँ हैं उनसे सम्पन्न करें और हमें दीर्घ जीवी बनावें ॥ १३ ॥

सूक्त (२)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—वाक् । छन्द—अनुष्टुप्, उष्णिक्, बृहती, गायत्री)

निर्दुरर्मण्य ऊर्जा मधुमती वाक् ॥ १ ॥

मधुमती स्थ मधुमतीं वाचमुदेयम् ॥ २ ॥

उपहूतो मे गोपा उपहूतो गोपीथः ॥ ३ ॥

सुश्रुतौ कर्णौ भद्रश्रुतौ कर्णौ भद्रं श्लोकं श्रूयासम् ॥ ४ ॥

सुश्रुतिश्च मोपश्रुतिश्च मा हासिष्टां सौपर्णं चक्षुरजस्रं ज्योतिः ॥ ५ ॥
ऋषीणां प्रस्तरोऽसि नमोऽस्तु दैवाय प्रस्तराय ॥ ६ ॥

मैं दूषित अर्म रोग से मुक्ति चाहता हूँ। मैं बलवती और मधुमयी वाणी वाला बनूँ ॥ १ ॥

औषधियो ! तुम मेरी वाणी सहित मधुर रस से युक्त होवो ॥ २ ॥

मैं इन्द्रिय पालक मन और सुख का आह्वान करता हूँ ॥ ३ ॥

मेरे कान और मैं मंगलमयी बातों को श्रवण करें ॥४॥

मेरे श्रोत्र उत्तम और निकटवर्ती बातों को श्रवण करने मे न चूकें। मेरे नेत्र गरुण के नेत्रो के समान दर्शन शक्ति के धारक होवें ॥ ५ ॥

तुम ऋषियो के प्रस्तर हो अतः देव रूपी प्रस्तर को हमारा नमस्कार है ॥ ६ ॥

सूक्त (३)

(ऋषि—अथर्वा। देवता—ब्रह्मादियो। छन्द—गायत्री, अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, उष्णिक्)

मूर्धाहं रयीणां मूर्धा समानानां भूयासम् ॥ १ ॥
रजश्च मा वेनश्च मा हासिष्टां मूर्धा च मा विधर्मा च मा हासिष्टाम् ॥ २ ॥
उर्वश्च मा चमसश्च मा हासिष्टां धर्ता च मा धरुणश्च मा हासिष्टाम् ॥ ३ ॥
विमोकश्च मार्द्रपविश्च मा हासिष्टामार्द्रदानुश्च मा मातरिश्वा च मा हासिष्टाम् ॥ ४ ॥

बृहस्पतिर्म आत्मा नृमणा नाम हृद्य ॥ ५ ॥
असन्ताप मे हृदयमुर्वी गव्यूति समुद्रो अस्मि विधर्मणा ॥ ६ ॥

मैं धन मूर्धा बनू ! अपने समान व्यक्तियो मे मस्तक का श्रेष्ठ बनू ॥ १ ॥

रुज, यज्ञ, मूर्धा, विधर्मा, मुझे छोड न पावें ॥ २ ॥

उर्व, चमरू, करण, और धर्ता भी मेरा व्यागन कार्य को न करें ॥ ३ ॥

विमोक, आर्द्रपवि, आर्द्रदनु और मातृरिश्वा मेरे साथ रहे ॥ ४ ॥

हर्षर, अनुग्रह पद और मन मे निवास करने वाले वृहस्पति देव मेरी आत्मा रूप हैं ॥ ५ ॥

दो कोप तक की भूमि का मैं स्वामी बनू । मैं समुद्रवत गभीर विचार शक्ति वाला बनू । मेरा हृदय शोक सम्पन्न न होय । यही मेरी सर्वोत्कृष्ट आकांक्षा है ॥ ६ ॥

सूक्त (४)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—ब्रह्मादित्यौ । छन्द—अनुष्टुप्, उष्णिक्, गायत्री)

नाभिरहं रयीणां नाभि समानानां भूयासम् ॥ १ ॥
स्वासदसि सूषा अमृतो मर्त्येष्वा ॥ २ ॥
मा मां प्राणो हासीन्मो अपानोऽवहाय परा गात् ॥ ३ ॥
सूर्यो माह्न पात्वग्नि पृथिव्या वायुरन्तरिक्षाद् यमो मनुष्येभ्य सरस्वती पार्थिवेभ्य ॥ ४ ॥
प्राणापानौ मा मा हासिष्ट मा जने प्र मेषि ॥ ५ ॥
स्वस्त्यद्योषसो दोषसश्च सर्व आप. सर्वगणो अशीय ॥ ६ ॥

शक्वरी स्य पशवो मोप स्थेषुर्मित्रावरुणौ मे प्राणापानावग्निर्मे दक्ष दधातु ।। ७ ।।

मैं धनों का नाभि रूप धारण करूं । अपने समान पुरुषों में भी नाभिवत बनूं ।। १ ।।

मरने वाले मनुष्यों में उषा अमृतत्व वाली और सुन्दरता पूर्वक प्रतिष्ठित होने वाली है ।। २ ।।

प्राण और अपान मुझे न छोड़ें ।। ३ ।।

सूर्य दिन से, अग्नि पृथ्वी से, वायु अन्तरिक्ष से, यम मनुष्यों से. सरस्वति पार्थिक पदार्थों से मेरी रक्षा करे ।। ४ ।।

प्राणपान मुझे न छोड़े ताकि मैं जीवित रह सकूं ।।५।।

उषा और रात्रि काल मुझे मंगलमयी होवे । मैं समस्त गणो और जलों का सेवन कर्ता बनू ।। ६ ।।

पशुओ तुम भुज युक्त बन मेरे समीप रहो । वरुण प्राण पान और अग्नि बल को दृढ करे ।। ७ ।।

सूक्त ५ (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि—यमः । देवता—दुःष्वप्ननाशनम् । छन्द—गायत्री, बृहती)

विद्म ते स्वप्न जनित्रं ग्राह्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ।। १ ।।

अन्तकोऽसि मृत्युरसि ।। २ ।।

तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुःष्वप्न्यात् पाहि ।। ३ ।।

विद्म ते स्वप्न जनित्रं निर्ऋत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ।

अन्तकोऽसि मृत्युरसि ।

तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुःष्वप्न्यात् पाहि ।। ४ ।।

विद्म ते स्वप्न जनित्रमभूत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ।
अन्तकोऽसि मृत्युरसि ।
तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुःष्वप्न्यात् पाहि ॥ ५ ॥
विद्म ते स्वप्न जनित्रं निर्भूत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ।
अन्तकोऽसि मृत्युरसि ॥
तं त्वा स्वप्न तथा स विद्म स नः स्वप्न दुःष्वप्न्यात् पाहि ॥ ६ ॥
विद्म ते स्वप्न जनित्रं पराभूत्या पुत्रोऽसि यमस्य करण ।
अन्तकोऽसि मृत्युरसि ।
तं त्वा स्वप्न तथा स विद्म स नः स्वप्न दुःष्वप्न्यात् पाहि ॥ ७ ॥
विद्म ते स्वप्न जनित्रं देवजामीनां पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥ ८ ॥
अन्तकोऽसि मृत्युरसि ॥ ९ ॥
तं त्वा स्वप्न तथा स विद्म स नः स्वप्न दुःष्वप्न्यात् पाहि ॥ १० ॥

हे स्वप्न ! तुम ग्राह्म पिशाचिनी से उत्पन्न हो अत. यम के पास ले जाने वाले हो मैं तेरी उत्पत्ति का ज्ञायक हूँ ॥ १ ॥

हे स्वप्न ! अन्तक मृत्यु रूप है ॥ २ ॥

हे स्वप्न हम तेरे ज्ञाता हैं अत तुम दुःस्वप्न से हमारी रक्षा कार्य करो ॥ ३ ॥

हे स्वप्नाधिष्ठाता देव ! हम तुम्हारी उत्पत्ति को जानते हैं तुम निर्मृति के पुत्र और यम के समीप ले जाने वाले हो । ४ ॥

हे स्वप्नाधिष्ठाता देव ! हम तुम्हारे ज्ञायक हैं तुम अभूति पुत्र और यम के कारण भूत हो ॥ ५ ॥

हे स्वप्नाधिष्ठाता देव ! हम तुम्हारी उत्पत्ति के ज्ञाता हैं। तुम निर्भूति पुत्र और यम के कारण रूप हो ॥ ६ ॥

हे स्वप्नाधिष्ठाता देव ! हम तुमको जन्म ज्ञायक हैं। तुम पराभूति पुत्र और यम के कारण रूप हो ॥ ७ ॥

हे स्वप्नाधिष्ठाता देव ! हम तुम्हारे जन्म ज्ञाता हैं तुम देवज्ञानियों के पुत्र और यम के कारण भूत कहलाते हो ॥८॥

हे स्वप्न ! तुम नाश दायी मृत्यु रूप हो ॥ ९ ॥

हे स्वप्न ! हम तुम्हे भली-भांति जानते हैं अतः तुम हमारी दुस्वप्न से रक्षा करो ॥ १० ॥

सूक्त (६)

(ऋषि—यम । देवता—दुष्वप्ननाशनम्, उषा। छन्द—अनुष्टुप्, पंक्ति, बृहती, जगती, उष्णिक्, गायत्री)

अजैष्माद्यासनामाद्या भूमानागसो वयम् ॥ १ ॥
उषो यस्माद् दुष्वप्न्यादभैष्माप तदुच्छतु ॥ २ ॥
द्विषते तत् परा वह शपते तत् परा वह ॥ ३ ।
य द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तस्मा एनद् गमयामः ॥ ४ ॥
उषा देवी वाचा संविदाना वाग् देव्युषसा संविदाना ॥ ५ ॥
उषस्पतिर्वाचस्पतिना संविदानो वाचस्पतिरुषस्पतिना संविदानः ॥ ६ ॥
तेऽमुष्मै परा वहन्त्वरायान् दुर्णाम्नः सदान्वाः ॥ ७ ॥
कुम्भीका दूषीकाः पीयकान् ॥ ८ ॥
जाग्रद्दुष्वप्न्यं स्वप्नेदुष्वप्न्यम् ॥ ९ ॥

अनागमिष्यतो वरानविरोः संकल्पानमुच्या द्रुह·
पाशान् ॥ १० ॥
तदमुष्मा अग्ने देवाः परा वहन्तु वध्रिर्यथासद
विथुरो न साधुः ॥ ११ ॥

हम सदा विजयी हो, हमारे पास बहुत सी जमीन हो और हम कभी भी पाप कर्म न करें ॥ १ ॥

हम बुरा स्वप्न देखकर डर गये हैं, वह डर हमारे अन्दर से निकल जाय ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! जो मनुष्य हमे घृणा करता है, उस पुरुष को इस डर को प्रदान करो ॥ ३ ॥

हम अपने शत्रु के पास इस भय की प्रेरणा करते हैं ॥ ४ ॥

रात्री भी वाणी के समान मस्त हो और वाणी रात्री से प्रेम करे । ५ ॥

उषा के विधाता वाचस्पति मे समान मत रखें और वाचस्पति एव उषस्पति दोनो आपस मे प्रेम जागृत करें ॥६॥

वे बुरे नाम वाली कुम्भीको, पीयको, को दुश्मन पर प्रेरित करें ॥ ७-८ ॥

सोने के समय बुरे स्वप्नो द्वारा प्राप्त फलो को जागते हुए, बुरे स्वप्नो से प्राप्त होने वाले फलो से भूत कालीन उत्तम फलो को और दुश्मन के पाशो को खोलता हूँ ॥ ९-१० ॥

हे अग्नि देवता ! देवता लोग इन सबको दुश्मन के पास ले जांय । वह डरता हुआ दुष्ट बन जाय और सज्जन न रह पावें ॥ ११ ॥

सूक्त (७)

(ऋषि—यम । देवता—दु:ष्वप्ननाशनम् । छन्द—पंक्ति; अनुष्टुप्, उष्णिक्, गायत्री, बृहती, त्रिष्टुप्)

तेनैनं विध्याम्यभूत्यैनं विध्यामि निर्भूत्यैनं विध्यामि पराभूत्यैनं विध्यामि ग्राह्यैनं विध्यामि तमसैनं विध्यामि ॥ १ ॥
देवानामेनं घोरैः क्रूरैः प्रैषैरभिप्रेष्यामि ॥ २ ॥
वैश्वानरस्यैनं दंष्ट्रयोरपि दधामि ॥ ३ ॥
एवानेवाव सा गरत् ॥ ४ ॥
योऽस्मान् द्वेष्टि तमात्मा द्वेष्टु यं वयं द्विष्मः स आत्मानं द्वेष्टु ॥ ५ ॥
निर्द्विषन्तं दिवो निः पृथिव्या निरन्तरिक्षाद् भजाम ॥ ६ ॥
सुयामंश्चाक्षुष ॥ ७ ॥
इदमहमामुष्यायणेऽमुष्याः पुत्रे दुःष्वप्न्यं मृजे ॥ ८ ॥
यददोअदो अभ्यगच्छन् यद् दोषा यत् पूर्वां रात्रिम् ॥ ९ ॥
यज्जाग्रद् यत् सुप्तो यद् दिवा यन्नक्तम् ॥ १० ॥
यदहरहरभिगच्छामि तस्मादेनमव दये ॥ ११ ॥
तं जहि तेन मन्दस्व तस्य पृष्टीरपि शृणीहि ॥ १२ ॥
स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥ १३ ॥

मैं इसे बुरे कार्यों, अभूति से, निर्भूति से, पराभूति से, ग्राह्या से और मृत्युरूपी अन्धकार से घृणा करता हू ॥ १ ॥

मैं इसे देवगण की डरावनी आज्ञाओं के सामने प्रस्तुत करता हूँ ॥ २ ॥

मैं इसे अग्नि मे डालता हूँ ॥ ३ ॥

वह इसे खा जाय ॥ ४ ॥

हमारे घृणा करने वाले से हमारी आत्मा घृणा करें और जिससे हम घृणा करते हैं वह आदमी हमारी आत्मा से घृणा करे। ५ ॥

उस घृणा करने वाले को हम तीनों लोकों से दूर करते हैं ॥ ६ ॥

हे चाक्षुप ! बुरे स्वप्न से प्राप्त होने वाले फल को अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र मे भेजता हूँ ॥ ७-८ ॥

पहली रात में कौन-कौन सा कार्य मैंने समाप्त कर दिया है। जागती हुई अवस्था मे, सोई हुई अवस्था में, दिन, रात या प्रत्येक दिन में जो भी पाप या बुरे कार्य करता हूँ, उसी के द्वारा इसका विनास करता हूँ ॥ ९-१०-११ ।

हे देवता ! उस दुश्मन को मिटा दो, फिर आनन्दित पसलियों को भी रगड़ दो ॥ १२ ॥

उसके अन्दर से प्राण निकल जाँय और वह मर जाय ॥ १३ ॥

सूक्त (८)

(ऋषि—यमः । देवता—दुःस्वप्ननाशनम् । छन्द—अनुष्टुप्, गायत्री, त्रिष्टुप्; जगती, पंक्ति, बृहती)

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं-ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं-प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥ १ ॥

तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥ २ ॥

स ग्राह्याः पाशान्मा मोचि ॥ ३ ॥

तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ ४ ॥

जितमस्माक मद्भून्नमस्माकमृतमस्माक तेजोस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माक यज्ञोऽस्माक पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माक वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स निर्ऋत्याः पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः-
प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ ५ ॥

दुश्मनो को परास्त करके और विजयी हुई सभी वस्तुयें हमारी हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा सभी बहादुर हमारे ही हैं ॥ १ ॥

अमुक गोत्रिय अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं ॥ २ ॥

वह गाध्या के जाल से छूटने न पावे ॥ ३ ॥

मैं उसके तेज, वच, प्राण और उम्र को नष्ट करके उसका विनाश करता हूँ ॥ ४ ॥

दुश्मनो को हरा कर लायी हुई सभी वस्तुयें हमारी हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म स्वर्ग, पशु जनता और सभी बहादुर हमारे ही हैं। अमुक गोत्र वाले एव अमुकी के बेटे को हम इस लोक से दूर कर देते हैं। *वह निर्ऋति के फन्दे से मुक्त न होने पावे।* मै उसके तेज, वर्च, प्राण आयु को मिटाकर उसे मार डालूंगा ॥ ५ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।

तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
सोऽभरयाः पाशान्मा मोचि । तस्येद वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ ६ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माक तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।

तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स निर्भूत्याः पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ ७ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।

तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स पराभूत्याः पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ ८ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।

तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स देवजामीनां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ ९ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजो स्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।

तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स बृहस्पतेः पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ १० ॥

वैरियों को खदेड़ कर लाये हुए एवं जीती हुई सभी प्रकार की वस्तुयें हमारी हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग पशु, प्रजा और सभी बहादुर हमारे ही हैं। अमुक गोत्र वाले अमुको के वेटे को हम इस लोक से हटा देते हैं। वह अभूति के जाल से न छूट जाय। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण, उम्र का विनाश करके उसको मार दूंगा ॥ ६ ॥

शत्रुओं को परास्त करके एवं जीती हुई सभी वस्तुओं पर हमारा अधिकार है। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, जनता और सभी बहादुर हमारे ही हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के वेटे को हम इस लोक से दूर कर देते हैं, वह निर्भूति के फन्दे से न छूट जाय मैं उसके तेज, वर्च प्राण उम्र आदि को समाप्त करके उसको मार डालूंगा ॥ ७ ॥

शत्रुओं को खदेड़ कर और विजया किये हुए सभी पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग जनता और सभी बहादुर अपने ही हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के वेटे को हम इस लोक से अलग कर देते है। वह पराये जाल से न छूटने पावे। मैं उसके सभी गुणों को नष्ट करके उसे मार डालूंगा ॥ ८ ॥

शत्रुओं को मारकर लायीं गयी सभी वस्तुयें हमारी हैं। ये पृथ्वी और स्वर्ग के सभी जीव-जन्तु हमारे ही हैं। अमुक गोत्र वाले के पुत्र को हम इस लोक से अलग कर देते हैं। वह देवताओं के बन्धन से न छूट जाय, मैं उसकी सभी माच वस्तुओं को समाप्त करके मार डालूगा ॥ ६ ॥

वैरियों को परास्त करके लाया हुआ धन हमारा ही है। और पृथ्वी और अन्तरिक्ष के रहने वाले सभी देव एवं जीव-जन्तुयें हमारे ही हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम

इस लोक से मिटा देते हैं। वह बृहस्पति के पाश से छूटने न पायें। मैं उसके सभी गुणों को समाप्त करके उसे नष्ट कर दूंगा ॥ १० ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्।

तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः।
स प्रजापतेः पाशान्मा मोचि। तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ ११ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्।

तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः।
स ऋषीणां पाशान्मा मोचि। तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ १२ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्।

तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः।
स आर्षेयाणां पाशान्मा मोचि। तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ १३ ॥

[illegible] मुद्भिन्न[illegible] म[illegible] तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं [illegible] यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा [illegible]।

तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः।

सोऽङ्गिरसां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ १४ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।

तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स आङ्गिरसानां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ १५ ॥

वैरियो को हराकर लाये हुए और वहाँ प्राप्त सभी वस्तुयें हमारी हैं। सत्य तेज ब्रह्म, स्वर्ग, पशु और जनता सभी बहादुर हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के बेटे को हम इस पृथ्वी लोक से अलग करते हैं। वह प्रजा का पालन करने वाले के पाश से छूटने न पावे। उसके तेज, वर्च प्राण और उम्र सबको मैं समाप्त करके उसे मार डालूँगा ॥ ११ ॥

दुश्मनो को जीतकर लाये हुए सभी पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म,पशु, प्रजा और सभी बहादुर हमारे ही हैं। अमुक गोत्र वाले के बेटे को हम इस लोक से समाप्त कर देते हैं। वह साधु सन्तो के पाश से न छूटने पावे। मैं उसके तेज, वाणी, आत्मा और उम्र आदि सबको समाप्त करके उसको मार डालूँगा ॥ १४ ॥

शत्रुओ को खदेड़ कर लाये हुए और जीतकर लायी हुई सभी वस्तुयें हमारी हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु प्रजा और सब बहादुर हमारे ही है। अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से अलग करते हैं। वह आर्यो के जाल से न

छूटने पावे। मैं उसके तेज, वाणी, प्राण और उम्र सबको समाप्त करके उसका विनाश कर दूंगा॥ १३॥

शत्रुओं को हराकर एवं जीते हुए सभी पदार्थ हमारे ही हैं। सत्य, तेज ब्रह्म, स्वर्ग, जीव-जन्तु सभी बहादुर हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के बेटे को हम इस पृथ्वी लोक से अलग करते हैं। वह अङ्गिराओं के फन्दे से न छूटने पावे। मैं उसके तेज वाणी प्राण सबको लेकर उसे मार डालूंगा॥ १४॥

वैरियों को जीतकर लाये हुए सभी पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म स्वर्ग, पशु और प्रजा सभी बहादुर हमारे ही अमुक गोत्र वाले अमुकी के बेटे को हम इस पृथ्वी लोक से अलग करते हैं। वह आंगिरसों के बन्धन में न छूटने पावे। मैं उसके तेज, वाणी प्राण और उम्र को समाप्त करके मैं उसको जान से मार डालूंगा॥ १५॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माक तेजोऽस्माक ब्रह्मास्माक स्वरस्माक यज्ञोऽस्माक पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माक वीरा अस्माकम्।
तस्मादमु निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्या पुत्रमसौ य।
सोऽथर्वणा पाशान्मा मोचि तस्येद वर्चस्तेज प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्च पादयामि॥ १६॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माक तेजोऽस्माक ब्रह्मास्माक-स्वरस्माक यज्ञोऽस्माक पशवोऽस्माक प्रजा अस्माक वीरा अस्माकम्।
तस्मादमु निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्या पुत्रमसौ य।
स आथर्वणानां पाशान्मा मोचि। तस्येद वर्चस्तेज प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्च पादयामि॥ १७॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स वनस्पतीनां पाशान्मा मोचि तस्येद वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ १८ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोस्माकं ब्रह्मास्माकं-स्वरस्माकं यज्ञोस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स वानस्पत्यानां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ १९ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स ऋतूनां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजप्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ २० ॥

शत्रुओं को विजयी करके लाये हुए सभी पदार्थ हमारे ही हैं। स्वर्ग, सत्य, तेज, ब्रह्म और सभी प्रकार के जीव जन्तु हमारे ही हैं। अमुक गोत्र वाले के बेटे को हम इस लोक से अलग करते हैं। वह अथर्वाओं के बन्धन से छूटने न पावें। मैं उसके तेज, वाणी आत्मा और उम्र को समाप्त करके उसको जान से मार डालूंगा ॥ १६ ॥

दुश्मनों को हराकर और उनसे जीतकर लाये हुए सभी पदार्थ हमारे ही हैं। सत्य, तेज ब्रह्म, स्वर्ग, पशु और मनुष्य

सभी हमारे ही हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस पृथ्वी लोक से दूर करते हैं। आथवणी के फन्दे से न छूटने पावे, मैं उसके तेज, वाणा प्राण और आयु को नष्ट करके उसका विनाश कर दूंगा ॥ १७ ॥

शत्रुओं को जीतकर लाये हुए और जीते हुये सभी वस्तुयें हमारी ही हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, जानवर और सभी मनुष्य हमारे ही हैं। अमुक गोत्र वाले के पुत्र को हम यहीं पर उसका विनाश कर देते हैं। वह पेड़ पौधों आदि के बन्धन से न छूटने पावे। मैं उसके तेज, वाणी, शरीर, उम्र को खत्म करके उसको मार डालूंगा ॥ १८ ॥

वैरियों को जीतकर लायी हुई सभी वस्तु हमारी हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, जीव जन्तु सब हमारे ही हैं। अमुक गोत्र वाले के बेटे को हम यहीं से दूर कर देते हैं। वह हरी भरी चारा के बन्धन से न छूटने पावे। मैं उसके तेज, वाणी प्राण और आयु को समाप्त करके उसको मार डालूंगा ॥ १९ ॥

दुश्मनों को खदेड़ कर लाया हुआ धन हमारा है। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग और मनुष्य ये सब बहादुर हमारे ही हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के बेटे को हम इस पृथ्वी लोक से अलग कर देते हैं। वह तीनों ऋतुओं (जाड़ा, गर्मी वर्षा) के बन्धन से न छूटने पावे। मैं उसके सभी प्रमुख गुणों को समाप्त कर उसका अन्त कर देता हूँ ॥ २० ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।

तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।

स आर्तवानां पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं
पादयामि ॥ २१ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं
स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा
अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स मासानां पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं
पादयामि ॥ २२ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं
स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा
अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
सोऽर्धमासानां पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं
पादयामि ॥ २३ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं
स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा
अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
सोऽहोरात्रयोः पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं
पादयामि ॥ २४ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकम तमस्माक तेजोऽस्माक ब्रह्मास्माक स्वरस्माक यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माक प्रजा अस्माक वीरा अस्माकम ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽम्‌ माम्‌ुष्यायणमम्‌ुष्या· पुत्रमसौ य सोऽह्णो सयतोः पाशान्मा मोचि ।
तस्येद वर्चस्तेज प्राणमायुनि वेष्टयामीदमेनमधराञ्च पादयामि ॥ २५ ॥

दुश्मनों को जीतकर लाई हुई सभी चीजें हमारी ही हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग और पुरुष, ये सभी बहादुर हमारे ही हैं। अमुक गोत्र व ले के बेटे को हम इस पृथ्वी लोक से अलग कर देते हैं। वह तीनों ऋतुओं मे उत्पन्न होने वाली वस्तुओं के जाल से न छूटने पावे। मैं उसके तेज, वाणी, प्राण और उम्र आदि को समाप्त करके उसको भस्म कर देता हूँ ॥ २१ ॥

वैरियों को खदेड कर लाया हुआ सभी माल हमारा ही है। सत्य, तेज, ब्रह्म स्वर्ग और सभी जीव-जन्तु हमारे ही बहादुर हैं। अमुक गोत्र वाले के तात, को हम इस लोक मे अलग कर देते हैं। वह महिनों के बन्धन से न छूटने पावे। मैं उसके सभी गुणों को समाप्त करके उसका विनाश कर देता हूँ ॥ २२ ॥

दुश्मन को पराजित करके लायी हुई सभी वस्तुयें हमारी हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, जानवर और सभी मनुष्य मात्र हमारे ही बहादुर हैं। अमुक गोत्र वाले पुरुष के बेटे को हम इस मृत्यु लोक से अलग कर देते हैं। वह पक्षों के बन्धन से न दूर हो। मैं उसके तेज, शरीर, और उम्र आदि को समाप्त करके उसको मिटा देता हूँ ॥ २३ ॥

वैरियों को जीतकर लाया हुआ सभी माल हमारा है।

सत्य, तेज, ब्रह्म स्वर्ग और सभी जीव-जन्तु अपने ही हैं। अमुक गोत्र वाले मनुष्य के बेटे को हम इस लोक से अलग भेजते हैं। वह रात दिन के जाल से न छूटने पावे। मैं उसके तेज, प्राण, अन्न सबको नष्ट करके उसको गिरा देता हूँ ॥ २४ ॥

अपने दुश्मनो से प्राप्त किया हुआ सारा सामान हमारा है। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग और सभी जीव-जन्तु हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले के बेटे को हम इस मृत्यु लोक से अलग कर देते है मैं उसके सभी अच्छे गुणो को समाप्त करके उसको मार डालू गा । २५ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोस्माकं ब्रह्मास्माक स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माक पशवोऽस्माक प्रजा अस्माक वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स द्यावापृथिव्योः पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ २६ ॥

जितस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माक तेजोऽस्माक ब्रह्मास्माक स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकः प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स इन्द्राग्न्योः पाशान्मा मोचि ।
तस्येद वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ २७ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माक तेजोस्माकं ब्रह्मास्माक स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।

तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स मित्रावरुणयोः पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं
पादयामि ॥ २८ ॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं
स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा
अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स राज्ञो वरुणस्य पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं
पादयामि ॥ २९ ॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं
स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा
अस्माकम् ॥ ३० ॥
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥ ३१ ॥
स मृत्योः पड्वीशात् पाशान्मा मोचि ॥ ३२ ॥
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं
पादयामि ॥ ३३ ॥

बैरियों को पराजित करके लायी हुई सभी वस्तुयें हमारी हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, जानवर और सभी पुरुष हमारे ही बहादुर हैं। अमुक गोत्र वाले के बेटे को हम इस लोक से भगा देते हैं। वह पृथ्वी के बन्धन से मुक्त न होने पावे। मैं उसके शरीर, तेज, वाणी और उम्र को नष्ट करके उसका विनाश कर देता हूँ ॥ २६ ॥

दुश्मनों को हराकर लाया हुआ सारा सामान हमारा

ही हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग और सभी जीव जन्तु हमारे ही है। अमुक गोत्र वाले पुरुष के बेटे को हम इस लोक से दूर कर देते है। वह इन्द्र और अग्नि के बन्धन से न छूटने पावे। मै उसके प्राणो को निकालकर उसको मिटा डालता हूँ ॥ २७ ॥

वैरिओं को खदेड़ कर लाये हुए सभी पदार्थ हमारे ही है। सत्य तेज, ब्रह्म, स्वर्ग और सभी मनुष्य हमारे ही हैं। अमुक गोत्र वाले के बेटे को हम इस लोक से पृथक करते हैं। वह वरुण के जाल मे न छूटने पावे। मैं उसके समस्त गुणो, तेज, वाणी, प्राण और आयु को निकालकर उसको गिरा देता हूँ ॥ २८ ॥

दुश्मनों को खदेड कर लाया हुआ सारा सामान हमारा है। सत्य, तेज ब्रह्म, स्वर्ग और समस्त जीव-जन्तु हमारे ही वीर हैं। अमुक गोत्रिय पुत्र को इस मृत्यु लोक से हटाते है। वह प्रजापति वरुण के फन्दे से न छूटने पावे। मैं उसके सभी अच्छे गुणो को खत्म करके और उसका नीचा मुंह करके धकेल देता हूँ ॥ २९ ॥

शत्रुओं को हराकर लाया हुआ सारा धन हमारा ही है। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग और समस्त जीव-जन्तु अपने ही बहादुर हैं ॥ ३० ॥

अमुक गोत्रीय पुरुष के बेटे को हम इस लोक से अलग करते हैं ॥ ३१ ॥

वह मृत्यु के बन्धन से न छूटने पावे ॥ ३२ ॥

मैं उसके वाणी, तेज, शरीर और उम्र आदि समस्त को समाप्त करके उसका विनाश करता हूँ ॥ ३३ ॥

सूक्त (६)

(ऋषि—यमः । देवता प्रजापतिः, मन्त्रोक्ता, सूर्य । छन्द – अनुष्टुप्, उष्णिक्; पवित)

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमभ्यष्ठां विश्वाः पृतना अरातीः ॥ १ ॥

तदग्निराह तदु सोम आह पूषा मा धात् सुकृतस्य लोके ॥ २ ॥

अगन्म स्वः स्वरगन्म सं सूर्यस्य ज्योतिषागन्म ॥ ३ ॥

वस्योभूयाय वसुमान् यज्ञो वसु वंशिषीय वसुमान् भूयासं वसु मयि धेहि । ४ ॥

शत्रुओं को जीतकर लाया हुआ समस्त माल हमारा ही है । मैं वैरियों की सेना पर विजयी होऊँ ॥ १ ॥

अग्नि और चन्द्रमा यही बात को कह रहे हैं, पूस मुझे अच्छे लोक में बिठाये ॥ २ ॥

हम स्वर्ग को जायें, हम सूर्य की रोशनी से अच्छी प्रकार स्वर्ग को गमन करें ॥ ३ ॥

मैं धनी और आदर पाने योग्य बन जाऊँ । मैं महान धनवान होने के लिए धन पर अधिकार करलूँ । हे देवता ! मुझको धन दो ॥ ४ ॥

॥ इति षोडश काण्डं समाप्तम् ॥

सप्तदश काण्ड

सूक्त १ (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—आदित्यः । छन्द—जगती, अष्टि, धृति, शक्वरी, कृतिः, प्रकृतिः, ककुप, बृहती, अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्)

विषासहिं सहमान सासहानं सहीयांसम् ।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं सधनाजितम् ।
ईड्य नाम ह्व इन्द्रमायुष्मान भूयासम् ॥ १ ॥

विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् ।
सहमानं सहोजित स्वजित गोजितं सधनाजितम् ।
ईड्य नाम ह्व इन्द्रं प्रियो देवानां भूयासम् ॥ २ ॥

विषासहिं सहमान सासहानं सहीयांसम् ।
सहमान सहोजित स्वजितं गोजितं सधनाजितम् ।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्र प्रियः प्रजानां भूयासम् ॥ ३ ॥

विषासहिं सहमान सासहान सहीयांसम् ।
सहमान सहोजित स्वजित गोजितं संधनाजितम् ।
ईड्य नाम ह्व इन्द्र प्रियः पशूना भूयासम् ॥ ४ ॥

विषासहिं सहमान सासहान सहीयांसम् ।
सहमान सहोजित स्वजितं गोजित सधनाजितम् ।
ईड्य नाम ह्व इन्द्र प्रियः समानानां भूयासम् ॥ ५ ॥

उदिह्य दिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि ।

द्विषश्च मह्यं रध्यतु मा चाहं द्विषते रधं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ ६ ॥

उदिह्यु ् दिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि ।
यांश्च पश्यामि यांश्च न तेषु मा सुमतिं कृधि तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ ७ ॥

मा त्वा दभन्त्सलिले अप्स्वन्तर्ये पाशिन उपतिष्ठन्त्यत्र ।
हित्वाशस्तिं दिवमारुक्ष एतां स नो मृड सुमतौ ते स्याम तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ ८ ॥

त्वं न इन्द्र महते सौभगायादब्धेभिः परि ् पाह्यक्तुभिस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं न पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ ९ ॥

त्वं न इन्द्रोतिभिः शिवाभिः शंतमो भव ।
आरोहंस्त्रिदिवं दिवो गृणानः सोमपीतये प्रियधामा स्वस्तये तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ १० ॥

अग्य को दबाने वाले तेज से पूर्ण, दुश्मनों में से उस तेज को नष्ट करने वाले, स्वर्ग के जीवन वाले, वैरियों के जानवरों

को जीतने वाले सभी जलो के विजेता इन्द्र देवता, मैं आपको तीनो कालो से गायों द्वारा बुलाता हूँ। आपकी कृपा से मैं आयुष्मान होऊँ ॥ १ ॥

विष से युक्त दूसरो पर काबू पाने वाले, सासहान्, सहीयान, तेज का जीतने वाले स्वर्ग और गायो को जीतने वाले, जलो के जीतन वाले इन्द्र को मैं बुलाता हूँ। मै उनकी दया से सभी देवगणो का प्रिय बनू ॥ २ ॥

विष से युक्त, अन्य को दवाने वाले, सासहान् सहीयान्, तेज को जीतने वाले स्वर्ग गायो और सभी जलो को विजयी करने वाले इन्द्र को मैं निमन्त्रित करता हूँ। उस देव की कृपा से मैं सन्तान आदि का सुख भोगूँ ॥ ३ ॥

जहर से पूर्ण दूसरो का विजयी करने वाले, सासहान् महीयान, तेज को जीतने वाले, स्वर्ग, गायें और जलो को जीतने वाले, इन्द्र रूपी सूर्य को मैं बुलावा देता हूँ। उनकी कृपा से मैं जानवरो का प्रिय बनूँ ॥ ४ ॥

विष से पूर्ण, सहीयान, सासहान तेज को विजयी करने वाले स्वर्ग, गायो और जलो के विजेता सूर्य को मैं आमन्त्रित करता हूँ। उनकी असीम् दया से मैं भी महान् आत्माओ का प्रिय बनू ॥ ५ ॥

निकलने पर सभी प्राणी मात्र को अपने अपने कार्य में जुटाने वाले हे सूर्य ! तुम निकलो तुम सबको विजयी करने वाले हो, मुझे आनन्द प्रदान करने के लिये निकलो। तुम्हारी दया से मुझसे घृणा करने वाले पुरुष मेरे गुलाम हो। मैं तुम्हारी प्रार्थना करने वाला कभी भी वरियो के फन्दे मे न फसूँ। हे विष्णु रूपी सूर्य ! तुम अपनी किरणो से सारे ससार को जीतने वाले हो। तुम हमे अनेक प्रकार के जीव-जन्तुओ से

युक्त करो। और शरीर का अन्त होने पर हमे स्वर्ग मे स्थान दो॥ ६॥

हे सूर्य देवता! निकलो। सब पर काबू पाने वाला तेज मुझे प्रदान करो। जो प्राणी इस समय इस पृथ्वी पर मौजूद हैं या जो मर चुके है, मैं उन सबमे महान् बुद्धि वाला बनूं। हे विष्णु रूपी सूर्य देवता! यह तुम्हारी ही दया है। किसी और की नही। मुझे अनेक प्रकार के जानवरो से युक्त करते हुए अन्त होने पर महान् आकाश और अमृत से युक्त करो॥ ७॥

हे सूर्य! जलो मे निवास करने वाले पिशाच तुम्हे आकाश के जलो मे न रोके। तुम अपने यश के बल पर अतरिक्ष मे चढे हो। तुम हमको सुख प्रदान करो। हम तुम्हारी कृपा से पूर्ण बुद्धि मे हो। हे विष्णु रूपी सूर्य तुम बहुत साहसी हो। मुझको अनेको प्रकार के पशुओ से युक्त करते हुये शरीर मे छूट जाने पर स्वर्ग और अमृत मे प्रतिष्ठित करो॥ ८॥

हे ऐश्वयमान सूर्य देवता! यश की सिद्धि की प्राप्ति के लिए तुम साँप आदि की हिंसा से रहित रात-दिन हमारी रक्षा करो। तुम महान पराक्रमी हो। मुझे अनेक प्रकार के पशु प्रदान करते हुए अन्त मे स्वर्ग और अमृत में स्थापित करो॥ ९॥

हे यशवान सूर्य। हमको महान् सुख प्रदान करो। अपने कल्याणकारी रक्षा के साधनो से हमे रक्षित करो तुम्हारे द्वारा रक्षा किया हुआ पुरुष बार-बार आने जाने का कष्ट नहीं पाता। तुमको अपनी जगह प्यारी है। हमारी प्रार्थना सुनने पर तथा सोम का पान करने पर हमारी मदद करो। हे सूर्य! तुम महान प्रभावशाली हो। मुझे अनेको प्रकार के जानवर प्रदान करते हुये शरीर का अन्त हो जाने पर स्वर्ग दो॥ १०॥

त्वमिन्द्रासि विश्वजित् सर्ववित् पुरुहूतस्त्वमिन्द्र ।
त्वमिन्द्रेमं सुहवं स्तोममेरयस्व स नो मृड सुमतौ ते स्याम तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ ११ ॥

अदब्धो दिवि पृथिव्यामुतासि न त आपुर्महिमानमन्तरिक्षे ।
अदब्धेन ब्रह्मणा वावृधानः स त्वं न इन्द्र दिवि षञ्छर्म यच्छ तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ १२ ॥

या त इन्द्र तनूरप्सु या पृथिव्यां यान्तरग्नौ या त इन्द्र पवमाने स्वर्विदि । ययेन्द्र तन्वान्तरिक्षं व्यापिथ तया न इन्द्र तन्वा शर्म यच्छ तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ १३ ॥

त्वामिन्द्र ब्रह्मणा वर्धयन्तः सत्रं नि षेदुर्ऋषयो नाधमानास्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ १४ ॥

त्वं तृतं त्वं पर्येष्युत्सं सहस्रधारं विदथं स्वर्विदं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ १५ ॥

त्वं रक्षसे प्रदिशश्चतस्रस्त्वं शोचिषा नभसी वि भासि
त्वमिमा विश्वा भुवनानु तिष्ठस ऋतस्य पन्थामन्वेषि विद्वांस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।

त्वं न पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ १६ ॥
पञ्चमि पराङ् तपस्येकयार्वाङशस्तिमेषि सुदिने बाधमानस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं न पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ १७ ॥
त्वमिन्द्रस्त्वं महेन्द्रस्त्वं लोकस्त्वं प्रजापतिः ।
तुभ्यं यज्ञो वि तायते तुभ्यं जुह्वति जुह्वतस्तवेद्
विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं न पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ १८ ॥
असति सत् प्रतिष्ठितं सति भूतं प्रतिष्ठितम् ।
भूतं ह भव्य आहितं भव्यं भूते प्रतिष्ठितं तवेद्
विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं न पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ १९ ॥
शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि ।
स यथा त्वं भ्राजता भ्राजोऽस्येवाहं भ्राजता भ्राज्यासम् ॥ २० ॥

हे यशवान् इन्द्र रूपी सूर्य ! तुम सारे जगत के विजता हो। तुम देवता हो इस समय सुन्दर प्रकार से की जाने वाली प्रार्थना को स्वीकार करो और हमको सुख प्रदान करो। हम तुम्हारी कृपा से प्राप्त प्रतिभा से पूर्ण रहें। तुम अत्यन्त प्रभाव शाली हो। मुझे अनेक प्रकार के पशु प्रदान करते हुये मरने पर महान् स्वर्ग और अमृत से युक्त करो ॥ ११ ॥

हे इन्द्र रूपी सूर्य देवता ! तुम आकाश अन्तरिक्ष और पृथ्वी पर किसी से भी नहीं डरते हो। क्यों कि तुममें गायत्री

द्वारा दी गई महान् शक्ति है। मुझे अनेक प्रकार के जानवरों से युक्त करो और मरने पर स्वर्ग में भेजो ॥ १२ ॥

हे सूर्य ! तुम हमें जलों में प्राप्त आभा से हमें सुख प्रदान करो। जलो में स्थित, औषधि आदि के सार रूपों से भी हमें आनन्दित करो। पृथ्वी में जो तुम्हारा रूप है उसके द्वारा हमें अन्न आदि वस्तुयें प्रदान करो। और अन्तरिक्ष मे व्याप्त रूप से हमें वृष्टि आदि का आनन्द प्रदान करो। तुम महान् प्रभाव शाली हो। हमें अनेक प्रकार के पशुओं को प्रदान करो और मरने पर दुःख, कष्ट आदि से रहित स्वर्ग को प्रदान करो ॥ १३ ॥

हे सूर्य देवता ! दिये हुये फलों की कामना करते हुये पुराने ऋषि तुमको मन्त्रों से बुलाते रहते हैं। तुम महान प्रभावशाली हो। हमे अनेकों प्रकार के पशुओं को प्रदान करो और मरने पर कष्टों से रहित स्वर्ग के अमृत पूर्ण स्थान पर प्रतिष्ठित करो ॥ १४ ॥

हे इन्द्र रूपी सूर्य ! तुम अन्तरिक्ष में जाकर असीमित धाराओं वाले बादलो को प्राप्त होते हो। यह बादल औषधि आदि में वृद्धि करने वाला और यज्ञ का एक साधन होने से वास्तव में यज्ञ ही है। तुम अत्यन्त प्रभावशाली हो। हमें अनेकों प्रकार के पशुओं को प्रदान करते हुये देहान्त होने पर स्वर्ग को भेजो ॥ १५ ॥

हे सूर्य देवता ! तुम चारों दिशाओं के रखवाले हो। तुम अपनी ज्योति से आकाश और पृथ्वी दोनो को प्रकाशित करते हो। तुम जल को जानते हुये उसके रास्ते में व्याप्त होते हो। तुम महान् प्रभावशाली हो। मुझे अनेकों प्रकार के पशुओं

से पूर्ण करो मरने पर स्वर्ग के अमृतमय स्थान पर प्रतिष्ठित करो ॥ १६ ॥

हे सूर्य देवता ! तुम पाँच किरणों द्वारा ऊपर को मुँह करके ऊँचे लोकों को प्रकाशित करते हो। ऐसा करने पर तुम पृथ्वी को एक किरण से प्रकाशित करने को घृणा को प्राप्त होते हो। तुम अत्यन्त प्रभावशाली हो। मुझे अनेक रूप वाले पशुओं को प्रदान करो और शरीर का अन्त हो जाने पर स्वर्ग में स्थान दो।। १७ ॥

हे इन्द्र रूपी सूर्य ! महान् आत्माओं को प्राप्त होने वाले पुण्यलोक तुम्हीं हो। तुम्ही प्राणियों को जन्म देने वाले हो। इसलिये तुम्हारे सेवक तुम्हारे लिये यज्ञ आदि करते हैं। तुम अनेकों प्रभावों को रखते हो। मुझे अनेकों प्रकार के पशुओं को प्रदान करो और मरने पर आकाश के अमृत रूपी स्थान स्वर्ग मे जगह दो ॥ १८ ॥

असत्य मे सत्य विराजमान है अर्थात् परमात्मा मे मनुष्य समाया हुआ है। हे सूर्य देवता ! तुम महान् प्रभावशाली हो। मुझे पशुओं से पूर्ण करो और देहान्त होने के पश्चात् स्वर्ग दो ॥ १९ ॥

हे सूर्य ! तुम ही शुक्र देवता हो। सब लोकों को प्रकाशित करने वाले तेज से तुम प्रकाशित रहते हो। मैं तुम्हारे ऐसे ही स्वरूप की प्रार्थना करता हूँ। मैं भी उसी प्रकार के तेज से पूर्ण हो जाऊँ ॥ २० ॥

रुचिरसि रोचोऽसि। स यथा त्वं रुच्या रोचोऽस्येवाहं पशुभिश्च ब्राह्मणवर्चसेन च रुचिषीय ॥ २१ ॥

उद्यते नम उदायते नम उदिताय नमः।

विराजे नमः स्वराजे नम. सम्राजे नम. ॥ २२ ॥
अस्तयते नमोऽस्तमेष्यते नमोऽस्तमिताय नमः ।
विराजे नम. स्वराजे नमः सम्राजे नमः ॥ २३ ॥

उदगादयमादित्यो विश्वेन तपसा सह ।
सपत्नान् मह्यं रन्धयन् मा चाहं द्विषते रधं तवेद विष्णो बहुधा वीर्याणि । त्वं न. पृण हि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् । २४ ॥

आदित्य नावमारुक्ष शतारित्रां स्वस्तये ।
अहर्मात्यपीपरो रात्रिं सत्राति पारय ॥ २५ ॥

सूर्य नावमारुक्षः शतारित्रां स्वस्तये ।
रात्रिं मात्यपीपरोऽहः सत्राति पारय ॥ २६ ॥

प्रजापतेरावृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा ।
जरदष्टिः कृतवीर्यो विहायाः सहस्रायुः सुकृतश्चरेयम् ॥ २७ ॥

परीवृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च ।
मा मा प्रापन्निषवो दैव्या या मा मानुषीरवसृष्टा वधाय ॥ २८ ॥

ऋतेन गुप्त ऋतुभिश्च सर्वैर्भूतेन गुप्तो भव्येन चाहम् ।
मा मा प्रापत् पाप्मा मोत मृत्युरन्तर्दधेऽहं सलिलेन वाचः ॥ २९ ॥

अग्निर्मा गोप्ता परि पातु विश्वत उद्यन्त्सूर्यो नुदतां मृत्युपाशान् ।
व्युच्छन्तीरुषसः पर्वता ध्रुव सहस्रं प्राणा मय्या यतन्ताम् ॥ ३० ॥

हे सूर्य ! तुम ज्योति स्वरूप हो । जैसे ससार को प्रकाशित करने वाली ज्योति से चमकते हो वैसे ही मैं पशुओ से और ब्रह्मवाणी से दमकता रहूँ ॥ २१ ॥

हे सूर्य ! तुमको प्रणाम है जबकि तुम उदय होते हो ।

अग्नोदित्त और पूर्णोदित्त को प्रणाम है । रोकदेशोदित महान्, अज्ञोरित स्वराट् और पूर्णोदित्त राजा को नमस्कार है ॥ २२ ॥

छिपते हुये या छिपने को जाते हुये और पूरी तरह से छिपे हुये सूर्य को प्रणाम है । विराट्, स्वराट् और सम्राट रूपी सूर्य देवता को प्रणाम है ॥ २३ ॥

सभी लोकों को पूरी तरह से सन्तुष्ट करने वाले आदित्य अपने रश्मिजाल सहित, मेरे पशुओं पर काबू पाते हुये निकल आओ । हे सूर्य ! तुम्हारी कृपा से मैं वैरीयों के फन्दे में न फसूँ । तुम महान पराक्रमी हो । मैं अनेको प्रकार के जानवरों से पूर्ण होऊं । मरने पर मुझे अमृतमय स्वर्ग को भेजो ॥ २४ ॥

हे देवता ! आकाश रूपी समुद्र से पार होने के लिये तुम हवा रूपी पतवार लेकर रथ रूपी नाव पर संसार के कल्याण के लिये चढे हो । तुम मेरी तीनों तापों से रक्षा करते हुये दिन के पार उतार चुके हो । ऐसे ही मुझे रात से भी पार करदो ॥ २५ ॥

हे सूर्य ! तुम आकाश रूपी समुद्र से पार होने के लिये हवा रूपी पतवार को साथ लेकर ससार के कल्याण के लिये रथ रूपी नाव पर विराजमान हुये हो । तुमने मुझे कुशल पूर्वक रात से पार कर दिया है उसी प्रकार अब दिन से भी पार कर दो ॥ २६ ॥

प्रजा का पोषण करने वाले सूर्य के अडिग तेज रूपी यत्न से मैं दबा हुआ हूँ । मैं कमजोर होने पर भी ताकतवर अङ्गों वाला तथा रोग रहित रहता हुआ अनेक प्रकार के सुखों का भोग करता रहूँ । मैं शरीर के बलों से पूर्ण होता हुआ

प्रजा की उत्पत्ति मे हाथ बटाऊँ। मैं आयुष्मान होता हुआ लौकिक और वैदिक कर्म-काण्डो को करता हुआ सूर्य की कृपा का पात्र रहूँ ॥ २७ ॥

मैं कश्यप रूपी सूर्य के वस्त्रो से ढका हुआ हूँ। मैं तेज से और रक्षात्मक किरणो से रक्षित हूँ। इसलिये मुझको मारने के लिये देवताओं और मनुष्यो द्वारा दिये हुये प्राणो मेरे नजदीक न आ सकें ॥ २८ ॥

मैं सत्य से, सूर्य रूपी ब्रह्म से, तीनो ऋतुओ से और सभी पुरानी वस्तुओ से रक्षित हूँ। इसलिये नरक का कारण मय पाप मेरे पास न भटके। मैं मन्त्रो द्वारा पवित्र किये हुये जल से, जल मे छिपे हुये पुरुष के अदृश्य रहने के समान न दिखने वाला होता हूँ। मैं पाप मर्यादि से बचने के लिये मन्त्रो से युक्त जल द्वारा अपने को रक्षित करता हूँ ॥ २९ ॥

अपने आश्रय पाने वाले के अग्नि देवता रक्षक है। वे डर से मेरी रक्षा करें। अन्त करने वाली मृत्यु के बन्धनो से निकलते हुये सूर्य मेरी रक्षा करें। दिनकी लालिमा मृत्यु के बन्धनो से मुक्त करे। प्राण मुझ जसे आयु की कामना करन वाले पुरुष मे प्रतिष्ठित रहे। इन्द्रिया भी इच्छा करती रहे ॥ ३० ॥

॥ इति सप्तदश काण्ड समाप्तम् ॥

अष्टादश काण्ड

सूक्त १ (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि—अथर्वा। देवता—यम , मन्त्रोक्ता', रुद्र , सरस्वती, पितर' । छन्दः—त्रिष्टुप्, पंक्ति', जगती, उष्णिक्, अनुष्टुप, बृहती,)

ओ चित् सखायं सख्या ववृत्यां तिर पुरू चिदर्णवं जगन्वान् ।
पितुर्नपातमा दधीत वेधा अधि क्षमि प्रतरं दीध्यान' ॥ १ ॥

न ते सखा सख्यं वष्ट्येतत् सलक्ष्मा यद् विषुरूपा भवाति ।
महस्पुत्रा सो असुरस्य वीरा दिवो धर्तार उर्विया परि ख्यन् ॥ २ ॥

उशन्ति घा ते अमृतास एतदेकस्य चिद् त्यजसं मर्त्यस्य ।
नि ते मनो मनसि धाय्यस्मे जन्युः पतिस्तन्वमा विविश्याः ॥ ३ ॥

न यत् पुरा चकृमा कद्ध नूनमृतं वदन्तो अनृतं रपेम ।
गन्धर्वो अप्स्वप्या च योषा सा नौ नाभि' परमं जामि तन्नौ ॥ ४ ॥

गर्भे नु नौ जनिता दम्पती कर्देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः ।
नकिरस्य प्र मिनन्ति व्रतानि वेद नावस्य पृथिवी उत द्यौः ॥ ५ ॥

को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हणायून् ।

आसन्निषून् हृत्स्वसो मयोभून् य एषां भृत्यामृणधत् स जीवात् ॥ ६ ॥

को अस्य वेद प्रथमस्याह्नः क ईं ददर्श क इह प्र वोचत् ।
बृहन्मित्रस्य वरुणस्य धाम कदु ब्रव आहनो वीच्या नॄन् ॥ ७ ॥
यमस्य मा यम्यं काम आगन्त्समाने योनौ सहशेय्याय ।
जायेव पत्ये तन्वं रिरिच्यां वि चिद् वृहेव रथ्येव चक्रा ॥ ८ ॥
न तिष्ठन्ति न नि मिषन्त्येते देवानां स्पश इह ये चरन्ति ।
अन्येन मदाहनो याहि तूयं तेन वि वृह रथ्येव चक्रा ॥ ९ ॥
रात्रीभिरस्मा अहभिर्दशस्येत् सूर्यस्य चक्षुर् मुहुरुन्मिमीयात् ।
दिवा पृथिव्या मिथुना सबन्धू यमीर्यमस्य बिभृयादजामि ॥ १० ॥

समान प्रसिद्धि वाले दोस्त यम को सख्याभावानुकूल करती हूँ। सिंधु के तटवर्ती द्वीप में जाते हुए यम, पुत्र को मुझमें प्रतिष्ठित करें। हे यम ! तुम्हारा प्रसिद्धि तीनो लोको में है। तुम सदा तेज दीप्त रहो ॥ १ ॥

(यम) मैं तेरा समान मित्र हूँ। परन्तु मैं भाई-बहिन के समागमात्मक मित्र भाव की आशा नहो करता। क्यों कि एक उदररूप वाली होकर भी पत्नी होने की इच्छा करती है। ऐसे मित्र भाव को मैं स्वीकार नहीं करता। दुश्मनों के विजयी, महाशक्तिशाली रुद्र के बेटे मरुद्गण भी इसकी बुराई करेंगे ॥ २ ॥

हे यम ! मरुद्गण मेरे स्वच्छ रास्ते को कामना करते हैं। अतः अपने मन को मेरी ओर आकर्षित करो, फिर सन्तानादि को पैदा करने वाले पति बनते हुए भाई चारे को छोड कर मुझमें प्रवेश करो॥ ३ ॥

हे यमी ! असत्य बोलने वाले को हम सत्य बोलने वाला कैसे कहें। जलों को धारण करने वाले सूर्य भी अन्तरिक्ष में अपने प्रकाश के साथ विराजमान हैं। इस लिये अभिन्न माता-

पिता व ले हम दोनो उन्ही के सामने तेरा इच्छित कार्य करने मे असमय होगे ।। ४ ।।

हे यम ! सन्तान की उत्पत्ति के समय ही देव ने हम दोनो को माँ के पेट मे ही दाम्पत्य बन्धन मे जकड दिया है उस देव के दिये हुए फल का कौन निष्फल कर सकता है । त्वष्टा देव के गर्भ मे ही हमारे दम्पत्ति करण रूप कार्य का आकाश और पृथ्वी दोनो जानते है । इसलिए यह सत्य है ।। ५ ।।

हे यमी ! सत्य बोलने से अपनी वाणी रूपी बैल को कौन चुनता है । कार्य करने वाला, पराक्रमी, गुस्सा और घृणा से रहित, अपने शब्दो मे सुनने वालो के हृदयो को आकर्षित करने वाला, जो पुरुष हमेशा सत्य बोलता है वह उसके फल मे सैकडो युगो तक जीवित रहता है ।। ६ ।

हे यम ! हमारे सबसे पहले दिन को कौन समझ रहा है एव किस पुरुष की इस पर दृष्टि है । फिर कौन सा मनुष्य इस बात को अन्य से कहेगा । दिन देवता लोगो का स्थान है क्यों कि ये दोनो ही महान् है । अत मेरे अनुकूल मे कष्टो को न देने वाले तुम, अनेको कार्यों के करने वालो के सम्बन्ध में कैसे कह सकते हो । ७ ।।

मेरी अभिलाषा है कि जिस प्रकार एक पत्नी अपने पति के हाथो मे अपना शरीर सौप देती है, उसी प्रकार मैं भी यम राज को अपना शरीर अर्पण कर दू और जिस प्रकार एक गाडी के दोनों पहिये ही रास्ते को पार कर सकते हैं उसी प्रकार मैं भी हो जाऊँ ।। ८ ।।

हे यमी ! देवता लोग बराबर घूमते है । वे हमेशा सतर्क रहते हैं । इस लिये हे मेरी बुद्धि को धर्म के विरुद्ध करने वाली, तू मुझको छोड दे और किसी की पत्नी जाकर बन जा और जल्दी ही रथ के पहिये के समान उसके साथ जुडजा ।। ९ ।।

यमराज के लिये उसके सेवक दिन रात यज्ञ करें, सूर्य को दमकने वाला तेज रोज इसके लिये निकले। आकाश और पृथ्वी जिस प्रकार आपस मे जुडे हुये है, उसी प्रकार मैंभी उसके भाई चारे से पृथक होकर उसके साथ रहूँ ॥ १० ॥

घा घा सा गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामयः कृणवन्नजामि ।
उप बबृँहि वृषभाय बाहुमन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत ॥ ११ ॥

किं भ्रातासद् यदनाथं भवाति किमु स्वसा
यन्निऋँतिनिगच्छात् ।
काममूता बह्व तद् रपामि तन्वा मे तन्वंँसं पिपृग्धि ॥ १२ ॥

न ते नाथं यम्यत्राहमस्मि न ते तनूं तन्वा स पपृच्याम् ।
अन्येन मत् प्रमुदःकल्पयस्व न ते भ्राता सुभगे
वष्ट्येतत् ॥ १३ ॥

न वाउते तनूं तन्वा स पपृच्यां पापमाहुर्यः स्वसार निगच्छात् ।
असयदेतन्मनसो हृदो मे भ्राता स्वसुः शयने यच्छयीय ॥ १४ ॥

बतो बतासि यम नैव ते मनो हृदयं चाविदाम ।
अन्या किल त्वां कक्ष्ये व युक्तं परिष्वजाते लिबुजेव
वृक्षम् ॥ १५ ॥

अन्यमू षु यम्यन्य उ त्वां परिष्वजाते लिबुजेव वृक्षम् ।
तस्य वा त्वं मन इच्छा स वा तवाधा कृणुष्व संविदं
सुभद्राम् ॥ १६ ॥

त्रीणि-च्छन्दांसि कवयो वि येतिरे पुरुरूपं दर्शतं विश्वचक्षणम् ।
आपो वाता ओषधयस्तान्येकस्मिन् भुवन आर्पितानि ॥ १७ ॥

वृषा वृष्णे दुदुहे दोहसा दिवः पयांसि यह्वो अदितेरदाभ्यः ।
विश्वं स वेद वरुणो यथा धिया स यज्ञियो यजति यज्ञियाँ
ऋतून् ॥ १८ ॥

रपद् गन्धर्वोरप्या च योषणा नदम्य नाद परि पातु नो मन ।
इष्टम्य मध्ये अदितिर्नि धातु नो भ्राता नो ज्येष्ठ प्रथमो
विवोचति ॥ १६ ॥
सो चि नु भद्रा क्षुती यग्स्वत्युषा उवास मनवे स्वर्वती ।
यदीमुशन्तमशतामनु क्रतुमग्नि होतार विदथाय
जीजनन् ॥ २० ॥

शायद आगे चल कर ऐसे दिन आयेंगे जब कि बहिन अपने भाई द्वारा भार्यात्व को प्राप्त करने लगेगी। पर अभी ऐसा नहीं हो सकता इसलिये हे यमी! तू किसी अन्य समर्थवान् पुरुष के लिये अपना हाथ बढा और मुझको छोड कर उसे ही पति बनाने की इच्छा कर ॥ ११ ॥

वह भ्राता कैसा जिसके मौजूद होते हुये भी बहिन अपनी इच्छित कामनाओं को नष्ट कर दे। वह कैसी बहिन जिसके सामने कि भाई नष्ट हो जाय। इसलिये तुम मेरी इच्छा के अनुसार कार्य किया करो ॥ १२ ॥

हे यमी! मैं तेरी इस इच्छा को पूरी नहीं कर सकता और न ही तेरे शरीर को छू सकता हूँ। अब तू मुझको त्याग कर कि दूसरे पुरुष से इस प्रकार का सम्बन्ध स्थापित कर। मैं तेरे भार्यात्व की इच्छा नहीं करता ॥ १३ ॥

हे यमी! मैं तेरी देह को नहीं छू सकता। धर्म को जानने वाले, भाई बहिन के इस प्रकार के सम्बन्ध को पाप कहते हैं। अगर मैं ऐसा न करूँगा तो यह कार्य मेरे हृदय मन और प्राणों को भी नष्ट कर देगा ॥ १४ ॥

हे यम! तेरी कमजोरी पर मुझे दुःख है। तू मेरी ओर आकर्षित नहीं है। मैं तेरे हृदय को न जान सकी। जिस प्रकार

कि लगाम के वश में आया हुआ घोडा अन्यत्र नही जा सकता, वैसे ही तू भी किसी और स्त्री से सम्बन्ध स्थापित करेगा। १५ ॥

हे यमी ! रस्सी जिस प्रकार घोडे से बधी होती है, जड़ें जिस प्रकार पेड को जकड लेती है वैसे हो तू किसी अन्य पुरुष से मिल। तुम दोनो का मन एक ही हो और फिर तू अत्यन्त आनन्द प्राप्त कर ॥ १६ ॥

सारे जगत को ढकने वाले जल आदि का देवताओ ने निर्माण किया। जल ही प्रिय दर्शन देने वाला विश्व को एक दृष्टि से देखता है। वायु तत्व भी दर्शनीय है और विश्व दृष्टा है। ओषधि तत्व भी उसमे है। इन तीनो को देवताओ ने पृथ्वी का पोषण करने के लिये जन्म दिया ॥ १७ ॥

महान् अग्नि देवता ! अपने सेवन के लिए यज्ञो द्वारा आकाश से जल की वर्षा करते हैं। यह अपनी सुमति द्वारा सबको इस प्रकार पहचान लेते हैं। जिस प्रकार कि वरुण अपनी बुद्धि के द्वारा सबको पहचान लेते है। वह अग्नि यज्ञ मे पूजनीय देवताओ का पूजन करते हैं। १८ ॥

जलो को धारण करने वाले सूय की स्वम्ना वाणी और अन्तरिक्ष मे घूमने वाली सरस्वती मेरे द्वारा अग्नि का स्तवन करें और मेरे स्तोत्र रूप नाद मे मन की रक्षा करें फिर देवमाता अदिति मुझे फल दें। भाई के समान हितकारी अग्नि मुझे उत्कृष्ट सेवक बनायें ॥ १६ ॥

अध्वर्युओ ने देवताओ को बुला करके अग्नि को देवता लोगो के लिय यज्ञ करने के लिये अवतरित किया। तभी यह कल्याण मही मन्त्र वाणी और सूर्य की उपा यज्ञ की सिद्धि के लिये अवतरित होती है ॥ २० ॥

अध त्यं द्रप्स विभ्वं विचक्षणं विराभरदिषिरः श्येनो अध्वरे ।
यदी विशो वृणते दस्ममार्या अग्निं होतारमध धीरजायत ॥ २१ ॥
सदासि रण्वो यवसेव पुष्यते होत्राभिरग्ने मनुषः स्वध्वरः ।
विप्रस्य वा यच्छशमान उक्थ्यो वाजं ससवां उपयासि भूरिभिः ॥ २२ ॥
उदीरय पितरा जार आ भगमियक्षति हर्यतो हृत्त इष्यति ।
विवक्ति वह्निः स्वपस्यते मखस्तविष्यते असुरो वेपते मती ॥ २३ ॥
यस्ते अग्ने सुमतिं मर्तो अख्यत् सहस: सूनो अति स प्र शृण्वे ।
इषं दधानो वहमानो अश्वैरा स द्युमाँ अमवान् भूषति द्यून् ॥ २४ ॥
यदग्न एषा समितिर्भवाति देवी देवेषु यजता यजत्र ।
रत्ना च यद् विभजासि स्वधावो भागं नो अत्र वसुमन्तं वीतात् ॥ २६ ॥
श्रुधी नो अग्ने सदने सधस्थे युक्ष्वा रथममृतस्य द्रवित्नुम् ।
आ नो वह रोदसी देवपुत्रे माकिर्देवानामप भूरिह स्याः ॥ २५ ॥
अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः ।
अनु सूर्य उषसो अनु रश्मीननु द्यावापृथिवी आ विवेश ॥ २७ ॥
प्रत्यग्निरुषसामग्रमख्यत् प्रत्यहानि प्रथमो जातवेदाः ।
प्रति सूर्यस्य पुरुधा च रश्मीन् प्रति द्यावापृथिवी आ ततान् ॥ २८ ॥
द्यावा क्षामा प्रथमे ऋतेनाभिश्रावे भवतः सत्यवाचा ।
देवो यन्मर्तान् यजथाय कृण्वन्त्सीदद्धोता प्रत्यङ् स्वमसुं यन् ॥ २९ ॥

देवो देवान् परिभूरृ्तेन वहा नो हव्यं प्रथमश्चिकित्वान् ।
धूमकेतुः समिधा भाऋजीको मन्द्रो होता नित्यो वाचा
यजीयान् ॥ ३० ॥

जब संस्कारित सोम के लाने पर हवन को निष्पादक अग्नि का वरण किया जाता है तब चन्द्रमा और अग्नि के सिद्ध होने पर अग्निष्टोम आदि कार्य भी दूर हो जाते है ॥ २१ ॥

हे अग्नि देवता ! तुम हवन को बडे अच्छे ढंग से सम्पन्न करते हो । जैसे हरी-भरी वस्तुयें खाने वाला जानवर अपने मालिक को सुन्दर दिखाई देता है, वैसे घी आदि से पूजने वाले अपने सेवक को तुम दर्शन देते हो। क्यो कि तुम प्रार्थनाओं से प्रसन्न होकर अपने सेवक की प्रशंसा करते हुए हवन की समग्री को देवताओं के पास पहुँचाते हो ॥ २२ ॥

हे अग्नि देवता ! आकाश रूपी पिता और पृथ्वी रूपी माता को जागृत करो । जैसे सूर्य अपने प्रकाश को फैलाते हैं वैसे ही तुम फैलाते हैं वैसे ही तुम अपने तेज को भी फैलाओ । यह सेवक जिन देवताओं की स्तुति करता है उनकी अग्नि स्वयं इच्छा करते हैं। वे उनको मन चाही वस्तु प्रदान करने के लिये अपने यजमान के पास आते हैं। २३ ॥

हे अग्नि देवता ! जो सेवक तुम्हारी कृपा का दूसरों से वर्णन करता है । वह यजमान तुम्हारी कृपा से सभी जगह ख्याति प्राप्त करता है । वह सेवक अन्न, घोडो आदि से सम्पन्न होता है और युगों तक यश का भागी बना रहता है ॥ २४ ॥

हे अग्नि देव ! तुम इस देवता लोगों के स्थान यज्ञ के घर में हमारे निमन्त्रण को स्वीकार करो । जल-द्रावक

रथ को उन देवगणों के लिये जोड़ो। देवताओं को पालने वाली पृथ्वी और आकाश को भी लाओ। यहाँ सभी देवता आवें ॥ २५ ॥

हे अग्नि! तुम आदरणीय हो। जब मन्त्रों और हवियों की देवताओं मे सगति हो तब तुम प्रार्थना करने वालो का रत्नादि देने वाले हो। और बहुत सा धन प्रदान करने वाले बनो ॥ २६ ॥

सुबह होते ही सूर्य भी उदय हो जाते हैं। यह दिनो के साथ भी प्रकाशित रहते हैं। यही अग्नि सूर्य बनकर ऊषा और किरणो दोनो को प्रकाशित करते है। वही सूर्य रूपी अग्नि आकाश और पृथ्वी को सब ओर से प्रकाशित करती है ॥ २७ ॥

यह अग्नि देव रोज उषा काल मे चमकते और दिन भर दमकते रहते हैं। यही सूर्य रूप अग्नि अनेक प्रकार से फैली हुई किरणो मे प्रकाश भरते हैं। यह आकाश और पृथ्वी को भी प्रकाशित करते हैं। २८ ॥

आकाश, पृथ्वी मुख्य और सत्य वाणी है। जब अग्नि देवता अपने भक्त के पास यज्ञ की सम्पन्नता के लिये बैठ तब उन आकाश और पृथ्वी की प्रार्थना की जाय। २९ ॥

हे अग्नि देवता! तुम विशाल ज्वालाओं से सम्पन्न हो। हवन से पूज्य देवताओं पर काबू करते हुये अनेक पूजन की कामना करते हुये उन्हें हवि पहुँचाओ। तुम धूम रूप पताका वाले समिधाओं से दीप्त होने वाले देवाह्वान तथा पूजनीय हो। तुम हमारी हवन की सामग्रियों को पहुँचाओ ॥ ३० ॥

अर्चामि वां वर्धायापो घृतस्नू द्यावाभूमी शृणुत रोदसी मे।

अहा यद् देवा असुनीतिमायन् मध्या नो अत्र पितरा शिशीताम् ॥ ३१ ॥

स्वावृग देवस्यामृत यदी गोरतो जातासो धारयन्त उर्वी विश्वे देवा अनु तत् ते यजुर्गुर्दुहे यदेनी दिव्यं घृतं वाः ॥ ३२ ॥

किं स्विन्नो राजा जगृहे कदस्याति व्रतं चकृमा को वि वेद। मित्रश्चिद्धि ष्मा जुहुराणो देवाञ्छ्लोको न यातामपि वाजो अस्ति ॥ ३३ ॥

दुर्मन्त्वत्रामृतस्य नाम सलक्ष्मा यद् विषुरूपा भवाति। यमस्य यो मनवते सुमन्त्वग्ने तमृष्व पाह्यप्रयुच्छन् ॥ ३४ ॥

यस्मिन् देवा विदथे मादयन्ते विवस्वतः सदने धारयन्ते। सूर्ये ज्योतिरदधुर्मास्यक्तून् परि द्योतनिं चरतो अजस्रा ॥ ३५ ॥

यस्मिन् देवा मन्मनि संचरन्त्यपीच्ये न वयमस्य विद्म। मित्रो नो अत्रादितिरनागान्त्सविता देवो वरुणाय वोचत् ॥ ३६ ॥

सखाय आ शिषामहे ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे।
स्तुष ऊ षु नृतमाय धृष्णवे ॥ ३७ ॥

शवसा ह्यसि श्रुतो वृत्रहत्येन वृत्रहा।
मघैर्मघोनो अति शूर दाशसि ॥ ३८ ॥

स्तेगो न क्षामत्येषि पृथिवीं मही नो वाता इह वान्तु भूमौ। मित्रो नो अत्र वरुणो युज्यमानो अग्निर्वने न व्यसृष्ट शोकम् ॥ ३९ ॥

स्तुहि श्रुतं गर्तसदं जनानां राजानं भीममुपहत्नुमुग्रम्। मृडा जरित्रे रुद्र स्तवानो अन्यमस्मत् ते नि वपन्तु सेन्यम् ॥ ४० ॥

आकाश और पृथ्वी के अधिष्ठात्री देवतागण ! जल धार्य

को बटोत्तरी के लिये तुम्हारी पूजा करता हूँ। हे आकाश और पृथ्वी ! मेरी प्रार्थना को सुनो, और ऋत्विज जब अपनी शक्ति को हवन आदि के कार्यों में लगावें तब तुम हमको जल देकर हमारी बटोत्तरी करें ॥ ३१ ॥

सुवा के समान परोपकार करने वाला जल जब किरणों से निकलता है और दवाइयो आकाश और पृथ्वी में प्राप्त होती है और जब अग्नि दोप्तियों अन्तरिक्ष में क्षरण शील जल का दोहन करती हैं तब हे अग्नि देवता ! तुम्हारे द्वारा प्रकट उस जल का सभी प्राणी मात्र अनुसरण करते हैं । ३२ ॥

देवताओं में शक्तिशाली यम हमारे यज्ञ का मुख्य भाग स्वीकार करें। कहीं हमसे यम के बुरा करने वाले कार्य का भ्रमण हो गया तो यहाँ देवाह्वाक अग्नि प्रतिष्ठित है यही हमारे पापो को दूर करेंगे। हमारे पास प्रार्थना के समान हवन की सामिग्री भी है। उससे अग्नि को सन्तुष्ट करके यम सम्बन्धी पाप से छूट सकेंगे ॥ ३३ ॥

यहाँ यम का नाम लेना ठीक नहीं है। क्योंकि इसकी बहिन ने इसके मार्यात्व की प्रार्थना की है। फिर भी जो इन यम की प्रार्थना करे। हे अग्नि देवता ! तुम इस घृणा का विनाश कराते हुये उस स्तुति करने वाले की रक्षा करो ॥ ३४ ॥

जिन अग्नि के यज्ञ निष्पादक शरीर से विराजमान होने पर देवतागण आनन्दित होते हैं और जिनके कारण पुरुष सूर्य लोक में रहते हैं। जिन अग्नि के द्वारा ही देवता लोगों ने प्रकाशित तेज को लोकतत्व में प्रतिष्ठित किया है तथा अन्धकार को दूर करने वाली किरणों को लेकर सोम में विराज मान किया है ऐसे विशाल अग्नि की सूर्य और चन्द्रमा बराबर पूजा करते हैं ॥ ३५ ॥

वरुण के जिस स्थान पर देवतागण भ्रमण करते है, वह स्थान हमसे छुपा है। देवता लोग इस जगह पर वरुण से हमारे दोष रहित होने को बात कहें। सविता अदिति, आकाश और मित्रगण भी अग्नि की कृपा से हमें निर्दोष ही कहे ॥ ३६ ॥

हम मित्र रूप इन्द्र के लिये महान् कार्य करने की अभिलाषा करते है, उस दुश्मन का विनाश करने वाले महान् नेता, वज्र को धारण करने वाले इन्द्र को मैं नमस्कार करता हूं ॥ ३७ ॥

हे वृज को नाश करने वाले इन्द्र देवता ! तुम वृज हनन करने वाले के रूप मे जैसे प्रसिद्ध हो वैसे ही अपनी शक्ति से भी प्रसिद्ध हो । इसलिये अपने धन को मुझे दे दो ॥ ३८ ॥

मेढक वर्षा ऋतु में जिस प्रकार पृथ्वी को पार कर जाता है वैसे ही तुम भी पृथ्वी को पार करके ऊपर की ओर जाते हो। अग्नि की मेहरवानी से यह हवा हमको प्रसन्न करने वाले होकर रहे। मित्रगण देवता लोग और वरुण देवता भी इस कार्य में जुड कर जैसे अग्नि घास फूँस सबको जला देता है वैसे ही हे देव ! हमारे कष्टो को दूर करो ॥ ३९ ॥

हे स्तुति करने वाले पुरुष ! जिनका घर मरघट है राक्षसों के स्वामी हैं, जो महान पराक्रमी, डर पैदा करने वाले और पास आकर मारने वाले हैं उन रुद्र देवता की पूजा कर । हे दुखो को दूर करने वाले इन्द्र ! हमारी प्रार्थना से प्रसन्न होकर हमको सुख दो । तुम्हारी सेना हमसे अलावा तुम्हारे लिये घृणा रखने वाले का ही नाश करे ॥ ४० ॥

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने ।
सरस्वतीं सुकृतो हवन्ते सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ॥ ४१ ॥

सरस्वतीं पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः ।
आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वमनमीवा इष आ धेह्यस्मे ॥ ४२ ॥

सरस्वति या सरथं ययाथोक्थैः स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती ।
सहस्रार्घमिडो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानाय धेहि ॥ ४३ ॥

उदीरतामवर उत् परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः ।
असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥ ४४ ॥

आहं पितॄन्त्सुविदत्राँ अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः ।
बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः ॥ ४५ ॥

इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो ये अपरास ईयुः ।
ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु दिक्षु ॥ ४६ ॥

मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधानः ।
याश्च देवा वावृधुर्ये च देवांस्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥ ४७ ॥

स्वादुष्किलायं मधुमाँ उतायं तीव्रः किलायं रसवाँ उतायम् ।
उतो न्वस्य पपिवांसमिन्द्रं न कश्चन सहत आहवेषु ॥ ४८ ॥

परेयिवांसं प्रवतो महीरिति बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम् ।
वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा सपर्यत ॥ ४९ ॥

यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ ।
यत्रा नः पूर्वे पितरः परेता एना जज्ञानाः पथ्या अनु स्वाः ॥ ५० ॥

मरे हुये पुरुष का संस्कार करने वाले पुरुष अग्नि की

अभिलाषा करते हुये सरस्वती को बुलाते हैं। और ज्योतिष आदि में भी सरस्वती को ही पूजते हैं। वह देवी हवन करने वाले अपने भक्त को उसकी इच्छा के पदार्थ प्रदान करें ॥ ४१ ॥

वेदी के दक्षिण विराजमान पूर्वज भी सरस्वती को आमन्त्रित करते हैं। हे पितरो! तुम इस यज्ञ में आते हुये खुशी होओ। तुम सरस्वती को सन्तुष्ट करो और हवियों को प्राप्त करके आनन्दित होओ। हे सरस्वती! तुम पूर्वजों द्वारा बुलाई गई रोग से हीन इच्छित अन्न को हममें स्थापित करो ॥ ४२ ॥

हे सरस्वती देवी! तुम पूर्वजों सहित अपने को सगुण सन्तुष्ट करती हुई एक ही रथ पर आती हो। अनेकों पुरुषों और जनता को सन्तुष्ट करने वाले अन्न भाग और धन को मुझ सेवक को भी दो ॥ ४३ ॥

अवस्था तथा गुणों में महान् अथवा निकृष्ट और मध्यम पूर्वज भी उठें। यह पितर चन्द्रमा का भक्षण करने चले हैं। यह प्राण से सम्पन्न देह को प्राप्त होने वाले, प्यार करने वाले और वास्तविकता के जानने वाले हैं। आने वाले कालो में से सब पितर हमारी रक्षा करें ॥ ४४ ॥

मैं कल्याण करने वालो के सामने जाता हूँ। यज्ञ की रक्षा करने वाली अग्नि के सामने उपस्थित होता हूँ। अतः बर्हिषद् नाम का जो पितर स्वधा के साथ सोम का पान करते हैं उन्हें हे अग्नि देवता मेरे पास बुलाओ ॥ ४५ ॥

जो पूर्वज पहले लोक को जा चुके हैं, जो अब गये हैं, या जो इस समय इसी लोक में उपस्थित हैं, जो विभिन्न दशाओं मे निवास करते हैं उन सबको प्रणाम है ॥ ४६ ॥

मालती नामका पितृ देवता यजमान प्रदत्त हवि द्वारा कव्य नामक पितरों के साथ बैठने हैं, यम नाम के पितृ नेता भक्त के द्वारा प्रदान की हुई हवि से अङ्गिरा नामक पितरों के साथ बढते हैं। और वृहस्पति नाम के पितृ नेता ऋम्व नामक पितरों सहित आगे आते हैं। इनमें मालती आदि देवगण जिन पितरों को हवन में बुलावा देते हैं और जो कव्यादि को आहुति से प्रवृद्ध करते हैं, वे पितर आने वाले समय में हमारे रक्षक हों ॥ ४७ ॥

यह संस्कारित सोम चखने के योग्य है। यह मीठा है इसलिये स्वाद से पूर्ण है, यह तेज होने से नशे में भरने वाला है, यह रस से युक्त है अतः इसको पीने वाले इन्द्र का कोई भी राक्षस युद्ध में सामना नहीं कर सकता ॥ ४८ ॥

पृथ्वी को पार करके किसी और देश (विदेश) में जाने वाले, अनेक पितरों के रास्ते पर चलने वाले विवस्वान् के पुत्र मृतकों के स्वामी यमराज का पूजन करते हैं ॥ ४९ ॥

हमारे मृतकों के रास्ते से यमराज भली भांति परिचित हैं। देवता और मनुष्य दोनों को ही इस मार्ग से जाना होता है। आत्म साक्षात्कार से विमुक्त मनुष्यों को कार्य फल रूप स्वर्ग अवश्य मिलता है। जिन मार्गों से हमारे पूर्वज गये थे और जिस रास्ते से वे अपने कार्यों के अनुसार इस पृथ्वी पर आते हैं, उन सभी रास्तों से यमराज भली भांति परिचित हैं ॥ ५० ॥

बर्हिषदः पितरः ऊत्यर्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम् ।
त आ गतावसा शंतमेनाथा नः शं योररपो दधात ॥ ५१ ॥

आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येद नो हविरभि गृणन्तु विश्वे । मा हिंसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद् व आगः पुरुषता कराम ॥ ५२ ॥

त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोति तेनेद विश्वं भुवनं समेति । यमस्य माता पर्युह्यमाना महो जाया विवस्वतो ननाश ॥ ५३ ॥

प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्याणैर्येना ते पूर्वे पितरः परेताः । उभा राजानो स्वधया मदन्तौ यम पश्यासि वरुणं च देवम् ॥ ५४ ॥

अपेत वीत वि च सर्पतातोऽस्मा एत पितरो लोकमक्रन् । अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्यवसानमस्मै ॥ ५५ ॥

उशन्तस्त्वेधीमह्युशन्तः समिधीमहि । उशन्नुशत आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे ॥ ५६ ॥

द्युमन्तस्त्वेधीमहि द्युमन्तः समिधीमहि । द्युमान् द्युमत आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे ॥ ५७ ॥

अंगिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः । तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ ५८ ॥

अंगिरोभिर्यज्ञियैरा गहीह यम वैरूपैरिह मादयस्व । विवस्वन्त हुवे यः पिता तेऽस्मिन् बर्हिष्या निषद्य ॥ ५९ ॥

इमं यम प्रस्तरमा हि रोहाङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः । आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन् हविषो मादयस्व ॥ ६० ॥

इत एत उदारुहन् दिवस्पृष्ठान्यारुहन् । प्र भूर्जयो यथा पथा द्यामङ्गिरसो ययुः ॥ ६१ ॥

हवन मे आगत बर्हिषद पितरो ! हमारी सुरक्षा के लिये हमारे सम्मुख आओ । यह हवियाँ तुम्हारे निमित्त हैं इनको खाओ । तुम अपने मगलमयी रक्षा के साधनो सहित आओ और रोग-का विनास करने वाले तथा पाप को दूर करने वाले बल को हममे दो ॥ ५१ ॥

हे पितरो ! जानु सिकोड कर दक्षिण की वेदी के ओर प्रतिष्ठित हमारी हवि की प्रशसा करो । हमारे थोडे या बहुत किसी अपराध के कारण हमें हिंसित न करना, क्यो कि मनुष्य स्वभाव वश हमसे भी अपराध हो सकते हैं ॥ ५२ ॥

एकत्रित वीर्य को पुरुष की आकृति मे बदलने वाले त्वष्टा ने अपनी पुत्री सररायु का विवाह किया, जिसे देखने के लिये सारा ससार इकट्ठा हुआ । यम की माता सररायु का विवाह जब सूर्य के साथ हुआ तब सूर्य की अपनी बहनी पत्नी कही छुप गयी ॥ ५३ ॥

हे प्रेत ! जिस काठी को पुरुष उठाते हैं उससे तू यमराज के यहाँ जा । इसी रास्ते से तुझसे पहले पुरुष भी गये हैं । वहाँ देवताओ में क्षात्र धर्म वाले वरुण और यम दोनो उपस्थित हैं । वे हमारे किये जाने वाले यज्ञो से खुश हो रहे हैं । उस यम लोक मे तुझको यम और वरुण दोनों दिखायी देगें ॥ ५४ ॥

हे दानवो ! इस स्थान को छोड दो । तुम चाहे पूर्व से ही यहाँ पर निवास करते हो या यहाँ पर नये आकर बस गये हो, यहाँ से भाग जाओ, क्यो कि यह स्थान इस मनुष्य को दिन-रात और जल के साथ रहने का यमराज ने प्रदान किया है ॥ ५५ ॥

हे अग्ने ! इस हवन को पूर्ण करने के लिये हम तुम्हारी

प्रार्थना करते एवं तुमको बुलाते हैं। तुम भली-भाँति सज-धजकर स्वधा की इच्छा वाले पितरों के लिये हवि के भक्षण हेतु लाओ ॥ ५६ ॥

हे अग्नि देव ! हम तुमको बुलाते हैं। तुम्हारी दया से हम यशवान् बन गये। हम तुमको प्रदीप्त करते हैं। हवन को ग्रहण कर तथा उसके भक्षण के लिये पितरों को यहां लाओ ॥ ५७ ॥

पुराने ऋषि अङ्गिरा हमारे पूर्वज हैं। नये मन्त्रों वाल अथवा और भृगु हमारे पितर हैं। यह सब सोम का पान करने वाले हैं। इनकी कृपा एवं सुमति में हम रहें। ये सब हमसे प्रसन्न रहें ॥ ५८ ॥

हे यम ! अङ्गिरा नामक यज्ञ की अभिलाषा करने वाले पितरों सहित यहाँ आकर सन्तुष्ट होओ। मैं तुमको ही नहीं, तुम्हारे पिता सूर्य को भी आमन्त्रित करता हूँ। वह इस कुशा के बिछौने पर बैठकर हवि स्वीकार करें उसी प्रकार उन्हें बुलाता हूँ ॥ ५९ ॥

हे यम ! अङ्गिरा नामक पितरों से समान बुद्धि वाले होकर इस कुश के आसन पर बैठो। साधु-सन्तों के मंत्र तुम्हें बुलाने में पूर्ण हों। तुम हमारी हवि पाकर आनन्दित होओ ॥ ६० ॥

मौत का अन्तिम सस्कार करने वाले मनुष्यों ने मरे हुये पुरुष को पृथ्वी पर से उठाकर काठी पर रखा और आकाश की ओर भेज दिया। पृथ्वी को विजयी करने वाले अंगिरस जिस रास्ते से गये, उसी रास्ते से इसे भी आकाश में भेज दिया ॥ ६१ ॥

सूक्त २ (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि अथर्वा देवता—यम., मन्त्रोक्ता, जातवेदा, पितरः। छन्द—अनुष्टुप्; जगती, त्रिष्टुप्, गायत्री)

यमाय सोम. पवते यमाय क्रियते हविः।
यम ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरकृतः॥ १॥

यमाय मधुमत्तम जुहोता प्र च तिष्ठत।
इद नम ऋषिभ्यः पूवजेभ्य पूर्वेभ्य. पथिकृद्भ्य.॥ २॥

यमाय घृतवत् पयो राज्ञ हविर्जुहोतन।
स नो जोवेष्वा यमेद् दीघमायु· प्र जोवसे॥ ३॥

मैनमग्ने वि दहो माभि शूशुचो मास्य त्वच चिक्षिपो मा शरीरम्।
शृत यदा करसि जातवेदोऽथेममेन प्र हिणुतात् पितृरुप॥ ४॥

यदा शृत कृणवो जातवेदोऽथेममेन परि दत्तात् पितृभ्यः।
यदो गच्छात्यसुनोतिमेनामय देवानां वशनीर्भवाति॥ ५॥

त्रिकद्रुकेभिः पवते षडुर्वीरेकमिद् बृहत्।
त्रिष्टुप् गायत्री छन्दांसि सर्वा ता यम आर्पिता॥ ६॥

सूर्यं चक्षुषा गच्छ वातमात्मना दिवं च गच्छ पृथिवीं च धर्मभि।
अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः॥ ७॥

अजो भागस्तपसस्तं तपस्व सं ते शोचिस्तपतु त ते अर्चिः।
यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदस्ताभिर्वहैन सुकृतामु लोकम्॥ ८॥

यास्ते शोचयो रंहयो जातवेदो याभिरापृणासि दिवमन्तरिक्षम्।

अजं यन्तमनु ताः समृण्वतामथेतराभिः शिवतमाभिः शृतं कृधि ॥ ६ ॥
अव सृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आहुतश्चरति स्वधावान् ।
आयुर्वसान उप यातु शेषः सं गच्छतां तन्वा सुवर्चाः ॥ १० ॥

सोमयाग मे सेवक यम के लिये सोम को सिद्ध करते हैं। घी आदि हवन की सामिग्री उत्पन्न आदि संस्कार द्वारा यम को प्रदान की जाती हैं। मन्त्र आदि से सुसज्जित हवि को दूत के समान अग्नि वहन करते हैं। वह ज्योतिष्टोम आदि नाना प्रकार के हवन यम को मिलते हैं ॥ १ ॥

हे भक्तो ! यम की प्राप्ति के लिये सोम तथा घी आदि की आहुति दो। पूर्व पुरुषो को मन्त्र द्रष्टा अङ्गिरा आदि ऋषि मुनियों को प्रणाम है ॥ २ ॥

हे सेवको ! घी से सम्पन्न हवन की सामिग्री को यमराज के लिये दो। वे हवि को प्राप्त करके हमे भी जीवित मनुष्यो में स्थान देंगे तथा सौ वर्ष की आयु प्रदान करेंगे ॥ ३ ॥

हे अग्नि देवता ! इस प्रेत का विनाश मत करो। इसके प्राणों को कही और मत फेंको और शोक भी मत करो ॥ ४ ॥

हे अग्नि देव ! जब तुम इस हवि रूपी देह को पक्का कर लो तब इसे रक्षा के लिये पितरो को दो। जब यह असुनीति देवता को प्राप्त हो तब यह देवताओं पर काबू पाने मे असमर्थ न हो ॥ ५ ॥

तीन कन्दुक हवनों को सम्पन्न करते समय यम के लिये सोम, निष्पन्न करते हैं। आकाश, पृथ्वी, दिन, रात, जल, दवाईयां यह छओं वस्तुयें यमराम के लिये ही प्रकट हुई हैं। सभी छन्द भी यम में मौजूद हैं ॥ ६ ॥

हे मरे हुये पुरुष ! तू नेत्रो के द्वार से सूर्य लोक को प्राप्त हो। सूत्र रूप रूप से वायु को प्राप्त हो, और इन्द्रियो से आकाश-पृथ्वी को जाया अन्तरिक्ष व जल को जा। इन जगहो पर अगर तेरी अभिलाषा है तो जा वरना औषधि आदि मे समाजा । ७ ॥

हे अग्नि देवता ! अपने भाग इस 'अज' को तेज से सतप्त करो। उसे तुम्हारा तेज और ज्वाला तपावें। तुम्हारे जो छोटे बडे शरीर हैं उसके द्वारा इस प्रेत को स्वर्ग लोक प्राप्त कराओ ॥ ८ ॥

हे अग्नि देवता ! तुम्हारी भयकर और दु:ख पूर्ण लपटों से आकाश और अन्तरिक्ष दोनो दु:खी हैं वे लपटें इस 'अज' को मिल जावें। अन्य आनन्द देने वाली ज्वालाओ से तुम इस प्रेत को हवन की सामिग्री के समान ही पकाओ ॥ ९ ॥

हे अग्नि देव ! हवि रूप से जो प्रेत तुम्हें प्रदान किया गया है और हमारे प्राप्त स्वधा सम्पन्न होकर तुममे विचरण कर रहा है उस तुम स्वर्ग लोक के निये छोडो और उसका पुत्र आयुष्मान होकर घर को लौट आवे। यह मनुष्य सुन्दर शरीर वाला तथा स्वर्ग मे रहने के लायक हो ॥ १० ॥

अति द्रव श्वानौ सारमेयौ चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा ।
अधा पितृन्त्सुविदत्रां अपीहि यमेन ये सधमादं मदन्ति ॥ ११ ॥

यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिषदी नृचक्षसा ।
ताभ्यां राजन् परि धेह्येनं स्वस्त्यस्मा अनमीवं च धेहि ॥ १२ ॥

उरूणसावसुतृपावुदुम्बलौ यमस्य दूतौ चरतो जनां अनु ।
तावस्मभ्यं दृशये सूर्याय पुनर्दातामसुमद्येह भद्रम् ॥ १३ ॥

सोम एकेभ्य पवते घृतमेक [illegible] ।

येभ्यो मधु प्रधावति तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥ १४ ॥
ये चित् पूर्व ऋतसाता ऋतजाता ऋतावृधः ।
ऋषीन् तपस्वतो यम तपोजां अपि गच्छतात् ॥ १५ ॥
तपसा ये अनाधृष्यास्तपसा ये स्वर्ययुः ।
तपो ये चक्रिरे महस्तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥ १६ ॥
ये युध्यन्ते प्रधनेषु शूरासो ये तनूत्यजः ।
ये वा सहस्रदक्षिणास्तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥ १७ ॥
सहस्रणीथाः कवयो ये गोपायन्ति सूर्यम् ।
ऋषीन् तपस्वतो यम तपोजां अपि गच्छतात् ॥ १८ ॥
स्योनास्मै भव पृथिव्यनृक्षरा निवेशनी ।
यच्छास्मै शर्म सप्रथा ॥ १९ ॥
असंबाधे पृथिव्या उरौ लोके नि धीयस्व ।
स्वधा याश्चकृषे जीवन् तास्ते सन्तु मधुश्चुतः ॥ २० ॥

हे मनुष्य ! तू अब स्वर्ग लोक को जाने वाला है । सरमा नाम की कुतिया श्याम तथा शवल नामक दोनो बेटो के सहित वैभव सम्पन्न पितरो के पास जा ॥ ११ ॥

हे पितरो के भगवान ! पितर रास्ते मे चार आंखो वाले इस यमपुर की देखभाल करने के लिये तुम्हारे द्वारा नियुक्त है, उन्हे रक्षा के लिये इस प्रेत को दो । और तुम्हारे लोक मे निवास करने वाले को कष्टो से रहित स्थान हो ॥ १२ ॥

बडी-बडी नाक वाले, प्राणियो के प्राणो से सन्तुष्टि पाने वाले, प्राणो का अन्त करने वाले, महाशक्तिशाली यमदूत सब जगह विचरण करते हैं । वे दोनो दूत हमको सूर्य के दर्शन के लिये पाँचो इन्द्रियो से युक्त प्राण को हमारी देह मे प्रतिष्ठित करें ॥ १३ ॥

एक पितरो को, नदी रूप में सोम प्रवाहित हैं, दूसरे

पितृ लोग घी का उपयोग करने वाले हैं। ब्रह्मयाग में अथर्वा के स्तोत्रों या उच्चारण करने वालो के लिये शहद की नदी बहती है। हे मरे हुये मनुष्य ! तू उन सब वस्तुओं को प्राप्त कर ॥१४॥

पहल पुरुष जो कि सत्य बोलते थे तथा सत्य भी बुलवाते थे। उन तपस्वी पुरुषों को हे यम से नियमित पुरुष ! तू प्राप्त कर ॥ १५ ॥

तप करके, हवन आदि करकें, बुरे कर्म और उपासना द्वारा महातप करते हुए जो पुरुष पुण्य लोको को प्राप्त करते हैं हे पुरुष ! तू भी उन तपस्वियों के लोक को ही जा ॥ १६ ॥

जो वीर पुरुष युद्ध के मैदान में वैरियों पर हमला करते हैं, जो लड़ाई में ही मर जाते हैं, जो अन्न, दक्षिणा वाले हवनों को करते हैं हे प्रेत ! तू उनसे प्राप्त होने वाले सभी फलों को पा ॥ १७ ॥

जो अनन्त दृष्टा ऋषि सूर्य की रक्षा करते हैं हे पुरुष ! तू यम को नीयमान होकर भी उन तपस्वियों के कर्म फल को पा ॥ १८ ॥

हे वेदी रूपी पृथ्वी ! तू सज्जन पुरुष के लिये काटों से रहित होओ और इसे सब प्रकार का आनन्द प्रदान कर। १९॥

हे सज्जन पुरुषों ! तू यज्ञ आदि के वेदी रूपी फैले हुए स्थान में सम्पन्न हो। पहले तूने इन अच्छे कर्मों वालो हवियों को दिया है, वह तुझे शहद आदि रसो के बहते हुए रूप में मिले ॥ २० ॥

ह्वयामि ते मनसा मन इहेमान् गृहां उप जुजुषाण एहि ।
स गच्छस्व पितृभिः स यमेन स्योनास्त्वा वाता उप वान्तु शग्मा ॥ २१ ॥

उत् त्वा वहन्तु मरुत उदवाहा उदप्रुतः ।
अजेन कृण्वन्तः शीतं वर्षेणोक्षन्तु बालिति ॥ २२ ॥
उदह्वमायुरायुषे क्रत्वे दक्षाय जीवसे ।
स्वान् गच्छतु ते मनो अधा पितृँरुप द्रव ॥ २३ ॥
मा ते मनो मासोर्माङ्गानां मा रसस्य ते ।
मा ते हास्त तन्वः किं चनेह ॥ २४ ॥
मा त्वा वृक्षः सं बाधिष्ट मा देवी पृथिवी मही ।
लोकं पितृषु वित्त्वैधस्व यमराजसु ॥ २५ ॥
यत् ते अङ्गमतिहितं पराचैरपानः प्राणो य उ वा ते परेतः ।
तत् ते संगत्य पितरः सनीडा घासाद् घासं पुनरा वेशयन्तु ॥ २६ ॥
अपेमं जीवा अरुधन् गृहेभ्यस्तं निर्वहत परि ग्रामादितः ।
मृत्युर्यमस्यासीद् दूतः प्रचेता असून् पितृभ्यो गमयां चकार ॥ २ ॥
ये दस्यवः पितृषु प्रविष्टा ज्ञातिमुखा अहुतादश्चरन्ति ।
परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टानस्मात् प्र धमाति यज्ञात् ॥ २८ ॥
सं विशन्त्विह पितरः स्वा नः स्योनं कृण्वन्तः प्रतिरन्त आयुः ।
तेभ्यः शकेम हविषा नक्षमाणा ज्योग् जीवन्तः शरदः पुरूचीः ॥ २६ ॥
यां ते धेनुं निपृणामि यमु ते क्षीर ओदनम् ।
तेना जनस्यासो भर्ता योऽसासदजीवनः ॥ ३० ॥

हे प्रेत पुरुष ! अपने द्वारा तुझको इस लोक में भेजता हूँ । जिन गृहों में तेरे लिये अच्छे कार्य किये जाते हैं तू हमारे उन घरों में प्रवेश कर और सस्कार होने के पश्चात् पिता,

पितामह और प्रपितामह आदि के साथ सपिण्डीकरण में मिल। यम के पास पहुँचा हुआ तू पितृलोक मे जाकर मार्ग की मेहनत को दूर करने वाले सुखकर वायु को प्राप्त हो ॥ २१ ।

हे प्रेत ! तुझे मरुद्गण आकाश मे धारण करें । वायु ऊँचे लोकों में पहुँचावें । जल को धारण करने वाले एव बरसने वाले बादल समीपस्थ अज सहित तुझे वृष्टि जल से सिंचित करें ॥ २२ ॥

हे मनुष्य ! प्राणान और अपानन व्यापार के लिये मैं तेरी आयु को बुलाता देता हूँ । तेरा मन सस्कार से उत्तम नयी देह को प्राप्त हो । और फिर तू पितरों के पास पहुँच ॥ २३ ॥

हे प्रेत । तेरा मन और तेरी इन्द्री तेरा साथ न छोड़े। और तेर शरीर का कोई भी अग नष्ट न हो । तेरे शरीर के अन्दर कोई विकृति न हो । खून वीर्य आदि भी पूर्ण मात्रा में रहे। तेर शरीर का कोई भी अग तुमसे अलग न हो ॥ २४ ॥

हे प्रेत ! तू जिस पेड के नीचे बैठे-जहाँ कि वह तुझे दुःखी न करें। तू जिस वृक्ष का सहारा ले, वह तुझे कष्ट न दे। तू यम के प्रजा रूप पितरों में स्थान पाकर बढ ॥ २५ ॥

हे प्रेत ! तेरा जो भाग शरीर से अलग हो गया था, सात प्राण फिर आच्छादित न होने के लिये निकल गये थे, उन सबको एक स्थान में अवस्थित पितर एवं देह से दूसरी देह में सम्पन्न करें ॥ २६ ॥

हे जीवित प्राणियो ! इस प्रेत को अपने घर में से जाओ। इस गाँव से बाहर हटा कर ले जाओ। क्यों कि यम के दूत मृत्यु ने इसके प्राणों को पितर रूप में देने के लिये ले लिया है ॥ २७ ॥

जो पिशाचों के समान पिता पितामह आदि पितरों में घुल-मिल जाते हैं और माया केवल पर हवि का भक्षण करते ९ तथा पिण्डदाह करने वाले बेटे, नाती को चोट पहुँचाते हैं उन मायावी दानवों को पितृ याग' से अग्नि देव बहार निकालदें ॥ २८ ॥

हमारे गोत्र में पैदा हुए पिता, पितामह आदि सब पितर भली भाँति यज्ञ मे आवें और हमें प्रसन्न करें। हमारी उम्र में बढोत्तरी करें। हम भी अ-यु पाते ही हवियो से पितरों का पूजन करते हुये बहुत समय तक जीवित रहें ॥ २६ ॥

हे प्रेत ! तेरे लिये गायो को दान करता हूँ। तेरे निमित जिस दूध मे बने हुये भोजन को देता हूँ उसके द्वारा तू यमलोक मे अपने जोवन का पूरा करने वाला हो ॥ ३० ॥

अश्वावर्ती प्र तर या सुशेवार्क्षाक वा प्रतरं नवीयः ।
यस्त्वा जघान वध्यः सो अस्तु मा सो अन्यद् विदत भागधेयम् ॥ ३१ ॥

यमः परोऽवरो विवस्वान् ततः परं नाति पश्यामि किं चन ।
यमे अध्वरो अधि मे निविष्टो भुवो विवस्वान न्वाततान ॥ ३२ ॥

अपागूहन्नमृतां मर्त्येभ्यः कृत्वा सवर्णामदधुर्विवस्वते ।
उताश्विनावभरद् यत् तदासीदजहादु द्वा मिथुना सरण्यूः ॥ ३३ ॥

ये निखाता ये परोप्ता ये दग्धा ये चोद्धिताः ।
सर्वांस्तानग्न आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे ॥ ३४ ॥

ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते
त्व तान् वेत्थ यदि ते जातवेदः स्वधया यज्ञं स्वधितिं जुषन्ताम् ॥ ३५ ॥

श तप माति तपो अग्ने मा तन्व तप ।
वनेषु शुष्मो अस्तु ते पृथिव्यामस्तु यद्धर ॥ ३६ ॥
ददाम्यस्मा अवसानमेतद् य एष आगन् मम चेदभूविह ।
यमश्चिकित्वान् प्रत्येतदाह ममैष राय उप तिष्ठतामिह ॥ ३७ ॥
इमां मात्रां मिमीमहे यथापर न मासातै ।
शते शरत्सु नो पुरा ३८ ॥
प्रेमा मात्रा मिमीमहे यथापर न मासातै ।
शते शरत्सु नो पुरा ॥ ३९ ॥
अपेमा मात्रा मिमीमहे यथापर न मासातै ।
शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४० ॥

हे प्रेत ! मैं इस जगल के नये रास्ते से भीषण जन्तु जैसे रीछ, शेर आदि से रक्षा करता हुआ पार हो जाऊँ । अश्वावती नदी से तू हमको पार उतार। यह नदी हमको आनन्द दने वाली है। जो हत्यारा है, यह वध के योग्य होता हुआ भोग्यनीय पदार्थों को न पा सके ॥ ३१ ॥

यम सूर्य से अत्यन्त तेजवान हैं। यम से अधिक कोई भी जन्तु नही है। यह यज्ञ यम में ही व्यापक हैं। यज्ञ को सफल बनाने के लिये ही सूर्य ने पृथ्वी को पृथक-पृथक हिस्सो मे बाँटा ॥है ३२ ॥

धर्म पर बलिदान होने वाले पुरुषों से देवगणो ने अविनाशी रूप को छिपा लिया। सूर्य के बराबर अन्य स्त्री की रचना करके दी। घोड़ी का रूप सरण्यु ने धारण किया अश्विनी कुमारो का पोषण किया। सूर्य का घर छोडते समय त्वष्टा की बेटी सरण्यु ने यमयमी के युग्म को घर पर ही छोड दिया था। ३३ ॥

पृथ्वी के अन्दर जो पूर्वज गाड़े जाकर, काठ की तरह त्यागे जाकर, ऊर्ध्व लोक-पितृलोक का जो अग्नि दाह संस्कार मे प्राप्त हुए हैं। उसी प्रकार हे पितरो ! हवि को सेवन करने के लिये पधारो ॥ ३४ ॥

जो पूर्वज अग्नि में शुद्ध हुए एवं गाढने से पवित्र हुए और पिण्ड, पितृयाग से शान्त हुए। आकाश मे रहते हैं। हे अग्ने ! तुम उन्हे अच्छो प्रकार समझते हो। पितृयाग आदि का भक्षण करें जिन्हे कि उनकी प्रजा करतो है ॥ ३५ ॥

हे अग्ने ! इस अपने शरीर को अधिक मत जलाओ। यह कार्य करो जिससे इसको सान्तवना मिलती हो। तुम्हारी शोषक अग्नियाँ वन को गमन करें एव रसहारक ओज पृथ्वी पर विद्यमान रहे। हमारे शरीरों को आप भस्म न करें ॥ ३६ ॥

(यम वाक्य) यह आया हुआ व्यक्ति मेरा ही इसलिये मैं इसको स्थान देता हूँ क्योंकि यह अब मेरे समीप आया है इसलिये यह मेरा ध्यान करता रहे, यहां पर निवास कर सकता है ॥ ३७ ॥

श्मसान को हम नापते हैं क्योंकि ब्रह्मा ने हमें सौ वर्ष की उम्र दी है इसलिये मध्य मे ही हमे मृत्यु प्राप्त न हो ॥ ३८ ॥

भली प्रकार से हम नापते हैं जिससे हम सौ वर्ष से पहले ही ना मर जांय ॥ ३९ ॥

दोषो को दूर करते हुए हम इस श्मशान को नापते हैं जिससे हम सौ वर्ष से पहले ही न मर जायें ॥ ४० ॥

यीमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै ।
शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४१ ॥

निर्मिमा मात्रां मिमीमहे यथापर न मासातै ।
शते शरत्सु नो पुरा । ४२ ॥
उदिमा मात्रा मिमीमहे यथापर मासातै ।
शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४३ ॥
समिमा मात्रा मिमीमहे यथापर न मासातै ।
शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४४ ॥
अमासि मात्रां स्वरगामायुष्मान् भूयासम् ।
तथापर न मासातै शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४५ ॥
प्राणो अपानो व्यान आयुश्चक्षुर्दृशये सूर्याय ।
अपरिपरेण पथा यमराज्ञः पितॄन् गच्छ ॥ ४६ ॥
ये अग्रव शशमाना परेयुर्हित्वा द्वेषास्यनपत्यवन्त ।
ते द्यामुदित्याविदन्त लोक नाकस्य पृष्ठे अधि
दीध्याना ॥ ४७ ॥
उदन्वती द्यौरवमा पीलुमतीति मध्यमा ।
तृतीया ह प्रद्यौरिति यस्या पितर आसते ॥ ४८ ।
ये न पितु पितरो ये पितामहा य आविविशुरुर्वन्तरिक्षम् ।
य आक्षियन्ति पृथिवीमुत द्या तेभ्य पितृभ्यो नमसा
विधेम ॥ ४९ ॥
इदमिद् वा उ नापर दिवि पश्यसि सूर्यम् ।
माता पुत्र यथा सिचाभ्येन भूम ऊर्णुहि ॥ ५० ॥

विशेष प्रकार से हम इस श्मशान को नापते हैं जिससे कि हम सौ वर्ष की उम्र से पहले ही न मर जाय ॥ ४१ ॥

दोष रहित हम इस श्मशान को नापते हैं जिससे कि हम सौ वर्ष से पहले ही न मर जाय ॥ ४२ ।

सारे साधनो के होते हुए हम इस श्मसान की दूरी को नापते हैं जिससे हम सौ वर्ष से पहले ही न मर जायें ॥ ४३ ॥

श्मसान की जगह को हम ठीक प्रकार से नापते हैं जिससे हमे सौ वर्ष की आयु से पूर्व ही न मर जायें ॥ ४४ ॥

श्मसान को जगह को मैंने नाप लिया उसी नापानुसार मैं इस प्रेत को प्रेसित कर चुका हूँ। इसी कार्य से ही मैं सौ वर्ष तक जीवित रहूँ एव सौ वर्ष की आयु से पहले ही मुझे मृत्यु प्राप्त न हो ॥ ४५ ॥

प्राण, अपान, व्यान, उग्र, नेत्र ये सब आदित्य के दर्शन करने वाले हो ॥ ४६ ॥

सतान विहीन होते हुए भी जो पूर्वज पापों को छोडते हुए परलोक को गमन कर गये, वे आकाश को पार करके स्वर्ग के ऊपर की दिशा मे निवास करते हुए पुण्य का फल भोगते हैं ॥ ४७ ॥

नीचे की ओर द्यु लोक, उदन्वती और दूसरा हिस्सा पीलुमती है, तृतीय हिस्सा प्रद्यौ है उसी जगह पर पूवज रहते हैं ॥ ४८ ॥

हमारे पिता को जन्म देने वाले बाबा, पितामह के जन्म दाता पितर, और वे पितर जा वडे आकाश में प्रवेश कर चुके हैं, जो पूर्वज स्वर्ग एव भूमि पर वास करते हैं इन सारे पितरो को हम पूजते हैं ॥ ४९ ॥

हे मृतक ! हम श्रद्धा से जो भी देते है, वह तेरा प्राण हैं। और कोई भी जीवन का साधन नही है। सूर्य के दशन करता हुआ तू इस श्मसान को प्राप्त कर। हे पृथ्वी ! माता जिस प्रकार अपनी सन्तान को आँचल से आच्छादित करती है

उसी तरह इस शव को आप अपने ओज से आच्छादित करो ॥ ५० ॥

इदमिद् वा उ नापरं जरस्यन्यदितोऽपरम् ।
जाया पतिमिव वाससाभ्ये नं भूम ऊर्णुहि ॥ ५१ ॥
अभि त्वोर्णोमि पृथिव्या मातुर्वस्त्रेण भद्रया ।
जीवेषु भद्रं तन्मयि स्वधा पितृषु सा त्वयि ॥ ५२ ॥
अग्नीषोमा पथिकृता स्योनं देवेभ्यो रत्नं दधथुर्वि लोकम् ।
उप प्रेष्यन्त पूषणं यो वहात्यञ्जोयानै: पथिभिस्तत्र गच्छतम् ॥ ५३ ॥
पूषा त्वेतश्च्यावयतु प्र विद्वाननष्टपशुर्भुवनस्य गोपाः ।
स त्वैतेभ्यः परि ददत् पितृभ्योऽग्निर्देवेभ्यः सुविदत्रियेभ्यः ॥ ५४ ॥

आयुर्विश्वायुः परि पातु त्वा पूषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात् ।
यत्रासते सुकृतो यत्र त ईयुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु ॥ ५५ ॥
इमौ युनज्मि ते वह्नी असुनीताय वोढवे ।
ताभ्यां यमस्य सादनं समितीश्चाव गच्छतात् ॥ ५६ ॥
एतत् त्वा वासः प्रथमं न्वागन्नपैतदूह यदिहाबिभः पुरा ।
इष्टापूर्तमनुसंक्राम विद्वान् यत्र ते दत्तं बहुधा विबन्धुषु ॥ ५७ ॥
अग्नेवर्म परि गोभिर्व्ययस्व सं प्रोर्णुष्व मेदसा पीवसा च ।
नेत् त्वा धृष्णुर्हरसा जर्हृषाणो दधृग् विधक्षन् परीङ्खयातै ॥ ५८ ॥
दण्डं हस्तादाददानो गतासोः सह श्रोत्रेण वर्चसा बलेन ।
अत्रैव त्वमिह वयं सुवीरा विश्वा मृधो अभिमातीर्जयेम ॥ ५९ ॥

धनुर्हस्तादाददानो मृतस्य सह क्षत्रेण वर्चसा बलेन ।
समागृभाय वसु भूरि पुष्टमर्वाङ् त्वमेह्युप जीवलोकम् ॥ ६० ॥

जो भोजन इसने बुड्ढे होते हुए भी किया था और उसके अलावा कुछ भी खाने योग्य नही है। इस श्मसान के अलावा और कोई इसके पास स्थान नही है। हे भूमे! इसे श्मसान को प्राप्त हुए जिस तरह से एक स्त्री अपने पति को कपड़े से आच्छादित करती है वैसे ही इसे आप ढकलो ॥ ५१ ॥

हे मृतक! सबो की मगलमयी माता पृथ्वी के कपडे से मैं तुझे आच्छादित करता हूँ। जिन्दा होने पर दान जो जो सुन्दर चीज पुरुष के पास होती है। वह सत्कार करने वालो पर हो। स्वधाकार अन्न जो पितरो के पास रहता है वह तेरे पास रहे ॥ ५२ ॥

हे अग्ने! हे सोम! पुण्य लोक के रास्ते के आप रचियता हो, आपने सुख देने वाले स्वर्ग लोक के निर्माता हो। सूर्य को जो लोक अपने मे रखता है, इस प्रेत का सरल रास्तो मे होकर उस लोक की प्राप्ति कराओ ॥ ५३ ॥

हे प्रेत! पशुओ को अहिंसित करने वाले पशुओ को पालने वाले तुझे यहाँ से और किसी स्थान पर ले जायँ। जीवो की रक्षा करने वाले तुझे पितरों को भेट करें। अग्नि देव तुझे व भगवान देवगणो को समर्पण करें ॥ ५४ ॥

जीवन के ऊपर भ्रमण करने वाले देवता आयु तेरी रक्षक हो। पूषा तेरे पूर्व की ओर जाने वाले मार्ग मे रक्षक हो। हे प्रेत! पुण्यात्माओ के रहने रूप नाक पृष्ठ मे तुझे सविता प्रतिष्ठित करें ॥ ५५ ॥

हे मृतक! भार ढोने वाले इन वृषभो को तेरे छोडे हुए

प्राणो को वहन करने के निमित्त मैं इनको जोडता हूँ। इस बैल गाडी द्वारा तू यम ग्रह को प्राप्त हो ॥ ५६ ॥

पहने हुए मुख्य कपड़ो का त्याग कर। जिन इच्छा पूर्तियो में तूने बांधवों को धन बाँटा था। अभीष्ट कर्म के परिणाम स्वरूप, वापी, कुआ, तालाब आदि को प्राप्त हो ॥ ५७ ॥

हे प्रेत ! इन्द्रियो से सम्बन्धित हिस्सों के अग्नि के दाह निवारक कवच को धारण कर। हे प्रेत ! स्थूल मेदमय हो जिससे यह अग्नि भस्म न करने की कामना करता हुआ तुझे इधर-उधर न गिरावे ॥ ५८ ॥

मरे ब्राह्मण के हाथ से बाँस के दन्ड पाता हुआ मैं कानो के तेज और उससे पाने के बल से सम्पन्न रहूँ। हे प्रेत ! तू चिता मे वास कर और पृथ्वी पर हम सुख से रहते हुए अपने दुश्मनो एव उनके कारनामों को दबावें ॥ ५९ ॥

मरे हुए क्षत्रीय के हाथ से धनुष को ग्रहण करता हुआ क्षात्र तेज से सम्पन्न रहूँ। हे धनुष ! बहुत से धन को हमे प्रदान करने के लिये लाता हुआ इस जीवित लोक मे ही हमारे समक्ष आ ॥ ६० ॥

सूक्त ३ (तीसरा अनुवाक)

(ऋषि—अथर्वा। देवता—यम, मन्त्रोक्ता, अग्नि, भूमि, इन्दु आप,। छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति, गायत्री, अनुष्टुप, जगती, शक्वरी, बृहती)

इयं नारी पतिलोकं वृणाना नि पद्यत उप त्वा मर्त्य प्रेतम्।
धर्मं पुराणमनुपालयन्ती तस्यै प्रजां द्रविणं चेह धेहि ॥ १ ॥
उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ ॥ २ ॥

अपश्य युव त नीयमानां जीवां मृतेभ्यः परिणीयमानाम् ।
अन्धेन यत् तमसा प्रावृतासीत् प्राक्तो अपाचीमनयं तदेनाम् ॥ ३ ॥
प्रजानत्यघ्न्ये जीवलोकं देवानां पन्थामनुसंचरन्ती ।
अयं ते गोपतिस्तं जुषस्व स्वर्गं लोकमधि रोहयैनम् ॥ ४ ॥
उप द्यामुप वेतसमवत्तरो नदीनाम् ।
अग्ने पित्तमपामसि ॥ ५ ॥
य त्वमग्ने समदहस्तमु निर्वापया पुनः ।
क्याम्बूरत्र रोहतु शाण्डदूर्वा व्यल्कशा ॥ ६ ॥
इद त एक पर ऊ त एक तृतीयेन् ज्योतिषा स विशस्व ।
संवेशने तन्वा चारुरेधि प्रियो देवानां परमे सधस्थे ॥ ७ ॥
उत्तिष्ठ प्रेहि प्र द्रवौकः कृणुष्व सलिले सधस्थे ।
तत्र त्वं पितृभिः संविदानः सं सोमेन मदस्व सं स्वधाभिः ॥ ८ ॥
प्र च्यवस्व तन्वं स भरस्व मा ते गात्रा वि हायि मो शरीरम् ।
मनो निविष्टमनुसंविशस्व यत्र भूमेर्जुषसे तत्र गच्छ ॥ ९ ॥
वर्चसा मां पितरः सोम्यासो अञ्जन्तु देवा मधुना घृतेन ।
चक्षुसे मा प्रतरं तारयन्तो जरसे मा जरदष्टिं वर्धन्तु ॥ १० ॥

धर्म का पालन करने के लिये तेरे दान आदि के फल की कामना करती हुई यह स्त्री तेरे पास आती है। उसी प्रकार का अनुसरण करने वाली इस औरत को पुनर्जन्म में भी तुम प्रजावती बनाना ॥ १ ॥

हे नारी ! तू मृतक पति के निकट बैठी है। अब तू इसके निकट से उठ। तू अपने पति से उत्पत्ती पुत्र पौत्रादि को प्राप्त कर चुकी है ॥ २ ॥

किशोर आयु वाली जिवित गौ को मरे हुए के पास से ले जाता हुआ देखता हूँ। यह गाय अज्ञानी है इसलिये मैं इसे मृतक के पास से दूर करके अपने निकट लाता हूँ ॥ ३ ॥

हे गौ ! तू भूलोक को अच्छी प्रकार से जानती है, यज्ञ के रास्ते को देखती हुई, क्षीर, दही आदि से सम्पन्न होकर आ। तू अपने इस गोरति मालिक का सेवन कर तथा यह मृतक स्वर्ग लोक को प्राप्त करें ॥ ४ ॥

जल का तत्व एव रक्षक अश सिवार एव बेंत मे है। हे अग्ने ! तुभी पानी का पित्त रूप है। मैं नदी बेंत की शाखा, घृत दूर्वा एव नदी के फेन आदि से तृप्त करता हूँ ॥ ५ ॥

हे अग्ने ! उसको सुखशाली करो जिसको तुमने भस्म किया था। दाह के स्थान पर क्याम्बू नाम की दूब उगे ॥ ६ ॥

हे प्रेत ! तुमको परलोक पहुँचाने वाली यह गार्हपत्य अग्नि नामक ज्योति है। दूसरी अन्वाहार्य पचन और तीसरी अ हवनीय नामक ज्योती हैं। तू आहवनीय से सुसगत हो और सस्तृत देव अग्नि सवेशन से शरीर की वृद्धि करें फिर इन्द्रादि देवगणों का प्रियपात्र बने ॥ ७ ॥

हे प्रेत ! इस जगह से उठ और चल जल्दी से चलकर के अन्तरिक्ष मे अपना घर बना और पूर्वजो से मिलकर सोम को पीकर प्रसन्न हो ॥ ८ ॥

हे प्रेत ! अपने शरीर के सारे अवयवों को इकट्ठा कर। तेरा कोई भी शरीर का अवयव यहाँ रह न जाय। तेरा मन जिस परलोक स्थान पर ध्यान हो वहाँ जा। तू जिस जगह को प्रेम करता है, तू उसी भूमि को प्राप्त कर ॥ ९ ॥

सोम पीने योग्य पूर्वज लोग मुझको ओजस्वी बनावें

सप र के देवता मुझको मोठा घी दें और लम्बे समय तक दृष्टि बनी रहे इसलिये मुझको रोगहोन तथा ताकतवान बनावें ॥ १० ॥

वर्चसा मां समनक्त्वग्निर्मेधां मे विष्णुर्न्यनक्त्वासन् ।
रयिं मे विश्वे नि यच्छन्तु देवाः स्योना मापः पवनैः पुनन्तु ॥ ११ ॥

मित्रावरुणा परि मामधातामादित्या मा स्वरवो वर्धयन्तु ।
वर्चो म इन्द्रो न्यनक्तु हस्तयोर्जरदष्टिं मा सविता कृणोतु ॥ १२ ॥

यो ममार प्रथमो मर्त्यानां यः प्रेयाय प्रथमो लोकमेतम् ।
वैवस्वत सगमन जनाना यम राजानं हविषा सपर्यत ॥ १३ ॥

परा यात पितर आ च यातायं वो यज्ञो मधुना समक्तः ।
दत्तो अस्मभ्य द्रविणेह भद्र रयिं च न सर्ववीर दधात ॥ १४ ॥

कण्व. कक्षीवान् पुरुमीढो अगस्त्य श्यावाश्वः सोभर्यर्चनानाः ।
विश्वामित्रोऽयं जमदग्निरत्रिरवन्तु न कश्यपो वामदेवः ॥ १५ ॥

विश्वामित्र जमदग्ने वसिष्ठ भरद्वाज गोतम वामदेव ।
शर्दिर्नो अत्रिरग्रभीन्नमोभिः सुशसासः पितरो मृडता नः ॥ १६ ॥

कस्ये मृजाना अति यन्ति रिप्रमायुर्दधानाः प्रतर नवीयः ।
आप्यायमाना प्रजया धनेनाध स्याम सुरभयो गृहेषु ॥ १७ ॥

अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतु रिहन्ति मधुनाभ्यञ्जते ।
सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षण हिरण्यपावाः पशुमासु गृह्णते ॥ १८ ॥

यद् वो मुद्र पितर सोम्य च तेनो सचध्वं स्वयशसो हि भूत ।

ते दर्वाण्॰ कवय आ शृणोत सुविदत्रा विदये
हूयमाना ।' १६ ॥
ये अत्रयो अङ्गिरसो नवग्वा इष्टावन्तो रातिषाचो दधाना ।
दक्षिणावन्त सुकृतो य उ स्थासद्यास्मिन् बर्हिषि
मादयध्वम् ॥ २० ॥

मुझे अग्नि देव ओजस्वी बनावें और विष्णु मुझको मेधावी बनावें। समार के देवता मुझको सुखी रखें और जल अपने पवित्र साधनो वायु अ श से मुझे पवित्र बनावें ॥ ११ ॥

दिन भर घमड करने वाले देवता सखा और राज्य का अभिमानी वरुण मुझे वस्त्र युक्त करें। आदित्य हमारी उन्नति करते हुए हमारे दुश्मनो का सहार करें। इन्द्र मुझे बल तथा सविता आयुष्मान करें ॥ १२ ॥

मृत धर्मी पुरुषो में जन्म लेने वाला राजा यम पूर्व ही मर गये और फिर वे लोकान्तर को गये। सूर्य पुत्र को जीव ही मिलते हैं। हे ऋत्विजो ! कर्मानुसार फल देने वाले यम की पूजा करो ॥ १३ ॥

हे पूर्वजो ! पितृयाग कर्म मे तृप्त हुए अब तुम अपनी जगह पर जाओ। हम जब आपको बुलावें तब आना। मधु घृत से हमने तुम्हारा यज्ञ किया है उसको स्वीकार करके हमारे घर कुशलता, क्षेमव, पुत्र, पौत्र, पशु आदि प्रदान करो ॥ १४ ॥

कण्व कक्षीवान, पुरुमीढ, अगस्त्य, श्यावाश्व, सौभरि, विश्वामित्र जमदग्नि, अत्रि कश्यप और वामदेव नाम के कई प्रकार के पूज्यनीय ऋषि हमारे रक्षक हों ॥ १५ ॥

हे विश्वामित्र, जमदग्नि, वसिष्ठ, भारद्वाज, गौतम, वामदेव नाम के महर्षियो ! हमें सुख सम्पन्न करो। महर्षि अत्रि

ने हमारे घर की रक्षा स्वीकृत की है। हे पूर्वजो ! हमारे प्रणाम आदि द्वारा तुम पूज्यनीय हो और तुम भी हमको सुख दो ॥ १६ ॥

बाँधव की मृत्यु के कष्ट को मुर्दघाट पर छोडते हुये और मृतक के छूने के पास से स्वतस होते हुए घर को गमन करते हैं। इस प्रकार मे हमारे कष्टो का निवारण हो गया है इसलिये पौत्र, पुत्र, पशु सुवर्ण, धन, सुन्दर सुगन्ध और चिर आयु से युक्त होवे ॥ १७ ॥

सोमयाग के आरम्भ मे हो यजमान के काजल लगाते है। समुद्र की बढोत्तरो मे अवसर पर उदित, रश्मियो के द्वारा देखने वाले, प्रकाशित चन्द्रमा को सोम रूप से अवस्थित होने पर ऋत्विज चार थालो मे सजाते हैं॥ १८ ॥

हे पितरो ! अपने सोमहि धन से युक्त हममे मिलो। क्यो कि अपने शुभ कार्यों से तुम यशशाली हो, हमारी इच्छा पूर्ण करो। हमारे यज्ञ मे आने पर हमारी आवाज को सुनो॥ १९ ॥

हे पितरो ! तुम अत्रि गोत्रीय व अगिरा गोत्र के हो। नौ मास तक सत्रयाग करने पर स्वर्ग पर चढे हो। दस महीने तक याग पूर्ण करने पर दक्षिणा प्रदायक पवित्रात्मा हो। इस लिये इस विस्तृत कुश पर बैठकर हमारी हवि से सतुष्टी को प्राप्त करो ॥ २० ॥

अधा यथा नः पितरः परास प्रत्नासो अग्न ऋतमाशशानाः ।
शूचीदयन् दीध्यत उक्थशासः क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरप व्रन् ॥ २१ ॥

सुकर्माण सुरुचो देवयन्तो अयो न देवा जनिमा धमन्तः ।

शचन्तो कनिं याभृघन्त इन्द्रमुर्धी गव्यां परिषद नो अक्रन् ॥ २२ ॥
आ यूथेव क्षुमति पश्वो अख्यद् देवाना जनिमान्त्युग्र ।
मर्तासश्चिदुवशीरकृप्रन् वृधे चिदर्य उपरस्यायो ॥ २३ ॥
अकर्म ते स्वपसो अभूम ऋतमवस्त्रन्नुषसो विभातीः ।
विश्व तद् भद्र यदवन्ति देवा बृहद् वदेम विदथे सुवीरा ॥ २४ ॥
इन्द्रो मा मरुत्वान् प्राच्या दिश पातु बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृत पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ २५ ॥
धाता मा निऋत्या दक्षिणाया दिश पातु बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृत पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ २६ ॥
अदितिर्मादित्यै प्रतीच्या दिश पातु बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृत पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ २७ ॥
सोमो मा विश्वैर्देवैरुदीच्या दिश पातु बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृत पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ २८ ॥
धर्ता ह त्वा धरुणो धारयाता ऊर्ध्वं भानु सविता द्यामिवोपरि ।
लोककृत पथिकृतो यजामहे ये देवाना हुतभागा इह स्थ ॥ २९ ॥

प्राच्यां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवीद्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ ३० ॥

हे अग्ने ! हम रे सर्वश्रेष्ठ पूर्वज जिस प्रकार स्वर्ग को प्राप्त कर चुके हैं एवं उक्थ के गायक पूर्वक अपने ओज से रात के अंधेरे को दूर करते हैं तथा उषाओं को दीप्ति प्रदान करते हैं ॥ २१ ॥

काम्य देव सुन्दर ओज एवं सुकर्म वाले, अपने जीवन को तप से चमकाने वाले, देवत्व के प्रापक गृहपत्य को प्रदीप्त करते हुए इन्द्र को प्रार्थनाओं से प्रवृद्ध करते हुए, गायों को ये पूर्वज हमारे यहाँ पर रहने वाली बनावें ॥ २२ ॥

हे अग्ने ! आपके द्वारा यह यजमान देवताओं के प्रादुर्भाव को देखें। तुम्हारी कृपा से मनुष्य उर्वशी और परियों को पाने वाला हो यह देवत्व प्राप्त मनुष्य तुम्हारी कृपा से गर्भाशय में उत्पत्ति होने वाले मनुष्य की वृद्धि करने वाला हो ॥ २३ ॥

हे अग्ने ! हमतो आपके दास हैं और आप हमारे पोषक हो। अतः हम सुकर्मी हों। हमारे कृत्यों के फल को ये उषाकाल सत्य करें। हमारे लिये देवताओं द्वारा शुभ हो। पुत्रादि से हम सम्पन्न रहते हुये यज्ञ मे विस्तृत स्तोत्रों को बोलें ॥ २४ ॥

संस्कार करने वाले मुझको मरुद्गण सहित इन्द्र पूर्व की दिशा में भयों से बचावे। दानी की दी गई पृथ्वी जैसे उपभोग्य स्वर्ग को बचाती है वैसे ही वह तेरी रक्षा करे। हम उनकी हवि से पूजा करते हैं जो स्वर्ग के मार्ग को दिखाती है तथा अपने

पुण्य फलों से मार्ग प्रदर्शित करते हैं। हे देव गणो ! तुम इस यज्ञ के हव भाग होओ ॥ २५ ॥

दक्षिण दिशा के धाता देव पाप देवी निऋति के डर से मेरे को बचावें। दानी की जिस प्रकार से दी गई भूमि भिखारी के लेने योग्य स्वर्ग का पालन करती है कैसे ही वह तुझे बचावे। वे देवता हमारे पूज्यनीय हैं जो कि स्वर्गादि संसार के देवताओं को हम हवि दे चुके हैं॥ २६ ॥

पश्चिम दिशा से देवमाता अदिति डर से मेरी रक्षा करे। दानी की जिस प्रकार दी गई पृथ्वी भिखारी के लिए स्वर्ग का पालन करती है वैसे ही वह तेरा हालन करे। वे देवगण हमारे पूज्य हैं जो स्वर्ग के देने वाले देवताओं को हवि दी जा चुकी है ॥ २७ ॥

सोम मय देवताओं के उत्तर दिशा से मेरी रक्षा करें। दानी की दी गई पृथ्वी जैसे भिखारी के लिए स्वर्ग का पोषण करती है ठीक वैसे ही वह तेरी रक्षा करे। उन देवगणों को हम हवि दे चुके हैं जो स्वर्गादि लोकों के देने वाले हैं वे देवगण हमारे पूज्यनीय हैं ॥ २८ ॥

हे प्रेत ! धरुन देव तुम संसार के धारण करने वाले हो अतः तुम ऊर्ध्व दिशा की ओर जाने वाली पुरुष को धारण करो। दानी की दी गई भूमि जिस प्रकार भिखारी के लिये स्वर्ग का पोषण करती है वैसे ही वह तेरी रक्षा करे। वे देवगण हमारे पूज्य हैं जिनको कि हम हवि दे चुके हैं जो स्वर्गादि संसार के दाता हैं ॥ २९ ॥

हे प्रेत ! दाह की जगह से पूर्व दिशा में स्थित मण्डल से ढका हुआ मैं तुमको पितरों की शान्त पर स्वधा में विद्यमान

करता हूँ। प्रतिज्ञा करके दी गई पृथ्वी भिखारी के लिये स्वर्ग की रक्षा करती है वैसे ही वह तुझे बचाने वे देवगण हमारे पूज्य हैं ॥ ३० ॥

दक्षिणायां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता-पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां इह स्थ ॥ ३१ ॥

प्रतीच्यां त्वा दिशि पुरा संवृत. स्वधायामा दधामि बाहुच्युता-पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृत पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ ३२ ॥

उदीच्यां त्वा दिशि पुरा सवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता-पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानांहुतभागा इह स्थ ॥ ३३ ॥

ध्रुवायां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि दाहुच्युता-पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानांहुतभागा इह स्थ ॥ ३४ ॥

ऊर्ध्वायां त्वा दिशि पुरा सवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता-पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृत पृथिकृतो यजामहे ये देवाना हुतभागा इह स्थ ॥ ३५ ॥

धर्तासि धरुणोऽसि वंसगोऽसि ॥ ३६ ॥

उदपूरसि मधुपूरसि वातपूरसि ॥ ३७ ॥

इतश्च मामुतश्चायता यमेइव यतमाने यदैतम् ।

प्र वां भरन् मानुषा देवयन्त आ सीदत स्वमु लोक विदाने ॥ ३८ ॥
स्वामस्ये भवतमिन्दवे नो युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभि ।
वि श्लोक एति पथ्येव सूरि शृण्वन्तु विश्वे अमृतास एतत् ॥ ३९ ॥
त्रीणि पदानि रुपो अन्वराहच्चतुष्पदीमन्वैद् व्रतेन ।
अक्षरेण प्रति मिमीते अर्कमृतस्य नाभावमि स पुनाति ॥ ४० ॥

हे प्रेत ! दाह कर्म स्थान से दक्षिण दिशा मे स्थित कम्बल को ओढे हुए मैं तुझे पूर्वजो को सतुष्ट करने वाली स्वधा में वर्तमान रखता है। दानी की दी गई पृथ्वी भिखारी की स्वग से रक्षा करती है उसी प्रकार वह तेरे का बचावे स्वर्ग लोक को दिलाने वाले देवों की हम पूजा करते हैं और उन्ही को हम हाव दे चुके हैं ॥ ३१ ॥

हे प्रेत ! दाह कर्म स्थान से पश्चिम दिशा में स्थित कम्बल को ओढे हुए मैं तुझे पूर्वजो को सतुष्ट करने वाली स्वधा में रखता हूँ। दानी की दी गई पृथ्वी जैसे दाना भिखारी के लिये स्वर्ग की रक्षा करता है वैसे ही यह भूमि तेरी रक्षा करे। जिन स्वर्गादि लोकों को प्राप्त कराने वालो को हम हविभाग भेंट कर चुके हैं वे देवता हमारे पूज्य हैं ॥ ३२ ॥

हे प्रेत ! दाह कर्म के स्थान से उत्तर दिशा की ओर स्थित कम्बल को ओढे हुए मैं पूर्वजो को सतुष्ट करने वाली स्वधा में स्थान देता हूँ। दानी की दी गई पृथ्वी जैसे दानी भिखारी के लिए स्वर्ग के लिए रक्षा करते हैं। उसी प्रकार यह पृथ्वी तेरी

रक्षा करे। स्वर्ग लोकों को प्राप्त कराने वाले देव गणों को हम हविभाग दे चुके है वे देवता हमारे पूज्यनीय हैं ॥ ३३ ॥

हे प्रेत ! दाह कर्म के स्थान से ध्रुव दिशा में स्थित में कम्बल को ओढे हुए तेरे पूर्वजों को संतुष्ट करने वाली स्वधा में रखता हूँ। दानी की दी गई पृथ्वी जिस प्रकार से दानी भिखारी के लिये स्वर्ग का रक्षा करती है। वैसे ही वह तेरी रक्षा करने में समर्थ हो। स्वर्गादि लोको को कराने वाले जिन देवताओ को हम हविर्भाग दे चुके है वे देवगण हमारे पूज्य हैं ॥ ३४ ॥

हे प्रत ! दाह कर्म के स्थान से उर्ध्व दिशा में स्थित कम्बल से आच्छादित हुए तुझ पूर्वजो को सतुष्ट कराने वाली स्वधा में उपस्थित करता हूँ। जिस प्रकार से दानी की दी गई भूमि भिखारी के लिये स्वर्ग की रक्षा करती है वैसे ही वह तेरी रक्षा करे। जिन स्वर्ग अदि लोकों को प्राप्त कराने वाले उन देवगणों को हम हविर्भाग दे चुके हैं वे देवगण हमारे पूज्य हैं ॥ ३५ ॥

हे अग्ने ! धरुण तुम धारण करने वाले हो। वरणीय गति एवं सुवर्ण के पूरक और प्राणात्मक पवन के भी पूरक हो ॥ ३६-३७ ॥

हविर्धान जिनमें होता है, द्यावा भूमि, भूलोक और स्वर्ग में होने वाले डरो से तेरी रक्षा करें। हे द्यावा पृथ्वी यमल संतानों के समान तुम बराबर परिश्रम वाले होकर तुम ससार के पिता हो। देवगणों की इच्छा वाले व्यक्ति तुमको जब हवि दें तो तब तुम अपने स्थान को पहचानती हुई उस अधितिष्ठत होओ॥ ३८ ॥

हे हविर्धाने ! धर्मपथ गामी विद्वान जैसे मन चाही प्राप्त करता है उसी प्रकार से मैं तुमको पुराने स्तोत्रों से प्रणाम करता हूँ। वे स्तोत्र तुम्हें मिलें। हमारे सोम के लिए तुम स्थिर होओ। हमारे इस स्तोत्र को अविनाशी देवता सुनें ॥ ३६ ॥

इस स्कार द्वारा मोह का प्रेमी गौ को ध्यानाकर्षण रखता हुआ इन तीनों द्यु लोकों को प्राप्त करता है। स्वर्गादि का पुण्य फल यह परिछेदक देह के छोडने पर प्राप्त कर रहा है ॥ ४० ॥

देवेभ्यः कमवृणीत मृत्युं प्रजायै किममृतं नावृणीत ।
बृहस्पतिर्यज्ञमतनुत ऋषि प्रिया यमस्तन्वमा रिरेच ॥ ४१ ॥

त्वमग्न ईडितो जातवेदोऽवाड्ढव्यानि सुरभीणि कृत्वा ।
प्रादाः पितृभ्यः स्व धया ते अक्षन्नद्धि त्व देव प्रयता हवींषि ॥ ४२ ॥

आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय ।
पुत्रेभ्य पितरस्तस्य वस्व. प्र यच्छत त इहोर्जं दधात ॥ ४३ ॥

अग्निष्वात्ता पितर एह गच्छत सद सदः सदत सुप्रणीतय ।
अत्तो हवींषि प्रयतानि बर्हिषि रयिं च नः सर्ववीर दधात ॥ ४४ ॥

उपहूता न पितः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु ।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥ ४५ ॥

ये नः पितु पितरो ये पितामहा अनूजहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः ।

तेभिर्यमः सरराणो हवींष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु ॥ ४६ ॥

ये मातृपुर्देवत्रा जेहमाना होत्राविद स्तोमतष्टासो अर्कः ।
आग्ने याहि सहस्रं देववन्दैः सत्यैः
कविभिऋषिभिर्घर्मसद्भिः ॥ ४७ ॥

ये सत्यासो हविरदो हविष्पा इन्द्रेण देवैः सरथं तुरेण ।
आग्ने याहि सुविदत्रेभिरर्वाङ् परैः पूर्वैं
ऋषिभिर्घर्मसद्भिः ॥ ४८ ॥

उप सर्प मातर भूमिमेतामुरुव्यचसं पृथिवी सुशेवाम् ।
उर्णम्रदा पृथिवी दक्षिणावत एषा त्वा पातु प्रपथे
पुरस्तात् ॥ ४६ ॥

उच्छ्वस्व पृथिवि मा नि बाधथाः सूपायनास्मै भव सूपसर्पणा ।
माता पुत्र यथा सिचाभ्ये न भूम ऊर्णहि ॥ ५० ॥

ब्रह्मा ने सृष्टि प्रारम्भ में इन्द्र आदि देवगणो के लिये किस तरह की मृत्यु का वरण किया । वृहस्पति के प्रिय मानव का देहावसान कर दिया देहावसान करने वाले सूर्य-पुत्र यम थे । ४१ ॥

हे अग्ने ! तुम पैदा होने वाले जीवो के जानकार हो । तुम हमारी 'प्रार्थना करो एव उनको हवि एकत्रित करो । स्वधा सहित तुम पूर्वज । देवगणो कव्य दिया है । हमारी हवियो का तुम सेवन करो क्योकि जिसका कि पितरो ने भक्षण किया था ॥ ४२ ॥

हे पितरो ! तुम लाल रग वाली माताओ की गोदी में बैठे हो । हविदाता यजमान को तुम मरण धर्म वालो को धन दो । हमे नरक और पुन्नामक वाले पुत्रो के लिये धन एवं शक्तिवान तथा अन्न दो ॥ ४३ ॥

हे पितरो ! यज्ञ के स्थान पर बैठो एवं हवि सेवन करो। हवियो से तृप्त होकर तुम हमारे लिये वीर पुत्रोयुक्त धन दें ॥ ४४ ॥

सोम के नायक पूर्वजों को हम अपने पास बुलाते हैं। हवियो पर आकर प्रार्थना सुनो और हमें स्वीकार करें। आन्तरिक एव बाहरिक फल देवें ॥ ४५ ॥

हमारे विद्वान पितामह, पूर्वजों के साथ रहते हुए सोम का सेवन करने वाले यम की कामना करें। अपनी भावनानकूल हमारी हवियो का भक्षण करें ॥ ४६ ॥

प्यास को महसूस करते हुए हमारे पूर्वज जिन देवगणों की प्रार्थना कर रहे हैं, सत्य फल देने वाले, पितरो के साथ सोमयाग में बैठने वाले हे अग्ने ! हमारे पास इस असीमित धन को लाओ ॥ ४७ ॥

सत्य बोलने वाला, हवनादि करने वाला, सोमपायी, देवगणो के अनुचर, मेधावी, यज्ञ मे स्थिर रहने वाले पितामह पिता और पूर्वजों मे सम्पन्न हे अग्ने ! हमारे समक्ष आओ ॥ ४८ ॥

हे प्रेत ! पृथ्वी पर तू माँ के समान सुख देने वाले आ। यज्ञ दक्षिणादि जैसे पुण्य कार्यों में तू ऊन के समान मुलायम रहे एव पहले के मार्ग आरम्भ यह तुझ बचावे ॥ ४९ ॥

हे भूमि ! तुम्हें कर्कस न रहना चाहिये। और इस व्यक्ति के कार्य में रुकावट मत गेरो। आपके पास आनन्द से रहे, जिस प्रकार एक माँ अपनी सन्तान को वस्त्र से आच्छादित करती उसी प्रकार तुम भी इसे ढक लो ॥ ५० ॥

उच्छ्वञ्चमाना पृथिवी सु तिष्ठतु सहस्रं मित उप हि श्रयन्ताम् ।

-

ते गृहासो घृतश्चुतः स्योना विश्वाहास्मै शरणाः सन्त्वत्र ॥ ५१ ॥
उत्ते स्तभ्नामि पृथिवीं त्वत् परीमं लोग निदधन्मो अहं रिषम् ।
एतां स्थूणां पितरो धारयन्ति ते तत्र यमः सादना ते कृणोतु ॥ ५२ ॥
इममग्ने चमसं मा वि जिह्वरः प्रियो देवानामुत सोम्यानाम् ।
अयं यश्चमसो देवपानस्तस्मिन् देवा अमृता मादयन्ताम् ॥ ५३ ॥
अथर्वा पूर्णं चमसं यमिन्द्रायाबिभर्वाजिनीवते ।
तस्मिन् कृणोति सुकृतस्य भक्षं तस्मिन्निन्दुः पवते विश्वदानीम् ॥ ५४ ॥
यत् ते कृष्णः शकुन आतुतोद पिपीलः सर्प उत वा श्वापदः ।
अग्निष्टद् विश्वादगदं कृणोतु सोमश्च यो ब्राह्मणाँ आविवेश ॥ ५५ ॥
पयस्वतीरोषधयः पयस्वन्मामकं पयः ।
अपां पयसो यत् पयस्तेन मा सह शुम्भतु ॥ ५६ ॥
इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं स्पृशन्ताम् ।
अनश्रवो अनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे ॥ ५७ ॥
सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन् ।
हित्वावद्यं पुनरस्तमेहि सं गच्छतां तन्वा सुवर्चाः ॥ ५८ ॥
ये नः पितुः पितरो ये पितामहा य आविविशुरुर्वन्तरिक्षम् ।
तेभ्यः स्वराडसुनीतिर्नो अद्य यथावशं तन्वः कल्पयाति ॥ ५९ ॥
शं ते नीहारो भवतु शं ते प्रुष्वाव शीयताम् ।

शोतिके शीतकावति ह्लादिकेह्लादिकावति ।
मण्डूक्यप्सु शं भुव इमं स्वग्निं शमय ॥ ६० ॥

सुख पूर्वक यह पृथ्वी स्थिर रहे, मुर्दघाट में औषधियाँ तेरे निकट उगें। वे औषधियाँ इस शव के लिये घी को बहाती हुई उसके लिये घर तुल्य हों तथा इसकी मुर्दघाट पर रक्षा करें ॥ ५१ ॥

हे मृतक ! इस पृथ्वी को तेरे कारण से मैं धारण करता हूँ। चहुँ ओर की पृथ्वी को तेरे समक्ष उपस्थित करता हूँ और इस कर्म से मैं अहिंसित ही रहूँ। पितृदेव इस उठई गई पृथ्वी पर गृह बनाने के निमित्त स्थूणा धारण करें और यम तेरा घर बनावें ॥ ५२ ॥

हे अग्ने ! इस इडा वर्तन को तिरछा न कर। देवगणों को यह चमस पूर्वजो का अत्याधिक प्रिय है क्यो कि यह सामादि को भक्षण कराने वाला है। सारे देवगण इस चमस से ही तृप्ति को प्राप्त हो ॥ ५३ ॥

हवि से पूर्ण चमस को इन्द्र की वजह से धारण किया था जो कि अथर्वा हैं। शेष हवि का जो अनेक प्रकार से सजाई गई है उसी चमस से ऋत्विज भक्षण करते हैं और उसी चमस में सदैव अमृत प्रवाहित होता है ॥ ५४ ॥

हे पुरुष ! किसी काले जहरीले पक्षी जैसे कौआ आदि ने अपनी विषैली दाढ से तेरे शरीर के हिस्से को काट लिया है, सर्वभक्षी अग्नि उसे रोगहीन करे। यह रस ब्राह्मण, ऋत्विज, यजमान आदि मे व्याप्त है। उसी अङ्ग को सोम निरोग करें ॥ ५५ ॥

तत्व वाली औषधियाँ हो, ताकत वाला हो। पानी के

तत्व का भी निचोड़ है । वरुण मुझे उन सब से पवित्र करें । ५६ ॥

इस प्रेत के बांधवो की औरतें राण न हो जाय। स्वामियो मे युक्त रहती हुई घी का काजल लगावें। सुन्दर जेवरातो को पहनने वाली वे स्त्रिया निरोग, अश्रुहीन तथा सतानवती हो ॥ ५७ ॥

हे मृतक ! पूर्वजो मे पिण्डी आदि संस्कार के कार्यो से फल रहे। और यमलक मे भी तू अच्छे कार्यो से स्वर्ग की प्राप्ति कर ॥ ५८ ॥

हमारे पितामह, प्रपितामह और हमारे इस गोत्र में उत्पन्न होने वाले और पुरुष जिन्होने अन्तरिक्ष मे प्रवेश किया तो उस समय असुनीति देवता उनके शरीरों के रचियता हुए ॥ ५९ ॥

हे प्रेत ! तू अत्यन्त सुखशाली हो, सुख करता हुआ घन वृष्टि करे। हे ओषधिमती पृथ्वी ! मण्डूकपणी द्वारा तू इस दग्ध व्यक्ति को सुख प्रदान कर और जलाने वाली अग्नि को शान्त करे ॥ ६० ॥

विवस्वान नो अभय कृणोतु यः सुत्रामा जीरदानुः सुदानुः ।
इहेमे वीरा बहवो भवन्तु गोमदश्ववन्मय्स्तु पुष्टम् ॥ ६१ ॥

विवस्वान नो अमृतत्वे दधातु परैतु मृत्युरमृतं न ऐतु ।
इमान रक्षातु पुरुषाना जरिम्णो मोष्वेषामसवो यम गुः ॥ ६२ ॥

यो दध्रे अन्तरिक्षे न मह्ना पितृणां कविः प्रमतिर्मतीनाम् ।
तमर्चत विश्वमित्रा हविर्भिः स नो यमः प्रतरं जीव से धात् ॥ ६३ ॥

आ रोहत दि मुत्तमामृपयो मा विभीतन ।
सोमपाः सोमपायिनि इदं यः क्रियते हवि रगन्म
ज्योतिरुत्तमम् ॥ ६४ ॥
प्र केतना बृहता मात्यग्निरा रोदसी वृषमो रोरवीति ।
दिवश्चिदन्तादुपमामुदानडपामुपस्थे महिषो व वर्ध ॥ ६५ ॥
नाके सुपर्णमुप यत् पतन्त हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत् त्वा ।
हिरण्यपक्ष वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुन भुरण्युम् ॥ ६६ ॥
इन्द्रं क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा
ज्योतिरशीमहि ॥ ६७ ॥
अपूपापिहितान् कुम्भान् यांस्ते देवा अधारयन् ।
ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुतः ॥ ६८ ॥
यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राः स्वधावतीः ।
तास्ते सन्तु विभ्वीः प्रभ्वीस्तास्ते यमो राजानु
मन्यताम् ॥ ६९ ॥
पुनर्देहि वनस्पते य एष निहितस्त्वयि ।
यथा यमस्य सा न आसातं विदथा वदन् ॥ ७० ॥
आ रभस्व जातवेदस्तेजस्वद्धरो अस्तु ते ।
शरीरमस्य स दहाथैन धेहि सुकृताम् लोके ॥ ७१ ॥
ये ते पूर्वे परागता अपरे पितरश्च ये ।
तेभ्यो घृतस्य कुल्यैतु शतधारा व्युन्दती ॥ ७२ ॥
एतदा रोह वय उन्मृजान स्वा इह बृहदु दीदयन्ते ।
अभि प्रेहि मध्यतो माप हास्था. पितृणां लोकं प्रथमो यो
अत्र ॥ ७३ ॥

सूर्य, जीवदानु, सुदानु एवं सुत्रामा देवता हमें दर से

मुक्त करें। हमारे वीर्य से पैदा होने वाले अनेक वीर गवादि पशु इस लोक मे हो ॥ ६१ ॥

हमको सूर्य अमरत्व दें, मृत्यु हार जाय, इन नाति नातिनियो की अमृतत्व बुढापे तक रक्षा करे। और उनमें से कोई भी मरे नही ॥ ६२ ॥

श्रेष्ठ बुद्धि वाले ! ओजस्वी मन वाले पूर्वजो को अन्तरिक्ष मे धारण किया जाता है। हे ब्राह्मणो ! सारे जीव-लोक के तुम सखा हो। हव्यादि से ऐसे यमको पूजो। हमारे जीवन को वह यम पुष्टवान करें ॥ ६३ ॥

हे ऋषियो ! तुम मन्त्रो के देखने वाले हो अपने सुकर्मों द्वारा स्वर्ग पर आरूढ़ हो। तुम सोमयागी और सोमपायी हो, स्वर्ग पर आरूढ़ है जो बस उन्ही के लिये हवि दी जाती है आपकी कृपा से हम भी शत आयु हो ॥ ६४ ॥

ये अपनी ध्वजाओ से चमकते हैं यह कामनाओ की वृष्टि करने वाले है। आकाश और भूमि की तरफ से लक्ष्य करते हुए यह शब्दवत् होते है। द्युलोक से ऊपर यह रमे हैं जलो के स्थान अन्तरिक्ष मे भी यशशालि हैं ॥ ६५ ॥

हे प्रेत ! तुमको सुन्दर गति से स्वर्ग की ओर चलते हुए देखते है। सुनहरी पख वाले वरुण दूत यम के घर में पक्षी की तरह एवं भरण करने वाले की शक्ल मे जब हम तुम्हें देखते हैं ॥ ६६ ॥

हे इन्द्र ! अपनी सतानो को जब पितर लोग मनचाही चीज प्रदान करते हैं। यज्ञादि इच्छित वस्तु वैसी ही हमे दो। हम चिरायु प्राप्त करके इस ससार के सुखो को भागें तथा इस संसार यात्रा मे हमे अभीष्ट प्रदान करें ॥ ६७ ॥

हे प्रेत ! जिन घड़ों को देवगणों ने घी, शहदादि से सम्पन्न तेरे निमित्त रखा है ॥ ६८ ॥

हे प्रेत ! मैं तुम्हें तिल सहित स्वधा वाली जो की खीलों को समर्पित करता हूँ, वे तुझ ऐश्वर्य एवं शान्त दें और खीलों को खाने के लिये यम तुझे माने की आज्ञा प्रदान करें ॥ ६९ ॥

हे वनस्पते ! हड्डियों के ढाँचे के समान तेरे अन्दर जो पुरुष स्थापित किया गया था, मुझे उसको लौटाओ । यम के घर मे वह यज्ञ के कर्म करता हुआ उपस्थित हो ॥ ७० ॥

हे अग्ने ! तुम्हारी दहनशील ऊर्मियां रसहरण शक्ति से सम्पन्न हो, जलाने को तुम तैयार रहो । इस शव को भली भांति जला करके यह जो पुण्यात्मा का पुण्य लोक है वहां पर स्वर्ग में स्थान ग्रहण करें ॥ ७१ ॥

जो तेरे पूर्वज हैं वे वहाँ सिधार चुके हैं या तेरे से बाद मे पैदा होने वाले व्यक्ति वहाँ पर गये या वे गये हैं जो कि तुझसे पहले उत्पन्न हुए थे । उनके लिये घी की नदियाँ बहाओ। वह हजारों धारों से तुझे सींचे ॥ ७२ ॥

हे मृतक ! अपने ही द्वारा पवित्र होता हुआ और इस देह को त्याग कर तू व्योम मे चढ । जाति के लोग समृद्ध होकर इसी लोक में वास करें। भाईयों के दर्मयान से दूसरे ससार की ओर बढता हुआ ऊँचे को चढ । आकाश में स्थित पूर्वजो के मुख्य लोक का त्याग मत कर ॥ ७३ ॥

सूक्त ४ (चौथा अनुवाक)

(ऋषि अथर्वा । देवता—यम, मन्त्रोक्ता, पितर, अग्नि, चन्द्रमा, छन्द—त्रिष्टुप्, जगती शक्वरी, बृहती, अनुष्टुप गायत्री, पंक्ति, उष्णिक)

आ रोहत जनित्रीं जातवेदसः पितृयाणैः सं व आ रोहयामि ।
अवाड्ढव्येषितो हव्यवाह ईजानं युक्ताः सुकृतां धत्त
लोके ॥ १ ॥
देवा यज्ञमृतवः कल्पयन्ति हविः पुरोडाशं स्रुचो यज्ञायुधानि ।
तेभिर्याहि पथिभिर्देवयानैर्यैरीजानाः स्वर्गं यन्ति लोकम् ॥ २ ॥
ऋतस्य पन्थामनु पश्य साध्वङ्गिरसः सुकृतो येन यन्ति ।
तेभिर्याहि पथिभिः स्वर्गं यत्रादित्या मधु भक्षयन्ति तृतीये नाके
अधि वि श्रयस्व ॥ ३ ॥
त्रयः सुपर्णा उपरस्य मायू नाकस्य पृष्ठे अधि विष्टपि श्रिताः ।
स्वर्गा लोका अमृतेन विष्ठा इषमूर्जं यजमानाय दुह्राम् ॥ ४ ॥
जुहूर्दाधार द्यामुपभृदन्तरिक्षं ध्रुवादाधार पृथिवीं प्रतिष्ठाम् ।
प्रतीमां लोका घृतपृष्ठाः स्वर्गाः कामंकामं यजमानाय
दुह्राम् ॥ ५ ॥
ध्रुव आ रोह पृथिवीं विश्वभोजसमन्तरिक्षमुपभृदा क्रमस्व ।
जुहु द्यां गच्छ यजमानेन साकं स्रुवेण वत्सेन दिशः प्रपीनाः सर्वा
धुक्ष्वाहृणीयमानः ॥ ६ ॥
तीर्थैस्तरन्ति प्रवतो महीरिति यज्ञकृतः सुकृतो येन यन्ति ।
अत्रादधुर्यजमानाय लोकं दिशो भूतानि यदकल्पयन्त ॥ ७ ॥
अङ्गिरसामयनं पूर्वो अग्निरादित्यानामयनं गार्हपत्यो
दक्षिणानामयनं दक्षिणाग्निः ।
महिमानमग्नेर्विहितस्य ब्रह्मणा समङ्गः सर्व उप याहि
शग्मः ॥ ८ ॥
पूर्वो अग्निष्ट्वा तपतु शं पुरस्ताच्छं पश्चात् तपतु गार्हपत्यः ।
दक्षिणाग्निष्टे तपतु शर्म वर्मोत्तरतो मध्यतो अन्तरिक्षाद् दिशोदिशो
अग्ने परि पाहि घोरात् ॥ ९ ॥

यूयमग्ने शंतमाभिस्तनूभिरीजानमभि लोकं स्वर्गम् ।
अश्वा भूत्वा पृष्ठिवाहो वहाथ यत्र देवैः सधमादं
मदन्ति ॥ १० ॥

हे गार्हपत्यादि अग्नियो ! पैदा होने वालो के तुम जानकार हो । अपनी उत्पादक अग्नियो मे प्रवेश करो । पितृयानो द्वारा मैं भी तुझ अरणियो मे चढ़ाता हूँ। देवताओं के निमित्त हव्यवाहक अग्नि ने हव्य वहन किया । हे अग्नियो ! जिस यजमान ने तेरे लिये यज्ञ किया था, उसे परदेश में देहान्त हुए यजमान को पुण्यलोक में बैठाओ ॥ १ ॥

पूज्यनीय इन्द्रादि देवता ऋतु यज्ञ की इच्छा रखते हैं। पात्रादि आयुध भी एवं घी आदि हवन की सामिग्री यज्ञ की चाहना रखते हैं। हे अहिताग्ने ! देवयान मार्ग से तुम जाओ ॥ २ ॥

हे प्रेत ! रूप मार्ग को भलीभांति जानता हुआ सत्य के कारण महर्षि अगिरस आदि के स्वर्ग को जा। अदिति पुत्र देवता जिस मार्ग मे अमृत को खाते हैं उस सुख के तीसरे लोक मे रह ।। ३ ॥

स्वर्ग में जाने वाले ये अग्नि वायु और सूर्य हैं। पर्जन्य बादल और पवन शब्द कलख करते हैं। स्वर्ग से ऊपर विष्टम मे ये लोग वास करते हैं। कर्मानुसार फल देने वाले प्रेत के लिये यह मनचाही अन्न एव रसो को देने वाला है ॥ ४ ॥

होम पात्र जुहू ने अन्तरिक्ष को ताकतवान बनाया, अन्तरिक्ष को उपभृत पात्र ने धारण किया और ध्रुवा पात्र ने भूमि का पोषण, ध्रुवा की पाली हुई पृथ्वी को ध्यान मे रखते हुए ऊर्ध्व स्वर्ग लोक यजमान को मनचाही फल देवें ॥ ५ ॥

हे ध्रुवा नामक स्रुक ! पृथ्वी के ऊपर आरूढ़ रहे तथा यजमान भी पृथ्वी पर अधितिष्ठत रहें। हे उपभ्रत पात्र ! तू स्वर्ग पर चढ। हे जुहू ! द्युलोक को तू यजमान के साथ जा और अभीष्ट फलों को सारी दिशाओं से लाओ । ६ ॥

पुण्य कर्म के द्वारा बड़े बड़े कष्टों से पार होते हैं। ऐसा सोचने वाले यज्ञ का कार्य करते हुए जिस मार्ग से व्यक्ति स्वग को जाते हैं, उस रास्ते का अन्वेषण करते हुए यज्ञ करने वाले इस यजमान को उस रास्ते को खोलें ॥ ७ ॥

अहिताग्नि को चिता में उपस्थित गार्हपत्यादि जलाए प्रविष्ट होती हैं वे इच्छानुकूल फल दे । आह्वानीय ज्वाला पूर्व दिशि मे स्थित है तथा सत्रात्मक कर्म अंगिरसों का है। अयन नामक गार्हपत्याग्नि आदित्यो का सत्रयाग है। यक्षायन नामक सत्र दक्षिणाग्नि है। अनेक प्रकार के नामो वाली विभूति को हे प्रेत ! सुख को प्राप्त करता हुआ पूर्ण अवयव वाला हो ॥ ८ ॥

भस्म होते हुए हे प्रेत ! पूर्व में चमकते हुए तुझे, सुख को प्रदान करती हुई अग्नि तुझे भस्म करें, दक्षिणाग्नि तुझे सुख से भस्म करें। हे अग्ने ! क्रूर एव हिंसको की चहुँ दिशा म बचाओ ॥ ६ ॥

हे अग्ने ! तुम अपने आधान कर्ता आराधक यजमान को अलग-अलग स्थानो को प्राप्त हुए अपने महान कल्याण देने वाले साधनों से स्वग लोक में पहुँचाओ उस ससार मे हम गोत्र वालो सहित देवो के सहित रहते हुए खुश रहें ॥ १० ॥

शमग्ने पश्चात् तप शं पुरस्ताच्छमुत्तराच्छमधराद् तपैनम् ।
एकस्त्रेधा विहितो जातवेदः सम्यगेन धेहि सुकृतामु लोके ॥ ११ ।

शमग्नयः समिद्धा आ रभन्तां प्राजापत्यं मेध्यं जातवेदसः ।
शृतं कृण्वन्त इह माव चिक्षिपन् ॥ १२ ॥
यज्ञ एति विततः कल्पमान ईजानमभि लोकं स्वर्गम् ।
तमग्नय सर्वहुतं जुषन्तां प्राजापत्यं मेध्यं जातवेदसः ।
शृतं कृण्वन्त इह माव चिक्षिपन् ॥ १३ ॥
ईजानश्चितमारुक्षदग्निं नाकस्य पृष्ठाद् दिवमुत्पतिष्यन् ।
तस्मै प्र भाति नभसो ज्योतिषीमान्त्स्वर्गः पन्थाः सुकृते देवयानः ॥ १४ ॥
अग्निर्होताध्वर्युष्टे बृहस्पतिरिन्द्रो ब्रह्मा दक्षिणतस्ते अस्तु ।
हुतोऽयं संस्थितो यज्ञ एति यत्र पूर्वमयनं हुतानाम् ॥ १५ ॥
अपूपवान् क्षीरवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ १६ ॥
अपूपवान् दधिवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ १७ ॥
अपूपवान् द्रप्सवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ १८ ॥
अपूपवान् घृतवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ १९ ॥
अपूपवान् मांसवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ २० ॥

हे अग्नि ! चहुँ दिशाओ मे इसे आनन्द पूर्वक भस्म करो। यजमान ने तुम्हे एक के तान हिस्सो म विभाजित करो । यज्ञ कर्म वाले ऐसे पुण्यात्मा को स्वर्गलोक मे वठाओ ॥ ११ ॥

इस प्रेत को अग्नियाँ प्रदीप्त होकर इसको भली प्रकार से भस्म करें। वे उसे इधर-उधर न फेंके ॥ १२ ॥

यह पितृमेध यज्ञ इसे सानन्द स्वर्ग प्राप्त करा रहा है। मेध्य वा अग्नियाँ भक्षण करें और इसे पकाते समय अधकच्चा ही इधर-उधर न फेंके ॥ ३ ॥

यह यज्ञ करने याला व्यक्ति तीसरे स्वर्ग पर चढने के लिये विषय सख्या की ईंटो से चिने हुए अग्नि प्रदेश पर चढ रहा है। इस पुण्यात्मा प्रेत के लिये स्वग पर चढते समय प्रकाशमान हो ॥ १४ ॥

हे प्रेत ! इस पितृमेध यज्ञ में अग्नि को होता बनें, अध्वर्यु वृहस्पति हो, इन्द्र ब्रह्मा हो। इस प्रकार से पहले समय के अनुतिष्ठत यह वहुत यज्ञो का स्थान ग्रहण करता है ॥ १५ ॥

गेंहूँ का चून और गाय के दूध से मिश्रित पक्व ओदन के समान चरु इस कार्य मे हड्डियो के समीप पश्चिम दिशा मे रखा रहे। इन्द्रादि देवगणो मे से सस्कारित प्रेत के लिये स्वर्ग के रचियता हवि के अधिकारियो को खुश करते है ॥ १६ ॥

दही एव गेहूँ के चून को मिश्रत करके ओदन के समान चरु इस कार्य मे हड्डियो के समीप पश्चिम दिशा मे रखा रहे। सस्कारित प्रेत के लिये स्वर्ग के रचियता इन्द्रादि-

देवगणों में से हवि के अधिकारी देवगणों को हम खुश करते हैं ॥ १७ ॥

गेहूँ का चून एवं दधिकण द्रव्य वाले प्रेत के लिये स्वर्ग रचियता इन्द्रादि देवगणों में से वर्तमान हवि के अधिकारी देवगणों को हम खुश करते हैं ॥ १८ ॥

पिसे गेहूँ एवं गाय के घी से मिश्रत इस संस्कारित प्रेत के निमित्त स्वर्ग के रचियता इन्द्रादि देवगणों में से हवि के अधिकारी देवगणों को हम खुश करते हैं ॥ १९ ॥

गेहूँ के चून और प्राणिज द्रव्य से मिश्रत ओदन रूप चरु पश्चिम दिशा में रखा जाय। संस्कारित प्रेत के निमित्त स्वर्ग रचियता इन्द्रादि देवगणों में से वर्तमान हवि के अधिकारी देवगणों को हम खुश करते हैं ॥ २० ॥

अपूपवानन्नवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ २१ ॥

अपूपवान् मधुमांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ २२ ॥

अपूपवान् रसवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ २३ ॥

अपूपवानपवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ २४ ॥

अपूपापिहितान् कुम्भान् यांस्ते देवा अधारयन् ।

ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुत ॥ २५ ॥
यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्रा स्वधावती ।
तास्ते सन्तद्भ्वो प्रभ्वोस्तास्ते यमो राजानु मन्यताम् ॥ २६ ॥
अक्षिति भूयसीम् ॥ १० ॥
द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिम च योनिमनु यश्च पूर्वः ।
समान योनिमनु सचरन्त द्रप्स जुहोम्यनु सप्त होत्रा ॥ २८ ॥
शतधार वायुमर्क स्वर्विद नृचक्षसस्ते अभि चक्षते रयिम् ।
ये पृणन्ति प्र च यच्छन्ति सर्वदा ते दुह्रते दक्षिणां सप्तमातरम् ॥ २९ ॥
कोश दुहन्ति कलश चतुर्बिलमिडां धेनु मधुमतीं स्वस्तये ।
ऊर्जं मदन्तीमदितिं जनेष्वग्ने मा हिंसी परमे व्योमन ॥ ३० ॥

गेहूँ के चून के अपूपों से सम्पन्न, अन्न की मिलावट, पके हुए ओदन तुल्य चरु इस कार्य में हड्डियो के पश्चिम में रहे। सस्कारित प्रेत के निमित्त स्वर्ग के रचियता इन्द्रादि देवगणों मे से वर्तमान हवि के अधिकारी देवगणो को हम खुश करते हैं ॥ २१ ॥

गेहूँ के चून के अपूपो से एव शहद से सम्पन्न कुम्भी पक्व ओदन तुल्य चरु इस कार्य मे हड्डियो के पश्चिम भाग मे रहे। सस्कारित प्रेत के लिये स्वर्ग रचियता इन्द्रादि देवगणो मे से वर्तमान हवि के अधिकारियो द्वारा देवगणो को हम खुश करते है ॥ २२ ॥

छः रसों तथा पिसे गेहूँ के अपूपों से सम्पन्न कुभी पक्व ओदन रूप चरु इस कार्य मे हड्डियो के पश्चिम भाग मे रहें। सस्कारित प्रेत के लिये स्वर्ग रचियता इन्द्रादि देवगणो मे से हवि के अधिकारियो को हम खुश करते हैं ॥ २३ ॥

किसी भी प्रकार के अयूप एव गेहूँ के चूंन युवन कुम्भी पके के रूप मे चरु इस कार्य में हड्डियो के पश्चिम भाग में रहे । इस सस्कारित प्रेत के लिये स्वर्ग के बनाने वाले इन्द्र आदि देवगणो में से इस हवि के अधिकारियो को हम खुश करते हैं ॥ २४ ॥

हे प्रेत ! काले तिलो को मैं तेरे लिये जो की खीलों को फैलाता हूँ । यमराज मुझे खाने की आज्ञा दें । परलोक मे वे तुझे अच्छी तादाद मे मिलें । चरु के घडो को जिन हवि के भोग करने वालो ने इसको ग्रहण किया है वे स्वधा से तुझे युक्त करें ॥ २५-२६-२७ ॥

साम रस मे वर्तमान जल के अंश द्रप्स धरती एवं आकाश को समक्ष करके बिखेरता हूँ । पहले पैदा हुए द्युलोक एव द्यावापृथ्वी को उद्देश्य मे रखकर ससार की कारण रूप पृथ्वी को लक्ष्य मे रखकर, सात वषटकर्ता होताओ को भी उद्देश्य मे रखकर के सोम रस द्रप्स को अग्नि मे आहूति देता हूँ । यह सर्वज्ञ देवगणो के निमित्त करना हूँ ॥ २८ ॥

हे प्रेत ! मनुष्यो को देवगण अपनी दृष्टि में रखते हुए एव चुचाते हुए पानी से सम्पन्न हवा के प्रवाह से चलते हुए स्वर्ग प्रापक इस घडे को तुझे धन रूप जानते हैं । तेरे गोत्री बन्धु तुझे कुम्भोदक से ही शान्त करते हैं और कुम्भोदक देने वाले सम मातृक तुल्य जल धारा के समान दक्षिणा को सदैव अर्पण करते हैं ॥ २९ ॥

धन सुवर्णादिसे सम्पन्न कोश की तरह चार छेद वाले कलश को दुहने हैं । हे अग्ने ! इस प्रेत के लिये जो कि पितरों को प्राप्त हुआ है । उसे संतुष्ट करने वाली अदिति को समाप्त न करना ॥ ३० ॥

एतत् ते देव सविता वासो ददाति भर्तवे ।
तत् त्व यमस्य राज्ये वसानस्तार्प्यं चर ॥ ३१ ॥
धाना धेनुरभवद् वत्सो अस्यास्तिलोऽभवत् ।
तां वै यमस्य राज्ये अक्षितामुप जीवति ॥ ३२ ॥
एतास्ते असौ धेनव. कामदुघा भवन्तु ।
एनी श्येनीः सरूपा विरूपास्तिलवत्सा उप तिष्ठन्तु
त्वात्र ॥ ३३ ॥
एनीर्धाना हरिणी: श्येनीरस्य कृष्णा धाना रोहिणीर्धेनवस्ते ।
तिलवत्सा ऊर्जं मस्मै दुहाना विश्वाहा
सन्त्वनपस्फुरन्तीः ॥ ३४ ।
वैश्वानरे हविरिदं जुहोमि साहस्रं शतधारमुत्सम् ।
स बिभर्ति पितरं पितामहान् प्रपितामहान् बिभर्ति
पिन्वमान ॥ ३५ ॥
सहस्रधार शतधारमुत्समक्षितं व्यच्यमानं सलिलस्य पृष्ठे ।
ऊर्जं दुहानमनपस्फुरन्तमुपासते पितर. स्वधाभि ॥ ३६ ॥
इद कसाम्बु चयनेन चित तत् सजाता अव पश्यतेत ।
मर्त्योऽयममृतत्वमेति तस्मै गृहान् कृणुत यावत्सबन्धु ॥ ३७ ॥
इहैवैधि धनसनिरिहचित्त इहक्रतु ।
इहैधि वीर्यवत्तरो वयोधा अपराहत. ॥ ३८ ॥
पुत्र पौत्रमभितर्पयन्तीरापो मधुमतीरिमाः ।
स्वधां पितृभ्यो अमृत दुहाना आपो
देवीरुभयास्तर्पयन्तु ॥ ३९ ।
आपो अग्निं प्र हिणुत पितॄं रुपेमं यज्ञं पितरो मे जुषन्ताम् ।
आसीनामूर्जमुप ये सचन्ते ते नो रयिं सर्ववीर नि
यच्छान् ॥ ४० ॥

हे प्रेत ! तुझे आच्छादित करने को सविता तुमको कपड़े देती हैं। यम के राज्य मे तुम इसे ओढकर आजादी से भ्रमण कर ॥ ३१ ॥

वत्स बनाने को भुने जौ की खील, गौ एव तिल की आवश्यकता होगी ॥ ३२ ॥

हे प्रेत ! अनेक रूप वाली यह वत्स सम्पन्न तिलात्मक धेनुए तुम्हारे ही लिये कामधेनु है। एव तेरे समीप निवास करती हुई यम लोक मे तेरी कामनाओ को पूरी करें ॥ ३३ ॥

तेरे लिये लाल, सफेद हरी एव भूनने से काली तथा अरुण रग वाली खीलें तेरे को गौ रूप हैं। यह सदैव इस प्रेत को शक्ति वर्द्धक अन्न प्रदान करती है ॥ ३४ ॥

इन हवियो को मैं वैश्वानर अग्नि मैं गेरता हूँ। यह जल के प्रवाह युक्त हैं अपने उपजीवी पितरो को सींचती हुई वर्तन करती हैं। इस हवि से प्रदीप्त हुए वैश्वानर अग्नि सारे हमारे हमारे पूर्वजो को शान्ति प्रदान करें ॥ ३५ ॥

भूत स्थित अन्न साधन जल को टपकाते हुए, छेद के घड़े को चाहते हैं ॥ ३६ ॥

हे गोत्री बन्धुओ ! इस एकत्रित की गई हवि की देखभाल रखो। यह प्रेत अमृत्व को प्राप्त कर रहा है इसलिये अब तुम सब घर की रचना करो ॥ ३७ ॥

हे उत्मुक ! इस रेतीले देश मे रहता हुआ हमे धन प्रदान कर। तू वहीं से हमारे कर्मों का सम्पादन कर एव शक्तिशाली, अन्न को बलवर्धक करने वाला और शत्रुओ से असतप्त रहता हुआ बुद्धिमान बन ॥ ३८ ॥

आचमन करने योग्य यह मधुर जल पुत्र पौत्रादि को

संतुष्ट करे। पिण्ड से उपजीवन करने वाले पूर्वजों को स्वधा देता है। यह जल आचमन करने पर मातृकुल एवं पितृकुल को संतुष्ट करें ॥ ३९ ॥

हे जलो ! अवसेचन के साधन रूप हो। तुम दक्षिणाग्नि को यज्ञ में प्रदत्त पिण्डों का वहन करने के लिए पूर्वजों के समीप रखो। मेरे पूर्वज इसका रसास्वादन करें। जल में रखे पिण्ड रूप अन्न का भक्षण करने के लिये जो पूर्वज हमारे पास आवें वे हमें मंगल, पुत्र, पौत्रादि सहित धन प्रदान करें ॥ ४० ॥

समिन्धते अमर्त्यं हव्यवाहं घृतप्रियम् ।
स वेद निहितान् निधीन् पितृन् परावतो गतान् ॥ ४१ ॥

य ते मन्थ यमोदन यन्मांसं निपृणामि ते ।
ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुत. ॥ ४२ ॥

यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्रा. स्वधावतीः ।
तास्ते सन्तूद्भ्वीः प्रभ्वीस्तास्ते यमो राजानु मन्यताम् ॥ ४३ ॥

इदं पूर्वमपरं नियानं येना ते पूर्वे पितरः परेताः ।
पुरोगवा ये अभिशाचा अस्य ते त्वा वहन्ति सुकृतामु लोकम् ॥ ४४ ॥

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने ।
सरस्वतीं सुकृतो हवन्ते सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ॥ ४५ ॥

सरस्वतीं पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः ।
आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वमनमीवा इष आ धेह्यस्मे ॥ ४६ ॥

सरस्वति या सरथं ययाथोक्थैः स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती ।
सहस्रार्घमिडो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानाय धेहि ॥ ४७ ॥

पृथिवीं त्वा पृथिव्यामा वेशयामि देवो नो धाता प्र तिरात्यायु ।
परापरेता वसुविद्वो अस्त्वधा मृताः पितृषु स
मवन्तु ॥ ४८ ॥
आ प्र च्यवेथामप तन्मृजेथां यद् वामभिभा अत्रोचुः ।
अस्मादेतमघ्न्यौ तद् वशीयो दातुः पितृष्विहभोजनौ
मम ॥ ४९ ॥
एयमगन् दक्षिणा भद्रतो नो अनेन दत्ता सुदुघा वयोधा ।
यौवने जीवानुपपृञ्चती जरा पितृभ्य
उपसंपरायणादिमान् ॥ ५० ॥

कर्मवान व्यक्ति अविनाशी व्यक्ति प्रकट करते हैं । भूमि गत कोश को देखना जब तक असमव है जब तक कि दिखाने वाला न हो उसी प्रकार से पूर्वज खुद ही नहीं निकलते । यह अग्नि दूर देश में निवास करने वालों की ज्ञाता है । इसलिए इनको प्रदीप्त किया जाता है ॥ ४१ ॥

हे प्रेत ! जो मन्थ तुझे दे रहा हूँ, वे मन्थ तुमको स्वधा एवं घी से युक्त प्राप्त हों ॥ ४२ ॥

हे प्रेत ! काले तिलों की स्वधामयी खीलें परलोक की प्राप्ति पर तुझको विस्तृत रूप में प्राप्त हों, इसको सेवन करने के लिए यमराज तुझे आज्ञा प्रदान करें ॥ ४३ ॥

इस लोक से जिनके माध्यम से जीव जाते हैं वे गाड़ी पुरानी एवं नयी दोनों प्रकार से बनी हुई है वे शव को खींचने वाली हैं । पूर्वज तेरे इसी के द्वारा गये थे । दोनों बैल इससे दोनों तरफ जोड़े गये वे तुझे पुण्यात्मा की प्राप्ति करायें ॥४४॥

मृतक के संस्कार कराने वाली अग्नि की इच्छा रखती हुई वे पुरुष विद्या का आह्वान करते हैं । वह सरस्वती हविदाता यजमान को वरणीय करने के लिये पदार्थ भेंट करें ॥४५॥

वेदी के दक्षिण दिशा मे स्थित पूर्वज भी सरस्वती का आह्वान करते हैं। हे पितरो ! यज्ञ मे प्रसन्न रहो। सरस्वती को सतुष्ट करते हुए खुद भी सतुष्टी को प्राप्त करो। हे सरस्वती ! पूर्वजो द्वारा आहूत होकर इच्छित अन्न मे स्थापित करो ॥ ४६ ॥

हे सरस्वते ! तुम स्वध, शस्त्र, स्वधा रूप अन्न से सतुष्ट होती हुई पूर्वजो सहित एक ही रथ मे आगमन करती हो। तुम यजमान को, अनेक पुरुषो को तृप्त करने वाले अन्न को प्रदान करो ॥ ४७ ॥

हे पृथ्वी ! मैं तुझे विकार कुम्भी से प्रविष्ट करता हूँ। धाता देवता हम सब यज्ञ के अनुष्ठाताओ को आयुष्मान करें। हे दूर लोक निवासी पितरो ! तुमको अन्न यह लिपि हुई चरु कुम्भी प्राप्त करावें। चरु के स्वाहाकार के बाद यह मृतक अपने पुरुषो से मिल जावे ॥ ४८ ॥

हे प्रेत वाहक बैलो ! हमारे समक्ष ही तुम लोग इस गाडी से अलग अलग हो जाओ। प्रेत को सवारी देने की निन्दा वाक्य से छूटो। तुम गाड़ी के साथ आओ, आपका आना कुशल हो पितृमेध मे तुम पितरों के लिए हविदाता बनो ॥ ४९ ॥

सस्कार कर्ता हमारे पास यह धेनु की दक्षिणा आ रही है। यह सुन्दर फल और दूध रूप अन्न को देती हुई बुढापे में भी यह नव-जवान बनी रहे। सस्कारित पुरुष को यह दक्षिणा पूर्वजो के समीप पहुँचावें ॥ ५० ॥

इद पितृभ्य प्र भरामि बर्हिजीव देवेभ्य उत्तर स्तृणामि । तदा रोह पुरुष मेध्यो भवन् प्रति त्वा जानन्तु पितर. परेतम् ॥ ५१ ॥

एद बर्हिरसदो मेध्योऽभू प्रति त्वा जानन्तु पितरः परेतम् ।
यथापरु तन्वं सं भरस्व गात्राणि ते ब्रह्मणा
कल्पयामि ॥ ५२ ॥
पर्णो राजापिधानं चरूणामूर्जो बलं सह ओजो न आगन् ।
आयुर्जीवेभ्यो वि दधद् दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥ ५३ ॥
ऊर्जो भागो य इमं जजानाश्माऽन्नानामाधिपत्यं जगाम ।
तमर्चत विश्वमित्रा हविर्भिः स नो यमः प्रतरं जीवसे
धात् ॥ ५४ ॥
यथा यमाय हर्म्यमवपन् पञ्च मानवाः ।
एवा वपामि हर्म्यं यथा मे भूरयोऽसत ॥ ५५ ॥
इदं हिरण्यं बिभृहि यत् ते पिताबिभः पुरा ।
स्वर्गं यतः पितुर्हस्तं निर्मृड्ढि दक्षिणम् ॥ ५६ ॥
ये च जीवा ये च मृता ये जाता ये च यज्ञियाः ।
तेभ्यो घृतस्य कुल्यैतु मधुधारा व्युन्दती ॥ ५७ ॥
वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सूरो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः ।
प्राणः सिन्धूनां कलशाँ अचिक्रददिन्द्रस्य
हार्दिमाविशन्मनीषया ॥ ५८ ॥
त्वेषस्ते धूम ऊर्णोतु दिवि षञ्छुक्र आततः ।
सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ॥ ५९ ॥
प्र वा एतीन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतिं सखा सख्युर्न प्र
मिनाति संगिरः ।
मर्य इव योषाः समर्षसे सोमः कलशे शतयामना पथा ॥ ६० ॥
मरणोपरान्त करने योग्य क्रियाएँ, पुत्रों एवं वंशजों
की जीवन इच्छा को रखता हुआ मृत को पितरों से मिलाता हूँ। हे

पुरुष ! तू पितृमेध के योग्य होता हुआ इस पर चढ़ जिससे पूर्वज लोग भी तुझे प्रेत समझें ॥ ५१ ॥

हे प्रेत ! इस चिता पर जो कुशाएँ बिछी हुई है और इन पर तू चढ़ कर पितृ मेध के योग्य हो गया है अतः पूर्वज तुम्हें प्रेत समझे । तेरी हड्डियाँ, जिन्दा पर जैसी थी उसी प्रकार की अब भी हैं। कुल मे सबसे बड़ा मे, तेरी हड्डि रुप मन्त्र बल से इन सब को इकट्ठा करता हूँ ॥ ५२ ॥

पालश पत्र हमको अन्न, रस, बल, शक्ति एवं तेज दे, वह हमें सौ वर्ष की आयु प्रदान करें ॥ ५३ ॥

चरु रुप अन्न के योग्य जिस यमराज ने इनको प्रेत बनाया है और जो यम इन चरुओं को ढकने वाले पत्थरो के स्वामी है, उन यम देव को हे भाइयो ! हवि से तृप्त करो । वे लम्बे समय तक जीवत रहे ॥ ५४ ॥

जैसे पचो ने यम के स्थान को किया उसी प्रकार मैं इस प्रेत के निवास स्थान के लिये पितृ स्थान को ऊँचा रखता हूँ । हे बांधवो ! ऐसा करने से तुम वृद्धि को प्राप्त होंगे ॥ ५५ ॥

हे प्रेत ! इस सोने की अगूठी को घी से पहन । तेरा बाप ने जिस दहने हाथ में सोना धारन कर लिया था उस स्वर्ग प्रापक हाथ को तू धो ॥ ५६ ॥

जीवित, मृत, पैदा होने वाले सबके निमित्त शहद के प्रवाह के सिंचन करती हुई घी की नदी बने ॥ ५७ ॥

भजन करने वालो को इच्छित देने वाला सो छन छन कर चलता है । वही सोम दिन-रात को निष्पन्न करता है । उपाकाल एवं आकाश को भी वहीं बढाता है । वस्तीवर जलों

का वह प्राण है। इस प्रकार का सोम घडो को ओर जाता हुआ अत्यन्त शोर गुल करता है। वह तीनो शपनो मे पूज्य इन्द्र के पेट मे प्रवेश कर रहा है ॥ ५८ ॥

हे प्रेताग्ने! तुम्हारा धुआँ अन्तरिक्ष को मेघ रूप मे ढके। तुम स्तुति के कारण प्रदीप्त होकर सूर्य की तरह चमकते हो ॥ ५९ ॥

छन्ने से छनता हुआ यह सोम इन्द्र के पेट मे प्रविष्ट होता है। यष्टा के लिये मित्र के समान है ओर इसकी कामनाओ को व्यर्थ नहीं करता। आदमी को स्त्री से मिलने के समान यह सोम द्रोण कलश मे हजारो धाराओ से मिलता है ॥ ६० ॥

अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत ।
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा यविष्ठा ईमहे ॥ ६१ ॥

आ यात पितर. सोम्यासो गम्भीरैः पथिभिः पितृयाणैः ।
आयुरस्मभ्य दधत प्रजां च रायश्च पोषैरभि न सचध्वम् ॥ ६२ ॥

परा यात पितरः सोम्यासो गम्भीरैः पथिभि॰ पूर्याणैः ।
अधा मासि पुनरा यात नो गृहान् हविरत्तु सुप्रजसः सुवीराः ॥ ६३ ॥

यद् वो अग्निरजहादेकमङ्गं पितृलोकं गमयञ्जातवेदा ।
तद् व एतत् पुनरा प्याययामि साङ्गाः स्वर्गे पितरो मादयध्वम् ॥ ६४ ॥

अभूद् दूतः प्रहितो जातवेदाः सायं न्यह्न उपवन्द्यो नृभिः ।
प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि ॥ ६५ ॥

षसो हा इह ते मन ककुत्सलमिव जामय । अभ्येन भूम ऊर्णुहि ॥ ६६ ॥

शुम्भन्तां लोका पितृषदना पितृषदने त्वा लोक आ सादयामि ॥ ६७ ॥

ये स्माक पितरस्तेषां बर्हिरसि ॥ ६८ ॥

उदुत्तम वरुण पाशमस्मदवाधम विमध्यम श्रथाय । अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो आदितये स्याम ॥ ६९ ॥

प्रास्मत् पाशान् वरुण मुञ्च सर्वान् यें समामे बध्यते यैर्व्यामे । अथा जीवेम शरद शतानि त्वया राजन् गुपिता रक्षमाणा ॥ ७० ॥

पूर्वज पिण्ड का सेवन करके सतुष्ट हो गये, फिर वे अपनी देह को कम्पायमान कर रहे हैं। वे हमारे यश का बखान करते हैं उन सतुष्ट पूर्वजो से हम अपने उत्तम फल की याचना करते हैं ॥ ६१ ॥

हे सोम के पात्र पितरो ! तुम पितृयान से आओ। पिण्ड के लिये कुश को विछाकर तिल क देने वाले हमे आयुष्पान करें एव धन और सतान से हरा-भरा परिवार रखें। ६२॥

पितरो ! तुम पितृयानो से अपने देश को जाओ और अमावस्या दिन हवि का सेवन करने को हमारे घर पर पधारना। पुत्र पौत्र क देने वाले हो ॥ ६३ ॥

हे प्रेत ! इस उधने हुए आपके अ ग को अग्नि ने भस्म नही किया है। प्रवद्ध करने को मै तुम्हे उसमे पुन डालता हूँ प्रसन्नता से आप स्वर्ग पधारें ॥ ६४ ॥

सुबह और शाम को प्रार्थना के समय अग्नि को कृत वे

रुप में हमने भेजी है। हमारी हवि उन्हें प्रदान करो। वेहमारी हवियों का सेवन करें। हे अग्ने! दी हुई अपनी हवि का तुम भी भक्षण करो॥ ६५॥

हे प्रेत! तेरा ध्यान इस श्मसान मे है। हे श्मसान भूमे! इस प्रेत को उसी प्रकार से आच्छादित करो जिस प्रकार कि स्त्री अपने स्वन्ध को कपडे से ढकती हैं॥ ६६॥

हे प्रेत! तेरे लिये वठने को पूर्वजो के लोक उपस्थित हो। उसी लोक मे तुझे भेजता हूँ॥ ६७॥

हे वर्हि वैठने के लिये तू हमारे पूर्वजो का स्थान बन॥ ६८॥

हे वरुण! हमसे अपने उत्ताम, मध्यम एवं निकृष्ट पाश को दूर रख। पाशों के छुटने पर हमतेरी सेवा करते हुए अहिंसित रहें॥ ६९॥

हे वरुण! मनुष्य जिन पाशो मे फंस जाता है, उन्हें हमसे अलग रखो। तुमसे वचे हुए आगे भी रक्षा करते हुये हम सौ वर्ष तक जीवें॥ ७०।

अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नमः॥ ७१॥

सोमाय पितृमते स्वधा नम॥ ७२॥

पितृभ्यः सोमवद्भ्य स्वधा नम॥ ७३॥

यमाय पितृमते स्वधा नम॥ ७४॥

एतत् ते प्रततामह स्वधा ये च त्वामनु। ७५॥

एतत् ते ततामह स्वधा ये च त्वामनु॥ ७६॥

एतत् ते तत स्वधा॥ ७७॥

स्वधा पितृभ्य पृथिविषद्भ्य॥ ७८।

स्वधा पितृभ्यो अन्तरिक्षसद्भ्य ॥ ७९ ॥
स्वधा पितृभ्यो दिविषद्भ्य ॥ ८० ॥

स्वधा युक्त हवि कव्यवाहन अग्नि को प्राप्त हो। मैं उसे प्रणाम करता हूँ ॥ ७१ ॥

यह हवि पितृयान सोम एव स्वधा को प्राप्त हो ॥ ७२ ॥

स्वधा एव नमस्कार से युक्त सोम वाले पूर्वजो को यह हवि प्राप्त हो ॥ ७३ ॥

स्वधा एव प्रणाम सम्पन्न पितरो के स्वामी यम को इस हवि की प्राप्ति हो ॥ ७४ ॥

हे प्रपितामह ! पिण्ड रूप यह हवि तुम्हारे लिये स्वधाकार युक्त हो। पत्नि, पुत्रादि जो पूर्वज तुम्हारे अनुकूल रहते हैं। वे सब स्वधाकार की प्राप्ति करें। हे पिता ! स्वधाकार हवि को आप प्राप्त करें ॥ ७५-७६ ७७ ॥

पृथ्वी पर निवास करने वाले पितरो को, अन्तरिक्ष मे रहने वाले पूर्वजो को स्वधाकार हवि की प्राप्ति हो ॥ ७८-७९-८० ॥

नमो व पितर ऊर्जे नमो व पितरो रसाय ॥ ८१ ॥

नमोः वः पितरो भामाय नमो व पितरो मन्यवे ॥ ८२ ॥

नमो वः पितरो यद् घोर तस्मै नमो व. पितरो यत् क्रूर तस्मै ॥ ८३ ॥

नमो व पितरो यच्छिवं तस्मै नमो व. पितरो यत् स्योनं तस्मै ॥ ८४॥

नमो वः पितरः स्वधा व. पितरः ॥ ८५ ॥

येऽत्र पितर पितरो येऽत्र यूयं स्थ युष्मास्तेऽनु यूयं तेषां श्रेष्ठा भूयास्थ ॥ ८६ ॥
य इह पितरो जीवा इह वय स्म ।
अस्मांस्तेऽनु वय तेषा श्र ष्ठा भूयास्म । ८७ ॥
आ त्वाग्न इधीमहि द्यु मन्त देवाजरम् ।
यद् घ सा ते पनीयसी समिद् दीदयति द्यवि ।
इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ८८ ॥
चन्द्रमा अप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ८६ ॥

हे पितरो ! तुम्हारे अन्न रस को, तुम्हारी गुस्सा को, मानस गुस्सा को, भयकर रूप को, हिंसक रूप को, मगलकारी रूप को एव सुखकारी रूप को प्रणाम है, मेरा आपको नमस्कार है, आपके लिए यह हवि स्वाहुत हो ॥ ८१-८२-८३-८४-८५ ॥

हे पितरो ! देवता के समान तुम इस पिण्ड पितृ मेघ यज्ञ मे विराजमान हो । आश्रित पितरों में तुम सर्वोतम रहो वे आपके द्वारा जीवन यापन करें । आपकी प्रार्थना सर्व पिण्ड अ श का हिस्सा पावें । पिण्ड के देने वाले हमें आयुष्मान करो और अपने बराबर वालों में श्रेष्ठ करो ॥ ८६-८७ ॥

हे अग्ने ! समिधा के द्वारा हम तुम्हे प्रवृद्ध करते हैं । आपका यशोगान सर्व व्यापक है अभीष्ट अन्न हम स्तोताओं को दो ॥ ८८ ॥

जलमय आलोक में सुषुम्ना नामक किरण से युक्त चन्द्रमा जल्दी से जा रहे हैं । हे चन्द्र किरणा ! कुए मे बन्द होने से मेरी आँख आपके सौन्दर्य को देख नही सकती । हे द्यावा पृथ्वी ! मेरे स्तोत्रों को जानती हुई तम मेरे ऊपर दयादृष्टि रखो । ८६॥

॥ इति दशपष्टादश काण्ड समाप्त ॥

एकोनविंश काण्ड

सूक्त १ (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—यज्ञ. । छन्द—बृहती, पंक्ति)

स सं स्रवन्तु नद्य सं वाताः स पतत्रिणः ।
यज्ञमिम वर्धयता गिर सस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥ १ ॥

इम होमा यज्ञमवतेमं संस्रावणा उत ।
यज्ञमिमं वर्धयता गिर. स्स्राव्येण हविषा जुहोमि ॥ २ ॥

रूपंरूप वयोवय· सरभ्यैनं परि ष्वजे ।
यज्ञमिम चतस्र प्रदिशो वर्धयन्तु सस्राव्येण हविषा
जुहोमि ॥ ३ ॥

नदियाँ प्रवाहित हो, वायु भी हमारी इच्छानुसार चले । पक्षीगण भी हमारे अनुकूल होवेंहे देवगण ! तुम स्तुति योग्य हो । यजमान का शान्ति कर्म रूप यह यज्ञ पुत्रादि तथा धन का सम्पन्न करने का कारण होवे। मैं घृतादि युक्त हवि देवो को देता हूँ ॥ १ ॥

हे आहुतियो ! यज्ञ को सिद्ध करो। हे घृत, क्षीर आदि तुम इस यज्ञ का पालन करो। हे स्तुत्य देव ! यजमान को सन्तति तथा पशु धन प्रदान करो। मैं घृतादि आहुति देवों को देता हूँ ॥ २ ॥

मैं इस यजमान मे पुत्र, पशु, आदि रूपो को विद्यमान करता हूँ। समस्त दिशायें इसकी मनोभिलाषा को पूर्ण करें। मैं घृतादि युक्त हवि देता हूँ ॥ ३ ॥

सूक्त (२)

(ऋषि—सिन्धुद्वीप देवता—आपः। छन्द—अनुष्टुप्)

शं त आपो हैमवतीः शमु ते सन्तूत्स्याः।
शं ते सनिष्यदा आपः शमु ते सन्तु वर्ष्याः ॥ १ ॥
शं त आपो धन्वन्याः शं ते सन्त्वनूप्याः।
शं ते खनित्रिमा आपः शं याः कुम्भेभिराभृताः ॥ २ ॥
अनभ्रयः खनमाना विप्रा गम्भीरे अपसः।
भिषग्भ्यो भिषक्तरा आपो अच्छा वदामसि ॥ ३ ॥
अपामह दिव्यानामपां स्रोतस्यानाम्।
अपामह प्रणेजनेऽश्वा भवथ वाजिनः ॥ ४ ॥
ता अपः शिवा अपोऽयक्ष्मंकरणीरपः।
यथैव तृप्यते मयस्तास्त आ दत्त भेषजीः ॥ ५ ॥

हे यजमान ! हिमवान के जल, झरने के जल, और सदा प्रवाह वाले जल तुझे कल्याणदायी हो। वर्षा जल भी कल्याणकारी हो ॥ १ ॥

मरु जल, जल युक्त प्रदेश के जल, कूप, तड़ाग एवं बावड़ी के जल तथा कुम्भो में लाए जल तुझे कल्याणदायी हों ॥ २ ॥

खोदने की सामिग्री पास न होने पर भी जो दोनों किनारों का खोदने में समर्थ है। जो अत्यधिक गहन स्थानों का प्राप्त है ऐसे जल वैद्यो से भी अधिक कल्याणदायी है। मैं इनको नमस्कार करता हूँ ॥ ३ ॥

हे ऋत्विजो ! तुम अन्तरिक्ष जलवत शान्ति रूपी उदक से शीघ्रता प्रदान करो। ४ ॥

हे प्रोक्ताओ ! यक्ष्मादि रोगों की शान्ति की औषधि रूप जलों को यहाँ लाओ ॥ ५ ॥

सूक्त (३)

(ऋषि—अथर्वाङ्गिरा । देवता—अग्नि, छन्द—त्रिष्टुप्, भुरिक त्रिष्टुप्)

दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षाद् वनस्पतिभ्यो अध्योवधीभ्य ।
यत्रयत्र विभृतो जातवेदास्तत स्तुतो जुषमाणो न एहि ॥ १ ॥
यस्ते अप्सु महिमा यो वनेषु य ओषधीषु पशुष्व प्स्वन्त ।
अग्ने सर्वास्तन्व स रभस्व ताभिर्न एहि द्रविणोदा
अजस्र ॥ २ ॥
यस्ते देवेषु महिमा स्वर्गो या ते तनू पितृष्वाविवेश ।
पुष्टिर्या ते मनुष्येषु पप्रऽग्ने तया रयिमस्मासु धेहि ॥ ३ ॥
श्रुत्कर्णाय कवये वेद्याय वचोभिर्वाकैरुप यामि रातिम् ।
यतो भयोमभय तन्नो अस्त्वव देवाना यज हेडो अग्ने ॥ ४ ॥

हे अग्ने ! हमारे स्तोत्र को सुनता के स्थान पर आओ। आकाश, पृथ्वी और अन्तरिक्ष पुष्पफल रहित तथा पक्व फल औषधियों से युक्त यहाँ पधारो । १ ॥

हे अग्ने ! जल और जगल मे तुम्हारा जो रूप है, औषधियों मे फल पाक रूप है समस्त जीवों मे जो वश्वानर रूप है, आकाशमें जो तडित रूपहै, अपने समस्त रूपों सहित धन देती हुई यहाँ पधारो ॥ २ ॥

हे अग्ने ! देवो में तुम्हारी स्वर्गगामी महिमा है, जिससे तुम पितरो मे प्रविष्ट हो तुम्हारा जो मन पोषण कर्म में है, अपनी इन समस्त महिमा युक्त यहाँ पधारो । ३ ॥

हे अग्ने ! तुम हमारी स्तुति के सुनने योग्य के अभीष्ट दाता, ज्ञाता अतीन्द्रियदर्शी हो। मैं मन्त्र समूहसे तुम्हारी स्तुति करता हूँ जिससे अभय होऊं। तुम क्रोधी देवों को भी शान्तता प्रदान करो ॥ ४ ॥

सूक्त (४)

(ऋषि—अथर्वाङ्गिरा । देवता --अग्नि । छन्द—जगती, त्रिष्टुप)

यामाहुतिं प्रथमामथर्वा या जाता या हव्यमकृणोज्जातवेदा ।
तां त एतां प्रथमो जोहवीमि ताभिष्टुप्तो वहतु हव्यमग्निरग्नये स्वाहा ॥ १ ॥

आकूतिं देवीं सुभगां पुरो दधे चित्तस्य माता सुहवा नो अस्तु ।
यामाशामेमि केवली सा मे अस्तु विदेयमेनां मनसि प्रविष्टाम् ॥ २ ॥

आकूत्या नो बृहस्पत आकूत्या न उपा गहि ।
अथो भगस्य नो धेह्यथो न सुहवो भव ॥ ३ ॥

बृहस्पतिर्म आकूतिमाङ्गिरस प्रति जानातु वाचमेताम् ।
यस्य देवा देवता सबभूवु स सुप्रणीता कामो अन्वेत्वस्मान ॥ ४ ॥

हे अग्ने । पहिले देवताओं की प्रसन्नता को अथर्वा रूप ईश्वर ने आहुति दी थी तथा अग्नि ने देवगणों के पास पहुँचाया। उसी आहुति को मैं आपके मुख में डालता हूँ। त्रिशरीर द्वारा पूजे गये देवगणों को हवि प्राप्त करावे ॥ १ ॥

सौभाग्यमयी वाणी देवी को मैं पूजता हूँ। श्रेष्ठी कर्मी पुरुषवत हम उसे माता के रूप में सरस्वती को मानते हैं वह हमें कल्याणकारी होवे। मुझे अभीष्ट की प्राप्ति होवें ॥ २ ॥

हे बृहस्पते ! तुम सर्वदेव पालक हो। समस्त सारमयी वाणी को हमारे अभीष्ट के लिए प्रेरित करो जिससे हम सौभाग्य शाली बनें ॥ ३॥

अङ्गिरस बृहस्पति देवी सरस्वती को मुझे प्रदान करें। देवताओं को वश में रखने वाले बृहस्पति अभीष्ट फल दाता है अत. हमारे समीक्ष आकर हमको अभीष्ट प्रदान करें ॥ ४ ॥

सूक्त (५)

(ऋषि—अथर्वाङ्गिरा । देवता—इन्द्र । छन्द—त्रिष्टुप्)

इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति ।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद् राध
उपस्तुतश्चिदर्वाक ॥ १ ॥

त्रिलोक वासी प्राणी देवताओं के स्वामी तथा अत्यन्त धन पति इन्द्र पृथ्वी के समस्त धन को मुझ हविदाता को प्रदान करे । प्रसन्न हुए इन्द्र हमको धन प्रदान करें ॥ १ ॥

सूक्त (६)

(ऋषि—नारायणः । देवता—पुरुष. । छन्द—अनुष्टुप्)

सहस्रबाहु पुरुष सहस्राक्ष सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद् दशाङ्गुलम् ॥ १ ॥
त्रिभिः पद्भिर्द्यामरोहत् पादस्येहाभवत् पुन. ।
तथा व्यक्रामद् विष्वङ् अशनानशने अनु ॥ २ ॥
तावन्तो अस्य महिमानस्ततो ज्यायांश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ ३ ॥
पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येश्वरो यदन्येनाभवत् सह ॥ ४ ॥

यत् पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्य किं बाहू किमूरू पादा उच्येते ॥ ५ ॥
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्योऽभवत् ।
मध्यं तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥ ६ ॥
चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद् वायुरजायत ॥ ७ ॥
नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
भूमिर्दिशः श्रोत्रात् तथा लोकाँ अकल्पयन् ॥ ८ ॥
विराडग्रे समभवद् विराजो अधि पूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः ॥ ९ ॥
यत् पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥ १० ॥

असंख्य भुजा असंख्य नेत्र, असंख्य पैरों वाले नारायण सम्मिन्धु मयी पृथ्वी को अपनी महिमा से व्याप्त कर, दशांगुल मात्र स्थान में विराजते हैं ॥ १ ॥

इस यज्ञ के अनुष्ठाता अपने तीनों पैरों सहित स्वर्ग में चढ़े। इनका चतुर्थ पद इस लोक में बारम्बार प्रकट होता है। यह पद भोजन जीवी समस्त जीवों में और वृक्षादि में व्याप्त है ॥ २ ॥

सम्पूर्ण विश्व उसी यज्ञानुष्ठाता पुरुष का महान् कर्म है, यह महिमा का भी आश्रय रूप है। इसका चतुर्थ पाद सब भूतों में व्याप्त है। इसके तीन पाद अमृत लोक स्वर्ग में स्थित हैं ॥ ३ ॥

भूत, भविष्यत् और वर्तमान संसार सब नारायण रूप

अथवा विराट रूप ही है, यही विराट पुरुष अमृतत्व तथा अन्य भूतो का स्वामी है ॥ ४ ॥

साध्य एवम् वस्तु नाम के देव ने जब इसकी कल्पना की तब न जाने इसे कितनी तरह से सोचा। इसके मुख, भुजा, उरु, और पाद क्या कहलाते हैं ॥ ५ ॥

इसका (विराट् पुरुष का) मुख, ब्राह्मण, भुजा, क्षत्रिय, उरु वैश्य, एवं पाद शूद्र कहलाते हैं ॥ ६ ।

विराट पुरुष के मन से चन्द्रमा, मुख से इन्द्राग्नि और प्राण से वायु की उत्पत्ति भई है ॥ ७ ।

शिर से स्वर्ग लोक, नाभि से अन्तरिक्ष, और पैरो से पृथ्वी लोक की उत्पत्ति हुई है। इस विराट् पुरुष के कानो से दिशायें उत्पन्न हुई। इस तरह साध्य आदि देवो ने लोकों और वर्णों की कल्पना की ॥ ८ ॥

सृष्टि की प्रारम्भ में विराट् उत्पन्न हुआ, विराट से अन्य पुरुष की उत्पत्ति भई। वह पैदा होते ही वृद्धि को पाकर पृथ्वी आदि लोको के आगे और पीछे व्याप्त हो गया। तथा जीवो की देह रचना का कार्य सम्पन्न किया ॥ ९ ॥

देवगणों के अश्व रूप हवि से अश्वमेघ यज्ञ किया तब वसन्तऋतु ने घृत गीष्म ने समिधा और शरत ऋतु ने हवि का कार्य पूर्ण किया ॥ १० ॥

तं यज्ञं प्रावृषा प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रशः ।
तेन देवा अयजन्त साध्या वसवश्च ये ॥ ११ ॥
तस्मादश्वा अजायन्त ये च के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात् तस्माज्जाता अजावयः ॥ १२ ॥
तस्माद् यज्ञात्ः सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।

छन्दो ह जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत ॥ १३ ॥
तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत सभृत पृषदाज्यम् ।
पशूंस्ताश्चके वायव्या नारण्या ग्राम्याश्च ये ॥ १४ ॥
सप्तास्यासन् परिध्यस्त्रि सप्त समिध कृता ।
देवा यद् यज्ञ तन्वाना अबध्नन् पुरुष पशुम् ॥ १५ ॥
मूर्ध्नो देवस्य बृहतो अशव सप्त सप्तती ।
राज्ञ सोमस्याजायन्त जातस्य पुरुषादधि ॥ १६ ॥

सृष्टि के प्रारम्भ मे उस पूज्य पशु को प्रावृट् नाम की ऋतु से धोकर उससे साध्य तथा वसु देवगणो ने यज्ञ किया ॥ ११ ॥

उस यज्ञात्मक पशु से अश्व, खिच्चर, और गधे की उत्पत्ति भई ॥ १२ ॥

उसी यज्ञ से सामवेद और ऋजु की उत्पत्ति भई ॥ १३ ॥

उसी ने दधि युक्त घी का कार्य किया। साध्य व्यापक देवगणो ने उस घृत कर्म को, और वायु ने श्वापद, पक्षी सरीसृप, बन्दर, हाथी, अश्व भेड, गधे, बकरे आदि पशुओ की रचना की ॥ १४ ॥

साध्यादि देवो ने यज्ञ के समय पुरुष को पशु रूप में बाँधा और गायित्री आदि सप्त छन्दो परिधि बनाकर इक्कीस समिधाओ की रचना की । १५ ॥

यह पुरुष से ४९० महान सोम दीप्ति युक्त रश्मियाँ आदि उसके सिर से उत्पन्न हुए ॥ १६ ॥

सूक्त (७)

(ऋषि गार्ग्यः । देवता--नक्षत्राणि । छन्द—त्रिष्टुप्)

चित्राणि साकं दिवि रोचनानि सरीसृपाणि भुवने जवानि ।
तुमिशं सुमतिमिच्छमानो अहानि गीर्भिः सपर्यामि नाकम् ॥ १ ॥

सुहवमग्ने कृत्तिका रोहिणी चास्तु भद्रं मृगशिरः शमार्द्रा ।
पुनर्वसू सूनृता चारु पुष्यो भानुराश्लेषा अयनं मघा मे ॥ २ ॥

पुण्यं पूर्वा फल्गुन्यौ चात्र हस्तश्चित्रा शिवा स्वाति सुखो मे अस्तु ।
राधे विशाखे सुहवानुराधा ज्येष्ठा सुनक्षत्रमरिष्ट मूलम् ॥ ३ ॥

अन्नं पूर्वा रासतां मे अषाढा ऊर्जं देव्युत्तरा आ वहन्तु ।
अभिजिन्मे रासतां पुण्यमेव श्रवणः श्रविष्ठाः कुर्वतां सुपुष्टिम् ॥ ४ ॥

आ मे महच्छतभिषग् वरीय आ मे द्वया प्रोष्ठपदा सुशर्म ।
आ रेवती चाश्वयुजौ भगं म आ मे रयिं भरण्य आ वहन्तु ॥ ५ ॥

नाना प्रकार के चमकने वाले नक्षत्र, प्रत्येक क्षण तीव्र-गति से युक्त होते हैं। इनकी मैं मन्त्र द्वारा स्तुति करता हूँ। चूंकि मैं उनकी श्रेष्ठ और कल्याण मयी वाणी की अभिलाषा करता हूँ ॥ १ ॥

हे अग्ने ! हमारे आह्वान के अनुकूल कृतिका नक्षत्र बने। हे ब्रह्माजी ! रोहणी नक्षत्र भी आह्वान योग्य हो। हे सोम ! मृगशिरा नक्षत्र हमारे लिये कल्याण युक्त आह्वान कारी होवे। हे रुद्र ! आर्द्रा नक्षत्र खुश करे वृहस्पति का पुण्य नक्षत्र

लाभ कारी होवे । सर्प का अश्लेषा नक्षत्र हमे तेज प्रदान करें पितृदेव का मघ नक्षत्र भ अभीष्ट धता होवे ॥ २ ॥

अर्यमा का पूर्वा फाल्गुनी, भग का उत्तरा, फाल्गुनी सवि देव का हस्त, इन्द्र देव का चित्रा, मुझे कल्याण प्रदान करे । वायु का स्वाति, इन्द्र का राधा, और विशाखा और मित्र का अनुराधा सुखमयी होवे, इन्द्र का ज्येष्ठा और पितरो को मूल नक्षत्र हमे सुख प्रदान करें ॥ ३ ॥

जलदेव का पूर्वाषाढ मुझे सुभक्ष्य वन दें । विश्व देवताओ का उत्तराषाढ हमे अन्न प्रदान करे, ब्रह्मदेव का अभिजित नक्षत्र सुखमयी होवे । विष्णु का श्रवण, वसु का धनिष्ठा, अजैक-पाद का पूर्वा, भाद्रपद और अहिर्बुध्न्य का उत्तरा भाद्रपद हमको अत्यधिक फलो से भी युक्त करें । पूषा का रेवती और अश्विद्वय का अश्वयुक्त नक्षत्र मुझे सौभाग्यो करें । यम का भरणी नक्षत्र मुझे यश प्रदान करें । ४ ८ ॥

सूक्त (८)

(ऋषि—गार्ग्य । देवता—नक्षत्राणि । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

यानि नक्षत्राणि दिव्यन्तरिक्षे अप्सु भूमौ यानि नगेषु दिक्षु ।
प्रकल्पयश्चन्द्रमा यान्येति सर्वाणि ममैतानि शिवानि सन्तु ॥ १ ॥
अष्टाविंशानि शिवानि शग्मानि सह योग भजन्तु मे ।
योग प्र पद्ये क्षेम च क्षेम प्र पद्ये योग च
नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु ॥ २ ॥
स्वस्तितं मे सुप्रातः सुसायं सुदिवं सुमृगं सुशकुनं मे अस्तु ।
सुहवमग्ने स्वस्त्यमर्त्यं गत्वा पुनरायाभिनन्दन् ॥ ३ ॥

अनुहवं परिहवं परिवादं परिक्षवम् ।
सर्वैर्मे रिक्तकुम्भान् परा तान्त्सवितः सुव ॥ ४ ॥

अपपापं परिक्षवं पुण्यं भक्षीमहि क्षवम् ।
शिवा ते पाप नासिकां पुण्यगश्चाभि मेहताम् ॥ ५ ॥

इमा या ब्रह्मणस्पते विषूच वांत ईरते ।
सध्रीचीरिन्द्र ताः कृत्वा मह्यं शिवतमास्कृधि ॥ ६ ॥

स्वस्ति नो अस्त्वभयं नो अस्तु नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु ॥ ७ ॥

आकाश, अ तरिक्ष, पृथ्वी, जल, पर्वत एवं दिशाओं में नक्षत्र देखे जाते हैं । चन्द्रमा जिन्हें प्रदीप्त करता प्रकट होता है वे सभी मिलकर मुझे सुख प्रदान करें ॥ १ ॥

सुख देने वाले अठठाईस नक्षत्र मुझे समान बुद्धि रूप फल देवें । नक्षत्रों के योग से मैं अप्राप्य वस्तु को पाऊं तथा प्राप्त वस्तु की रक्षा करने योग्य बनूं । दिवस-रात्रि को मेरा नमस्कार है ॥ २ ॥

प्रात मुझे सुखदायी हो । तथा सांय और दिवस और रात्री भी सुखदायी हो मैं जिसमें गति वह उसमें हरिन आदि शुभ योग मेरे अनुरूप होवें । हे अग्ने ! हवि परम नक्षत्रों को हवि पहुँचाओ ॥ ३ ॥

हे सविता देव ! सब नक्षत्रों युक्त तुम शोक, परिहव, कटु एवं कठोर भाषण, वर्जित स्थल प्रवेश, खाली पात्र और छींक आदि अपशकुन और बुरे कारणों को हमसे दूर रखो ॥ ४ ॥

अशुभ कारी छींक हमसे दूर रहे । धन के लिए, श्रृगाल दर्शन, नंपुसकदर्शन, निषिद्ध है, यह सभी हमारे पाक शमनी होवे ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! आँधी के वेग से युक्त दिशाओं को मुझ कल्याण कारी करो ॥ ६ ॥

हमारा भय नष्ट हो। दिन और रात्री को हमारा प्रणाम है। हमको सभी। मगलकारी होवें ॥ ७ ॥

सूक्त (६)

(ऋषि—शन्ताति देवता मन्त्रोक्ता । छन्द—बृहती, अनुष्टुप प्रभृति)

शान्ता द्यौ शान्ता पृथिवी शान्तमिदमुर्वन्तरिक्षम् ।
शान्ता उदन्वतीराप शान्ता न सन्त्वोषधी ॥ १ ॥
शान्तानि पूर्वरूपाणि शान्त नो अस्तु कृताकृतम् ।
शान्त भूत च भव्य च सर्वमेव शमस्तु न ॥ २ ॥
इय या परमेष्ठिनी वाग देवी ब्रह्मसशिता ।
ययैव ससृजे घोर तयैव शान्तिरस्तु न ॥ ३ ॥
इद यत् परमेष्ठिन मनो वां ब्रह्मसंशितम् ।
येनैव ससृजे घोर तेनैव शान्तिरस्तु न ॥ ४ ॥
इमानि यानि पचेन्द्रियाणि मन षष्ठानि मे हृदि ब्रह्मणासशितानि ।
यैरेव ससृजे घोर तैरेव शान्तिरस्तु न ॥ ५ ॥
श नो मित्र श वरुण श विष्णु श प्रजापति ।
श न इन्द्रो बृहस्पति श नो भवत्वर्यमा ॥ ६ ॥
श नो मित्र श वरुण श विवस्वाछमन्तक ।
उत्पाता पार्थिवान्तरिक्षा श नो दिविचरा ग्रहा ॥ ७ ॥
श नो भूमिर्वेप्यमाना शमुल्का निर्हत च यत् ।
श गावो लोहितक्षीरा, श भूमिरव तीर्यती ॥ ८ ॥

नक्षत्रमुल्कामिहत शमस्तु न श नोऽभिचाराः शमु सन्तु कृत्या.।
श नो निखाता वल्गाः शमुल्का देशोपसर्गाः शमु नो भवन्तु ॥ ९ ॥
श नो ग्रहाश्चान्द्रमसा शमादित्यश्च राहुणा ।
शं नो मृत्युर्धूमकेतु श रुद्रास्तिग्मतेजसः ॥ १० ॥
श रुद्रा श वसवः शमादित्या शमग्नयः ।
श नो महर्षयो देवा श देवा श बृहस्पति. ॥ ११ ॥
ब्रह्म प्रजापतिर्धाता लोका वेदाः सप्तऋषयोऽग्नय ।
तैर्मे कृत स्वस्त्ययनमिन्द्रो मे शर्म यच्छतु ब्रह्मा मे शर्म यच्छतु ।
विश्वे मे देवाः शर्म यच्छन्तु सर्वे मे देवा. शर्म यच्छन्तु ॥ १२ ॥
यानि कानि चिच्छान्तानि लोके सप्तऋषयो विदु ।
सर्वाणि श भवन्तु मे श अस्त्वभय मे अस्तु ॥ १३ ॥
पृथिवी शान्तिरन्तरिक्ष शान्तिद्यौ शान्तिराप शान्तिरोषधयः शान्तिर्वनस्पतय. शान्तिर्विश्वे मे देवा शान्ति सर्वे मे देवा शान्तिः शान्ति शान्तिः शान्तिभिः । ताभि शान्तिभि सर्व शान्तिभिः शमयामोऽहं यदिह घोर यदिह क्रूर यदिह पाप तच्छान्तं तच्छिव सर्वमेवशमस्तु न ॥ १४ ॥

द्युलोक हमें सुखमयी होवे विशाल पृथ्वी एव अन्तरिक्ष भी हमे सुखमयी होवे। समुद्र के जल व ओषधियाँ हमे शान्ती प्रदान करें ॥ १ ॥

कार्य कारण और कठिन कार्य भी सुख मयी होवें। मेरे पूर्व कर्म के पाप, दुष्कर्म, व्यभिचार भी शान्त को प्राप्त होवें।

मरुदगण युक्त देव हमें कल्याण प्रद होवें। जल तथा वायु हमको शान्ति प्रदान करें। ६ ॥

भय के रक्षक सविता देव, उषा की अभिमानी देवता विभाति, वर्षामयी पर्जन्य और क्षेत्र पालक हमको मंगलकारी बनें ॥ १० ॥

सूक्त (११)

(ऋषि—वशिष्ठ । देवता—मन्त्रोक्ता छन्द—त्रिष्टुप्)

शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः ।
शं न ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु ॥ १ ॥
शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु ।
शमभिषाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो अप्याः ॥ २ ॥
शं नो अज एकपाद् देवो अस्तु शमहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः ।
शं नो अपां नपात् पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपा ॥ ३ ॥
आदित्या रुद्रा वसवो जुषन्तामिदं ब्रह्म क्रियमाणं नवीयः ।
शृण्वन्तु नो दिव्याः पार्थिवासो गोजाता उत ये यज्ञियासः ॥ ४ ॥
ये देवानामृत्विजो यज्ञियासो मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥
तदस्तु मित्रावरुणा तदग्ने शं योरस्मभ्यमिदमस्तु शस्तम् ।
अशीमहि गाधमुत प्रतिष्ठां नमो दिवे बृहते सादनाय ॥ ६ ॥

सत्य को निभाने वाले देव मंगलमयी होवें। गवाश्व शान्तिदायक होवें। ऋभु और पितर हमारी स्तुतियों से प्रसन्न होकर हमें सुख मयी बनावें ॥ १ ॥

अनेक स्तोत्रमयी देवगण हमको कल्याण मयी होवें। सरस्वती और विश्वदेव हमे सुखी करें। आकाश पृथ्वी, और जल से उत्पन्न देव भी हमारी रक्षा करें॥ २॥

अजकपाद देव हमे शान्ति देवें। अहिबुध्न्य, अपान्नपात देव, समुद्र और मरुतो की माता पृश्नि ये सभी मगलमयी कर ॥ ३॥

आदित्य रुद्र, और वसुदेव इस स्तोत्र को ग्रहण कर। यज्ञार्ह द्युलोक और पृथ्वी के देवगण हमारे इस नव स्तोत्र का श्रवण करें॥ ४॥

देवताओ के ऋत्विज, यज्ञार्ह, मनुत्र, तथा अमृतत्व पायी देवगण हमको अत्यधिक यशस्वी बनावें। हे देवगणो! हमारी कल्याणमयी साधनो से रक्षा करो ।५॥

हे दिनभिमानी मित्र देव! हे राज्यभिमानी वरुण! हमे रोग शांति और भय दूर का वरदान दो। हम खेत आदि को प्राप्त करें। आकाश तथा सर्वाश्रम मयी पृथ्वी को हमारा प्रणाम है॥ ६॥

सूक्त (१२)

(ऋषि—वसिष्ठ। देवता—उषा। छन्द—त्रिष्टुप्)

उषा अप स्वसुस्तमः स वर्तयति वर्तनि सुजातता ।
अय वज देवहितं सनेम मदेम शतहिमा सुवीरा. ॥ १ ॥

अपनी बहन रात्रि के अन्धकार को, उषा आते ही नष्ट कर देती है। अपनी प्रकाशित हुई इहलोक और पारलोकिक मार्गों को दिखाती है। उषा से हम हव्यरूप अन्न प्राप्त करें। हम इससे अपत्य मयी होकर सैकडो हेमन्तो तक का जीवन प्राप्त करे ॥ १॥

सूक्त (१३)

(ऋषि—अप्रतिरथः । देवता—इन्द्र. । छन्द—त्रिष्टुप्)

इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ वृषाणौ चित्रा इमा वृषभौ पारयिष्णू ।
तौ योक्षे प्रथमो योग आगते याभ्यां जितमसुराणां
स्वर्यत् ॥ १ ॥
आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः
क्षोभणश्चर्षणीनाम् ।
सक्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अजयत्
साकमिन्द्रः ॥ २ ॥
सक्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुनाऽयोध्येन दुश्च्यवनेन धृष्णुना ।
तदिन्द्रेण जयत तत् सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन
वृष्णा ॥ ३ ॥
स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी संस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन ।
संसृष्टजित् सोमपा बाहुशर्ध्यु ग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥ ४ ॥
बलविज्ञाय. स्थविर प्रवीर सहस्वान् वाजी सहमान उग्र. ।
अभिवीरो अभिषत्वा सहोजिज्जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ
गोविदन् ॥ ५ ॥
इम वीरमनु हर्षध्वमुग्रमिन्द्र सखायो अनु स रभध्वम् ।
ग्रामजितं गोजितं वज्रबाहु जयन्तमज्म
प्रमृणन्तमोजसा ॥ ६ ॥
अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदाय उग्र शतमन्युरिन्द्र ।
दुश्च्यवन. पृतनाषाडयोध्योऽस्माक सेना अवतु प्र युत्सु ॥ ७ ॥
बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्रा अपबाधमान ।
प्रभञ्जञ्छत्रून् प्रमृणन्नमित्रानस्माकमेध्यविता
तनूनाम् ॥ ८ ॥

इन्द्र एषां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञ पुर एतु सोमः ॥ ६ ॥
देवसेनानामभिभजतीनां जयन्तीनां मरुतो शर्ध उग्रम् ।
महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां
जयतामुदस्थात् ॥ १० ॥
अस्माकमिन्द्र समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु ।
अस्माक वीरा उत्तरे भवन्त्वस्मान् देवासोऽवता
हवेषु ॥ ११ ॥

मैं राक्षसों को जीतने वाली इन्द्र की भुजाओं को पूजती हूँ; जो आयुध और अभीष्ट वर्षक है ॥ १ ॥

द्रुत कर्मा, बुद्धि को तेज करने वाला, भयंकर, विजली प्रेरक. शत्रुनाशक, स्वयम् ही इन्द्र शत्रुसैन्य पर विजय पाने वाले है। हम अभीष्टभिलाषी उनकी ही सहायता लेते हैं ॥ २ ॥

विजय शील, रणक्षेत्रशक्त, वैरियों को रुलाने वाले, धनुर्धारी, अभीष्ट दाता, इन्द्र की सहायता से विजय रूपी लक्ष्मी को ग्रहण करो। हे वीरो! उन्हीं के अनुग्रह से शत्रु को वश मे करो ॥ ३ ॥

खंगधारी, वाण धारी, वीरों सहित इन्द्र शत्रु का सामना करते हैं और युद्धाभिलाषी शत्रुओं पर विजय पाते हैं। ये सोम पान करने वाले, विशाल धनुष युक्त भुजबल मे प्रवृद्ध और शत्रुनाशक है। हे रणवीरो! इन्द्र की सहायता से विजयी बनो ॥ ४ ॥

यह इन्द्र महाबली, अन्नयुक्त, धनयुक्त, शत्रु विजयी वीरों अर से युक्त है। हे इन्द्र! तुम इन गुणों से युक्त होते हुए रथ पर सवार होवें ॥ ५ ॥

हे समान कर्म और मति युक्त वीरो ! तुम इन्द्रादि को आगे कर वीरता सहित शत्रुओं का संहार करो। इन्द्र शत्रु के ग्रामों, गावों और अन्नादि धनों को जीतने वाला है और इनकी भुजायें वज्र के समान हैं। ये अपने पराक्रम द्वारा शत्रु का संहार करते हैं ॥ ६ ॥

ये शत्रुओं की सेना में विरते हुए के समान घुस जाते हैं और वश में कर लेते हैं। ये हमारी सैन्य के रक्षक होवें चूंकि इनका कोई भी सामना करने में समर्थ नहीं ॥ ७ ॥

इन्द्र देव पालक है। हे इन्द्र ! तुम शत्रुमर्दन के लिए हमारे रथ पर सवार होओ और शत्रुओं तथा अमित्रों का संहार करो ॥ ८ ॥

इन्द्र शत्रुविजयी हमारी सेनाओं के स्वामी बनें। बृहस्पति पूर्व में सोम और यज्ञ दक्षिणा में और मरुद्गण इनके मध्य मार्ग में चलें ॥ ९ ॥

शस्त्रास्त्र की वर्षा करने वाले इन्द्र, शत्रु को भगाने वाले वरुण, मरुद्गण और आदित्य शत्रुओं को वश में करने वाली शक्ति सहित प्रकट होवें। और देवताओं का इस संसार में यश फैल जाय ॥ १० ॥

युद्धावसर पर इन्द्र हमको रक्षा प्रदान करें। हमारे आयुध शत्रु विजयी हों। हमारे आयुध शत्रु विजयी हों। हमारे सैनिक विजय युक्त उल्लासित होंव। हे देवताओ संग्राम भूमि में तुम हमारे रक्षक बनो ॥ ११ ॥

सूक्त (१४)

(ऋषि—अथर्वा । देवता - द्यावापृथिव्यौ । छन्द-त्रिष्टुप्)

इदमुच्छ्रेयोऽवसानमागां शिवे मे द्यावापृथिवी अभूताम् ।

असपत्ना: प्रदिशो मे भवन्तु न वै त्वा द्विष्मो अभयं नो अस्तु ॥ १ ॥

श्रेष्ठ फल रूप लक्ष्य को मैंने पा लिया है। आकाश, पृथ्वी मंगलमयी तथा चारों दिशायें निरूपद्री होवें। हे सम्पत्न ! हम तुम्हारे द्वेषी नहीं अतः हमें अभय प्रदान करो ॥ १ ॥

सूक्त (१५)

(ऋषि—अथर्वा। देवता—इन्द्र, मन्त्रोक्ता:। छन्द—बृहती; जगती-पंक्ति; त्रिष्टुप्)

यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि ।
मघवंछग्धि तव त्वं न ऊतिभिर्वि द्विषो वि मृधो जहि ॥ १ ॥
इन्द्रं वयमनूराधं हवामहेऽनु राध्यास्म द्विपदा चतुष्पदा ।
मा नः सेना अररुषीरुप गुर्विषूचीरिन्द्र द्रुहो वि नाशय ॥ २ ॥
इन्द्रस्त्रातोत वृत्रहा परस्फानो वरेण्यः ।
स रक्षिता चरमतः स मध्यतः स पश्चात् स पुरस्तान्नो अस्तु ॥ ३ ॥
उरुं नो लोकमनु नेषि विद्वान्त्स्वर्यज्ज्योतिरभयं स्वस्ति ।
उग्रा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू उप क्षयेम शरणा बृहन्ता ॥ ४ ॥
अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे ।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥ ५ ॥
अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात् ।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! तुम अभय दाता हो। हमारे भय को दूर करो। तुम रक्षा साधनों से हमारी रक्षा करो ॥ १ ॥

हम इन्द्र की कामना पूर्ति को बुलाते हैं। शत्रु सेना जो कि हमारे दुपाये, चौपायों की अभिलाषा पूर्ति में बाधक होती है दूर रहे। हे इन्द्र! हमारे शत्रु को नष्ट करो ॥ २ ॥

वृत्रासुर को ताड़ने वाले इन्द्र हमारी रक्षा करें। स्वर्ग में प्रकाशमान सूर्य हमें कल्याण देता हुआ अभय प्रदान करें। हे इन्द्र! तुम्हारी महाबली भुजाओं को पाकर हम शत्रुओं का संहार करें। ३ ४ ॥

आकाश तथा अन्तरिक्ष हमें अभय दाता होवे। चारों दिशायें भी हमें सब ओर से अभय प्रदान करें ॥ ५ ॥

मित्रों से और शत्रुओं से हम अभयी बनें। प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार के शत्रु ही हमें भयभीत न कर सकें। दिवस, रात्री, और सम्पूर्ण दिशायें मुझे अभय प्रदान करें और मित्रवत हितकारी होवें ॥ ६ ॥

सूक्त (१६)

(ऋषि—अथर्वा। देवता—मन्त्रोक्ता। छन्द—अनुष्टुप्; शक्वरी)

असपत्नं पुरस्तात् पश्चान्नो अभयं कृतम्। सविता मा दक्षिणत-उत्तरान्मा शचीपतिः ॥ १ ॥

दिवो मादित्या रक्षन्तु भूम्या रक्षन्त्वग्नयः।
इन्द्राग्नी रक्षतां मा पुरस्तादश्विनावभितः शर्म यच्छताम्।
तिरश्चीनघ्न्या रक्षतु जातवेदा भूतकृतो मे सर्वतः सन्तु वर्म ॥ २ ॥

हे सविता देव! हे सपत्निक देवो! पूर्व, पश्चिम दिशाओं को शत्रु रहित करो। उत्तर में इन्द्र और दक्षिण में सूर्य देव हमको रक्षा प्रदान करें ॥ १ ॥

सूर्य मण्डल मे आदित्य हमारी रक्षा करें, पृथ्वी पर अग्नि, पूर्व दिशा में इन्द्राग्नि मेरे रक्षक होवें। दिशाओ मे अग्नि रक्षक हो। वे भूत और पिशाचो से रक्षा करें ॥ २ ॥

सूक्त (१७)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—मन्त्रोक्ता । छन्द—जगती, शक्वरी)

अग्निर्मा पातु वसुभि पुरस्तात् तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि। स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मान परि-ददे स्वाहा ॥ १ ॥

वायुर्मान्तरिक्षेणैतस्या दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुर प्रैमि। स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मान परिददे स्वाहा ॥ २ ॥

सोमो मा रुद्रैर्दक्षिणाया दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि। स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ ३ ॥

वरुणो मादित्यैरेतस्या दिश. पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुर प्रैमि। स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ ४ ॥

सूर्यो मा द्यावापृथिवीभ्यां प्रतीच्या दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि। स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मान परि ददे स्वाहा ॥ ५ ॥

आपो मौषधीमतीरेतस्या दिशः पान्तु तासु क्रमे तासु श्रये तां पुरं प्रैमि। त मा रक्षन्तु ता मा गोपायन्त ताभ्य आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ ६ ॥

विश्वकर्मा मा सप्तऋषिभिरुदीच्या दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि । स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ ७ ॥

इन्द्रो मा मरुत्वानेतस्या दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि । स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ ८ ॥

प्रजापतिर्मा प्रजननवान्त्सह प्रतिष्ठाया ध्रुवाया दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि । स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ ९ ॥

बृहस्पतिर्मा विश्वैर्देवैरूर्ध्वाया दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि । स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ १० ॥

पृथ्वी पर अग्नि और पूर्व में वसु मेरी रक्षा करें। पाद-प्रक्षेप और पाद-प्रक्षेप के स्थान में जहाँ जाऊँ अग्नि मेरी रक्षा करें। मैं रक्षा के लिए उनका सहारा लेता हूँ ॥ १ ॥

अन्तरिक्ष और पूर्व दिशा में वायु मुझे रक्षा प्रदान करे। पाद-प्रक्षेप और पाद प्रक्षेप के स्थान पर जहाँ भी मैं जाऊँ वायु मेरी रक्षा करे। मैं अपनी रक्षा निमित्त उनकी शरण लेता हूँ ॥ २ ॥

सोम और इन्द्र दक्षिण में मेरी रक्षा करें। पाद-प्रक्षेप एवं पाद-प्रक्षेप के स्थान पर भी मेरी रक्षा करें। जाने वाली शय्या पर सोम मेरे रक्षक होवें। मैं अपनी रक्षा निमित्त उनका आश्रय लेता हूँ ॥ ३ ॥

आदित्यों सहित वरुण मेरी रक्षा दक्षिण दिशा मे करें। पाद-प्रक्षेप और पाद-प्रक्षेप के स्थानों पर वे मेरे रक्षक होवें।

शय्या रूप पुर मे वे मेरे रक्षक थे, मैं अपनी रक्षा का कार्य उन्हें सोंपता हूँ। ४ ॥

द्यावा पृथ्वी युक्त सूर्य मेरे पश्चिम दिशाओं रक्षक होवें। पाद-प्रक्षेप और पाद-प्रक्षेप के स्थान में सूर्य रक्षा करें तथा शय्या रूप पुर में भी रक्षा करें। मैं अपनी रक्षार्थ सूर्य को सोंपता हूँ। ५ ॥

औषधि रूप जल इस दिशा में मेरी रक्षा करें। पाद-प्रक्षेप और पाद प्रक्षेप के स्थानो मे तथा शय्या रूप पुर में जल ही मेरी रक्षा करें। जल के लिए मैं अपने को सोंपता हूँ ॥ ६ ।

परमेश्वर सप्तऋषियों युक्त उत्तर दिशा मे मेरे रक्षक होवें। पाद प्रक्षेप और पाद-प्रक्षेप के स्थानो मे तथा शय्या रूप पुर मे ये मेरी रक्षा करें। अपनी रक्षा निमित्त मैं उनकी शरण लेता हूँ ॥ ७ ॥

मरुद्गण सहित इन्द्र उत्तर दिशा मे मेरी रक्षा करें। पाद-प्रक्षेप और पाद-प्रक्षेप के स्थानो तथा शय्या रूपी पुर मे वे मेरी रक्षा का कार्य सम्पन्न करें। मैं अपनी रक्षा के निमित्त उनकी शरण लेता हूँ। ८ ॥

प्रजापति ध्रुव दिशा मे मेरी रक्षा करें। पाद-प्रक्षेप और पाद-प्रक्षेप के स्थानो तथा शय्या रूप पुर मे प्रजापति हमारी रक्षा करें। मैं अपनी रक्षा निमित्त उनकी शरण मे जाता हूँ ॥ ९ ॥

हे देव हितैषी वृहस्पति देव देवगण युक्त उर्ध्व दिशा मे मुझे रक्षा प्रदान करें। पाद-प्रक्षेप और पाद-प्रक्षेप के स्थानो तथा शय्या रूप पुर में वे मेरी रक्षा करें। मैं अपनी रक्षा निमित्त उनका आश्रय लेता हूँ ॥ १० ॥

सूक्त (१८)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—मन्त्रोक्ता । छन्द—अनुष्टुप्)

अग्नि ते वसुवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायव प्राच्या दिशोऽभिदासात् ॥ १ ॥
वायु तेऽन्तरिक्षवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासात् ॥ २ ॥
सोम ते रुद्रवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायवो दक्षिणाया दिशोऽभिदासात् ॥ ३ ॥
वरुण त आदित्यवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासात् ॥ ४ ॥
सूर्यं ते द्यावापृथिवीवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायव प्रतीच्या दिशोऽभिदासात ॥ ५ ॥
अपस्त ओषधीमतीर्ऋच्छन्तु ।
ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासात् ॥ ६ ॥
विश्वकर्माण ते सप्तऋषिवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायव उदीच्या दिशोऽभिदासात् ॥ ७ ॥
इन्द्र ते मरुत्वन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायवो एतस्या दिशोऽभिदासात् ॥ ८ ॥
प्रजापतिं ते प्रजननवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायवो ध्रुवाया दिशोऽभिदासात् ॥ ९ ॥
बृहस्पतिं ते विश्वदेववन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायव ऊर्ध्वाया दिशोऽभिदासात् ॥ १० ॥

दूसरों की हिंसाभिलाषी शत्रु मुझे रात्रि में अनुष्ठान

करने वाले को पूर्व की ओर से आकर हिंसा करना चाहते हैं वे वशुंवत अग्नि मे गिरकर नष्ट होवें ॥ १ ॥

अन्य हिंसाभिलाषी जो शत्रु मुझे रात्रि में अनुष्ठान करते हुए दक्षिण दिशा से आकर मारना चाहते हैं व रुद्रवंत सोम को पा नष्ट होवे ॥ २ ॥

दूसरो की हिंसागामी जो मुझे पूर्व दिशा से आकर नष्ट करना चाहते हैं वे अन्तरिक्ष युक्त वायु को पाकर नष्ट होवें ॥ ३ ॥

हिंसा गामी जो शत्र मुझ अनुष्ठान करते हुए को दक्षिण दिशा से आ नष्ट करना चाहते हैं वे आदित्यवान वरुण के पाश को पाकर नष्ट होवें ॥ ४ ॥

दूसरो की हिंसागामी जो शत्रु मुझ रात्रि में अनुष्ठान करने वाले को पश्चिम दिशा से आ नष्ट करना चाहते हैं वे सूर्य को प्राप्त हो नष्ट होवें ॥ ५ ॥

दूसरो की हिंसा गामी जो शत्रु मुझ रात्रि में अनुष्ठान करने वाले को मारना चाहते हैं वे औषधिमय जल को पाकर नष्ट होवें ॥ ६ ॥

दूसरो की हिंसा मे प्रवृत्त जो श मुझे रात्रि में अनुष्ठान करने वाले को उत्तर दिशा से आ मारना चाहते हैं वे शत्र सर्पपि मय विश्व कर्मा द्वारा नष्ट किये जावें ॥ ७ ॥

दूसरों की हिंसा मे प्रवृत्त जो शत्रु मुझ रात्रि में अनुष्ठान करने वाले को उत्तर दिशा से आकर मारना चाहते हैं वे मरुत्वान इन्द्र द्वारा नष्ट किये जावें ॥ ८ ॥

जो पाप रूप हिंसायुक्त, शत्रु मुझ रात्रि मे अनुष्ठान करने वाले को ध्रुव दिशा से आ नष्ट करना चाहते है वे प्रजापति द्वारा नष्ट को प्राप्त होवें ॥ ६ ॥

सूक्त (१८)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—मन्त्रोक्ता । छन्द—अनुष्टुप्)

अग्निं ते वसुवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायव प्राच्या दिशोऽभिदासात् ॥ १ ॥
वायुं तेन्तरिक्षवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासात् ॥ २ ॥
सोम ते रुद्रवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायवो दक्षिणाया दिशोऽभिदासात् ॥ ३ ॥
वरुणं त आदित्यवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासात् ॥ ४ ।
सूर्यं ते द्यावापृथिवीवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायव प्रतीच्या दिशोऽभिदासात ॥ ५ ॥
अपस्त ओषधीमतीर्ऋच्छन्तु ।
ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासात् ॥ ६ ॥
विश्वकर्माणं ते सप्तऋषिवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायव उदीच्या दिशोऽभिदासात् ॥ ७ ॥
इन्द्रं ते मरुत्वन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायवो एतस्या दिशोऽभिदासात् ॥ ८ ॥
प्रजापतिं ते प्रजननवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायवो ध्रुवाया दिशोऽभिदासात् ॥ ९ ॥
बृहस्पतिं ते विश्वदेववन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायव ऊर्ध्वाया दिशोऽभिदासात् ॥ १० ॥

दूसरों को हिंसाभिलाषी शत्रु मुझे रात्रि में अनुष्ठान

करने वाले को पूर्व की ओर से आकर हिंसा करना चाहते हैं वे वशुंवत अग्नि में गिरकर नष्ट होवें ॥ १ ॥

अन्य हिंसाभिलाषी जो शत्रु मुझे रात्रि में अनुष्ठान करते हुए दक्षिण दिशा से आकर मारना चाहते हैं व रुद्रवत सोम को पा नष्ट होवे ॥ २ ॥

दूसरो की हिंसागामी जो मुझे पूर्व दिशा से आकर नष्ट करना चाहते हैं वे अन्तरिक्ष युक्त वायु को पाकर नष्ट होवें ॥ ३ ॥

हिंसा गामी जो शत्रु मुझ अनुष्ठान करते हुए को दक्षिण दिशा स आ नष्ट करना चाहते हैं वे आदित्यवान वरुण के पाश को पाकर नष्ट होवें ॥ ४ ॥

दूसरो की हिंसागामी जो शत्रु मुझ रात्रि मे अनुष्ठान करने वाले को पश्चिम दिशा से आ नष्ट करना चाहते है वे सूय को प्राप्त हो नष्ट होवें ॥ ५ ॥

दूसरो की हिंसा गामी जो शत्रु मुझ रात्रि में अनुष्ठान करने वाले को मारना चाहते हैं वे औषधिमय जल को पाकर नष्ट होवें ॥ ६ ॥

दूसरो की हिंसा मे प्रवृत्त जो श मुझे रात्रि मे अनुष्ठान करने वाले को उत्तर दिशा से आ मारना चाहते हैं वे शत्र सप्तर्षि मय विश्व कर्मा द्वारा नष्ट किये जावें ॥ ७ ॥

दूसरों की हिंसा मे प्रवृत्त जो शत्रु मुझ रात्रि मे अनुष्ठान करने वाले को उत्तर दिशा से आकर मारना चाहते हैं वे मरुत्वान इन्द्र द्वारा नष्ट किये जावें ॥ ८ ॥

जो पाप रूप हिंसायुक्त, शत्रु मुझ रात्रि मे अनुष्ठान करने वाले को ध्रुव दिशा से आ नष्ट करना चाहते हैं वे प्रजापति द्वारा नष्ट को प्राप्त होवें ॥ ९ ॥

जो पाप रूप शत्रु मुझ रात्रि अनुष्ठानी को मारने की कामना से उर्द्ध दिशा से आकर नष्ट करना चाहते हैं वे बृहस्पति से नष्ट किए जावें ॥ १० ॥

सूक्त (१९)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—मन्त्रोक्ता । छन्द—बृहती, पङ्क्ति)

मित्रः पृथिव्योदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥ १ ॥
वायुरन्तरिक्षेणोदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥ २ ॥
सूर्यो दिवोदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥ ३ ॥
चन्द्रमा नक्षत्रैरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥ ४ ॥
सोम ओषधीभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥ ५ ॥
यज्ञो दक्षिणाभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा [illegible] सा वः शर्म च वर्म च

समुद्रो नदीभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च
यच्छतु ॥ ७ ॥
ब्रह्म ब्रह्मचारिभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत ता प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च
यच्छतु ॥ ८ ॥
इन्द्रो वीर्येणोदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च
यच्छतु ॥ ९ ॥
देवा अमृतेनोदक्रामंस्तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा व. शर्म च वर्म च
यच्छतु ॥ १० ॥
प्रजापतिः प्रजाभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च
यच्छतु ॥ ११ ॥

मित्र नाम वाले अग्निदेव अपने आश्रय स्थान पृथ्वी से जिस पुर की रक्षा को उठते हैं उस शय्या पुर में तुम प्रजावान, पत्नीवान् राजा को प्रविष्ट कराता हूँ। तुम इन्द्र द्वारा रक्षित उस पुर मे शय्या, भवन आदि ग्रहण करो। वह पुरी आपको अभेद्य कवच वत रक्षक है ॥ १ ॥

वायु अपने स्थान अन्तरिक्ष से जिसपुर की रक्षा निमित्त चलता है वह पूर्ण रुपेण वायु से रक्षित है। उस शय्या आदि युक्त पुर मे मैं तुम प्रजा पत्नी युक्त राजा को प्रवेश करता हूँ। तुम उसमें जाकर शय्या, भवन आदि ग्रहण करो। यह पुर कवच वत सुखदायी है ॥ २ ॥

आदित्य अपने स्थान स्वर्ग से जिस पुर की रक्षा निमित्त उदय होते हैं वह पूर्ण रूपेण उससे रक्षित है। उस शय्या, भवन आदि से युक्त पुर में मैं प्रजा तथा पत्नी युक्त तुमको प्रवेश कराता हूँ। तुम्हारे निवास को वह अभेद्य कवच की तरह सुखदायी है ।३।

जिस पुर की रक्षा को नक्षत्रवान चन्द्रमा उदय को प्राप्त होते हैं वह पूर्णरूप से उनके द्वारा रक्षित है। अतः शय्या, भवन आदि से युक्त पुरमे प्रजा तथा सपत्नीक राजा को प्रवेश कराता हूँ। उसमे तुम कवच के समान सुखपूर्वक निवास करोगे ।४।।

जिसकी रक्षा को सोम औषधियां प्रकट करते हैं वह पुर उनके द्वारा पूर्ण रूप से रक्षित हैं। उस शय्या भवनादि से युक्त पुर मे मैं प्रजा पत्नी युक्त राजा को प्रवेश कराता हूँ। वह तुम्हें कवचवत सुखदायी होवें ।। ५ ।।

जिस पुर की रक्षा निमित्त दक्षिणा युक्त यज्ञ शुरु हुआ वह पुर उससे पूर्ण रूप सुरक्षित है अतः उस शय्या, भवनादि से सुसज्जित पुर में मैं प्रजा तथा पत्नीयुक्त तुम राज्यको प्रवेश करता हूँ। वह पुर अभेद्य कवचवत तुम्हें सुख प्रदान करेगा।६।

जिस पुर की रक्षा निमित्त समुद्र नदियों सहित प्रकट हुआ उस शय्या भवनादि से युक्त पुर मे मैं तुम निवास करो। मैं प्रजा और सपत्नीक राजा को प्रवेश कराता हूँ। वह तुम्हें अभेद्य कवचवत रक्षा प्रदान करें ।। ७ ।।

ब्रह्मचारियों से युक्त ब्रह्म जिस पुर की रक्षा निमित्त तत्पर हुआ ... और पत्नी युक्त राजा को प्रवेश करता हूँ ... से सुसज्जित है और अभेद्य

अपने भुजबल से इन्द्र जिस पुर की रक्षा करते हैं जो शय्या और भवनादि से सुसज्जित हैं उसमें प्रजा तथा पत्नी युक्त राजा को मैं प्रवेश करता हूँ। तुम उसमें निवास करो। वह तुमको अभेद्य कवचवत सुखदायी होवें ॥ ९ ॥

जिस पुर की रक्षा अमृत सहित देवगण करते हैं जो शय्या और भवनादि से सुसज्जित है वहाँ प्रजा और पत्नी सहित राजा को प्रवेश कराता हूँ। वह पुर तुम्हारे लिए अभेद्य कवचवत सुखदायी होवें ॥ १० ॥

मनुष्य आदि प्रजाओं सहित जिस पुर की प्रजापति ने रक्षा की है जो शय्या और भवनादि से सुजज्जित हैं। उसमे प्रजा और पत्नी युक्त राजा को प्रवेश कराता हूँ। तुम वहां निवास करो। वह पुर तुमको अभेद्य कवचवत सुखदायी होवे ॥ ११ ॥

सूक्त (२०)

(ऋषि—अथर्वा। देवता—मन्त्रोक्ता। छन्द—त्रिष्टुप्, जगती, बृहती)

अप न्यधुः पौरुषेयं वधं यमिन्द्राग्नी धाता सविता बृहस्पतिः।
सोमो राजा वरुणो अश्विना यमः पूषास्मान् परि पातु मृत्योः ॥ १ ॥

यानि चकार भुवनस्य यस्पतिः प्रजापतिर्मातरिश्वा प्रजाभ्य।
प्रदिशो यानि वसते दिशश्च तानि मे वर्माणि बहुलानि सन्तु ॥ २ ॥

यत् ते तनूष्वनह्यन्त देवा द्यु राजयो देहिनः।
इन्द्रो यच्चक्रे वर्म तदस्मान् पातु विश्वतः ॥ ३ ॥

आदित्य अपने स्थान स्वर्ग से जिस पुर को रक्षा निमित्त उदय होते हैं वह पूर्ण रूपेण उससे रक्षित है। उस शय्या, भवन आदि से युक्त पुर में मैं प्रजा तथा पत्नी युक्त तुमको प्रवेश कराता हूँ। तुम्हारे निवास को वह अभेद्य कवच की तरह सुखदायी है ।३।

जिस पुर की रक्षा को नक्षत्रवान चन्द्रमा उदय को प्राप्त होते हैं वह पूणरूप से उसके द्वारा रक्षित है। अतः शय्या, भवन आदि से युक्त पुरमें प्रजा तथा सपत्नीक राजा को प्रवेश कराता हूँ। उसमें तुम कवच के समान सुखपूर्वक निवास करोगे ।४॥

जिसकी रक्षा को सोम ओषधियां प्रकट करते है वह पुर उनके द्वारा पूर्ण रूप से रक्षित हैं। उस शय्या भवनादि से युक्त पुर मे मैं प्रजा पत्नी युक्त राजा को प्रवेश कराता हूँ। वह तुम्हें कवचवत सुखदायी होवें ॥ ५ ॥

जिस पुर की रक्षा निमित्त दक्षिणा युक्त यज्ञ शुरु हुआ वह पुर उससे पूर्ण रूप सुरक्षित है अतः उस शय्या, भवनादि से सुसज्जित पुर में मैं प्रजा तथा पत्नी युक्त तुम राज्यको प्रवेश करता हूँ। वह पुर अभेद्य कवचवत तुम्हें सुख प्रदान करेगा ।६।

जिस पुर को रक्षा निमित्त समुद्र नदियों सहित प्रकट हुआ उस शय्या भवनादि से युक्त पुर में मैं तुम निवास करो। मैं प्रजा और सपत्नीक राजा को प्रवेश कराता हूँ। वह तुम्हें अभेद्य कवचवत रक्षा प्रदान करें॥ ७ ॥

ब्रह्मचारियो से युक्त ब्रह्म जिस पुर को रक्षा निमित्त तत्पर हुए उसमे प्रजा युक्त और पत्नी युक्त राजा को प्रवेश करता हूँ। वह शय्या, भवनादि से सुसज्जित है और अभेद्य कवचवत सुखदायी है ॥ ८ ॥

अपने भुजबल से इन्द्र जिस पुर की रक्षा करते हैं जो शय्या और भवनादि से सुसज्जित हैं उसमें प्रजा तथा पत्नी युक्त राजा को मैं प्रवेश करता हूँ। तुम उसमे निवास करो। वह तुमको अभेद्य कवचवत सुखदायी होवें ॥ ९ ॥

जिस पुर की रक्षा अमृत सहित देवगण करते हैं जो शय्या और भवनादि से सुसज्जित है वहाँ प्रजा और पत्नी सहित राजा को प्रवेश कराता हूँ। वह पुर तुम्हारे लिए अभेद्य कवचवत सुखदायी होवें ॥ १० ॥

मनुष्य आदि प्रजाओं सहित जिस पुर की प्रजापति ने रक्षा की है जो शय्या और भवनादि से सुजज्जित है। उसमें प्रजा और पत्नी युक्त राजा को प्रवेश कराता हूँ। तुम वहां निवास करो। वह पुर तुमको अभेद्य कवचवत सुखदायी होवे ॥ ११ ॥

सूक्त (२०)

(ऋषि—अथर्वा। देवता—मन्त्रोक्ता। छन्द—त्रिष्टुप् जगती, बृहती)

अप न्यधु. पौरुषेयं वध यमिन्द्राग्नी धाता सविता बृहस्पतिः।
सोमो राजा वरुणो अश्विना यमः पूषास्मान् परि पातु मृत्योः ॥ १ ॥

यानि चकार भुवनस्य यस्पतिः प्रजापतिर्मातरिश्वा प्रजाभ्य ।
प्रदिशो यानि वसते दिशश्च तानि मे वर्माणि बहुलानि सन्तु ॥ २ ॥

यत् ते तनूष्वनह्यन्त देवा द्यु राजयो देहिनि ।
इन्द्रो यच्चक्रे वर्म तदस्मान् पातु विश्वतः ॥ ३ ॥

आदित्य अपने स्थान स्वर्ग से जिस पुर की रक्षा निमित्त उदय होते हैं वह पूर्ण रूपेण उससे रक्षित है। उस शय्या, भवन आदि से युक्त पुर में मैं प्रजा तथा पत्नी युक्त तुमको प्रवेश कराता हूँ। तुम्हारे निवास को वह अभेद्य कवच की तरह सुखदायी है ।३।

जिस पुर की रक्षा को नक्षत्रवान चन्द्रमा उदय को प्राप्त होते हैं वह पूर्णरूप से उनके द्वारा रक्षित है। अत शय्या, भवन आदि से युक्त पुरमें प्रजा तथा सपत्नीक राजा को प्रवेश कराता हूँ। उसमें तुम कवच के समान सुखपूर्वक निवास करोगे ।४।।

जिसकी रक्षा को सोम औषधियां प्रकट करते हैं वह पुर उनके द्वारा पूर्ण रूप से रक्षित हैं। उस शय्या भवनादि से युक्त पुर मे मैं प्रजा पत्नी युक्त राजा को प्रवेश कराता हूँ। वह तुम्हें कवचवत सुखदायी होवें ॥ ५ ॥

जिस पुर की रक्षा निमित्त दक्षिणा युक्त यज्ञ शुरू हुआ वह पुर उससे पूर्ण रूप सुरक्षित है अत. उस शय्या, भवनादि से सुसज्जित पुर मे मैं प्रजा तथा पत्नीयुक्त तुम राज्यको प्रवेश करता हूँ। वह पुर अभेद्य कवचवत तुम्हें सुख प्रदान करेगा ।६।

जिस पुर की रक्षा निमित्त समुद्र नदियों सहित प्रकट हुआ उस शय्या भवनादि से युक्त पुर मे मैं तुम निवास करो। मैं प्रजा और सपत्नीक राजा को प्रवेश कराता हूँ। वह तुम्हें अभेद्य कवचवत रक्षा प्रदान करें ॥ ७ ॥

ब्रह्मचारियों से युक्त ब्रह्म जिस पुर की रक्षा निमित्त तत्पर हुए उसमे प्रजा युक्त और पत्नी युक्त राजा को प्रवेश करता हूँ। वह शय्या, भवनादि से सुसज्जित है और अभेद्य कवचवत सुखदायी है ॥ ८ ॥

अपने भुजबल से इन्द्र जिस पुर की रक्षा करते हैं जो शय्या और भवनादि से सुसज्जित हैं उसमें प्रजा तथा पत्नी युक्त राजा को मैं प्रवेश करता हूँ। तुम उसमें निवास करो। वह तुमको अभेद्य कवचवत सुखदायी होवें ॥ ९ ॥

जिस पुर की रक्षा अमृत सहित देवगण करते हैं जो शय्या और भवनादि से सुसज्जित है वहाँ प्रजा और पत्नी सहित राजा को प्रवेश कराता हूँ। वह पुर तुम्हारे लिए अभेद्य कवचवत सुखदायी होवें ॥ १० ॥

मनुष्य आदि प्रजाओं सहित जिस पुर की प्रजापति ने रक्षा की है जो शय्या और भवनादि से सुसज्जित हैं। उसमें प्रजा और पत्नी युक्त राजा को प्रवेश कराता हूँ। तुम वहां निवास करो। वह पुर तुमको अभेद्य कवचवत सुखदायी होवे ॥ ११ ॥

सूक्त (२०)

(ऋषि—अथर्वा। देवता—मन्त्रोक्ता। छन्द—त्रिष्टुप्, जगती, बृहती)

अप न्यधुः पौरुषेयं वधं यमिन्द्राग्नी धाता सविता बृहस्पतिः।
सोमो राजा वरुणो अश्विना यमः पूषास्मान् परि पातु मृत्योः ॥ १ ॥

यानि चकार भुवनस्य यस्पतिः प्रजापतिर्मातरिश्वा प्रजाभ्यः।
प्रदिशो यानि वसते दिशश्च तानि मे वर्माणि बहुलानि सन्तु ॥ २ ॥

यत् ते तनूष्वनह्यन्त देवा द्यु राजयो देहिनः।
इन्द्रो यच्चक्रे वर्म तदस्मान् पातु विश्वतः ॥ ३ ॥

वर्म मे द्यावापृथिवी वर्माहर्वर्म सूर्यः ।
वर्म मे विश्वे देवाः क्रन् मा मा प्रापत् प्रार्त चिरा ॥ ४ ॥

जिस मरण को वर्म शत्रु ने गुप्त रूप में किया है, उससे इन्द्र, अग्नि, धाता, सविता, बृहस्पति, सोम, वरुण, अश्विदय, यम और पूषा हमारे कवचधारी राजा की रक्षा कार्य करे ॥ १ ॥

प्रजापति ने प्रजा रक्षण को जो कवच बनाया है और जिनको मातरिश्वा प्रजापति और दिशा, महादिशा, अवान्तर दिशायें, रक्षार्थ कारण करती है, वे अनेक कवच होवें ॥ २ ॥

असुर युद्ध मे जिसको देवताओं ने धारण किया और इन्द्र ने भी धारण किया। वह कवच सभी ओर से हमारा रक्षक होवे ॥ ३ ॥

द्यावा, पृथ्वी, अग्नि, सूर्याग्नि मुझ युद्धमिलाषी को रक्षण-साधन रूप कवच प्रदान करें। शत्रु जैसा हमारे राजा के पास गुप्त रूप मे न जावें ॥ ४ ॥

सूक्त २१ (तीसरा अनुवाक)

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—छन्दांसि। छन्द—बृहती)

गायत्र्युष्णिगनुष्टुब् बृहती पंक्तिस्त्रिष्टुब् जगत्यै ॥ १ ॥

गायत्री छन्द, उष्णिक् छन्द, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप और जगती छन्दो को स्वाहुति हो ॥ १ ॥

सूक्त (२२)

(ऋषि—अङ्गिराः। देवता—मन्त्रोक्ताः। छन्द—जगती प्रभृति)

आङ्गिरसानामाद्यैः पञ्चानुवाकैः स्वाहा ॥ १ ॥

षष्ठाय स्वाहा ॥ २ ॥
सप्तमाष्टमाभ्यां स्वाहा ॥ ३ ॥
नीलनखेभ्यः स्वाहा ॥ ४ ॥
हरितेभ्यः स्वाहा ॥ ५ ॥
क्षुद्रेभ्यः स्वाहा ॥ ६ ॥
पर्यायिकेभ्य स्वाहा ॥ ७ ॥
प्रथमेभ्य शखेभ्य स्वाहा ॥ ८ ॥
द्वितीयेभ्य. शंखेभ्यः स्वाहा ॥ ९ ॥
तृतीयेभ्यः शखेभ्यः स्वाहा ॥ १० ॥
उपोत्तमेभ्यः स्वाहा ॥ ११ ॥
उत्तमेभ्य. स्वाहा ॥ १२ ॥
उत्तरेभ्यः स्वाहा ॥ १३ ॥
ऋषिभ्य स्वाहा ॥ १४ ॥
शिखिभ्यः स्वाहा ॥ १५ ॥
गणेभ्यः स्वाहा ॥ १६ ॥
महागणेभ्यः स्वाहा ॥ १७ ॥
सर्वेभ्योऽङ्गिरोभ्यो विदगणेभ्य स्वाहा ॥ १८ ॥
पृथक्सहस्राभ्यां स्वाहा ॥ १९ ॥
ब्रह्मणे स्वाहा ॥ २० ॥
ब्रह्मज्येष्ठा सम्भृतः वीर्याणि ब्रह्माग्रे ज्येष्ठं दिवमा ततान ।
भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे तेनर्हति ब्रह्मणा
स्पर्धितु क ॥ २१ ॥

यह आहुति अंगारसो आदि पांच अनुवाकों को स्वाहुत होवे ॥ १ ॥

षष्ठ, सप्त और अष्टम, के लिए, नील नखो के लिए,

हरितो के लिए, क्षुद्रो को, पर्यायिकों के लिए प्रथम शखो के लिए, द्वितीय, तृतीय शखो के लिए, उपोत्तमो के लिए, उत्तमो के लिए, उत्तरो के लिए ऋत्वियो के लिए, शिखियो के लिए, गणो के लिए, महागणो के लिए, विद्वान अङ्गिराग्रो के लिए पृथक् सहस्त्रो के लिए और ब्रह्मा के लिये आहुति स्वाहुत होवें ॥ २-२० ॥

सभी वीवू कर्म महाज्येष्ठ होते हैं । ये सभी कर्म वेद द्वारा सम्पन्नता प्राप्त करते हैं । ब्रह्म ने पहले आकाश का विस्तार किया । समस्त प्राणियां मे ब्रह्म सर्व प्रथम हुये अतः उनकी समानता कोई नही कर सकता है ॥ २१ ॥

सूक्त (२३)

(ऋषि—अथर्वा—देवता—मन्त्रोक्ता । छन्द.—वृहती त्रिष्टुप्, पंक्ति, गायत्री, जगती)

आथर्वणानां चतुऋचेभ्य स्वाहा ॥ १ ॥
पञ्चर्चेभ्य स्वाहा ॥ २ ॥
षड्चेभ्य स्वाहा ॥ ३ ॥
सप्तर्चेभ्य स्वाहा ॥ ४ ॥
अष्टर्चेभ्य स्वाहा ॥ ५ ॥
नवर्चेभ्य स्वाहा ॥ ६ ॥
दशर्चेभ्य स्वाहा ॥ ७ ॥
एकादशर्चेभ्य स्वाहा ॥ ८ ॥
द्वादशर्चेभ्य स्वाहा ॥ ९ ॥
त्रयोदश र्चेभ्यः स्वाहा ॥ १० ॥
चतुर्दशर्चेभ्य स्वाहा ॥ ११ ॥
पञ्चदशर्चेभ्य स्वाहा ॥ १२ ॥

षोडशर्चेभ्यः स्वाहा ॥ १३ ॥
सप्तदशर्चेभ्य स्वाहा ॥ १४ ॥
अष्टादशर्चेभ्य स्वाहा ॥ १५ ॥
एकोनविंशति स्वाहा ॥ १६ ॥
विंशतिः स्वाहा ॥ १७ ॥
महत्काण्डाय स्वाहा ॥ १८ ॥
तृचेभ्यः स्वाहा ॥ १९ ॥
एकर्चेभ्य स्वाहा ॥ २० ॥
क्षुद्रेभ्यः स्वाहा ॥ २१ ॥
एकानृचेभ्य· स्वाहा ॥ २२ ॥
रोहितेभ्यः स्वाहा ॥ २३ ॥
सूर्याभ्य स्वाहा ॥ २४ ॥
व्रात्याभ्या स्वाहा ॥ २५ ॥
प्राजापत्याभ्यां स्वाहा ॥ २६ ॥
विषासह्यै स्वाहा ॥ २७ ॥
मगलिकेभ्यः स्वाहा ॥ २८ ॥
ब्रह्मणे स्वाहा ॥ २९ ॥
ब्रह्मज्येष्ठा सम्भृता वीर्याणि ब्रह्माग्रे ज्येष्ठं दिवमा ततान ।
भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे तेनार्हति ब्रह्मणा
स्पर्धितुं क. ॥ ३० ॥

आथर्वणो की चारो भुजाओ को, पाँच ऋचाओ को छं ऋचाओ को, सप्त ऋचाओ को, आठ ऋचाओ को, नौ ऋचाओ को, दश ऋचाओ को, ग्यारह ऋचाओ को, बारह ऋचायो, तेरह ऋचाओ को, चौदह ऋचाओ को, पन्द्रह ऋचाओ को, सोलह ऋचाओ को सत्तरह ऋचाओ को, अठारह ऋचाओ को, उन्नीस ऋचाओ को, बीस ऋचाओ को, महत्काण्डो को,

तृचों को, एकर्चो को, क्षुद्रों को, एकानृचों को, रोहितों को, सूर्यों को, व्रात्यों को, प्राजापात्यों को, विपासहि मांगलिकों को और ब्रह्मा को स्वाहुत हो ॥ १-२३ ॥

सभी वेद कर्म ज्येष्ठ होते हैं। ब्रह्मा ने ही आकाश का सर्व प्रथम उत्पन्न हो विस्तार किया। अत कोई भी मनुष्य या देव उनकी समानता कैसे कर सकता है ॥ १० ॥

सूक्त (२४)

ऋषि—अथर्वा। देवता - मन्त्रोक्ता:। छन्द—अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, गायत्री।

येन देव सवितार परि देवा अधारयन्।
तेनेम ब्रह्मणस्पते परि राष्ट्राय धत्तन ॥ १ ॥
प रीममिन्द्रमायुषे महे श्रोत्राय धत्तन।
यथन जरसे नयां ज्योक् श्रोत्रेऽधि जागरन् ॥ २ ॥
परीम सोममायुषे महे श्रोत्राय धत्तन।
यथैनं जरसे नयां योक् श्रोत्रेऽधि जागरत् ॥ ३ ॥
परि धत्त धत्त नो वर्चसेम जरामृत्यु कृणुत दीर्घमायु.।
बृहस्पतिः प्रायच्छद् वास एतत् सोमाय राज्ञे परिधात वा उ ॥ ४ ॥
जरां सु गच्छ परि धत्स्व वासो भवा गृष्टीनामभिशस्तिपा उ।
शत च जीव शरद पुरूची रायश्च पोषमुपसंव्ययस्व ॥ ५ ॥
परीद वासो अधिथाः स्वस्तयेऽभूर्वापीनामभिशस्तिपा उ।
शत च जीव शरद. पुरूचीर्वसूनि चारुर्वि भजासि जीवन् ॥ ६ ॥
योगेयोगे तवस्तर वाजेवाजे हवामहे।
सखाय इन्द्रमूतये ॥ ७ ॥

हिरण्यवर्णो अजरः सुवीरो जरामृत्युः प्रजया सं विशस्व ।
तदग्निराह तदु सोम आह बृहस्पतिः सविता तदिन्द्रः ॥ ८ ॥

देवो ने जिस आदित्य को धारण किया, उस शत नाश रूप हे ब्रह्मणस्पते ! इस महान शान्ति कर्म वाले यजमान को राष्ट्र रक्षा को प्रतिष्ठित करो । १ ।

हे ऐश्वरयुक्त इन्द्र ! तुम साधक को परोपकार और आयु के निमित्त क्षात्र बल सम्पन्न करो। जिससे यह शान्ति कर्मी यजमान चिरकाल जीवी बने। यह शत्रुओ पर विजय पावे ॥ २ ।

हे वस्त्राभिमानी देव सोम ! इस शान्ति कर्मी यजमान को दीर्घ आयु सबलता और यश के लिए पुष्ट करो। यह यजमान वृद्धावस्था तक श्रोत्रादि इन्द्रियो से युक्त और यशस्वी होवे ॥ ३ ॥

हे देवगण ! इस बालक को तेज युक्त करो। यह सौ वर्ष की आयु पावे। यह वृद्धावस्था मे ही मृत्यु को प्राप्त होवे। इस वस्त्र को वृहस्पति ने सोम को धारण करने को दिया ॥ ४ ॥

हे यजमान ! तुम वृद्धावस्था तक सुख पूर्वक रहो। इस वस्त्र को धारण कर गौओ की सुभावना से रक्षा प्राप्त कर। तुम सन्तति सहित सौ वर्ष तक जीवन धारण करो ॥ ५ ॥

हे यजमान ! तुम कल्याण के लिए इस वस्त्र को धारण करो। तुम वस्त्रो से सुसज्जित पुत्र, स्त्री, मित्र, आदि को धन प्रदान कर और प्रजावान होकर शत आयु वाला हो ॥ ६ ॥

हम स्तुति करने वाले सखा सम, परमेश्वर्यवान इन्द्र को हम अन्नादि प्राप्ति के लिए बुलाते हैं ॥ ७ ॥

हे यजमान ! तुम पुत्रता सहित कान्तिवान बनो । पुत्रादि से युक्त अकाल मरण से रक्षित हुआ प्रजा सहित इस घर में वास करो ॥ ८ ॥

सूक्त (२५)

(ऋषि—गोपथ । देवता—वाजी । छन्द—अनुष्टुप् ।

अश्वान्तस्य त्वा मनसा युनज्मि प्रथमस्य च ।
उत्कूलमुद्वहो भवोदुह्य प्रति धावतात् ॥ १ ॥

हे अश्व ! तुमको मैं शत्रु धर्षण के लिए उत्सुक करता हूँ और सवार को भी उत्साहित करता हूँ । तुम शत्रु पर आक्रमण मन वाले बनो । तुम अश्व जाति के मन से युक्त करो । बाढ युक्त नदी के समान तुम शत्रुओं पर चढो और गमन करो । तेरे से मैं शत्रु को जीतू । तुम शीघ्रता से विजय पाने वाले स्थान को प्राप्त होवो ॥ १ ॥

सूक्त (२६)

(ऋषि - अथर्वा । देवता—अग्निः हिरण्यम् । छन्द—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, पंक्तिः)

अग्नेः प्रजातं परि यद्धिरण्यममृतं दध्रे अधि मर्त्येषु ।
य एनद् वेद स इदेनमर्हति जरामृत्युर्भवति यो बिभर्ति ॥ १ ॥
यद्धिरण्यं सूर्येण सुवर्णं प्रजावन्तो मानवः पूर्व ईषिरे ।
तत् त्वा चन्द्रं वर्चसा सं सृजत्यायुष्मान् भवति यो बिभर्ति ॥ २ ॥
आयुषे त्वा वर्चसे त्वौजसे च बलाय च ।
यथा हिरण्यतेजसा विभासासि जनाँ अनु ॥ ३ ॥
यद् वेद राजा वरुणो वेद देवो बृहस्पतिः ।

इन्द्रो यद् वृत्रहा वेद तत् त आयुष्यं भुवत् तत् ते वर्चस्यं भुवत् ॥ ४ ॥

अग्नि से उत्पन्न होने वाला सुवर्ण और अमृत रूप से मरण युक्त मनुष्यों में व्याप्त सुवर्ण के इन रूपों को जानने वाले पुरुष ही इसके धारणाधिकारी हैं। जो इस स्वर्ण को आभूषण रूप धारण करता है। वह वृद्धावस्था में ही मरण को पाता है ॥ १ ॥

जिसको मनु ने धारण किया था, वह दीप्तियुक्त सुवर्ण तुम्हें कान्ति प्रदान करे। ऐसा मनुष्य दीर्घ जीवी होता है ॥ २ ॥

हे स्वर्णधारी मनुष्य ! यह सुवर्ण तुम्हें दीर्घ जीवी करें। यह तुझे वर्च से युक्त करें। मृत्यादि से युक्त करें। तुम सुवर्ण के समान तेज को धारण कर मनुष्यों में तेजस्वी बनो ॥ ३ ॥

वरुण, जिस सुवर्ण को जानते हैं। बृहस्पति भी जिसके ज्ञाता हैं, उस सुवर्ण के मृत्यु-नाशक गुण से इन्द्र भी परिचित है। वह सुवर्ण तुम्हें आयु और वर्च युक्त करे ॥ ४ ॥

सूक्त २७ (चौथा अनुवाक)

(ऋषि—भृग्वङ्गिराः। देवता—त्रिवृत्। छन्द—अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, जगती, उष्णिक्, शक्वरी)

गोभिष्ट्वा पात्वृषभो वृषा त्वा पातु वाजिभिः।
वायुष्ट्वा ब्रह्मणा पात्विन्द्रस्त्वा पात्विन्द्रियैः ॥ १ ॥
सोमस्त्वा पात्वोषधीभिर्नक्षत्रैः पातु सूर्यः।
माद्भ्यस्त्वा चन्द्रो वृत्रहा वातः प्राणेन रक्षतु ॥ २ ॥
तिस्रो दिवस्तिस्रः पृथिवीस्त्रीण्यन्तरिक्षाणि चतुरः समुद्रान्।

त्रिवृतं स्तोम त्रिवृत आप आहुस्तास्त्वा रक्षन्तु त्रिवृता
त्रिवृद्भिः ॥ ३ ॥
त्रींन्नाकांस्त्रीन् समुद्रांस्त्रीन् ब्रध्नांस्त्रीन् वैष्टपान् ।
त्रीन् मातरिश्वनस्त्रीन्त्सूर्यान् गोप्तॄन् कल्पयामि ते ॥ ४ ॥
घृतेन त्वा समुक्षाम्यग्ने आज्येन वर्धयन् ।
अग्नेश्चन्द्रस्य सूर्यस्य मा प्राणं मायिनो दभन् ॥ ५ ॥
मा व प्र ण मा वोऽपान मा हरो मायिनो दभन् ।
भ्राजन्तो विश्ववेदसो देवा दैव्येन धावत ॥ ६ ॥
प्राणेनाग्निं स सृजति वात प्राणेन संहित ।
प्राणेन विश्वतोमुखं सूर्यं देवा अजनयन् ॥ ७ ॥
आयुषायुःकृतां जीवायुष्मान् जीव मा मृथा ।
प्राणेनात्मन्वतां जीव मा मृत्योरुदगा वशम् ॥ ८ ॥
देवानां निहितं निधिं यमिन्द्रोऽन्वविन्दत् पथिभिर्देवयानैः ।
आपो हिरण्यं जुगुपुस्त्रिवृद्भिस्तास्त्वा रक्षन्तु त्रिवृता
त्रिवृद्भिः ॥ ६ ॥
त्रयस्त्रिंशद् देवतास्त्रीणि च वीर्याणि प्रियायमाणा जुगुपुर
प्स्वन्त ।
अस्मिंश्चन्द्रे अधि यद्धिरण्यं तेनायं कृणवद् वीर्याणि ॥ १० ॥
ये देवा दिव्येकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम् ॥ ११ ॥
ये देवा अन्तरिक्ष एकादश स्थ ते देवासो हविरिदं
जुषध्वम् ॥ १२ ॥
ये देवा पृथिव्यामेकादश स्थ ते देवासो हविरिदं
जुषध्वम् ॥ १३ ॥
असपत्नं पुरस्तात् पश्चान्नो अभयं कृतम् ।
सविता मा दक्षिण त उत्तरान्मा शचीपति ॥ १४ ॥

दिवो मादित्या रक्षन्तु भूम्या रक्षन्त्वग्नयः ।
इन्द्राग्नी रक्षतां मा पुरस्तादश्विनावभितः शर्म यच्छताम् ।
तिरश्चीनघ्न्या रक्षतु जातवेदा भूतकृतो मे सर्वतः सन्तु वर्म ।१५॥

हे पुरुष ! तुम त्रिवृत् मणि के धारक हो । दलपति वृषभ गोओ सहित तुझे रक्षा प्रदान करें । प्रजनन योग्य अश्व भी तुझे रक्षा प्रदान करें । वायु ये व्याप्त ब्रह्म इन्द्र की इन्द्रियाँ तेरी रक्षा करें॥ १ ॥

सोम औषधियों से युक्त हुआ तेरी रक्षा करें । सूर्य नक्षत्र सहित तेरा पोषण कर्म करें । मासो सहित वृत्रमारक चन्द्रमा तेरे रक्षक हो । प्राण वायु सहित वायु तुम्हारी रक्षक होवें ॥ २ ॥

तीन प्रकार के स्वर्ग, तीन प्रकार के अन्तरिक्ष, तीन प्रकार की पृथ्वी, चार समुद्र, त्रिवृत स्तोम, त्रिवृत्, जल, यह सब अपने भेदो युक्त मणि के सुवर्ण, रजत, लोहमयी त्रिवृत् द्वारा तेरे रक्षक होवें ॥ ३ ॥

हे पुरुष ! तुम त्रिवृत्मणि के कारक हो । इसके द्वारा मे त्रिभेदात्मक स्वर्ग को तेरी रक्षा करने वाला बनाता हूँ । तीन भुवन तीन समुद्र और तीन आदित्य तेरी रक्षा करें । त्रिगुणात्मक वायु रश्मि और उनके देवता भेद वाले त्रिस्वर्गों को तेरे रक्षक रुप मे बनाता हूँ ॥ ४ ॥

हे अग्ने ! मैं तुम्हे घृत से जलाता हूँ और इसी से सींचन कर्म करता हूँ । हे मणि युक्त पुरुष ! घृत युक्त अग्नि की, औषधि आदि को पुष्ट कर्ता चन्द्रमा की और सूर्य की कृपा से मायामयी असुरगण तुम्हे पीडित न करें ॥ ५ ॥

हे पुरुष ! ये मायामयी राक्षस तुमको मार न पा और न तेरे तेज और प्राणयान को ही नष्ट कर सकते हैं। हे समस्त देवगणो ! इसकी रक्षा के निमित्त तीक्ष्ण भी रथ पर सवार होकर चलो। ६ ॥

यजमान प्राण से अग्नि को युक्त करता है। वायु भी प्राण युक्त है। देवो ने प्राण से ही विश्वतोमुख सूर्य को उत्पन्न किया था ॥ ७ ॥

हे मणिमान पुरुष प्राचीन ऋषियो मे स्वय और दूसरे की आयु से मरण को बढ़ाने की शक्ति थी। तुम उन्ही महर्षियों की आयु से मरण को न प्राप्त होता हुआ आयुष्मान बनो। तुम उन्हीं के प्राणो से जिवित रहो ॥ ८ ॥

हे पुरुष ! जिस धरोदर छिपे हुये सुवर्ण को इन्द्र ने खोज निकाला, जिसकी त्रिवृत जलो ने रक्षा की वे त्रिवृत जल त्रिवृत मणि रुप देह से तेरी रक्षा करें ॥ ९ ॥

तेतीस देवो ने तीन प्रकार के वीयो और सुवर्णो को प्रिय जानकर जल में विद्यमान किया। जो सुवर्ण चन्द्रमा में है, उससे यह मणि तेतीस देवो की नाना प्रकार की शक्तियों की इस पुरुष को प्रद न करें ॥ १० ॥

आकाश में विद्यमान ग्यारह आदित्य इस घृतमयी हवि को भक्षण करें। अन्तरिक्ष के ग्यारह रुद्र और पृथ्वी के ग्यारह देव भी इसका भक्षण करें ॥ ११-१२ ॥

हे सविता देव ! हे शचिपते ! पूर्व पश्चिम में शत्रुओ को नष्ट कर हमें अभय प्रदान करो। सविता दक्षिण और इन्द्र उत्तर दिशा में मेरे रक्षक बनें ॥ १४ ॥

सूर्य स्वर्ग लोक मे भय से बचावें। पृथ्वी अग्नि पृथ्वी

के भयों और इन्द्राग्नि सम्मुख भयो से रक्षा करें। अश्विद्वय समस्त दिशाओं से मेरी रक्षा करें। अग्नि तिर्यक् स्थान में रक्षा करें। पचभूतों के स्वामी अग्नि मुझे सब ओर से रक्षा करने में समर्थ कवच प्रदान करें ॥ १५ ॥

सूक्त (२८)

(ऋषि- ब्रह्मा । देवता—दर्भमणि । छन्द—अनुष्टुप्)

इम बध्नामि ते मणि दीर्घायुत्वाय तेजसे ।
दर्भं सपत्नदम्भनं द्विषतस्तपन हृदः ।। १ ॥
द्विषतस्तापयन् हृद शत्रूणां तापयन् मन ।
दुर्हार्द सर्वांस्त्व दर्भ धर्मइवाभीन्त्सन्तापयन् ॥ २ ॥
धर्म इवाभितपन् दर्भ द्विषतो नितपन् मणे ।
हृदः सपत्नानां भिन्द्धीन्द्रइव विरुज बलम् ॥ ३ ॥
भिन्द्धि दर्भ सपत्नानां हृदय द्विषता मणे ।
उद्यन् त्वचमिव भूम्या शिर एषा वि पातय ॥ ४ ॥
भिन्द्धि दर्भ सपत्नान मे भिन्द्धि मे पृतनायत ।
भिन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दो भिन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥ ५ ॥
छिन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे छिन्द्धि मे पृतनायत ।
छिन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दश्छिन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥ ६ ॥
वृश्च दर्भ सपत्नान् मे वृश्च मे पृतनायतः ।
वृश्च मे सर्वान दुर्हार्दो वृश्च मे द्विषतो मणे ॥ ७ ॥
कृन्त दर्भ सपत्नान् मे कृन्त मे पृतनायत ।
कृन्त मे सर्वान् दुर्हार्द कृन्त मे द्विषतो मणे ॥ ८ ॥
पिंश दर्भ सपत्नान मे पिंश मे पृतनायतः ।
पिंश मे सर्वान् दुर्हार्द पिंश मे द्विषतो मणे ॥ ९ ॥

विध्य दर्भ सपत्नान् मे विध्य मे पृतनायतः ।
विध्य मे सर्वान् दुर्हार्दो विध्य मे द्विषतो मणे ॥ १० ॥

हे पुरुष ! तुम विजय और बल के अभिलाषा वाले हो। यह दर्भमय मणि शत्रु नाशक और उनके हृदय को सन्ताप देने वाली है। मैं इसे तेज और दीर्घायु के लिए धारण करता हूँ ॥ १ ॥

हे दर्भमणे ! तुम शत्रुओं के मन को सन्ताप करती हुई हृदय को दुःखी बना। तुम मलिन हृदय युक्त शत्रु के पशु, प्रजा और खेतादि को नष्ट कर ॥ २ ॥

हे दर्भमणे ! सूर्य के समान तुम अपने तेज से शत्रुओं को सन्तप्त कर। तू इन्द्र वत उसके हृदय और बल को नष्ट कर ॥ ३ ॥

हे दर्भमणे ! तुम शत्रुओं के हृदय को विदीर्ण करने वाली हो। घर बनाने को जैसे मनुष्य वहाँ से घास आदि को साफ करता है उसी प्रकार तुम शत्रुओं को साफ कर दें ॥ ४ ॥

हे दर्भमणे ! मेरे विरुद्ध सैन्य इकट्ठा करने वाली, कपटी हृदय वालों, और मेरे से दुश्मनी रखने वालों को नष्ट भ्रष्ट कर दें ॥ ५ ॥

हे दर्भमणे ! मेरे विरुद्ध सेना इकट्ठे करने वालों को चीर डाल। मेरे शत्रुओं को और मेरे प्रति बुरे मान रखने वालों को नष्ट कर डाल ॥ ६ ॥

हे दर्भमणे ! मेरे विरुद्ध सेना इकट्ठा करने वालों को और मलिन हृदय वालों को, और मेरे द्वेषियों को काट डाल ॥ ७ ॥

हे दर्भमणे ! मेरे विरुद्ध सेना एकत्रित करने वालो, मलीन हृदयी और मुझसे द्वेष युक्तों को छिन्न मस्तक कर डाल ॥ ८ ॥

हे दर्भमण ! मेरे विरुद्ध सैन्य शक्ति इकट्ठा करने वालों मलीन हृदमयी और मेरे द्वेषियों को तुम पीस डालो ॥ ९ ॥

हे दर्भमणे ! मेरे शत्रुओ को ताडो। मेरे विरुद्ध सेना एकत्रित करने वालो, मलिन हृदय से युक्त पुरुषो और मेरे से राग-द्वेष रखने वालो को पीस डालो ॥ १० ॥

सूक्त (२९)

(ऋषि— ब्रह्मा। देवता—दर्भमणि। छन्द—त्रिष्टुप्)

निक्ष दर्भ सपत्नान मे निक्ष मे पृतनायतः ।
निक्ष मे सर्वान् दुर्हार्दो निक्ष मे द्विषतो मणे ॥ १ ॥
तृन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे तृन्द्धि मे पृतनायतः ।
तृन्द्धि मे सर्वान दुर्हार्दस्तृन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥ २ ॥
रुन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे रुन्द्धि मे पृतनायतः ।
रुन्द्धि म सर्वान् दुर्हार्दो रुन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥ ३ ॥
मृण दर्भ सपत्नान् मे मृण म पृतनायत् ।
मृण मे सर्वान् दुर्हार्दो मृण म द्विषतो मण ॥ ४ ॥
मन्थ दर्भ सपत्नान् मे मन्थ मे पृतनायतः ।
मन्थ मे सर्वान दुर्हार्दो मन्थ मे द्विषतो मणे ॥ ५ ॥
पिण्ड्ढि दर्भ सपत्नान् मे पिण्ड्ढि मे पृतनायतः ।
पिण्ड्ढि मे सर्वान् दुर्हार्दः पिण्ड्ढि मे द्विषतो मणे ॥ ६ ॥
ओष दर्भ सपत्नान् मे ओष मे पृतनायतः ।
ओष मे सर्वान् दुर्हार्दः ओष मे द्विषतो मणे ॥ ७ ॥

दह दर्भ सपत्नान् म दह मे पृतनायतः ।
दह मे सर्वान् दुर्हार्दो दह मे द्विषतो मणे ॥ ८ ॥
जहि दर्भ सपत्नान् मे जहि पृतनायत. ।
जहि मे सर्वान् दुर्हार्दो जहि मे द्विषतो मणे ॥ ९ ॥

हे दर्भमणे ! मेरे शत्रु, मेरे विरुद्ध सैन्य इकट्ठा करने वालो, मलीन हृदय वालो और मेरे से द्वष करने वाले शत्रुओं को चूस डाल ॥ १ ॥

हे दर्भमणे ! मेरे विरुद्ध सैन्य शक्ति एकत्रित करने वालो मलिन हृदय वालो, और मेरे से द्वष करने वालो का तुम नाश कर डालो ॥ २ ॥

हे दर्भमणे ! मेरे विरुद्ध सैन्य शक्ति एकत्रित करने वालो, मलिन हृदय वालो और मेरे से द्वष रखने वालो को रोको ॥ ३ ॥

हे दर्भमणे ! मेरे विरुद्ध सैन्य शक्ति एकत्रित करने वालों मलिन हृदय वालो और मेरे से द्वेष करने वालो को मार डाल ॥ ४ ॥

हे दर्भमणे ! मेरे विरुद्ध सैन्य शक्ति एकत्रित करने वाले मलिन हृदय वालो और मेरे से द्वष करने वाले शत्रुओं का मन्थन कार्य करो ॥ ५ ॥

हे दर्भमणे ! मेरे विरुद्ध सैन्य शक्ति एकत्रित करने वालों मलिन हृदय वालो और मेरे से द्वेष करने वाले शत्रुओं को भस्म कर दे ॥ ६ ॥

हे दर्भमणे ! मेरे विरुद्ध सैन्य शक्ति एकत्रित करने वालों, मलिन हृदय वालों मेरे से द्वेष रखने वाले शत्रुओं को तुम जला डालो ॥ ८ ॥

हे दर्भमणे ! मेरे विरुद्ध सैन्य शक्ति एकत्रित करने

वालों मलीन हृदय वालो और मेरे से द्वेष रखने वालो को तुम मार डालो ॥ ९ ॥

सूक्त (३०)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—दर्भमणि । छन्द—अनुष्टुप्)

यत् ते दर्भ जरामृत्युः शतं वर्मसु वर्म ते ।
तेनेमं वर्मिणं कृत्वा सपत्नाञ्जहि वीर्यैः ॥ १ ॥
शतं ते दर्भ वर्माणि सहस्रं वीर्याणि ते ।
तमस्मै विश्वे त्वा देवा जरसे भर्तवा अदुः ॥ २ ॥
त्वामाहुर्देव वर्म त्वां दर्भ ब्रह्मणस्पतिम् ।
त्वामिन्द्रस्याहुर्वर्म त्वं राष्ट्राणि रक्षसि ॥ ३ ॥
सपत्नक्षयणं दर्भ द्विषतस्तपनं हृदः ।
मणिं क्षत्रस्य वर्धनं तनूपानं कृणोमि ते ॥ ४ ॥
यत् समुद्रो अभ्यक्रन्दत् पर्जन्यो विद्युता सह ।
ततो हिरण्ययो बिन्दुस्ततो दर्भो अजायत ॥ ५ ॥

हे दर्भमणे ! तेरी गाँठो मे अपरिमित जरामृत्यु व्याप्त हैं और जरा मृत्यु का नाशक तेरा कवच है उससे रक्षा और विजय की अभिलाषा से युक्त शत्रु को उपद्रव सहित नष्ट कर डालो ॥ १ ॥

हे दर्भ ! तेरे पास पीडा पहुँचाने वाली सैकडो गाठे है और उन पीडाओ को दूर करने की शक्ति तेरे में विद्यमान है । तुम कवच को इस राजा के लिए देवो ने जरा-नाशन रूप मे प्रदान किया है । अत तुम इसकी वृद्धावस्था को दूर करो और पुष्टता प्रदान करो ॥ २ ॥

हे दर्भमणे ! तुम देव रक्षक कवच हो । तुम ब्रह्मणस्पति

और इन्द्र रक्षक भी हो। अतः तुम इस राजा के राज्यों की रक्षा कार्य कर ॥ ३ ॥

हे दर्भ! तुम शत्रु नाशक द्वेषी संतप्त करण और जल वृद्धिकारक हो। मैं तुम्हें शरीर रक्षा के निमित्त धारण करता हूँ ॥ ४ ॥

जिस मेघ से जल बरसता है, उसमें विद्युत द्वारा उत्पन्न गडगड़ाहट से हिरण्यमय जल की बूंदे उत्पन्न हुई। इसी बूंद से दर्भ की उत्पत्ति हुई है ॥ ५ ॥

सूक्त (३१)

(ऋषि – सविता (पुष्टिकाम)। देवता – औदुम्बरमणिः। छन्दः—अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, पंक्ति, शक्वरी)

औदुम्बरेण मणिना पुष्टकामाय वेधसा।
पशूनां सर्वेषां स्फातिं गोष्ठे मे सविता करत् ॥ १ ॥
यो नो अग्निर्गार्हपत्यः पशूनामधिपा असत्।
औदुम्बरो वृषा मणिः स मा सृजतु पुष्ट्या ॥ २ ॥
करीषिणीं फलवतीं स्वधामिरां च नो गृहे।
औदुम्बरस्य तेजसा धाता पुष्टिं दधातु मे ॥ ३ ॥
यद् द्विपाच्च चतुष्पाच्च यान्यन्नानि ये रसाः।
गृह्णेहं त्वेषां भूमानं बिभ्रदौदुम्बरं मणिम् ॥ ४ ॥
पुष्टिं पशूनां परि जग्रभाहं चतुष्पदां द्विपदां यच्च धान्यम्।
पयः पशूनां रसमोषधीनां बृहस्पतिः सविता मे नि यच्छात् ॥ ५ ॥
अहं पशूनामधिपा असानि मयि पुष्टं पुष्टपतिर्दधातु।
मह्यमौदुम्बरो मणिर्द्रविणानि नि यच्छतु ॥ ६ ॥
उप मौदुम्बरो मणिः प्रजया च धनेन च।

इन्द्रेण जिन्वितो मणिरा मागन्त्सह वर्चसा ॥ ७ ॥
देवो मणिः सपत्नहा धनसा धनसातये ।
पशोरन्नस्य भूमानं गवां स्फातिं नि यच्छतु ॥ ८ ॥
यथाग्रे त्वं वनस्पते पुष्ट्या सह जज्ञिषे ।
एवा धनस्य मे स्फातिमा दधातु सरस्वती ॥ ६ ॥
आ मे धनं सरस्वती पयस्फातिं च धान्यम् ।
सिनीवाल्युपा वहादयं चौदुम्बरो मणिः ॥ १० ॥
त्वं मणीनामधिपा वृषासि त्वयि पुष्टं पुष्टपतिर्जजान ।
त्वयीमे वाजा द्रविणानि सर्वोदुम्बर स त्वमस्मत्-
सहस्वारादरातिममतिं क्षुधं च ॥ ११ ॥
ग्रामणीरसि ग्रामणीरुत्थायाभिषिक्तोऽभि मा सिञ्च वर्चसा ।
तेजोऽसि तेजो मयि धारयाधि रयिरसि रयिं मे धेहि ॥ १२ ॥
पुष्टिरसि पुष्ट्या मा समङ्ग्धि गृहमेधी गृहपतिं मा कृणु ।
औदुम्बरः स त्वमस्मासु धेहि रयिं च नः सर्ववीरं ।
नियच्छ रायस्पोषाय प्रति मुञ्चे अहं त्वाम् ॥ १३ ॥
अयमौदुम्बरो मणिर्वीरो वीराय बध्यते ।
स नः सनिं मधुमतीं कृणोतु रयिं च नः सर्ववीरं नि
यच्छात् ॥ १४ ॥

प्राचीन समय में ब्रह्मा ने गूलर की मणि द्वारा, पशु, पुत्र, धन, शरीर, पोषण आदि का प्रयोग किया था। मैं उसी से पुष्टता के कामी तुझे पुष्ट बनाता हूँ। सविता मेरे कर में दुपाये और चौपायों की वृद्धि करें। १ ॥

गृहपत्य अग्नि हमारे गवादि पशुओं के स्वामी और रक्षक होवें। मनोभिलाषा की पूर्ति करने वाली गूलर मणि शरीर की वृद्धि और पशुओं की पुष्टि करें ॥ २ ॥

गूलर तेज से धाता मेरे शरीर को पुष्ट करें। हमारे त और गोवश वाली भूमि होवें ॥ ३ ॥

दो पाँव वाले मनुष्य चौपाये, ग्राम्य अन्न, वन अन्न, । दूध, गुड मधु आदि रस इन सबको गूलर मणि धारण ने वाला मैं प्राप्त करता हूँ ॥ ४ ॥

मैं मनुष्यों और पशुओं की धान्यादि से पुष्टी करूँ। ओं का सार रूप दूध और अन्नादि को मुझे सविता और स्पति देव प्रदान करें ॥ ५ ॥

मैं पुत्रों और पशुओं से सम्पन्न बनू। गूलर मणि युक्त ष्टकाम्य पुरुष को पुष्ट करे। ये मणि मुझे स्वर्णादि देवें ॥६।

इन्द्र प्रेरणा से यह मुझे इच्छित तेज सहित प्राप्त हुई। मणि से मुझे सन्तति पशु, धन, सुवर्ण, आदि की प्राप्ति भी गई है ॥ ७ ।

यह गूलर मणि पुष्टि के निमित्त निर्मित होने से देव क है। यह शत्रु नाशक और अभीष्ट दाता है। यह गवादि को बढाकर धन लाभ प्रदान करें ॥ ८ ॥

हे गूलर मणे ! जैसी कि तुम पुष्ट उत्पन्न हुई हो वैसी ही ट करो और धनादि प्रदान करो ॥ ९ ॥

सरस्वती सीनीवाली और यह औदुम्बर, मणि मुझे वर्ण रूप यश वृद्धि, यव आदि औषधि और अन्न को प्रदान रें ॥ १० ॥

हे मणे ! तुम अभीष्ट दाता हो। प्रजापति ने तुम्हें समस्त दार्थों से पुष्ट बनाया है। तेरे प्रभाव से मुझे नाना प्रकार के न मिले। हे गूलर मणे ! तुम दुर्गति और अन्न की कमी को मसे दूर रख ॥ ११ ॥

हे गूलर मणे ! तुम ग्रामीण नेतावत मणियों में श्रेष्ठ हो। तू अभीष्ट दाता और वर्च से समान्त है। अतः मुझे वच प्रदान कर। तेजमयी होने से मुझे भी तेज युक्त कर॥ १२॥

हे मणे ! तुम पुष्टिदाता हो अतः मुझे पुष्ट करो। गृह मेधी होने से मुझे घर का स्वामी बना। तेरे ग्रामीणत्व और वर्च गुणों को मुझे प्रदान कर। पुत्रादि प्रसन्न करने के धन को भी मुझे प्रदान कर ॥ १३ ॥

हे मणे ! धन पुष्टि के लिए मैं तुमको धारण करता हूँ। शत्रुनाशक यह मणि शत्रु को नाश करे। यह पुत्रादि सहित धन देकर हमको मधुमयी बनावे ॥ १४ ॥

सूक्त (३२)

(ऋषि—भृगुः (आयुष्कामः)। देवता—दर्भः। छन्द—अनुष्टुप, वृहती, त्रिष्टुप, जगती)

शतकाण्डो दुश्च्यवनः सहस्रपर्ण उत्तिरः।
दर्भो य उग्र ओषधिस्त ते बध्नाम्यायुषे ॥ १ ॥
नास्य केशान प्र वपन्ति नोरसि ताडमा घ्नते।
यस्मा अच्छिन्नपर्णेन दर्भेण शर्म यच्छति ॥ २ ॥
दिवि ते तूलमोषधे पृथिव्यामसि निष्ठितः।
त्वया सहस्रकाण्डेनायुः प्र वर्धयामहे ॥ ३ ॥
तिस्रो दिवो अत्यतृणत तिस्र इमाः पृथिवीरुत।
त्वयाह दुर्हार्दो जिह्वां नि तृणद्मि वचांसि ॥ ४ ॥
त्वमसि सहमानोऽहमस्मि सहस्वान्।
उभौ सहस्वन्तौ भूत्वा सपत्नान् सहिषीमहि ॥ ५ ॥
सहस्व नो अभिमातिं सहस्व पृतनायतः।
सहस्व सर्वान् दुर्हार्दः सुहार्दो मे बहून् कृधि ॥ ६ ॥

दर्भेण देवजातेन दिवि ष्टम्भेन शश्वदित् ।
तेनाहं शश्वतो जनां असनं सनवानि च ॥ ७ ॥
प्रियं मा दर्भ कृणु ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च ।
यस्मै च कामयामहे सर्वस्मै च विपश्यते ॥ ८ ॥
यो जायमानः पृथिवीमदृंहद् यो अस्तभ्नादन्तरिक्षं दिवं च ।
यं बिभ्रतं ननु पाप्मा विवेद स नोऽयं दर्भो वरुणो
दिवा कः ॥ ९ ॥
सपत्नहा शतकाण्डः सहस्वानोषधीनां प्रथमः सं बभूव ।
स नोऽयं दर्भः परि पातु विश्वतस्तेन साक्षीय पृतना
पृतन्यतः ॥ १० ॥

हे मृत्यु के डर युक्त पुरुष ! जो दर्भ अपरिमित गाठों के युक्त हैं । सहस्रों वण सम्पन्न प्रचण्ड वीय द यक ओषधि को तुम्हारी आयु वृद्धि के लिए बांधता हूँ ॥ १ ॥

प्रयोगी पुरुष जिस भयभीत मनुष्य के इस मणि को बांधता है, यमदूत उसके केशो को नहीं उखाडते और न हृदय को विदीर्ण करते हैं ॥ २ ॥

हे सहस्र काण्डी औषधे ! तुम पृथ्वी पर पूर्ण रूप से विद्यमान हो । तेरा अग्रभाग स्वर्ण हो । तुम आकाश पृथ्वी पर व्याप्त इस पुरुष को आयुष्मान करो ॥ ३ ॥

हे औषधे ! तुम त्रिवृत आकाश और त्रिगुण सम्पन्न पृथ्वी को व्याप्त कर रही हो । तेरे द्वारा मैं मलिन हृदयी पुरुष और शत्रु की वाणी दोनो को रोकने का कार्य सम्पन्न करता हूँ ॥ ४ ॥

हे औषधे ! तुम शत्रु विजयी हो, मैं भी शत्रु को मारने मे समथ हूँ । अतः हम दोनो ही शत्रु-नाशक समान मति युक्त है ॥ ६ ॥

हे औषधे ! सेना एकत्रित कर मुझे वश मे करने वाले शत्रुओ को मेरे वश मे कर और मित्रो को बढाओ ॥ ६ ॥

स्तम्भ रूप आकाश और देवताओं के समीप उत्पन्न दर्भ द्वारा मैं दीर्घायु पुत्रों से सम्पन्न होऊँ ॥ ७ ॥

हे दर्भ ! तेरे धारण करने वाला मैं (ब्राह्मण) क्षत्रिय के लिए प्रिय बनूं । आर्य पुरुष, शुद्ध और जिसके हम प्रिय बनने चाहे उसका ही हमे प्रिय बनाओ ॥ ८ ॥

उत्पन्न होते ही जिस दर्भ ने पृथ्वी को स्थिर किया, जिसने अन्तरिक्ष और स्वर्ग को भी स्तम्भित किया, जिसके धारण करने वाला निष्पाप हो जाता है ऐसा यह दर्भ हमे प्रकाश से सम्पन्न करे ॥ ९ ॥

यह दर्भ अन्य ओषधियो में श्रेष्ठ हैं । यह सभी पर समानत्व की अभिलाषा युक्त है । यह चारो दिशाओ मे हमारा रक्षक हो । मैं इसके तेज से सैन्य शक्ति युक्त शत्रु को वश में करने मे समर्थ होऊँ । १० ॥

सूक्त (३३)

(ऋषि—भृगुः । देवता—दर्भः । छन्द जगती, त्रिष्टुप, पक्ति)

सहस्रार्घं शतकाण्ड पयस्वानपामग्निर्वीरुधां राजसूयम् ।
स नोऽयं दर्भः परि पातु विश्वतो देवो मणिरायुषा स सृजाति नः ॥ १ ॥
घृतोदुल्लुप्तो मधुमान् पयस्वान् भूमिदृंहोऽच्युतश्च्यावयिष्णुः ।
नुदन्त्सपत्नानधरांश्च कृण्वन् दर्भा रोह महतामिन्द्रियेण ॥ २ ॥
त्वं भूमिमत्येष्योजसा त्वं वेद्यां सीदसि चारुरध्वरे ।
त्वां पवित्रमृषयोऽभरन्त त्वं पुनीहि दुरितान्यस्मत् ॥ ३ ॥

तीक्ष्णो राजा विषासही रक्षोहा विश्वचर्षणिः ।
ओजो देवानां बलमुग्रमेतत् तं ते बध्नामि जरसे स्वस्तये ॥ ४ ॥
दर्भेण त्वं कृणवद् वीर्याणि दर्भं बिभ्रदात्मना मा व्यथिष्ठाः ।
अतिष्ठाया वर्चसाधान्यान्त्सूर्य इवा भाहि प्रदिशश्चतस्र ॥ ५ ॥

यह प्रसिद्ध मणी जलो मे अग्नि रूप, अनेकानेक काण्डों से युक्त, और बल से सम्पन्न है। हमारी रक्षा करती हुई यह हमें दीर्घजीवी बनावें ॥ १ ॥

होम से बचे हुए घी में व्याप्त, मधुर, विनाश रहित, अपनी जड़ से पृथ्वी को स्थिर करने में सम्पन्न दर्भमणे ! तुम शत्रु को भगाकर निर्बल बना। अन्य औषधियो को बल सम्पन्न कर मेरी भुजाओ पर आरोहण करो ॥ २ ॥

हे मणी रूपे दर्भ ! तुम अहिंसक वेदी मे विराजमान सुंदर और पवित्र हो। ऋषि तुझे शुद्धि के निमित्त धारण करते हैं अतः हमें भी पाप रहित कर ॥ ३ ॥

अन्य मणियो मे श्रेष्ठ, असुर नाशक, शत्रु विजयी सर्व ज्ञाता, देवों का बल, रूप यह दर्भ प्रयोगी का रक्षक बन कर कार्य करता है ॥ ४ ॥

हे पुरुष ! तुम दर्भ मणी के प्रभाव से शत्रु विजयी कर्म कर। तुम सूर्य के समान सभी को वश में करोगे और चारो तरफ यशस्वी बनोगे ॥ ५ ॥

सूक्त ३४ (पाँचवां अनुवाक)

(ऋषि—अङ्गिराः । देवता—जङ्गिडो वनस्पतिः । छन्द—अनुष्टुप्)

जङ्गिडोऽसि जङ्गिडो रक्षितासि जङ्गि॰ ।

द्विपाच्चतुष्पादस्माकं सर्वं रक्षतु जङ्गिड ॥ १ ॥

या गृत्स्यस्त्रिपञ्चाशीः शतं कृत्याकृतश्च ये ।
सर्वान् विनक्तु तेजसोऽरसाञ्जङ्गिडस्करत् ॥ २ ॥
अरसं कृत्रिमं नादमरसाः सप्त विस्रसः ।
अपेतो जङ्गिडामतिमिषुमस्तेव शातय ॥ ३ ॥
कृत्यादूषण एवायमथो अरातिदूषण ।
अथो सहस्वाञ्जङ्गिडः प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ ४ ॥
स जङ्गिडस्य महिमा परि ण पातु विश्वतः ।
विष्कन्ध येन सासह संस्कन्धमोज ओजसा ॥ ५ ॥
त्रिष्वा देवा अजनयन् निष्ठित भूम्यामधि ।
तमु त्वाङ्गिरा इति ब्राह्मणा पूर्व्या विदुः ॥ ६ ॥
न त्वा पूर्वा ओषधयो न त्वा तरन्ति या नवाः ।
विबाध उग्रो जङ्गिडः परिपाणः सुमङ्गल ॥ ७ ॥
अथोपदान भगवो जङ्गिडामितवीर्य ।
पुरा त उग्रा ग्रसत उपेन्द्रा वीर्यं ददौ ॥ ८ ॥
उग्र इत ते वनस्पत इन्द्र ओज्मानमा दधौ ।
अमीवाः सर्वाश्चातयञ्ज ह रक्षांस्योषधे ॥ ९ ॥
आशरीकं विशरीकं बलासं पृष्ट्यामयम् ।
तक्मानं विश्वशारदमरसां जङ्गिडस्करत् ॥ १० ॥

जङ्गिड ओषधि से बने मणे ! तुम कृत्याओ और कृत्य कर्मों को भी भक्षक हो। तुम निडर बनाने वाली हो अत मनुष्यो और पशुओं की रक्षा करो ॥ १ ॥

पुतलियो की निर्माता और तिरेपन प्रकार की गृहिका कृत्यायें हैं, उनके यह जङ्गिड निर्वीर्य करें ॥ २ ॥

हमारे कानों और सिर आदि स्थानों में उत्पन्न कृत्रिम ध्वनि इसके प्रभाव से नष्ट होवे। नासिका छिद्र, नेत्र गोलक, कर्ण छिद्र, और मुख छिद्र भी अभिचार कर्म के अनिष्ट से मुक्ति को पावें। हे मणे ! तुम धारण कर्ता की दरिद्रता और पापों को बाण मारने के समान नष्ट कर दें ॥ ३ ॥

यह मणि शत्रु नाशक है। दूसरों के हृदयों का नाशक है। यह बल युक्त मणि कृत्या आदि को दूर करती हुई हमारे आयुष्मान करें ॥ ४ ॥

यह मणि महावन रोगी नाशनी है। यह विस्कन्ध रोग नाशक है। इसके प्रभाव से हमारे सभी उपद्रव दूर होवें। ५ ।

हे जंगिड मणे ! तुमको देवों ने तीन बार प्रयत्न कर प्राप्त किया। महर्षि अंगिरा और प्राचीन ऋषि इसको जानते थे ॥ ६ ॥

हे जंगिड तुम सभी मे शक्तिशाली हो। प्राचीन और नवीन औषधि तेरे समान उत्तम नहीं हो सकती। क्यों कि तुम अमित बली, रोग और शत्रु-नाशक तथा धारण करने वाले की रक्षा करती हो ॥ ७ ॥

हे जंगिड ! तुमको कृत्यादि के शमनार्थ प्राप्त किया जाता है। तुम अत्यधिक सामर्थ्यवान हो। इन्द्र ने तुम्हें अत्यधिक बलवान बनाया ॥ ८ ॥

हे जंगिड ! इन्द्र ने तेरे को बल दिया है अतः तुम अत्यन्त पराक्रमी हो। इसी से तुम साध्य और असाध्य का ध्यान न कर समस्त रोगों और उनके कारणों को नष्ट करने वाले हो ॥ ९ ॥

आशरीक, विशरीक, बलाज, पृष्ठ्य, तक्मा, विश्वशारद आदि रोगों को यह मणि निरुन्माद करने में समर्थ है ॥ १० ॥

सूक्त (३५)

(ऋषि—अङ्गिराः । देवता—जङ्गिडो वनस्पतिः । छन्द—अनुष्टुप्; पंक्ति; त्रिष्टुप)

इन्द्रस्य नाम गृह्णन्त ऋषियो जङ्गिडं ददुः ।
देवा यं चक्रुर्भेषजमग्रे विष्कन्धदूषणम् ॥ १ ॥

स नो रक्षतु जङ्गिडो धनपालोधनेव ।
देवा यं चक्रुर्ब्राह्मणः परिपाणमरातिहम् ॥ २ ॥

दुर्हार्दः सघोरं चक्षुः पापकृत्वानमागमम् ।
तांस्त्वं सहस्रचक्षो प्रतीबोधेन नाशय परिपाणोऽसि जङ्गिडः ॥ ३ ॥

परि मा दिवः परि मा पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् परि मा वीरुद्भ्यः ।
परि मा भूतात् परि मोत भव्याद् दिशोदिशो जङ्गिडः पात्वस्मान् ॥ ४ ॥

य ऋष्णवो देवकृता य उतो ववृतेऽन्यः ।
सर्वास्तान विश्वभेषजोऽरसां जङ्गिडस्करत् ॥ ५ ॥

परम वीर्य अभिलाषी अंगिरा आदि महर्षियों द्वारा इन्द्र का स्मरण करने पर, इन्द्र से जंगिड नामक वृक्ष की यह मणि प्राप्त की थी । इन्द्रादि देवों ने इसे विस्कन्ध रोग नाशक बतलाया है । अतः यह हमारी रक्षा करें । १ ।

राजा के कोषाध्यक्ष के धन के रक्षक के समान हमारी

रक्षा का कार्य करें। इस मणि को देवो और ब्राह्मण ने शत्रु नाशक बताया है। और पहनने वाले का रक्षक बताया है वह यह मणि हमारी रक्षा करें॥ २ ॥

हे मणे ! दुष्ट हृदय शत्रु के हृदय को चूर्ण चूर्ण कर दे। हिंसामयी पुरुषों को अपने तेज से नष्ट कर डाल ॥ ३ ॥

यह मणि आकाश, पाताल, अन्तरिक्ष से उत्पन्न भयो से मेरी रक्षा करें। वृक्षादि के विष और विभिन्न जीवो के भय तथा दिशा, प्रदिशाओ के भय से युक्ति प्रदान करें॥ ४ ॥

देवो से बनाये गये हिंसक, मनुष्यों द्वारा कष्ट देने वाले कर्म ज्यो भी हैं सभी को जगिड मणि नष्ट कर डाले ॥ ५ ॥

सूक्त (३६)

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—शतवार। छन्द—अनुष्टुप्)

शतवारो अनीनशद् यक्ष्मान् रक्षांसि तेजसा।
आरोहन् वर्चसा सह मणिर्दुर्णामचातनः ॥ १ ॥
शृङ्गाभ्यां रक्षो नुदते मूलेन यातुधान्यः।
मध्येन यक्ष्मं बाधते नैनं पाप्माति तत्रति ॥ २ ॥
ये यक्ष्मासो अर्भका महान्तो ये च शब्दिनः।
सर्वान् दुर्णामहा मणिः शतवारो अनीनशत् ॥ ३ ॥
शतं वीरानजनयच्छतं यक्ष्मानपावपत्
दुर्णाम्नः सर्वान् हत्वाव रक्षांसि धूनुते ॥ ४ ॥
हिरण्यशृङ्ग ऋषभः शातवारो अयं मणिः।
दुर्णाम्नः सर्वांस्तृडढ्वाव रक्षांस्यक्रमीत् ॥ ५ ॥
शतमहं दुर्णाम्नीनां गन्धर्वाप्सरसां शतम्।
शतं शश्वन्वतीनां शतवारेण वारये ॥ ६ ॥

यह शतबार औषधि से बनी मणि है। यह मणि अनेक रोग और राक्षसों को अपने तेज से नष्ट करने की क्षमता रखती है। यह दुर्नाम रोग को शांत करती है। यह मणि इस पुरुष के द्वारा धारण की गई इन लाभों से लाभान्वित करे ॥ १ ॥

यह अग्रभाग से राक्षसों को, मध्य भाग से समस्त रोगों और जड़ भाग मे समस्त पिशाचियों को नष्ट करती है। इस शतवार मणि का पापी लोग उलांघ सकने की क्षमता नहीं रखते है ॥ २ ॥

दुसाध्य रोगो और यक्ष्मादि रोगों को यह दुर्नाम रोग नाशक मणि अन्ततः नष्ट कर देती है ॥ ३ ॥

यह मणि सैकड़ो रोगों, उत्पातो, दुर्नाम, कुष्ठ, खाज,दद्रु आदि त्वचा रोगो को भी नष्ट करेगी। यह सकड़ो पुत्रो को देन वाली है ॥ ४ ॥

सर्वौषधियों से उत्तम इसका अग्रभाग सुवर्णवत चमकता है। अतः यह समस्त त्वचा सम्बन्धी रोगों को शमन करे ॥ ५ ॥

शतवार मणि से में समस्त त्वचा रोगों को शान्त करता हूँ। अप्सरा, गन्धर्व, आदि प्राणी मनुष्यो को बलि के निमित्त अपहृत कर लेते हैं उनके कर्म को मैं इससे दूर करता हूँ। यह मणि समस्त रोग और पीड़ाओं को नष्ट करने वाली है ॥ ६ ॥

सूक्त (३७)

(ऋषि—अथर्वा। देवता—अग्निः। छन्द—त्रिष्टुप्, पङ्क्ति, बृहतो, उष्णिक्)

इदं वर्चो अग्निना दत्तमागन् भर्गो यशः सह ओजो वयो बलम्।

त्रयस्त्रिंशद् यानि च वीर्याणि तान्यग्निः प्र ददातु मे ॥ १ ॥
वर्च आ धेहि मे तन्वां सह ओजो वयो बलम् ।
इन्द्रियाय त्वा कर्मणे वीर्याय प्रति गृह्णामि
शतशारदाय ॥ २ ॥
ऊर्जे त्वा बलाय त्वौजसे सहसे त्वा ।
अभिभूयाय त्वा राष्ट्रभृत्याय पर्यूहामि शतशारदाय ॥ ३ ॥
ऋतुभ्यष्ट्वार्तवेभ्यो माद्भ्यः संवत्सरेभ्यः ।
धात्रे विधात्रे समृधे भूतस्य पतये यजे ॥ ४ ॥

अग्नि प्रदत्त वर्च, तेज, ओज कीर्ति, बल और युवावस्था मुझे मिले । अग्नि देव मुझे तेतीस वीर्यों को प्रदान करे ॥ १ ॥

हे अग्ने ! मल नाशक वर्च को मुझे प्रदान करो । ओज, युवावस्था, बल भी प्रदान करो । हे गृहणीय पदार्थ ! इन्द्रियों तथा यज्ञ की दृढ़ता को मैं तुझे धारण करता हूँ । मैं आयुष्मान होने को तुम्हें धारण करता हूँ ॥ २ ॥

हे पदार्थ ! तुमको मैं अन्न, तेज, ओजस्व, शत्रु वशीकरण के लिए धारण करता हूँ । राज्य पुष्टि और शत आयु पाने को भी मैं तुम्हे धारण करता हूँ ॥ ३ ॥

हे पदार्थ ! मैं तुम्हें ऋतुदेव, ऋतु बारह महीनों, संवत्सर सभी की प्रसन्नता के लिए धारण करता हूँ । धाता, विधाता तथा अन्य सब देवों की प्रसन्नता और सभी उत्पन्न पदार्थों के स्वामी के लिए धारण करता हूँ ॥ ४ ॥

सूक्त (३८)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—गुल्गुल । छन्द—अनुष्टुप्)

न तं यक्ष्मा अरुन्धते नैनं शपथो अश्नुते ।

यं भेषजस्य गुल्गुलोः सुरभिर्गन्धो अश्नुते ॥ १ ॥
विष्वञ्चस्तस्माद् यक्ष्मा मृगा अश्वाइवेरते ।
यद् गुल्गुलु सैन्धवं यद् वाप्यासि समुद्रियम् ॥ २ ॥
उभयोरग्रभं नामास्मा अरिष्टतातये ॥ ३ ॥

गूगल रूप औषधि की धूम लेने वाले राजा को व्याधियां तथा दूसरों का दिया शाप आदि दुःख नहीं पहुँचाता है ॥ १ ॥

द्रुतगामी अश्व और हरिण के भागने समान गूगल की धुआँ लेने से व्याधियां भाग जाती है ॥ २ ॥

हे गूगलो ! तुम समुद्र से प्रकट हुई हो। मैं तुम्हारे नाम को विद्यमान रोग के नष्ट करने को लेता हूँ ॥ ३ ॥

सूक्त (३८)

(ऋषि - भृग्वङ्गिरा । देवता—कुष्ठः । छन्द अनुष्टुप्, जगती, शक्वरी, अष्टि, प्रभृति)

ऐतु देवस्त्रायमाणः कुष्ठो हिमवतस्परि ।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ १ ॥
त्रीणि ते कुष्ठ नामानि नद्यमारो नद्यारिषः ।
नद्यायं पुरुषो रिषत् ।
यस्मै परिब्रवीमि त्वा सायंप्रातरथो दिवा ॥ २ ॥
जीवला नाम ते माता जीवन्तो नाम ते पिता ।
नद्यायं पुरुषो रिषत् ।
यस्मै परिब्रवीमि त्वा सायंप्रातरथो दिवा ॥ ३ ॥
उत्तमो अस्योषधीनामनड्वान् जगतामिव व्याघ्रः श्वपदामिव ।
नद्यायं पुरुषो रिषत् ।
यस्मै परिब्रवीमि त्वा सायंप्रातरथो दिवा ॥ ४ ॥

त्रिः शाम्बुभ्यो अंगिरेभ्यस्त्रिरादित्येभ्यस्परि ।
त्रिर्जातो विश्वदेवेभ्य ।
स कुष्ठो विश्वभेषज । साकं सोमेन तिष्ठति ।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ ५ ॥

अश्वत्थो देवसदनस्तृतीयस्यामितो दिवि ।
यत्रामृतस्य चक्षणं ततः कुष्ठो अजायत ।
स कुष्ठो विश्वभेषजः साकं सोमेन तिष्ठति ।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ ६ ॥

हिरण्ययी नौरचरद्धिरण्यबन्धना दिवि ।
तत्रामृतस्य चक्षणं ततः कुष्ठो अजायत ।
स कुष्ठो विश्वभेषजः साकं सोमेन तिष्ठति ।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ ७ ॥
यत्र नावप्रभ्रंशनं यत्र हिमवतः शिरः ।
तत्रामृतस्य चक्षणं ततः कुष्ठो अजायत ।
स कुष्ठो विश्वभेषजः साकं सोमेन तिष्ठति ।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ ८ ॥
यं त्वा वेद पूर्व इक्ष्वाको यं वा त्वा कुष्ठ काम्यः ।
यं वा वसो यमात्स्यस्तेनासि विश्वभेषजः ॥ ९ ॥
शीर्षशोकं तृतीयकं सदन्दिर्यश्च हायनः ।
तक्मानं विश्वशारदं वार्षिकं नाशया इतः परा सुव ॥ १० ॥

कूट हिमवान पर्वत से हमारी रक्षा निमित्त आवें। हे कूट ! तुम इन सभी दुःख दायी रोगों को नष्ट करो। समस्त राक्षसियों को मारो ॥ १ ॥

हे कूट ! तुम रहस्य युक्त हो। तुम नद्यमार, नद्यरिष और नद्य नहलाना है। तुम्हें भूल जाने पर मरण आ घेरता

है। हे मिनाम कूट ! मैं प्रातः सांय और मध्य रोगी पुरुष निमित्त तेरा नाम लेता हूँ। हे नद्य ! मेरे द्वेषी का नाश हो ॥ २ ॥

हे कूट ! तुम्हारे माँ-बाप रोगों को नाश करने वाले है तथा तू भी उन गुणो से युक्त है। हे नद्य ! जिस रोगी को मैं तेरा नाम दिन मे तोन बार लेता हूँ वह तेरे नाम न लेने से मृत्यु को प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

हे कूट ! भार वहन करने वालों में जैसे वृषभ श्वपदों में बाघ, श्रेष्ठ है। उसी तरह तुम ओषधो ! मैं श्रेष्ठ माने जातेहो। हे नद्य कूट ! तेरे नामोच्चारण न करने से रोगी मर जाता है अत. मैं तेरे नाम को तीनों समय लेता हूँ ॥ ४ ॥

आंगिरस, शाम्बु ऋषियों तथा विश्व देवों ने इसे तीनों लोकों की भलाई के निमित्त तीन-तीन बार प्रकट किया। पहिले यह सोम से सुसज्जित थी। हे कूट ! तुम समस्त रोगो को समाप्त कर ॥ ५ ॥

भूलोक से तीसरे लोक में देवगण रहते हैं वहाँ अश्वत्थ है। यह कूट पहले सोम के साथ था। हे कूट ! तुम समस्त रोग और यातुधानियो को समाप्त करो ॥ ६ ॥

सुवर्णमयी नोका स्वर्ग में घूमती है। वहाँ अमृत प्रकाश मे कूट उत्पन्न हुआ। कूट सोम साथी सब रोगों को मारने वाला है। हे कूट ! समस्त रोग और पिशाचियों को नष्ट कर ॥ ७ ॥

जहाँ प्रतिष्ठित पुण्यात्मा जीव औंधे मुख स्वर्ग में नही गिरते, जहा हिमावान पर्वत को चोटी है, वहाँ अमृत प्रकाश में कूट पैदा हुआ। पहले यह सोम का साथी था। हे कूट समस्त रोग और यातुधानियों को समाप्त कर ॥ ८ ॥

हे कूट ! तुमको इक्ष्वाकु राजा ने समस्त रोग नाशक जाना था। काम वृक्ष और यम के मुखों के समान वसुओं ने भी तुम्हें ऐसा ही जाना। अतः तुम समस्त रोगों को नष्ट करो ॥ ९ ॥

हे कूट ! तीसरा स्वर्ग है जो तेरा सिर है। तेरी उत्पत्ति का समय समस्त व्यक्तियों का नाश कर सुख प्रदान करने वाले हो। अतः इस जीवन को दुख देने वाले रोगों को हमसे पराङ्मुख करो ॥ १० ॥

सूक्त (४०)

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—विश्वेदेवा, बृहस्पतिः। छन्द—त्रिष्टुप्, बृहती, गायत्री)

यन्मे छिद्रं मनसो यच्च वाचः सरस्वती मन्युमन्तं जगाम ।
विश्वैस्तद् देवैः सह संविदानः स दधातु बृहस्पतिः ॥ १ ॥
मा न आपो मेधां मा ब्रह्म प्रमथिष्टन ।
शुष्यदा यूयं स्यन्दध्वमुपहूतोऽहं सुमेधा वर्चस्वी ॥ २ ॥
मा नो मेधां मा नो दीक्षां मा नो हिंसिष्टं यत् तपः ।
शिवा नः शं सन्त्वायुषे शिवा भवन्तु मातरः ॥ ३ ॥
या नः पीपरदश्विना ज्योतिष्मती तमस्तिरः ।
तामस्मे रासतामिषम् ॥ ४ ॥

मेरे मनोव्यापार की त्रुटि को सरस्वती देवी पूर्ण करे। सम्पूर्ण देवों सहित बृहस्पति देव भी उसे पूर्ण करें ॥ १ ॥

हे जलो ! तुम वेदाध्ययन से युक्त हमारी बुद्धि को नष्ट मत करो। मेरे शुष्क हुए कर्म को आर्द्रता प्रदान करो। मैं सुन्दर मति मय कृपा ब्रह्मचर्य को धारण करूँ ॥ २ ॥

हे द्यावा पृथ्वी ! तुम भी हमारी बुद्धि को भ्रष्ट मत करो

और न दीक्षा और तप को हो। जल हमें आयुष्मान करे। संसार की पालन पोषणता से युक्त जल हमें माहवत मगनता प्रदान करें ॥ ३ ॥

हे अश्विद्वय ! हमे बाधा युक्त अन्धकार को निस्तृत करने वाली रात्री को हमें प्रदान करो ॥ ४ ॥

सूक्त (४१)

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—तपः। छन्द—त्रिष्टुप्)

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे ।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसन्नमन्तु ॥ १ ॥

अथ द्रष्टा महर्षियो ने कल्याणकामी स्वर्ग को सृष्टि के आदि मे पाया। उसके साधन व्रतादि से युक्त तथा दण्डादि धारण से साध्य दीक्षा को किया। उसी शक्ति से राष्ट्र बल और ओज की उत्पत्ति हुई। इस सभी को देवगण इस पुरुष के लिए देवें ॥ १ ॥

सूक्त (४२)

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—ब्रह्म। छन्द—अनुष्टुप्, पंक्ति, त्रिष्टुप्, जगती)

ब्रह्म होता ब्रह्म यज्ञा ब्रह्मणा स्वरवो मिताः ।
अध्वर्युर्ब्रह्मणो जातो ब्रह्मणोऽन्तर्हितं हविः ॥ १ ॥
ब्रह्म स्रुचो घृतवतीर्ब्रह्मणा वेदिरुद्धिता ।
ब्रह्म यज्ञस्य तत्त्वं च ऋत्विजो ये हविष्कृतः ।
शमिताय स्वाहा ॥ २ ॥
अं होमुचे प्र भरे मनीषामा सुत्राव्णे सुमतिमावृणानः ।
इमामिन्द्र प्रति हव्यं गृभाय सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥ ३ ॥

अंहोमुचं वृषभं यज्ञियानां विराजन्तं प्रथममध्वराणाम् ।
अपां नपातमश्विना हुवे धिय इन्द्रियेण त इन्द्रियं दत्तमोजः ॥ ४ ॥

ब्रह्म ही होता, बल ही यज्ञ, ब्रह्म से ही स्वर्ग को यज्ञानुवेष्ठना आदि है। ब्रह्म से ही अध्वर्यु उत्पन्न हुए और ब्रह्म में ही हवियाँ अवस्थित हुई हैं ॥ १ ॥

घृत युक्त स्नुच भी ब्रह्म है, वेदी भी ब्रह्म से निर्मित है। यज्ञ ब्रह्म है। और हवि कर्ता ऋत्विज भी ब्रह्म ही है ॥ २ ॥

परम कल्याण दायी और पापमुन्तक जो है, वो इन्द्र है। मैं उनकी स्तुति करता हूँ। हे इन्द्र ! यजमान की आयु आदि की कामना सत्य होवे और इस हवि को स्वीकार करो ॥ ३ ॥

इन्द्र यज्ञ-भागी देवों में श्रेष्ठ है अत मैं उनका आह्वान करता हूँ। जलों के स्रष्टा अग्नि का और अश्विद्वय को भी मैं बुलाता हूँ। हे अश्विद्वय तुमको इन्द्र की शक्ति से इन्द्रियाँ और बल के देने वाले होवे ॥ ४ ॥

सूक्त (४३)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—अन्यादयो मन्त्रोक्ता । छन्द —पंक्तिः)

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
अग्निर्मा तत्र नयत्वग्निर्मेधा दधातु मे ।
अग्नये स्वाहा ॥ १ ॥
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
वायुर्मा तत्र नयतु वायुः प्राणान् दधातु मे ।
वायवे स्वाहा ॥ २ ॥

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
सूर्यो मा तत्र नयतु चक्षुः सूर्यो दधातु मे ।
सूर्याय स्वाहा ॥ ३ ॥
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
चन्द्रो मा तत्र नयतु मनश्चन्द्रो दधातु मे ।
चन्द्राय स्वाहा ॥ ४ ॥
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
सोमो मा तत्र नयतु पयः सोमो दधातु मे ।
सोमाय स्वाहा ॥ ५ ॥
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
इन्द्रो मा तत्र नयतु बलमिन्द्रो दधातु मे ।
इन्द्राय स्वाहा ॥ ६ ॥
आपो मा तत्र यवन्त्वमृत मोप तिष्ठतु अद्भ्य स्वाहा ॥ ७ ॥
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्मा ब्रह्म दधातु मे ।
ब्रह्मणे स्वाहा ॥ ८ ॥

ब्रह्म ज्ञानी दीक्षा और तप से जिस स्थान पर पहुँचते हैं उस स्थान पर मुझे अग्नि देव ले जाँय। अग्नि मुझे स्वर्ग प्राप्ति की बुद्धि प्रदान करें ॥ १ ॥

ब्रह्म ज्ञानी तप और ज्ञान से जिस स्थान को ग्रहण करते है, वायु देव वहो ले जाय। वायु मेरे मे प्राण पान आदि पाचों वायु स्थापित करें ॥ २ ।

ब्रह्म ज्ञानी तप और दीक्षा से जिस स्थान को प्राप्त करते हैं उसी स्थान पर सूर्य देव मुझे चक्षु प्रदान करें। मैं उनको स्वाहुत करता हूँ ॥ ३ ॥

तपोधन और कर्मवान ब्रह्म ज्ञानी जिस स्थान को ग्रहण करते है। चन्द्र देव मुझे भी उस स्थान पर पहुँचावें और मन प्रदान करें। मैं उनको स्वाहुत करता हूँ। ४।

तपोधन और कर्मवान ब्रह्मज्ञानी पुरुष जिस स्थान को प्राप्त करते हैं सोम देव भी मुझे उसी स्थान पर पहुँचावें और दुग्ध रस से सम्पन्न करें। मैं उन्हे स्वाहुत करता हूँ ॥ ५ ॥

तपोधन और कर्मवान ब्रह्मज्ञानी जिस स्थान को प्राप्त होते हैं, इन्द्र मुझे भी उस स्थान को प्रदान करें और बल भी प्रदान करें। मैं उनको स्वाहुत करता हूँ ॥ ६ ॥

तपोधन ब्राह्मण और कर्मवान ब्रह्महोता पुरुष जिस स्थान में जाते हैं वही स्थान मुझे जलाभिमानी देव द्वारा दिया जावे और जल मुझे अमृतत्व प्रदान करें। मैं उनको स्वाहुत करता हूँ ॥ ७ ॥

तप और कर्म से ब्रह्मज्ञाता जिस स्थान को प्राप्त होते हैं, ब्रह्मा भी मुझे उस स्थान पर पहुँचावें और ब्रह्म ज्ञान प्रदान करें मैं उनको स्वाहुत करता हूँ ॥ ८ ॥

सूक्त (४४)

(ऋषि—भृगुः । देवता—आञ्जनम्, वरुण । छन्द—अनुष्टुप्, उष्णिक्, गायत्री

आयुषोऽसि प्रतरणं विप्रं भेषजमुच्यसे ।
तदाञ्जन त्वं शंताते शमापो अभयं कृतम् । १ ।
यो हरिमा जायान्योऽङ्गभेदो विसल्पकः ।
सर्वं ते यक्ष्ममङ्गेभ्यो बहिर्निर्हन्त्वाञ्जनम् ॥ २ ॥
आञ्जनं पृथिव्यां जातं भद्रं पुरुषजीवनम् ।
कृणोत्वप्रमायुकं रथजूतिमनागसम् ॥ ३ ॥

प्राण प्राणं त्रायस्वासो असवे मृड ।
निर्ऋते निर्ऋत्या नः पाशेभ्यो मुञ्च ॥ ४ ॥
सिन्धोर्गर्भोऽसि विद्युतां पुष्पम् ।
वातः प्राणः सूर्यश्चक्षुर्दिवस्पयः ॥ ५ ॥
देवाञ्जन त्रैककुदं परि मा पाहि विश्वतः ।
न त्वा तरन्त्योषधयो बाह्याः पर्वतीया उत ॥ ६ ॥
वीदं मध्यमवासृपद् रक्षोहामीवचातनः ।
अमीवाः सर्वाश्चातयन् नाशयदभिभा इतः ॥ ७ ॥
बह्विद राजन् वरुणानृतमाह पुरुषः ।
तस्मात् सहस्रवीर्य मुञ्च न पर्यंहसः ॥ ८ ॥
यदापो अघ्न्या इति वरुणेति यदूचिम ।
तस्मात् सहस्रवीर्य मुञ्च नः पर्यंहसः ॥ ९ ॥
मित्रश्च त्वा वरुणश्चानुप्रेयतुराञ्जन ।
तौ त्वानुगत्य दूरं भोगाय पुनरोहतुः ॥ १० ॥

हे आञ्जन ! तू शत वर्ष आयु देने वाला है। चिकित्सकों के अनुसार तुम्हे शुद्ध ब्राह्मण वत् मंगलरूप हो। हे आंजन ! तुम जल देव युक्त हमें सुख प्रदान करो ॥ १ ॥

पांडु रोग शरीर को हरा करने वाले अत्यधिक दुख दायी है। आंजन धारण करने वाले पुरुष का सभी रोग इससे शान्त होवें ॥ २ ॥

यह आंजनमणी कल्याणदायी और जीवन दायी है। यह मुझे मृत्यु से बचावें ॥ ३ ॥

हे प्राण रूप आंजन ! मेरे प्राण काल के ग्रास न बनें। तुम उसे यम के चक्कर से मुक्त कराओ। तुम सागर गर्भ और विद्युत पुष्प माने जाते हो। तुम वात रूप प्राण ! सूर्य रूप

नेत्र हो। त्रिककुट पर्वत से उत्पन्न तुम मेरी रक्षा करो। अन्यत्र उगी हुई औषधि तेरी समानता नहीं कर पाती है। रोग नाशक यह आञ्जन पवन के नीचे जाकर दूर पदार्थ में व्याप्त हो म म र्थ है। समस्त राग नाशक है ॥ ४-७ ।

हे वरुण ! प्रात समय तक सोने से बहुत स मिथ्याभाषण के अपराधी इसको क्षमा करो। हे औषधे ! तुम मिथ्याभाषण के पाप से हम मुक्त कर ॥ ८ ॥

हे जनो ! हे गोओ ! जो कुछ हमने कहा हम उसके साक्षी हैं। हे वरुण ! तुम ज्ञाता हो हे त्रैककुद पर्वतोत्पन्न आञ्जन ! हमें समस्त पापों से मुक्त करो ॥ ९ ॥

हे आञ्जन ! मित्रावरुण स्वर्ग से पृथ्वी पर आये और लौट गये। उन्होंने तुम्हें फिर लौटकर आने की अनुज्ञा प्रदान की ॥ १० ॥

सूक्त (४५)

(ऋषि—भृगु । देवता—आञ्जनम् अग्न्यादयो मन्त्रोक्ता । छन्द—अनुष्टुप्, त्रिष्टुप् बृहती)

ऋणादृणमिव सनयन् कृत्यां कृत्याकृतो गृहम् ।
चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः पृष्टीरपि शृणाञ्जन ॥ १ ॥
यदस्मासु दुःष्वप्न्यं यद् गोषु यच्च नो गृहे ।
अनामगस्तं च दुर्हार्दः प्रियः प्रति मुञ्चताम् ॥ २ ॥
अपामूर्ज ओजसो वावृधानमग्नेर्जातमधि जातवेदस ।
चतुर्वीरं पर्वतीयं यदाञ्जनं दिशः प्रदिशः
करदिच्छिवास्ते ॥ ३ ॥
चतुर्वीरं बध्यत आञ्जनं ते सर्वा दिशो अभयास्ते भवन्तु
ध्रुवस्तिष्ठासि सवितेव चार्य इमा विशो अभि हरन्तु ते
बलिम् ॥ ४ ॥

आक्ष्वैक मणि मेक कृणुष्व स्नाह्योकेना पिबैकमेषाम् ।
चतुर्वीरं नैऋ तेभ्यश्चतुर्भ्यो ग्राह्या बन्धेभ्यः
परिपात्वस्मान् ॥ ५ ॥
अग्निर्माग्निनावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे तेजसे
स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥ ६ ॥
इन्द्रो मेन्द्रियेणावतु प्राणायाशनायायुष वर्चस ओजसे तेजसे
स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥ ७ ॥
सोमो मा सौम्येनावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे तेजसे
स्वस्तये सुभूतये ॥ ८ ॥
भगो मा भगेनावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे तेजसे
स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥ ९ ॥
मरुतो मा गणैरवन्तु प्राणायापानाय युषे वर्चस ओजसे तेजसे
स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥ १० ॥

जैसे ऋणी पुरुष ऋण को ऋण दाता को ही लौटाता है उसी प्रकार पीड़ा देने वाले कर्मों को हे सूर्य चक्षु रूप आजन ! तुम भेजने वाले के पास पहुँचाओ ॥ १ ॥

हमारे और गाओं के दुस्वान के भय को हमारा शत्रु अनजान में आभूषणों के समान धारण करें ॥ २ ॥

यह आजन ओज का बढाने वाला, चारों दिशाओं में कुण्ठित न होने वाला, जलों का रस रूप अग्नि के समीप प्रकट होता है यह पुत्र और समस्त ससार के सुखों को देने वाला है । ३ ॥

हे रक्षा काम्य पुरुष ! चारों दिशाओं में यह आजन रूप मणि वीर्य रूप है । तुम्हारे बाँधने से तुम भय रहित, सूर्यवत तेजस्वी हो । प्रजा तुम्हें स्वर्ण, मणि, रत्न आदि वस्तुओं को देवें ॥ ४ ॥

हे पुरुष ! तुम एक आजन को मणि बना, एक को खा‍ओ और एक से स्नान कर। यह चतुर्वीर है। यह आजन सर्वोपधि रक्षक है ॥ ५ ॥

अग्नि देव समस्त गुण युक्त मेरी रक्षा करें। प्राणापान, आयुवर्च, ओज, तेज, कल्याण और अपत्य के निमित्त मेरे रक्षक होवें ॥ ६ ॥

इन्द्र प्राणापान, आयु वर्च, ओज, तेज कल्याण और सुभूति की प्राप्ति के लिए ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय को बलवती कर मेरी रक्षा करें ॥ ७ ॥

ससार को तृप्त करने वाले सोम मेरी रक्षा करें। प्राण, अपान, आयु, वर्च, ओज, तेज, मगल, सुभूति के निमित्त मेरी रक्षा करें ॥ ८ ॥

ऐश्वय युक्त गुणो द्वारा वे मेरी रक्षा करें। वे प्राण, अपान आयु, वर्च, ओज, तेज, मगल, सुभूति के निमित्त मेरे रक्षक होवें ॥ ९ ॥

मरुद्गण प्राण, आयु, वर्च ओज, तेज, मगल, सुभूति के हेतु मेरी रक्षा करें ॥ १० ॥

सूक्त ४६ (छठवाँ अनुवाक)

(ऋषि– प्रजापति । देवता--अस्तृतमणि । छन्द— त्रिष्टुप प्रभृति)

प्रजापतिष्टवा बध्नात् प्रथममस्तृतं वीर्याय कम् ।
तत् ते बध्नाम्यायुषे वर्चस ओजसे च बलाय ।
चास्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ १ ॥

ऊर्ध्वस्तिष्ठतु रक्षन्नप्रमादमस्तृतेमं मा त्वा दभन् पणयो यातुधाना ।

इन्द्रइव दस्यूनव धूनुष्व पृतन्यतः सर्वाञ्छत्रून् वि षहस्वास्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ २ ॥

शतं च न प्रहरन्तो निघ्नन्तो न तस्तिरे ।
तस्मिन्निन्द्रः पर्यदत्त चक्षुः प्राणमथो बलमस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ ३ ॥

इन्द्रस्य त्वा वर्मणा परि धापयामो यो देवानामधिराजो बभूव ।
पुनस्त्वा देवाः प्र णयन्तु सर्वेऽस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ ४ ॥

अस्मिन् मणावेकशतं वीर्याणि सहस्रं प्राणा अस्मिन्नस्तृते ।
व्याघ्रः शत्रूनभि तिष्ठ सर्वान् यस्त्वा पृतन्यादधरः सो अस्त्वस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ ५ ॥

घृतादुल्लुप्तो मधुमान् पयस्वान्त्सहस्रप्राणः शतयोनिर्वयोधाः ।
शंभूश्च मयोभूश्चोर्जस्वांश्च पयस्वांश्चास्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ ६ ॥

यथा त्वमुत्तरोऽसो असपत्नः सपत्नहा ।
सजातानामसद् वशी तथा त्वा सविता करदस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ ७ ॥

हे मणे ! तुम अबाधित शत्रुओं को वश में करने योग्य हो। सृष्टि के आदि में विधाता ने तुमको धारण किया था हे पुरुष ! ऐसी मणि को तेरे बांधता हूँ। आयु, बल, तेज और ओज की प्राप्ति में तेरी यह रक्षा करे ॥ १ ॥

हे अस्तृत मणे ! तुम इस पुरुष की रक्षा करो। मणि जातीय सुर तेरी शक्ति को कम न कर पावें। हे पुरुष ! इन्द्र के समान इन शत्रुओं को औंधा गिरा। युद्ध रत सैन्य बल को

वश मे करो। यह मणि इन कार्यो मे तेरी रक्षा का कार्य करें ॥ २ ॥

अनन्त प्रहारी शत्रु भी इसका भेद न पावें। यह अमृत नाम युक्त है। इन्द्र के द्वारा इसमे चक्षु प्राण बल आदि की स्थापना की गई है। अत बल युक्त यह मणि तेरी रक्षा काय करें ॥ ३ ॥

हे मणे ! स्वर्गस्य स्वामी के कवच से हम तुझे आच्छादित करते हैं। सभी देव भी तुम्हे आच्छादित करें। इस प्रकार होने पर तुम इस धारण कर्ता की पूणत रक्षा करो ॥ ४ ॥

एक सौ एक वीर्यो से यह मणि युक्त है। सभी देवो के ग्रहण करने से यह सर्व शक्तिमान है। हे पुरुष ! तुम इसको धारण कर व्याघ्र के समान बनो और शत्रु सेना को शक्तिहीन कर। यह मणि तेरी रक्षा करेगी ॥ ५ ॥

सवदेवो की कृपा से सवशक्तिमान घृत से सींचित, इन्द्र कवचछादित यह मणि शत्रु भगाने मे समथ है। हे पुरुष ! यह धारण कर्ता को शरीर सुख, अन्न पुत्र, पशु आदि से सम्पन्न करती है। यह तेरी रक्षक होवे। हे पुरुष ! तुम सर्वोतम बना निशत्रु होवे शत्रु को मारकर भगाने म समथ बनो धन और वय म श्रेष्ठता धारण करो। सविता देव तुझे ऐसा बनावे। यह प्रस्तुत मणि भले प्रकार से तेरी रक्षा का काय करें ॥ ७ ॥

सूक्त (४७)

(ऋषि—गोपथ । देवता—रात्रि । छन्द—बृहती जगती, अनुष्टुप)

आ रात्रि पार्थिव रज पितुरप्रायि धामभि ।
दिव सदांसि बृहती वि तिष्ठस आ त्वेष वर्तते तम ॥ १ ॥

न यस्याः पारं ददृशे न योयुवद् विश्वमस्यां
निविशते यदेजति ।
अरिष्टासस्त उर्वि तमस्वति रात्रि पारमशीमहि
भद्रे पारमशीमहि ॥ २ ॥
ये ते रात्रि नृचक्षसो द्रष्टारो नवतिर्नव ।
अशीतिः सन्त्यष्टा उतो ते सप्त सप्ततिः ॥ ३ ॥
षष्टिश्च षट् च रेवति पञ्चाशत् पञ्च सुम्नयि ।
चत्वारश्चत्वारिंशच्च त्रयस्त्रिंशच्च वाजिनि ॥ ४ ॥
द्वौ च ते विंशतिश्च ते रात्र्येकादशावमाः ।
तेभिर्नो अद्य पायुभिर्नु पाहि दुहितर्दिवः ॥ ५ ॥
रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत मा नो दुःशंस ईशत ।
मा नो अद्य गवां स्तेनो मावीनां वृक ईशत ॥ ६ ॥
माश्वानां भद्रे तस्करो मा नृणां यातुधान्यः ।
परमेभिः पथिभि स्तेनो धावतु तस्करः ।
परेण दत्वती रज्जुः परेणाघायुरर्षतु ॥ ७ ॥
अध रात्रि तृष्टधूममशीर्षाणमहिं कृणु ।
हनू वृकस्य जम्भयास्तेन तं द्रुपदे जहि ॥ ८ ॥
त्वयि रात्रि वसामसि स्वपिष्यामसि जागृहि ।
गोभ्यो नः शर्म यच्छाश्वेभ्यः पुरुषेभ्यः ॥ ९ ॥

हे रात्रि तेरा अन्धकार समस्त पृथ्वी, आकाश और अन्तरिक्ष में व्याप्त हो गया है। नीले रंग का अन्धकार ही चारो ओर छा गया है ॥ १ ॥

जिस रात्रि में समस्त संसार एक सा दिखाई देता है, चेष्टा युक्त प्राणी चलने में असमर्थ होते हैं। हे प्रभूत तममयी रात्रि ! हम सब अहिंसित रहते हुए तुमको पार करें ॥ २ ॥

हे रात्रि ! मनुष्य फल द्दष्टा जो तुम्हारे निन्य नवे गण हैंतथा अठ्ठासी और सनत्तर गणहै उन सभी से युक्त तुम हमारे रक्षक बनो ॥ ३ ॥

हे रात्रि ! तुम्हारे छियासठ पचपन और चवालीस, गण हमारी रक्षा करे ॥ ४ ॥

हे रात्रि ! तुम अपने बाईस व ग्यारह गणा सहित हमारी रक्षा करो ॥ ५ ॥

मारने की धमकी युक्त कोई शत्रु मेरे पास न आवे, कोई मेरे को दुर्वचन कहे, चोर भी हमारी गायों को न चार सकें, भेडिया हमारी भेडो को न ले पावे। हे रात्र ! ऐसा काय करो ॥ ६ ॥

हे रात्रि ! हमारे घाडे को तस्कर न चुरा सके। राक्षसियां और पिशाचगण मनुष्य को न मारे। चोर अन्य मार्गी होवे। सर्पिणी और हिंसात्मक मनुष्य भी अन्य मागगामी बने ॥ ७ ॥

हे रात्रि ! पीडा पहुँचाने वाले सप को मस्तक रहित करो। भेडिया की ठोडी को नष्ट कर दो जिससे मर जाय ॥ ८ ॥

हे रात्रि ! तुम्हारी रक्षा बल पर ही हम रह रहे हैं। तथा उसी से निद्रा आती है। तुम हमारी गो, सन्तानादि की रक्षा करते हुए हमारी रक्षक बनो ॥ ९ ॥

सूक्त (४८)

(ऋषि—गोपथ । दवता—रात्रि । छन्द—गायत्री, अनुष्टुप् पंक्ति)

अथा यानि च यस्मा ह यानि चान्त परीणहि ।

तानि ते परि दद्मसि ॥ १ ॥
रात्रि मातरुषसे न. परि देहि ।
उषा नो अह्ने प र ददात्वहस्तुभ्य विभावरि ॥ २ ॥
यत् किं चेद पतयति यत् किं चेद सरीसृपम् ।
यत् किं च पर्वतायासत्व तस्मात् त्व रात्रि पाहि न ॥ ३ ॥
सा पश्चात् पाहि सा पुर सोत्तरादधरादुत ।
गोपाय नो विभावरि स्तोतारस्त इह स्मसि ॥ ४ ॥
ये रात्रिमनुतिष्ठन्ति य च भूतेष जाग्रति ।
पशून् ये सर्वान् रक्षन्ति ते न आत्मसु जाग्रति ।
ते न पशुषु जागृति । ५ ॥
वेद वै रात्रि ते नाम घृताची नाम वा असि ।
ता त्वा भरद्वाजो वेद सा नो वित्तेऽधि जाग्रति ॥ ६ ॥

खुले हुये चारागाह की वस्तुयें घर की वस्तुयें इन सभी को हे रात्रि ! तुमको हम सुपद कराते हैं ॥ १ ॥

हे रात्रि ! तुम मातृवत रक्षक हो, अपने वाद के उषा काल को हमारी रक्षार्थ देवा ! उषाकाल के वाद होने वाले दिन को सुख पूवक दो । फिर हम उसे तुम्हे लौटा दगे ॥ २ ॥

आकाशगामी पक्षी और पृथ्वी पर रेंगने वाले सर्प आदि, पर्वत और बनो मे घूमने वाले हिंसक आदि पशुओ से हे रात्रि ! हमारी रक्षा करो ॥ ३ ॥

हे रात्रि ! हमारे चारो तरफ सोने बैठने वाले स्थानो को सुरक्षित करो हम तुम्हारा यशोगान करते है ॥ ४ ॥

रात्रि मे अनुष्ठान करने वाले, चोरी आदि कर्मा से सावधान रहने वाले, वे पशुओ और मनुष्यों की रक्षा निमित्त ही जागते है ॥ ५ ॥

हे रात्रि ! भारद्वाज ऋषि ने तुम्हे घृताची बताया था। ऐसी हे रात्रि ! हमारे पशु आदि की रक्षार्थ सचेत रहना ॥ ६ ॥

सूक्त (४८)

(ऋषि—गोपथ भारद्वाजश्च । देवता—रात्रिः । छन्द—त्रिष्टुप् , पंक्ति ,जगती)

इषिरा योषा युवतिर्दमूना रात्री देवस्य सवितर्भगस्य ।
अश्वक्षभा सुहवा सम्भृतश्रीरा पप्रौ द्यावापृथिवी महित्वा ॥ १ ॥
अति विश्वान्यरुहद् गम्भीरो वर्षिष्ठमरुहन्त श्रविष्ठा ।
उशती रात्र्यनु सा भद्राभि तिष्ठते मित्रइव स्वधाभि ॥ २ ॥
वर्ये वन्दे सुभगे सुजात आजगन् रात्रि सुमना इह स्याम् ।
अस्मा त्रायस्व नर्याणि जाता अथो यानि गव्यानि पुष्ट्या ॥ ३ ॥
सिंहस्य रात्र्युशती पींषस्य व्याघ्रस्य द्वीपिनो वर्च आ ददे ।
अश्वस्य ब्रध्नं पुरुषस्य मायुं पुरु रूपाणि कृणुषे विभाती ॥ ४ ॥
शिवां रात्रिमनुसूर्यं च हिमस्य माता सुहवा नो अस्तु ।
अस्य स्तोमस्य सुभगे नि बोध येन त्वा वन्दे विश्वासु दिक्षु ॥ ५ ॥
स्तोमस्य नो विभावरि रात्रि राजेव जोषसे
असाम सर्ववीरा भवाम सर्ववेदसो व्युच्छन्तीरनूषसः ॥ ६ ॥
शम्या ह नाम दधिषे मम दिप्सन्ति ये धना ।
रात्रीहि तानसुतपा य स्तेनो न विद्यते यत् पुनर्न विद्यते ॥ ७ ॥
भद्रासि रात्रि चमसो न विष्टो विष्वङ् गोरूप युवतिर्बिभर्षि ।

चक्षुष्मती मे उशती वपूंषि प्रति त्व दिव्या न क्षाममुक्था ॥ ८ ॥
या अद्य स्तेन आयत्यघायुर्मर्त्यो रिपु ।
रात्री तस्य प्रतीत्य प्र ग्रीवा प्र शिरो हनत् ॥ ९ ॥
प्र पादौ न यथायति प्र हस्तौ न यथाशिषत् ।
यो मलिम्लुरुपायति स संपिष्टो अपायति ।
अपायति स्वपायति शुष्के स्थाणावपायति ॥ १० ॥

एक अवस्था युक्त सर्व पूज्य, वश तिरस्करणीय, आह्वा-नीय रात्रि विश्व मे व्याप्त होने से एकाकार वाली मालूम देती है द्यावा पृथ्वी उसकी महिमा से युक्त है ॥ १ ॥

सर्वतमयी इस पृथ्वी की सभी स्तुति करते हैं। यह सब जगह व्याप्त है। यजमान आदि के दान के प्रभाव से जैसे सूर्य जगत पर चढते हैं वैसे ही यह चढ बैठती है ॥ २ ॥

हे सुन्दर जन्म युक्त सौभाग्ययुक्त रात्रि ! तू आ गई है। मैं प्रसन्न हूँ। तुम भी प्रसन्न होकर, पशु पुत्रादि और मनुष्यो की रक्षा करो ॥ ३ ॥

यह रात्रि सिंह, हाथी, गैंडा, आदि के बल को क्षीण करती है। प्राणी की आह्वान शक्ति को भी खीच लेती है। हे रात्रि ! तुम दीप्तमान होकर अपने रूप को प्रकट करती हो ॥ ४ ॥

हे रात्रि तुम मगल युक्त हो। रात्रि मरण सूर्य की भी स्तुति करता हूँ। हे रात्रि ! मेरी स्तुति को ठीक प्रकार से सुनो। तुम सर्वत्र व्याप्त हो अत. हमारी रक्षा करो ॥ ५ ॥

हे त्रिमार्वरि ! जैसे प्रशसकों की स्तुति को राजा प्रसन्न चित्त से सुनता है वैसे ही तुम अपने यशोगान को प्रसन्न चित्त से सुनो ॥ ६ ॥

तुम्हारे स्तोत्रों के श्रवण कर लेने पर हम पुन पौत्रादि से युक्त हुए उषाकाल को प्राप्त करें ॥ ७ ॥

हे रात्रि ! तुम शत्रु शमन करने वाली हो। धन को हरण कर्त्ताओं को मग्न करो, नष्ट करो और वे कभी भी प्रकट न हो सकें। इस प्रकार तुम मगलमयी होकर आओ ॥ ८ ॥

हे रात्रि ! तुम सर्वत्र व्याप्त हो। घोर अन्धकार से सम्पन्न धेनु रूप और चमस के समान मगलकारी हो। तुम दर्शन इन्द्रिय देती हुई आओ। जसे दिव्य शरीर को नहीं छोडता वैसे हमारे शरीरो को पृथ्वी पर न छोड ॥ ९ ॥

पाव हाथ से हीन होता हुआ वह शत्रु अत्यधिक निद्रा को प्राप्त होवे तथा शुष्क वृक्ष के नीचे स्थान ग्रहण करें ॥ १० ॥

सूक्त (५०)

(ऋषि—गोपथः । देवता—रात्रि । छन्द—अनुष्टुप्)

अध रात्रि तृष्टधूममशीर्षाणमहिं कृणु ।
अक्षौ वृकस्य निर्जह्यास्तेन तं द्रुपदे जहि ॥ १ ॥
ये ते रात्र्यनड्वाहस्तीक्ष्णशृङ्गाः स्वाशवः ।
तेभिर्नो अद्य पारयाति दुर्गाणि विश्वहा ॥ २ ॥
रात्रिंरात्रिमरिष्यन्तस्तरेम तन्वा वयम् ।
गम्भीरमप्लवाइव न तरेयुररातयः ॥ ३ ॥
यथा शाम्याकः प्रपतन्नपवान् नानुविद्यते ।
एवा रात्रि प्र पातय यो अस्माँ अभ्यघायति ॥ ४ ॥
अप स्तेन वासो गोअजमुत तस्करम् ।
अथो यो अर्वतः शिरोऽभिधाय निनीषति ॥ ५ ॥
[illegible] रात्रि सुभगे वि [illegible] ।

यद्वेनदस्मान् भोजय तथे श्न्या पूपायति ॥ ६ ॥
उपसे न परि देहि सर्वान् रात्र्यनागस ।
उषा नो अह्ने आ भजादहस्तुभ्य विभावरि ॥ ७ ॥

हे रात्रि ! धूम रूप ययास जो सब का कष्टदायक है उसे सिर-रहित करो । श्रृगाल को नेत्रहीन करके वृक्ष के स्थान पर मार डालो । १ ॥

ह रात्रि ! तुम्हारे तीक्ष्ण शृंग वाले बैल तीव्र गति युक्त होवे । उनसे तुम अजीत अनर्थों को जीत ॥ २ ॥

हम पुत्र पौत्रादि युक्त रात्रि को आनन्द पूर्वक बिताये परन्तु शत्रु नहीं बिता सकें । हे रात्रि ! तुम्हारी रक्षा रूपी नाव से रहित हमारे शत्रु भाग मे ही नष्ट हो जाँय ॥ ३ ॥

हे रात्रि ! हमारे बुरे विच र करने वाला जो शत्रु आ रहा है उसे शाम्याक के समान पृथ्वी पर गिरा दो ।। ४ ।।

वस्त्रापहारक, गो और अश्वादि को परिहारक क हे रात्रि ! समाप्त करो । ५ ।

हे सुभगे ! हे रात्रि ! जिस सुवर्ण आदि धन को शत्रु हमसे प्राप्त करना चाहे और जिस मार्ग से लेना चाहे उसी मार्ग स हमारे धनो को हमारे पास पहुँचाओ ॥ ६ ॥

हे रात्रि ! तुम उषाकाल सूर्योदय तक हमारी रक्षा करें वह दिन सुख पूर्वक तुम्हें प्राप्त करावे । इस प्रकार दिन रात्रि हमको धन आदि से सम्पन्न कर शत्रु रहित करें ॥ ७ ॥

सूक्त (५१)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—आत्मा, सविता । छन्द—अनुष्टुप्, उष्णिक्)

अयुतोऽहमयुतो म आत्मायुत मे चक्षुरयुत मे श्रोत्रमयुतो मे

प्राणोऽपतो मेऽपानोऽपूनो मे व्यानोऽपूनोऽहं सर्वं ॥ १ ॥
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णोहस्ताभ्यां
प्रसूत आ रभे ॥ २ ॥

मैं कर्मानुष्ठान की इच्छा से सम्पन्न हूँ। मेरा शरीर नेत्र, श्रोत्र नासिका, प्राण, अपान व्यान सभी अंग पूर्ण और सम्पन्नता युक्त है अर्थात् मैं सर्वेन्द्रिय सम्पन्न हूँ ॥ १ ॥

हे कर्म सविता देव की प्रेरणा से, अश्विनी कुमारों की भुजाओं से, और हाथों से तुझे प्रारम्भ करता हूँ ॥ २ ॥

सूक्त (५२)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—काम । छन्द—त्रिष्टुप्, उष्णिक् बृहती)

कामस्तदग्रे समवर्तत मनसो रेत प्रथमं यदासीत् ।
स काम कामेन बृहता सयोनी रायस्पोषं यजमानाय
धेहि ॥ १ ॥
त्वं काम सहसासि प्रतिष्ठितो विभुर्विभावा सख आ सखीयते ।
त्वमुग्रः पृतनासु सासहिः सह ओजो यजमानाय धेहि ॥ २ ॥
दूराच्चकमानाय प्रतिपाणायाक्षये ।
आस्मा अशृण्वन्नाशाः कामेनाजनयन्त्स्वः ॥ ३ ॥
कामेन मा काम आगन् हृदयाद्धृदयं परि ।
यदमीषामदो मनस्तदैतूप मामिह ॥ ४ ॥
यत्काम कामयमाना इदं कृण्मसि ते हविः ।
तन्नः सर्वं समृध्यतामथैतस्य हविषो वीहि स्वाहा ॥ ५ ॥

सृष्टि के पूर्व परमात्मा के मन भली प्रकार से काम व्याप्त हो गया। हे काम! तुम प्रथम उत्पन्न हुए परमात्मा के समान हो तुम हविदाता को धन सम्पन्न कर ॥ १ ॥

हे काम ! तुम सहास से प्रतिष्ठित, विभु और विभावा हो। हे मित्र ! तुम हमसे मित्रता का भाव रखते हो। तुम महान बली और शत्रु विजयी हो। इस यजमान को आज ओर बल प्रदान करो ॥ २ ॥

पूर्वादि समस्त दिशाओं ने इस दुर्लभ फल की इच्छा युक्त पुरुष को फल देने और अक्षय सुख देने का निश्चय किया है ॥ ३ ॥

अभीष्ट फल युक्त फल मुझे मिले और ब्राह्मणो का फल प्राप्त मन भी मुझे मिले ॥ ४ ॥

हे काम देव ! जिस कामना युक्त हम तुम्हे हवि देते हैं उसे ग्रहण करो। और हमारी मनोकामना पूर्ण करो ॥ ५ ॥

सूक्त (५३)

(ऋषि—भृगुः। देवता—कालः। छन्द—त्रिष्टुप्, बृहती, अनुष्टुप्)

कालो अश्वो वहति सप्तरश्मि सहस्राक्षो अजरो भूरिरेता.।
तमा रोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा ॥ १ ॥

सप्त चक्रान् वहित काल एष सप्तास्य नाभीरमृत न्वक्ष.।
स इमा विश्वा भुवनान्यञ्जत् काल स ईयते प्रथमो नु देवः ॥ २ ॥

पूर्ण कुम्भोऽधि काल आहितस्तं वै पश्यामो बहुधा नु सन्तः।
स इमा विश्वा भुवनानि प्रत्यङ् काल तमाहुः परमे व्योमन् ॥ ३ ॥

स एव सं भुवनान्याभरत् स एव स भुवनानि पयत्।
पिता सन्नभवत् पुत्र एषां तस्माद् वै नान्यत् परमस्ति तेजः ॥ ४ ॥

कालोऽमूं दिवमजनयत् काल इमाः पृथिवीरुत ।
काले ह भूतं भव्यं चेषितं ह वि तिष्ठते ॥ ५ ॥
कालो भूतिमसृजत काले तपति सूर्यः ।
काले ह विश्वा भूतानि काले चक्षुर्वि पश्यति ॥ ६ ॥
काले मनः काले प्राणः काले नाम समाहितम् ।
कालेन सर्वा नन्दन्त्यागतेन प्रजा इमाः ॥ ७ ॥
काले तपः काले ज्येष्ठं काले ब्रह्म समाहितम् ।
कालो ह सर्वस्येश्वरो यः पितासीत् प्रजापतेः ॥ ८ ॥
तेनेषितं तेन जातं तदु तस्मिन् प्रतिष्ठितम् ।
कालो ह ब्रह्म भूत्वा बिभर्ति परमेष्ठिनम् ॥ ९ ॥
कालः प्रजा असृजत कालो अग्रे प्रजापतिम् ।
स्वयम्भूः कश्यपः कालात् तपः कालादजायत ॥ १० ॥

कलात्मक वस्तुओं को व्याप्त कर लेने वाले वह सप्तरश्मि वाले सहस्रों नेत्र वाले नित्य युवा भूरि वीर्य युक्त है । उस अश्व रूप पर बुद्धिवान ही आरूढ़ होते है समस्त संसार उस अश्व का चक्र है ॥ १ ॥

कालात्मक संवत्सर सात ऋतुओं को वहन करता है । यह चक्र इसके नाभि रूप है । अमृत अक्ष है । कलात्मक ब्रह्म ही इस चराचर विश्व की रचना और विध्वंस का कार्य करता है ॥ २ ॥

यह परमेश्वर काल मे कुम्भ के समान पूर्ण रूप से व्याप्त है । हम उसको (काल को) अनेक भेदों देखते हुए उन्हें व्योम का निर्लेप मानते है ॥ ३ ॥

वही काल परम जीवों की उत्पत्ति करता है वह भुवन पिता और पुत्र रूप में विद्यमान हैं । अन्य कोई तेज इन काल में नहीं पाया जाता है ॥ ४ ॥

द्यूलोक और पृथ्वी की काल से ही उत्पत्ति हुई है। इसी काल के आश्रय में भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल रहता है ॥ ५ ॥

संसार की रचना उसी काल द्वारा हुई, सूर्य इसी के सहारे प्रकाशित होते हैं। इन्द्रिय अधिष्ठाता भी कालाधीन होकर इन्द्रियों का संचालन कर्म करता है ॥ ६ ॥

काल में ही सृष्टि रचना का मन और उसी में प्राणी निवास निहित हैं। समस्त प्रजायें आने वाले काल से अभीष्ट फल की कामना करती हैं। ७ ॥

काल ही तप काल ही ज्येष्ठ और काल ही ब्रह्म प्रतिष्ठित माना जाता है। काल समस्त जीवों का ईश्वर पिता और प्रजापति है। ८ ॥

संसार काल से उत्पन्न हो उसी में विद्यमान है। काल ही ब्रह्म होता रूप में ब्रह्मा को धारण करता है ॥ ९ ॥

काल ने प्रथम प्रजापति तथा बाद में प्रजाओं की रचना की काल से ही कश्यप हुए। वह काल स्वयम्भू है ॥ १० ॥

सूक्त (५४)

(ऋषि—भृगु । देवता—काल । छन्द—अनुष्टुप, गायत्री, अष्टि)

कालादाप समभवन् कालाद् ब्रह्म तपो दिश ।
कालेनोदेति सूर्यं काले नि विशते पुन ॥ १ ॥
कालेन वात पवते कालेन पृथिवी मही ।
द्यौर्मही काल आहिता ॥ २ ॥
कालो ह भूत भव्य च पुत्रो अजनयत् पुरा ।
कालादृच समभवन् यजु कालादजायत ॥ ३ ॥

कालो यज्ञं समैरयद्देवेभ्यो भागमक्षितम् ।
काले गन्धर्वाप्सरसः काले लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥ ४ ॥
कालेऽयमङ्गिरा देवोऽथर्वा चाधि तिष्ठतः ।
इमं च लोकं परमं च लोकं पुण्यांश्च लोकान्
विधृतीश्च पुण्याः ।
सर्वांल्लोकानभिजित्य ब्रह्मणा कालः स ईयते परमो नु
देवः ॥ ५ ॥

काल से ही जल, ब्रह्म, तप, दिशायें, और सूर्य की उत्पत्ति हुई है। काल ही सूर्य को बाद मे अस्त कर देता है ॥ १ ॥

काल मे वायु चलती है, पृथ्वी ऐश्वर्य युक्त है, और द्युलोक भी कालाश्रित है ॥ २ ॥

काल से ही भूत, भविष्य पुत्र, पुर, ऋचा, और यजुर्वेद की उत्पत्ति भई है । ३ ॥

काल ने यज्ञ को देवों के भाग मे बनाया। काल द्वारा ही अप्सरा और गन्धर्व हुए । समस्त संसार कालाधीन है ॥ ४ ॥

अंगिरा, अथर्वा आदि महर्षि काल द्वारा ही उत्पन्न हुए। वह काल स्वर्ग तथा अन्य लोकों को देश, काल, कारण से रहित परम ब्रह्म के द्वारा ध्यान करके स्थित रहता है ॥ ५ ॥

सूक्त (५५)

(ऋषि—भृगुः। देवता—अग्निः, छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति, उष्णिक्)

रात्रिंरात्रिमप्रयातं भरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमस्मै ।

रायस्पोषेण समिधा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम ॥ १ ॥

य॰ ते वसोर्वात इषुः सा ए्षा तया नामृड ।
रायस्पोषेण समिधा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम् ॥ २ ॥

सायसाय गृहपतिर्नो अग्निः प्रात॰ प्रात सौमनसस्य दाता ।
वसोर्वसोर्वसुदान एधि वय त्वेन्धानास्तन्व पुषेम ॥ ३ ॥

प्रात प्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायसाय सौमनस्य दाता ।
वसोर्वसोर्वसुदान एधीन्धानास्त्वा शतहिम॰ ऋधेम ॥ ४ ॥

अपश्चाद्दग्धान्नस्य भूयासम् ।
अन्नादायान्नपतये रुद्राय नमो अग्नये ॥ ५ ॥

सभ्य सभा मे पाहि ये च सभ्या सभासद॰ ।
त्वयेद्गा पुरुहूत विश्वमायुर्व्यश्नवम् ॥ ६ ॥

अहरहर्बलिमित्ते हरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमग्ने ।
रायस्पोषेण समिधा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम ॥ ७ ॥

हे अग्ने ! गार्हपत्य आदि स्वरूपो मे तुमको हवि देते हुए हम अन्न और धन से सम्पन्न रहे। तुम्हारी समीपता से हम आयुष्मान होवें ॥ १ ॥

हे अग्ने ! तुम हमें अन्न प्रदान करो। हम तुम्हारी समीपता मे अन्न और धन से सम्पन्नता प्राप्त करें ॥ २ ॥

गार्हपत्य अग्नि सुबह और शाम हमे सुखदायक होवें। हे अग्ने ! तुम हमे धन आदि से सम्पन्न करो। हम तुम्हें हवियों द्वारा प्रदीप्त करते हैं। जिससे हमारा शरीर स्वस्थ होवें ॥३॥

गार्हपत्य अग्नि सुबह और सांय हमें सुखमयी बनावें।

हे अग्ने ! तुम वृद्धि पाकर हमें धन प्रदान करो । हम सौ वर्षी होने को तुम्हे प्रदीप्त करते हैं । ४ ॥

पान के पर्दे मे जले अन्न को मैं नही खाऊँ । अन्न सेवन विकारी रुद्रात्मक अग्नि को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५ ॥

सभा में प्रतिष्ठित हुए तुम मेरी सन्तति की रक्षा करो। और समासद इस सभा के रक्षक होवें ॥ ६ ॥

हे इन्द्राग्ने ! तुम ऐश्वर्य सम्पन्न हो। हमे अन्न और जीवन दो । घोड़े को तृण देने के समान ही जो पुरुष तुमको हवि प्रदान करते हैं उन्हे अन्न से सम्पन्न करो ॥ ७ ॥

सूक्त (५६)

(ऋषि—यमः । देवता—दुःस्वप्ननाशनम् । छन्द-त्रिष्टुप्)

यमस्य लोकादध्या बभूविथ प्रमदा मर्त्यान् प्र युनक्षि धीरः ।
एकाकिना सरथं यासि विद्वान्त्स्वप्नं मिमानो असुरस्य योनौ ॥ १ ।
बन्धस्त्वाग्रे विश्वचया अपश्यत् पुरा रात्र्या जनितोरेके अह्नि ।
ततः स्वप्नेदमध्या बभूविथ भिषग्भ्यो रूपमपगूहमानः ॥ २ ॥
बृहद्गावासुरेभ्योऽधि देवानुपावर्तत महिमानमिच्छन् ।
तस्मै स्वप्नाय दधुराधिपत्यं त्रयस्त्रिंशासः स्वरानशानाः ॥ ३ ॥
नैतां विदुः पितरो नोत देवा येषां जल्पिश्चरत्यन्तरेदम् ।
त्रिते स्वप्नमदधुराप्त्ये नर आदित्यासो वरुणेनानुशिष्टाः ॥ ४ ॥
यस्य क्रूरमभजन्त दुष्कृतोऽस्वप्नेन सुकृतः पुण्यमायुः ।
स्वर्मदसि परमेण बन्धुना तप्यमानस्य मनसोऽधि जज्ञिषे ॥ ५ ॥

विद्म ते सर्वा परिजा पुरस्ताद् विद्म स्वप्न यो अधिपा इहा ते ।

यशस्विनो नो यशसेह पाह्याराद् द्विषेभिरप याहि दूरम् ॥ ६ ॥

हे पिशाच ! तुम यम लोक से दुस्वप्न के रूप में इस पृथ्वी पर आये हो। तुम निर्भय होकर स्त्री पुरुषो के दु स्वप्न ग्रस्त रथ पर जा चढते हो ॥ १ ॥

हे दु स्वप्न ! तुमको प्रजापति आदि ने सृष्टि रचना के आरम्भ मे और दिन रात की रचना से पूर्व देखा था। तुम तभी से इस ससार मे व्याप्त हो। चिकित्सको के सामने तुम छुर जाते हो ॥ २ ॥

यह असुरो को यास से महिमा पाने को देवो के पास चलता है। तब देवो न उसे नष्ट करने की शक्ति प्रदान की ॥ ३ ॥

तेतीस देवो के अतिरिक्त उस अनिष्ट कारी शक्ति को पितर भी नही जानते हैं। पाप नाशक वरुण से उपदेश देने पर आदित्यो मे महर्षित्रित मे इसको विद्यमान किया ॥ ४ ॥

पापी पुरुष जिससे अनेक अनर्थ को पाते हैं। और पुण्यात्मा पुरुष दु स्वप्न रहित अनेक लाभो को ग्रहण करते हैं। ऐसा दु स्वप्न विधाता के पास सुप्त को प्राप्त होता है। तुम पापी की मरने की सूचना देने वाले हो ॥ ५ ॥

हे स्वप्न ! हम तेरे परिजन वर्ग और स्वामी की भी जानकारी रखते हैं। तुम दु स्वप्न से हमारी रक्षा करो। तुम हमसे द्वेष करने वालो को दूर कर ॥ ६ ॥

सूक्त (५७)

(ऋषि—यम । देवता—दुःस्वप्ननाशनम् । छन्द—अनुष्टुप् त्रिष्टुप्, जगती)

यथा कला यथा शफ यथर्णं सनयन्ति ।
एवा दुःष्वप्न्यं सर्वमप्रिये स नयामसि ॥ १ ॥
स राजानो अगु सामृणान्यगु स कुष्ठा अगु स कला अगु ।
समस्मासु यद् दुःष्वप्न्यं निर्द्विषते दुःष्वप्न्यं सुवाम ॥ २ ॥
देवानां पत्नीनां गर्भ यमस्य कर यो भद्रः स्वप्न ।
स मम य. पापस्तद् द्विषते प्र हिण्म ।
मा तृष्टानामसि कृष्णशकुनेर्मुखम् ॥ ३ ॥
त त्वा स्वप्न तथा स विद्म स त्व स्वप्नाश्वइव कायमश्वइव नीनाहम् ।
अनास्माक देवपीयु पियारु वप यदस्मासु
दुःष्वप्न्यं यद् गोषु यच्च नो गृहे ॥ ४ ॥
अनास्माकस्तद् देवपीयु पियारुर्निष्कमिव प्रति मुञ्चताम् ।
नवारत्नीनपमया अस्माक ततः परि ।
दुःष्वप्न्यं सर्वं द्विषते निर्दयामसि ॥ ५ ॥

जिस प्रकार यज्ञ मे अवदानीय अगो को लेकर सत्कार निभाने वाले ऋत्विज दूसरी जगह उठा ले जाते हैं और जिस ऋण के भार के समान उतारते हैं। उसी प्रकार हम दुस्वप्न से उत्पन्न हुए अनिष्टो को जल पुत्र मित पर उतारते हैं ॥ १ ॥

जिस प्रकार शत्रु नाश के लिए एकत्रित होते हैं, जिस तरह ऋण, कुष्ट रोग आदि वृद्धि को पा एकत्र हो जाते हैं और पके हुए खुर डाढे में एकत्र हो जाते हैं उसी प्रकार दुस्वप्न से

जो अनिष्ट एकत्र हो जाते हैं उनको हम शत्रुओं पर छोडते हैं। २ ॥

हे देव परिनगर्भ ! हे स्वप्न ! तेरा कल्याणमयी भाग मुझे और दु खदायी भाग शत्रु को प्राप्त होवें। काले काग का स्वप्न वत मुख मुझे दु.खदायी न बनें ॥ ३ ॥

हे स्वप्न ! हम तेरे आवागमन को भली भांति जानते हैं। जैसे धूल से धूसरित घोडा शरीर को झाडता है और काठी आदि को फक देता है। उसी प्रकार तुम हमारे देवताओं और यज्ञ के बाधक शत्रुओं का नाश कर। गौ के लिए दुस्वप्न को यहाँ से भगा ॥ ४ ॥

हे देव ! उस अनिष्ट को शत्रु प्राप्त करें। हमारे दुस्वप्न के फल को नौमुठ्ठो पीछे हटाओ। हमारे शत्रु इस दुस्वप्न जनित फल को प्राप्त करे ॥ ५ ॥

सूक्त (५८)

(ऋषि--ब्रह्मा। देवता -मन्त्रोक्ता। छन्द - त्रिष्टुप्, अनुष्टुप, शक्वरी)

घृतस्य जूतिः समना सदेवा सवत्सरं हविषा वर्धयन्ती ।
श्रोत्रं चक्षुः प्राणोऽच्छिन्नो नो अस्त्वच्छिन्ना वयमायुषो वर्चस ॥ १ ॥
उपास्मान प्राणो ह्वयतामुप वय प्राणं हवामहे ।
वर्चो जग्राह पृथिव्यन्तरिक्ष वर्चः सोमो बृहस्पतिर्विधत्ता ॥ २ ॥
वर्चसो द्यावापृथिवी संग्रहणी बभूवथुर्वर्चो गृहीत्वा पृथिवी मनु सं चरेम ।
यशसं गावो गोपतिमुप तिष्ठन्त्यायतीर्यशो गृहीत्वा पृथिवीमनु स चरेम ॥ ३ ॥
व्रजं कृणुध्व स हि वो नृपाणो वर्मा सीव्यध्वं बहुला पृथूनि ।

पुरः कृणुदश्मायसीरधृष्टा मा च सुस्रोच्चमसो दृहता
तम् ॥ ४ ॥
यज्ञस्य चक्षु प्रभृतिर्मुख च वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि ।
इम यज्ञं वितत विश्वकर्मणा देवा यन्तु
सुमनस्यमाना ॥ ५ ॥
ये देवानामृत्विजो ये च यज्ञिया येभ्यो हव्य क्रियते
भागधेयम् ।
इम यज्ञ सह पत्नीभिरेत्य यावन्तो देवास्तविषा
मादय ताम् ॥ ६ ॥

परमात्मा रूप बुद्धि, सवत्सर रूप ईश्वर को शब्द स्पर्श रूप हवि द्वारा पुष्ट बनाती है । साधक जन अपनी इन्द्रियों को भोगो से रहित करते हुए रहते हैं हम इस प्रकार के वश मे निष्ठ हुए श्रेय, चक्षु प्राण, आयु, वर्च आदि से युक्त होवें ॥ १ ॥

प्राण हमे दीर्घ जीवी करें प्राण से ही हम अनन्त काल तक शरीर निवास करते है । पृथ्वी अन्तरिक्ष और सूर्य से सोम और वृहस्पति ने हमको देने के निमित्त वर्च को धारण किया है ॥ २ ॥

हे आकाश पृथ्वी हमको वर्च देवो । हमे गाओ की प्राप्ति होवे । हम अपने तेज से गाओ सहित पृथ्वी और आकाश में भ्रमण कर सके ॥ ३ ॥

हे इन्द्रियो ! इस रक्षक शरीर से मिलकर रहो । अपने कार्यों को ठीक तरह करते हुए अपने विषयो को ग्रहण करो । इस शरीर का नाश न होवे ॥ ४ ॥

यज्ञ के नेम रूप अग्नि प्रथम पूज्य होने से मुख रूप बना । अग्नि के लिए मे हवि देता हूँ । इन्द्रादि देव भी इस विश्व कर्मा के यज्ञ में शामिल होवे ॥ ५ ॥

देवो में ऋत्विज रूप तथा यज्ञार्ह, जिनको हवि प्रदान की जाती है इस यज्ञ मे अपनी पत्नियो युक्त आवें और हवि ग्रहण करे। सभी देव हम पर प्रसन्न होवें ॥ ६ ॥

सूक्त (५६)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता - अग्निः । छन्दः—गायत्री, त्रिष्टुप्)

त्वमग्ने व्रतपा असि देव आ मर्त्येष्वा ।
त्व यज्ञेष्वीड्य ॥ १ ॥

यद् वो वय प्रमिनाम व्रतानि विदुषा देवा अविदुष्टरास. ।
अग्निष्टद् विश्वादा पृणातु विद्वान्त्सोमस्य यो ब्राह्मणां आविवेश ॥ २ ॥

आ देवानामपि पन्थामगन्म यच्छक्नवाम तदनुप्रवोढुम् ।
अग्निर्विद्वान्त्स यजात् स इद्धोता सोऽध्वरान्त्स ऋतून् कल्पयाति ॥ ३ ॥

हे अग्ने ! तुम मनुष्य मे जठराग्निवत निवास करते हो। तुम कर्मों की रक्षा करते हो अत यज्ञस्तुतिओ द्वारा पूज्य हो ॥ १ ॥

हे देव ! जिन विद्वत जनो के कर्मो को हम अल्पज्ञाता नही जानते हैं उनको देवगण जानते है। सोम की अर्चा करने वाले ब्राह्मणो के सामने यह अग्नि प्रतिष्ठित है ॥ २ ॥

अनुष्ठान की कामना वाले हम देवयान मार्ग को जान गये हैं। अग्निदेव की पूजा अर्चा करना उत्तम है चूँकि वे देवयान के ज्ञाता और होता रूप और आह्वान करने वाले हैं। वे अहिंसित यज्ञो का समय निश्चित करते है ॥ ३ ॥

सूक्त (६०)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—वागादिमन्त्रोक्ता । छन्द—वृहती, उष्णिक)

वाङ्‌ म आसन्नसो प्राणश्चक्षुरक्ष्णो श्रोत्रं कर्णयो ।
अपलिता केशा अशोणा दन्ता बहु बाह्वोर्बलम् ॥ १ ॥
ऊर्वोरोजो जङ्घयोर्जव पादयः ।
प्रतिष्ठा अरिष्टानि मे सर्वात्मानिभृष्ट ॥ २ ॥

मुख मे मेरे वाणी नासिका मे प्राण नेत्रो मे देखने की शक्ति दाँत अक्षुण और केश पतित रोग से रहित रहे, मेरी बाहु यत्नवती होवे ॥ १ ॥

ऊरुओ में ओज जाघो मे वेग और पाँवों मे खड़े रहने की शक्ति होवे । आत्मा और अंग अहिंसा और पाप से रहित होवें ॥ २ ॥

सूक्त (६१)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—ब्रह्मणस्पति । छन्द—वृहती)

तनूस्तन्वा मे सहे दत सर्वमायुरशीय ।
स्योनं मे सीद पुरुः पृणस्व पवमानः स्वर्गे ॥ १ ॥

जीवन भर में अपने दाँतो को साता रहूँ तथा शत्रुओ के शरीर को नीचा दिखाने योग्य बनूँ हे अग्ने ! तुम यहाँ और स्वर्ग में सुख प्रदान करो ॥ १ ॥

सूक्त (६२)

(ऋषि ब्रह्मा । देवता- ब्रह्मणस्पति । छन्द—अनुष्टुप)

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु ।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये ॥ १ ॥

हे अग्ने ! मुझे देव और राज्य प्रिय करो । मैं शूद्र, आर्य और सभी देखने वालों को प्रिय होऊँ ॥ १ ॥

सूक्त (६३)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—ब्रह्मणस्पतिः । छन्द—बृहती)

उत् तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यज्ञेन बोधय ।
आयुः प्राणं प्रजां पशून् कीर्ति यजमानम च वर्धय ॥ १ ॥

हे ब्राह्मणस्पते ! उठकर देवों को यज्ञ के लिए सचेत करो । इस यजमान की आयु, प्राण, प्रजा, पशु, यश, की बढ़ोत्तरी का कार्य सम्पन्न करो ॥ १ ॥

सूक्त (६४)

(ऋषि ब्रह्मा । देवता—अग्निः । छन्द—अनुष्टुप्)

अग्ने समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे ।
स मे श्रद्धां च मेधां च जातवेदाः प्र यच्छतु ॥ १ ॥
इध्मेन त्वा जातवेदः समिधा वर्धयामसि ।
तथा त्वमस्मान् वर्धय प्रजया च धनेन च ॥ २ ॥
यदग्ने यानि कानि चिदा ते दारूणि दध्मसि ।
सर्वं तदस्तु मे शिवं तज्जुषस्व यविष्ठ्य ॥ ३ ॥
एतास्ते अग्ने समिधस्त्वमिद्धः समिद् भव ।
आयुरस्मासु धेह्यमृतत्वमाचार्याय ॥ ४ ॥

उन जातवेदा अग्नि को समिधायें लाकर मैं प्रदीप्त करता हूँ । ये मेरे को श्रद्धा और बुद्धि देवें ॥ १ ॥

हे अग्ने ! हम तुम्हे समिधा रूप मे प्रदीप्त करते हैं अतः तुम हमें धन और सन्तान से सम्पन्न करो ॥ २ ॥

हे अग्ने ! ये यज्ञीय और अयज्ञीय लकडी तुमको दी है। यह सब मेरे को मंगल प्रदान करे। तुम इन सभी लकडी को अपने तेज से भक्षण कर डालो ॥ ३ ॥

हे अग्ने ! तुम्हारे लिए लाई हुई समिधाओ मे प्रदीप्त होवो। समिधा देने वाले को आयु तथा आचार्य को अमृतत्व प्रदान करो ॥ ४ ॥

सूक्त (६५)

(ऋषि--ब्रह्मा। देवता – सूर्यो जातवेदाः। छन्द-जगती)

हरिः सुपर्णो दिवमारुहोऽर्चिषा ये त्वा दिप्सन्ति दिवमुत्पतन्तम्।
अव तां जहि हरसा जातवेदोऽबिभ्यदुग्रोऽर्चिषा दिवमा रोह सूर्य ॥ १ ॥

हे सूर्य ! तुम अन्धकार नाशक तथा आकाशगामी हो। तुम अपने तेज से हिंसित शत्रुओ को भस्म कर दो। तुम अपने इसी तेज से स्वर्ग मे विद्यमान होवो ॥ १ ॥

सूक्त (६६)

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—सूर्यो जातवेदा वज्र। छन्द—जगती।

अयोजाला असुरा मायिनोऽयस्मयैः पाशैरङ्किनो ये चरन्ति।
तांस्ते रन्धयामि हरसा जातवेद सहस्रऋष्टिः सपत्नान् प्रमृणन् पाहि वज्र ॥ १ ॥

पुण्यात्माओं को मारने वाले को राक्षस लोह-पाश हाथ में लिए घूमते हैं उनको हे सूर्य ! मैं तुम्हारे तेज से वश मे करता हूँ। तुम सहस्र रश्मि और वज्रधारी हो अतः हमारी रक्षा ॥ १ ॥

सूक्त (६७)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—सूर्य । छन्द—गायत्री)

पश्येम शरद शतम् ॥ १ ॥ जीवेम शरदः शतम् ॥ २ ॥
बुध्येम शरद शतम् ॥ ३ ॥ रोहेम शरद शतम् ॥ ४ ॥
पूषेम शरद शतम् ॥ ५ ॥ भवेम शरद शतम् ॥ ६ ॥
भूयेम शरदः शतम् ॥ ७ ॥ भूयसीः शरदः शतात् ॥ ८ ॥

हे सूर्य ! तुमको हम शत वर्ष देखते रहे ॥ १ ॥
हम सौ वर्ष तक जीवें ॥ २ ॥
हमें सौ वर्ष तक सद्‌बुद्धि दो ॥ ३ ॥
हम सौ वर्ष तक वृद्धि को पाते रहे ॥ ४ ॥
हम सौ वर्ष तक पुष्टता प्राप्त करते रहे ॥ ५ ॥
हम सौ वर्ष तक पुत्रादि से सम्पन्न रहे । हम सौ वर्ष से भी अधिक समय तक जीवन धारण हो ॥ ६-७-८ ॥

सूक्त (६८)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—मन्त्रोक्त कर्म । छन्द—अनुष्टुप्)

अव्यसश्च व्यचसश्च बिलं वि ष्यामि मायया ।
ताभ्यामुद्धृत्य वेदमथ कर्माणि कृण्महे ॥ १ ॥

मैं अपने व्यान और प्राण वायु के मूलाधार से अत्यन्त कर अक्षरात्मक वेद से युक्त हम कर्म करने मे प्रवृत्त होते हैं । १ ॥

सूक्त (६९)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—आप । छन्द—अनुष्टुप्, गायत्री, उष्णिक)

जीवा स्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ १ ॥

उपजीवा स्थोप जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ २ ॥
सजीवा स्थ स जीव्यास सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ ३ ॥
जीवला स्थ जीव्यास सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ ४ ॥

हे देव ! आपकी कृपा से मैं आयुष्मान बनूं ॥ १ ॥
मैं पूर्ण उम्र धारण करूं ॥ २ ॥
मैं अपने जीवन को सत कार्यों मे लगाऊं ॥ ३ ॥
हे देवो ! तुम आयुष्मान होवो और मुझे भी आयुष्मान करो ॥ ४ ॥

सूक्त (७०)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—इन्द्रादयो मन्त्रोक्ता । छन्द—गायत्री)

इन्द्र जीव सूर्य जीव देवा जीवा जीव्यासमहम् ।
सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुम जीवन धारण करो । हे सूर्य ! तुम जीवन धारण करो । हे देवो तुम भी जीवन धारण करो और मैं भी आपकी कृपा से जीवन धारण करू ॥ १ ॥

सूक्त (७१)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता । गायत्री । छन्द—जगती)

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम् ।
आयुः प्राण प्रजां पशुं कीर्ति द्रविण ब्रह्मवर्चसम ।
मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥ १ ॥

स्तुति की जाती हुई वेद मा मुझ स्तोता को आयु, प्राण, प्रजा, पशु, ब्रह्मचर्य और धन से सम्पन्न करे और ब्रह्म लोक को प्रदान करे ॥ १ ॥

सूक्त (७२)

(ऋषि—भृग्वङ्गिरा ब्रह्मा । देवता--परमात्मा देवाश्च । छ द--त्रिष्टुप्)

यस्मात् कोशादुदभराम वेद तस्मिन्नन्तरव दध्म एनम् ।
कृतमिष्टं ब्रह्मणो वीर्येण तेन मा देवास्तपसावतेह ॥ १ ॥

हम जिस कोश स वेद को निकाल कर, जिससे कर्म करते है उस स्थान से उसे पुन प्रतिष्ठित करते हैं। ब्रह्म के कम प्रतिपादक वीर्य रूप वेद से जो कम किया है उस अभाष्ट कर्म के फल स्वरूप देवगण मेरा पालन कम कर। १॥

॥ इति इत्यकोनविंश काण्ड समाप्तम् ॥

विंश काण्ड

सूक्त १ (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि—विश्वामित्र, गौतम, विरूप । देवता--इन्द्र:, मरुत, अग्नि । छन्द—गायत्री)

इन्द्र त्वा वृषभ वय सुते सोमे हवामहे ।
स पाहि मध्वो अन्धसः ॥ १ ॥
मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहस ।
स सुगोपातमो जनः ॥ २ ॥
उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे ।
स्तोमैर्विधेमाग्नये । ३ ॥

हे इन्द्र ! तुम अभीष्ट वर्षक और ऐश्वर्य युक्त हो। सोम निष्पन्नीकरण से हम तुम्हें बुलाते हैं। अत यहाँ पधार कर मधुर रस युक्त सोम का पान करो ॥ १ ॥

हे मरुद्गण ! सर्व देवों से अत्यधिक तेज वाले हो। तुम जिस यज्ञ गृह में आकाश से आ सोमपान करते हो उसमें यजमान को आश्रितो का रक्षक बनाओ ॥ २ ॥

वृषभ और गौ रूप जिसके भाग पर सोम रूपी स्वामी रहता है, उन अग्नि देव की हम स्तुति स्तोत्रों द्वारा करते हैं ॥ ३ ॥

सूक्त (२)

(ऋषि—? । देवता—मरुत , अग्निः, इन्द्र , द्रविणोदाः । छन्द—गायत्री; उष्णिक् , त्रिष्टुप्)

मरुत पोत्रात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोम पिबतु ॥ १ ॥
अग्निराग्नीध्रात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु ॥ २ ॥
इन्द्रो ब्रह्मा ब्राह्मणात् सुष्टुभ. स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु ॥ ३ ॥
देवो द्रविणोदा. पोत्रात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोम पिबतु ॥ ४ ॥

मरुद्गण पाता के निमित्त सुन्दर स्तोम और मन्त्रो वाले यज्ञ कर्म में पवित्र सोम को आकर ग्रहण करें ॥ १ ॥

अग्नि समिधन करने वाले ऋत्विज के कर्म से खुश होकर अग्नि सोम पान करें। यह अग्नि कम सुन्दर वर्ण आर मन्त्रो स युक्त है ॥ २ ॥

इन्द्र ही महान होने से ब्रह्मा है । हे ब्रह्मात्मक इन्द्र ! सुन्दर स्तुतियो से युक्त इस यज्ञ में पवित्र सोम का पान करो ॥ ३ ॥

द्रविणोदा हमें धन प्रदान करो। ऋत्विज कृत सुन्दर स्तोत्र द्वारा इस यज्ञ मे पवित्र हुये रस को इन्द्र ग्रहण करें ॥ ४ ॥

सूक्त (३)

(ऋषि—इरिम्बिठिः। देवता--इन्द्रः। छन्द--गायत्री)

आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम ।
एदं बर्हिः सदो मम ॥ १ ॥
आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना ।
उप ब्रह्माणि न शृणु ॥ २ ॥
ब्रह्माणस्त्वा वय युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः ।
सुतावन्तो हवामहे ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! यहां पधारो। हमारे द्वारा संस्कारित सोम को ग्रहण करो और विस्तृत कुशाओ पर विराजमान होओ ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुम्हारें हर्यश्व मन्त्रो से रथ जुडते और क्षभ ष्ट स्थान पर पहुँचाते हैं। उन अश्वो द्वारा लाने पर तुम स्तुति को सुनो ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! अनुष्ठानाभिलाषी ब्राह्मणो से पवित्र सोम यहाँ पर है। तुम सोम पायी की हम स्तोत्रो द्वारा स्तुति करते हैं ॥ ३ ॥

सूक्त (४)

(ऋषि—इरिम्बिठि। देवता—इन्द्रः। छन्द—गायत्री)

आ नो याहि सुतावसोऽस्माक सुष्टुतीरुप ।
पिबा सु शिप्रिन्नन्धसः ॥ १ ॥
आ ते सिञ्चामि कुक्ष्योरनु गात्रा वि धावतु ।

गृभाय जिह्वया मधु ॥ २ ॥
स्वादुष्टे अस्तु संसुदे मधुमान् तन्वे तव ।
सोम शमस्तु ते हृदे ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! तुम सुन्दर स्तोत्र को सुनते हुए हम सोम रखने वालों के पास आओ। तुम सुन्दर हनु वाले हो अतः हमारे इस सोम का पान करो ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! मैं तुम्हारी दोनों कोखों को सोम रस द्वारा परिपूर्ण करना चाहता हूँ। यह सोम तुम्हारे सभी अंगों में भ्रमण करें। अतः तुम इस मीठे रस को अपनी जीभ से पीओ ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुम धन-दान आदि वर्चों के लिए विख्यात हो। हमारी भेंट का सोम तुम्हें स्वादिष्ट लगे और तुम्हें शक्ति प्रदान करें। यह सोम तुम्हें प्रसन्नता प्रदान करें। ३ ॥

सूक्त (५)

(ऋषि— इरिम्बिठि । देवता— इन्द्र । छन्द— गायत्री)

अयमु त्वा विचर्षणे जनीरिवाभि संवृतः
प्र सोम इन्द्र सर्पतु ॥ १ ॥
तुविग्रीवो वपोदरः सुबाहुरन्धसो मदे ।
इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥ २ ॥
इन्द्र प्रेहि पुरस्त्वं विश्वस्येशान ओजसा ।
वृत्राणि वृत्रहञ्जहि ॥ ३ ॥
दीर्घस्ते अस्त्वङ्कुशो येना वसु प्रयच्छसि ।
यजमानाय सुन्वते ॥ ४ ॥
अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि ।
एहीमस्य द्रवा पिब ॥ ५ ॥

शाचिगो शाचिपूजनाय रणाय ते सुतः ।
आखण्डल प्र हूयसे ॥ ६ ॥
यस्ते शृङ्गवृषो नपात् प्रणपात् कुण्डपाय्यः ।
न्यस्मिन् दध्र आ मनः ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! सन्तानवती स्त्रियाँ जैसे पुत्रों से घिरी रहती हैं वैसे ही सोम अध्वर्यु आदि से घिरा हुआ रखा है । यह सोम इन्द्र के लिए है ॥ १ ॥

इन्द्र के स्कन्ध सोम पान से वृषभवत मोटे ताजे बनते हैं । पेट विशाल और भुजायें वज्र के समान होती हैं । इस प्रकार शक्ति प्राप्त कर इन्द्र वृत्रासुर आदि का हनन करता है ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुम जगत स्वामी, और वृत्रासुर के मारक हो । अतः हमारी सैन्य शक्ति के आगे चलकर वृत्रासुर के समान घेरने वाले शत्रुओं का हनन करो ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! अकुशवत झुका तुम्हारा हाथ दान देने को अग्रसर होवे । तुम यजमान को धन-मान प्रदान करो ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! यह सोम अच्छी प्रकार छानकर तुम्हारे लिए रखा गया है अत यहाँ आओ। तुम्हारे लिए संस्कारित इस सोम का पान करो ॥ ५ ।

हे इन्द्र ! तुमने प्राणियों द्वारा अपहृत गायें निकाल ली । तुम स्तोत्रों के सुन्दर फलों के ज्ञाता हो । सोम सस्कारित कर हम तुम्हे आहुति करते हैं । आप शत्रु सहारक हैं ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! तुम सींगों के समान ऊँची उठने वाली सूर्य किरणों का पतन नही होने देते । कुण्डपाय्य तुम्हारा क्रतु है । उससे सोम से युक्त यज्ञ मे अपने चित्त को लगाओ ॥ ७ ॥

सूक्त (६)

(ऋषि—विश्वामित्र । देवता—इन्द्र । छन्द—गायत्री)

इन्द्र त्वा वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे ।
स पाहि मध्वो अन्धसः ॥ १ ॥
इन्द्र क्रतुविदं सुतं सोमं हर्य पुरुष्टुत ।
पिबा वृषस्व तातृपिम् ॥ २ ॥
इन्द्र प्र णो धितावानं यज्ञं विश्वेभिर्देवेभिः ।
तिर स्तवान विश्पते ॥ ३ ॥
इन्द्र सोमाः सुता इमे तव प्र यन्ति सत्पते ।
क्षयं चन्द्रास इन्दवः ॥ ४ ॥
दधिष्वा जठरे सुतं सोममिन्द्र वरेण्यम् ।
तव द्युक्षास इन्दवः ॥ ५ ॥
गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे ।
इन्द्र त्वादातमिद् यशः ॥ ६ ॥
अभि द्युम्नानि वनिन इन्द्रं सचन्ते अक्षिता पीत्वी सोमस्य
वावृधे ॥ ७ ॥
अर्वावतो न आ गहि परावतश्च वृत्रहन् ।
इमा जुषस्व नो गिरः ॥ ८ ॥
यदन्तरा परावतमर्वावतं च हूयसे ।
इन्द्रेह तत आ गहि ॥ ९ ॥

हे इन्द्र ! संस्कारित हुए सोम को पीने के लिए हम तुम्हें बुलाते हैं ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुम यजमानों द्वारा स्तुति किए जाते हो। संस्कारित सोम की इच्छा करते हुए इसे पीकर तृप्त होओ ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! सभी देवगणो सहित यहां पधार कर यज्ञ हवि को ग्रहण करो और उसकी वृद्धि करो ॥ ३ ।

हे इन्द्र ! तुम यजमान रक्षक हो । यह संस्कारित साम तुम्हारे पेट में जा रहा है ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! इस विशिष्ट भाग रूप सोम को हृदय में धारण करो ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! तुम स्तुति द्वारा पूज्य हमारे सोम को ग्रहण करो । ये अ हुति हम सोम से देते हैं । यह सोम तुम्हारा सुन्दर यश रूप है ॥ ६ ॥

यजमान के पवित्र व संस्कारित सोम को पीते हुये इन्द्र वृद्धि पा रहे हैं । ७ ॥

हे इन्द्र ! तुम वृत्र मारक हो । तुम हमसे दूर हो अथवा पास हो शीघ्र ही हमारे पास आओ स्तुतियो को ग्रहण करो ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! तुम निकटस्थ और दूरस्थ दोनों स्थानों से ही बुलाये जाते हो । अत शीघ्र ही इस यज्ञ मण्डप में प्रवेश करो ॥ ९ ॥

सूक्त (७)

(ऋषि—सुकक्ष, विश्वामित्रः । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

उद् घेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् ।
अस्तारमेषि सूर्य ॥ १ ॥
नव यो नवतिं पुरो बिभेद बाह्वोजसा ।
अहिं च वृत्रहावधीत् ॥ २ ॥
स न इन्द्रः शिवः सखाऽश्वावद् गोमद् यवमत् ।

उरुधारेव दोहते ॥ ३ ॥
इन्द्र क्रतुविदं सुतं सोमं हर्य पुरुष्टुत ।
पिबा वृषस्व तातृपिम् ॥ ४ ॥

हे सूर्य ! स्तुति और यज्ञ करने वाले को इन्द्र धन देता है। इन्द्र अभीष्ट दाता है शत्रु संहारक और अशुभ निवारक है। तुम इन्द्र को ध्यान में रखते हुए उदित होते हो। १ ॥

शम्बर माया से रचित निन्यानवे नगरों को जस इन्द्र द्वारा तोड़े गये उन्हीं से वृत्रासुर मारे गये हैं ॥ २ ॥

वे इन्द्र प्रिय बनते हुए, हमको सुख, गायें, अश्व, तथा अन्य धनों को प्रदान करें। जिससे हम धनवान बनें। ३ ॥

हे इन्द्र ! तुम ज्योतिष्टोम आदि के कर्त्ता हो और नाना स्तोत्रों द्वारा स्तुत्य हो सोम को इच्छा से पीते हुए तृप्त होवो ॥ ४ ॥

सूक्त (८)

(ऋषि—भरद्वाज, कुत्स, विश्वामित्र । देवता - इन्द्र । छन्दः—त्रिष्टुप्)

एवा पाहि प्रत्नथा मन्दतु त्वा श्रुधि ब्रह्म वावृधस्वोत गीर्भिः । आविः सूर्यं कृणुहि पीपिहीषो जहि शत्रूँ रभि गा इन्द्र तृन्धि ॥ १ ॥
अर्वाङेहि सोमकामं त्वाहुरयं सुतस्तस्य पिबा मदाय ।
उरुव्यचा जठर आ वृषस्व पितेव नः शृणुहि हूयमानः ॥ २ ॥
आपूर्णो अस्य कलशः स्वाहा सेक्तेव कोशं सिसिचे पिबध्यै ।
समु प्रिया आववृत्रन् मदाय प्रदक्षिणिदभि सोमास इन्द्रम् ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! प्राचीन महर्षियों द्वारा पीये गये सोम के समान

हो हमारा सोम पीओ। यह सोम तुम्हें आनन्द दायक होवे। हमारी स्तुति को श्रवण कर वृद्धि को प्राप्त हुए, सूर्य को प्रकाशित करो। हे इन्द्र! पाणियों द्वारा अपहृत गाओं को हमें पुनः वापिस करो और शत्रुओं का संहार करो। अन्नों की वृद्धि करो ॥ १ ।

हे इन्द्र! विद्वान तुम्हें सोम पायी बताते हैं। अत हमारे समीप आओ और सस्कारित सोम को आनन्द के साथ ग्रहण करो। इससे अपनी कोखों को सम्पन्न करो। जैसे पिता पुत्र की बात सुनता है। वैसे तुम हमारी बातों को श्रवण करो ॥ २ ॥

यह द्रोण कलश इन्द्र के लिये सोम से भरा रखा है, जल छिडकने वाले के समान हो सोम रस घड़े मे भरा है। इस सोम को इन्द्र सहर्ष स्वीकार कर ।। ३ ॥

सूक्त (६)

(ऋषि - नोध, मेध्यातिथ । देवता—इन्द्र. । छन्द—त्रिष्टुप, बृहती)

त वो दस्ममृतीषह वसोर्मन्दानमन्धसः ।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्र गीर्भिर्नवामहे ॥ १ ॥
द्युक्ष सुदानु तविषीभिरावृत गिरिं न पुरुभोजसम् ।
क्षुमन्त वाज शतिन सहस्रिण मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ २ ॥
तत् त्वा यामि सुवीर्य तद् ब्रह्म पूर्वचित्तये ।
येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ ॥ ३ ॥
येना समुद्रमसृजो महीरपस्तदिन्द्र वृष्णि ते शवः ।
सद्यः सो अस्य महिमा न सनशे यं क्षोणीरनुचक्रदे ॥ ४ ॥

हे यजमानो! यज्ञ की पूर्णता के लिये हम इन्द्र की स्तुति करते है। यह दर्शन योग्य और शत्रु संहारक है। ये सोम

द्वारा परिपूर्ण हैं। जो दिनों के प्रकट और अस्त करने वाले सूर्य है जैसे इसी समय गायें रंभाती हुई बछड़ों के पास जाती हैं वैसे ही हम स्तोत्रों द्वारा स्तुति करते हुये इन्द्र के समीप जाते हैं ॥ १ ॥

दानवान, प्रजापालक दीप्ति युक्त, स्तुत्य और गवादि से सम्पन्न धन की हम इसी प्रकार प्रार्थना करते हैं जैसे दुर्भिक्ष भोगी कन्द मूल फलों से सम्पन्न पर्वतों की कामना करते हैं ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! मैं शक्तिदायक अन्न को तुमसे मांगता हूँ। जिस धन से भृगु ऋषि को शान्त किया और जिसके द्वारा काण्व पुत्र का पालन किया उसी धन की हम तुमसे कामना करते हैं। ३ ॥

हे इन्द्र ! जिस बल द्वारा तुमने सृष्टि के आदि में जल से सम्पन्न समुद्र की कामना की वह बल अभीष्ट दाता हो। जिस शक्ति को हम भूलोकवासी गाते हैं उसको शत्रु प्राप्त न कर सकें ॥ ४ ॥

सूक्त (१०)

(ऋषि—मेध्यातिथिः। देवता—इन्द्रः। छन्द-बार्हतः प्रगाथः)

उदु त्ये मधुमत्तमा गिर स्तोमास ईरते ।
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथाइव ॥ १ ॥
कण्वाइव भृगवः सूर्याइव विश्वमिद धीतमानशुः ।
इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् ॥ २ ॥

यह गायन तथा अगायन मन्त्रों से साध्य स्तुतियाँ कही जा रही हैं। रथारोही के अनुकूल की रथ गमन करने के समान ये इन्द्र की संतुष्टि को गमन करती है ॥ १ ॥

कण्व गोत्रिय महर्षि जैसे तीनों लोकों के नाथ है, जैसे सूर्य नियन्ता इन्द्र को प्राप्त होते हैं, और जैसे भृगु वशी इन्द्र को प्राप्त होते हैं वैसे ही मनुष्य स्तुतियों से इन्द्र को प्राप्त होवें ॥ २ ।

सूक्त (११)

(ऋषि – विश्वामित्रः । देवता—इन्द्रः । छन्द— त्रिष्टुप्)

इन्द्र. पूर्भिदातिरद् दासमर्कैविदद्वसुर्दयमानो वि शत्रून् ।
ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधानो भूरिदात्र आपृणद् रोदसी
उभे ॥ १ ॥

मखस्य ते तविषस्य प्र जूतिमियर्मि वाचममृताय भूषन् ।
इन्द्र क्षितीनामसि मानुषीणां विशां दैवीनामुत
पूर्वयावा ॥ २ ।

इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्धनीति प्र मायिनाममिनाद् वर्पणीतिः ।
अहन् व्यंसमुशधग् वनेष्वाविर्धेना अकृणोद्
राम्याणाम् । ३ ॥

इन्द्रः स्वर्षा जनयन्नहानि जिगायोशिग्भि पृतना अभिष्टिः ।
प्रारोचयन्मनवे केतुमह्नामविन्दज्ज्योतिर्बृहते रणाय ॥ ४ ॥

इन्द्रस्तुजो बर्हणा आ विवेश नृवद् दधानो नर्या पुरूणि ।
अचेतयद् धिय इमा जरित्रे प्रेमं
वर्णमतिरच्छुक्रमासाम् ॥ ५ ॥

महो महानि पनयन्त्यस्येन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि ।
वृजनेन वृजिनान्त्स पिपेष मायाभिर्दस्यूँरभिभूत्योजा ॥ ६ ॥

युधेन्द्रो मह्ना वरिवश्चकार देवेभ्यः सत्पतिश्चर्षणिप्रा ।
विवस्वतः सदने अस्य तानि विप्रा उक्थेभिः कवयो
गृणन्ति ॥ ७ ॥

सत्रासाहं वरेण्यं सहोदां ससवांसं स्वरपश्चदेवीः ।
ससान यः पृथिवीं द्यामुतेमामिन्द्रं मदन्त्वनु धीरणासः ॥ ८ ॥
ससानात्यां उत सूर्यं ससानेन्द्रः ससान पुरुभोजसं गाम् ।
हिरण्ययमुत भोगं ससान हत्वी दस्यून् प्रार्यं वर्णमावत् ॥ ९ ॥
इन्द्र ओषधीरसनोदहानि वनस्पतीं रसनोदन्तरिक्षम् ।
बिभेद वलं नुनुदे विवाचोऽथाभवद्
दमिताभिक्रतूनाम् ॥ १० ॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं
धनानाम् ॥ ११ ॥

इन्द्र अपने बल से शत्रु नाशक, शत्रुओं के नगरों के विनाशक और शत्रु धन को पाने वाले को इनका शरीर मन्त्रों से रक्षित और शत्रु संहारक अनेक अस्त्रों से ये सम्पन्न होते हैं। उन्होंने वृत्रासुर को मारा और आकाश पृथ्वी पर व्याप्त हो गये ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! मैं यज्ञ रूप इस वाणी को यज्ञ द्वारा प्रकट करता हूँ। हे इन्द्र ! सभी के अग्रगणी तुम्हारी मैं स्तुति करता हूँ ॥ २ ॥

अपनी माया से वृत्रासुर और अनेक राक्षसों का संहार किया। वृत्रासुर के कर्मों को इन्द्र ने ही पृथक किए और गौओं को पुनः प्राप्त किया ॥ ३ ॥

इन्द्र शत्रु नाशक और स्वर्ण दायक है इन्द्र ने संग्राम के अभिलाषी राक्षसों की सेनाओं सहित वज्र से कर विजय प्राप्त की। यजमानों के लौकिक कर्म के लिए उन्होंने सूर्य को प्रकाशित किया ॥ ॥

युद्धाभिलाषी पुरुष के समान इन्द्र शत्रु सैन्य मे प्रवेश करते हैं। वे मनुष्य को कल्याण कारी है। वे उपासो को श्वेत रग प्रदान करते है । ५ ॥

इन्द्र द्वारा सम्पन्न कार्य की स्तोता प्रशसा करते है। शत्रु सहारक इन्द्र ने राक्षसो को समाप्त कर डाला । ६ ।

विल सहायता लिए युद्ध करने वालो के द्वारा स्तुत्य होने पर उन्हे धन सम्पन्न किया। ये यजमान रक्षक और अभीष्ट दाता है। यजमान उनके गुणो का गान किया करते हैं । ७ ॥

फलाभिलाषी जिनका मनन करते हैं जो वलदायी है, जो शत्रु को नीचा दिखाते हैं, जो स्वर्गीय जल के अधिष्ठाता है, जिन्होने द्यावा पृथ्वी को मनुष्यो को प्रदान किया, उन इन्द्र को यजमान हवि द्वारा प्रसन्न करते है ॥ ८ ॥

अश्व, हाथी, ऊँट आदि इन्द्र द्वारा मनुष्य के प्रयोग को बनाये गये हैं। गौ, भैस और सुवर्ण भी इन्होने ही दिये। सूर्य को प्रकाशित किया। वे ही राक्षस सहारक और हर वर्ण रक्षक है ॥ ९ ॥

इन्द्र द्वारा ही यव आदि से मनुष्य के कल्याण का औषधि बनी। दिन तथा वनस्पति की रचना हुई। उन्होने ही वृत्रासुर को चीरा और विरोधियो को नष्ट किया ॥ १० ॥

धन और ऐश्वर्य से सम्पन्न इन्द्र को हम युद्ध मे बुलाते हैं। अन्न प्राप्त होने वाले सग्राम मे हम उनका आह्वान करते है। शत्रु नाशक और विजेता इन्द्र को हम यहाँ बुलाते है ॥ ११ ॥

सूक्त (१२)

(ऋषि --वसिष्ठ, अत्रि । देवता--इन्द्र । छन्द--त्रिष्टुप)

उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्रं समर्ये महया वसिष्ठ ।
आ यो विश्वानि शवसा ततानोपश्रोता म ईवतो वचांसि ॥ १ ॥
अयामि घोष इन्द्र देवजामिरिरज्यन्त यच्छुरुधो विवाचि ।
नहि स्वमायुश्चिकिते जनेषु तानीदंहांस्यति पर्ष्यस्मान् ॥ २ ॥
युजे रथं गवेषणं हरिभ्यामुप ब्रह्माणि जुजुषाणमस्थुः ।
वि बाधिष्ट स्य रोदसी महित्वेन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघन्वान् ॥ ३ ॥
आपश्चित् पिप्यु स्तर्यो न गावो नक्षन्नृतं जरितारस्त इन्द्र ।
याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छा त्वं हि धीभिर्दयसे वि वाजान् ॥ ४ ॥
ते त्वा मदा इन्द्र मादयन्तु शुष्मिणं तुविराधसं जरित्रे ।
एको देवत्रा दयसे हि मर्तानस्मिञ्छूर सवने मादयस्व ॥ ५ ॥
एवेन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
स न स्तुतो वीरवद् धातु गोमद् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥
ऋजीषी वज्री वृषभस्तुराषाट्छुष्मी राजा वृत्रहा सोमपावा ।
युक्त्वा हरिभ्यामुप यासदर्वाङ् माध्यंदिने सवने मत्सदिन्द्रः ॥ ७ ॥

हे ऋत्विजो ! अन्न कामना युक्त स्तुतियों को इन्द्र से कहो । हे यजमान ! तुम ऋत्विज गर्वित यज्ञ में इन्द्र को पूजो । जीवों के वृद्धिकारक इन्द्र हमारी रक्षा करें ॥ १ ॥

इनसे स्वर्ग दायक सोम की वृद्धि होती है। यह यजमान अपनी आयु को नही जानता है, अत. इसे आयुष्मान करो। आयु नाशक कर्मो को यजमान से दूर करो ॥ २ ॥

इन्द्र रथ गौ दायक है। द्यावा पृथ्वी को अधीन करने वाले इन्द्र की हम स्तुति करते हैं। वे वृत्रासुर आदि के संहार करने वाले हैं ॥ ३ ॥

हे इन्द्र! इस अभिषुत सोम का रथ गौ के समान वृद्धि को प्राप्त हुआ है। ये यजमानो के यज्ञ मण्डप मे जाते है। अत: आप स्तोत्रों के प्रति वहाँ आकर हमे अन्न से सम्पन्न करो ।४।

हे इन्द्र! तुम बल सम्पन्न करो। यह संस्कारित सोम तुम्हे आनन्द दायक होवें। तुम मनुष्य पर कृपा करने वाले और अनन्त धनो के स्वामी हो। अत तुम उनको अभीष्ट फल प्रदान करो ॥ ५ ॥

इन्द्रियो के निग्रह कर्ता वज्रधारी और अभीष्ट दाता इन्द्र की स्तुति करते हैं। इन्द्र हमे गौयें और धनो से सम्पन्न करें। हे देवगणो! इन्द्र की दया से तुम भी हमारे पालक बनो ।६।

सोमात्मक, अभीष्टदाता, वज्रधारी, शत्रु विजयी, बल युक्त, वृत्रासुर संहारक, देव स्वामी, इन्द्र अभिषव स्थान पर सोम का पान कर। इन्द्र अपने घोडो सहित आकर माध्यंदिन मे सोम पान कर आनन्दित होवें। ७ ॥

सूक्त (१३)

(ऋषि —वामदेव, गोतम, कुत्स, विश्वामित्र । देवता—इन्द्राबृहस्पती, मरुत, अग्नि. । छन्द —जगती, त्रिष्टुप्)

इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पतेऽस्मिन् यज्ञे मन्दसाना वृषण्वसू ।

आ वां विशन्त्विन्दवः स्वाभुवोऽस्मे रयिं सर्ववीरं नि यच्छतम् ॥ १ ॥
आ वो वहन्तु सप्तयो रघुष्यदो रघुपत्वानः प्र जिगात बाहुभिः ।
सीदता बर्हिरुरु वः सदस्कृतं मादयध्वं मरुतो मध्वो अन्धसः ॥ २ ॥
इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया ।
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ३ ॥
ऐभिरग्ने सरथं याह्यर्वाङ् नानारथं वा विभवो ह्यश्वाः ।
पत्नीवतस्त्रिंशतं त्रींश्च देवाननुष्वधमा वह मादयस्व ॥ ४ ॥

हे बृहस्पते ! तुम इन्द्र सहित सोम का पान करो। तुम यजमान को धन दायक और आनन्द युक्त हो। तुम सोम पान कर हमें पुत्रादि प्रदान करो ॥ १ ॥

हे इन्द्र द्रुतगामी अश्व तुम्हें हमारे यज्ञ स्थान पर लावें और तुम भी शीघ्रता करो। विशाल वेदी पर बिछाये हुए कुशासन पर विद्यमान होकर सोम का पान करो ॥ २ ॥

रथाकार के द्वारा अवयवों के संस्कारित करने के समान हम सोम को सस्कारित करते हैं। हमारी मगल मयी बुद्धि अग्नि को प्रदीप्त करने में लगी है। हे अग्ने ! तुम्हें बन्धु बनाकर हम हिंसामयी न बनें ॥ ३ ॥

हे अग्ने ! तेतीस देवताओं युक्त रथारूढ़ हो आओ। बलवान अश्वों द्वारा देवों को यहां लाओ। जब २ देवों को आहुति दी जाये तब २ उन्हें यहां लाओ और सोम का पान कराओ। जिससे यजमान को वे अत्यधिक धन-धान्य सम्पन्न करें ॥ ४ ॥

सूक्त (१४)

(ऋषिः--सौभरि. । देवता--इन्द्रः । छन्द--प्रगाथः)

वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद् भरन्तोऽवस्यवः ।
वाजे चित्रं हवामहे ॥ १ ॥
उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत् ।
त्वामिद्ध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम् ॥ २ ॥
यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु व स्तुषे ।
सखाय इन्द्रमूतये ॥ ३ ॥
हर्यश्वं सत्पतिं चर्षणीसहं स हि ष्मा यो अमन्दत ।
आ तु न स वयति गव्यमश्व्यं स्तोतृभ्यो मघवा शतम् ॥ ४ ॥

हे नवीनता से युक्त इन्द्र ! तुम पूज्य और पोषण कर्त्ता हो । हम रक्षाभिलाषी तुम्हारा आह्वान करते हैं । हमारे शत्रुओं के पास न जाओ । अत्यन्त निपुण राजा को जैसे विजय को बुलाते हो वैसे ही हम तुम्हें बुलाते हैं । १ ॥

हे इन्द्र ! युद्धावसर पर हम तुमको बुलाते हैं । शत्रु विजयी, नित्य युवा, इन्द्र हमारी सहायता के लिए आवें । हे इन्द्र हम सखा मानकर तुम्हें अपनी रक्षा को बुलाते हैं ॥ २ ॥

हे यजमानो ! तुम्हारी रक्षार्थ मैं इन्द्र का आह्वान करता हूँ । वे हमको पहिले भी धन दे चुके हैं अतः उन्हीं को बुलाता हूँ ॥ ३ ॥

मनुष्य रक्षक इन्द्र के अश्व हरित वर्ण वाले है । वे मनुष्यों पर नियन्त्रणधारी और स्तुत्य हो । मैं उनकी स्तुति करता हूँ वे सौ गायें और सौ अश्वों को प्रदान करें ॥ ४ ॥

सूक्त (१५)

(ऋषि–गोतम । देवता इन्द्र छन्द त्रिष्टुप्)

प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये सत्यशुष्माय तवसे मतिं भरे ।
अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं राधो विश्वायु शवसे
अपावृतम् ॥ १ ॥
अध ते विश्वमनु हासदिष्टय आपो निम्नेव सवना हविष्मतः
यत् पर्वते न समशीत हर्यत इन्द्रस्य वज्रः श्नथिता
हिरण्ययः ॥ २ ॥
अस्मै भीमाय नमसा समध्वर उषो न शुभ्र आ भरा पनीयसे ।
यस्य धाम श्रवसे नामेन्द्रियंज्योतिरकारि
हरितो नायसे ॥ ३ ॥
इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो ।
नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत् क्षोणीरिव
प्रति नो हर्य तद् वचः ॥ ४ ॥
भूरि त इन्द्र वीर्यं तव स्मस्यस्य स्तोतुर्मघवन् काममा पृण ।
अनु ते द्यौर्बृहती वीर्यं मम इयं च ते पृथिवी नेम
ओजसे ॥ ५ ॥
त्वं तमिन्द्र पर्वतं महामुरुं वज्रेण वज्रिन् पर्वशश्चकर्तिथ ।
अवासृजो निवृताः सर्तवा अपः सत्रा विश्वं दधिषे केवलं
सहः ॥ ६ ॥

जो सर्व पालक हैं दाता हैं, सामर्थ्यवान, और अनेक शक्तियों के धारक हैं मैं उन इन्द्र का स्मरण करता हूँ। नीचे जाने वाले जलके वेग के समान सग्राम में उनका बल असहनीय होता है। मैं उन इन्द्र को स्तोत्र द्वारा स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! जल जैसे नीचे स्थान को प्राप्त होता है। वैसे ही समस्त प्राणी तुम्हारी तरफ हो जावें। वे इन्द्र शत्रु नाशक है, इनका वज्र पर्वत पर भी न रुका है अतः समस्त संसार उनको इच्छानुकूल होवे तीनो यज्ञीय सवन भी उनके अनुकूल बने ॥ २ ॥

हे उषे ! शत्रु भयभीत इन्द्र के निमित्त हम यज्ञ करते हैं। इन्द्र के अन्न सहित यहाँ लाओ। दिशाओं को प्रकाशित करने वाले इन्द्र को यहा लाओ ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! तुम महिमा युक्त स्तुत्य, और आश्रय दाता हो। हे इन्द्र ! तुम हमारी छोटी सी स्तुति को श्रवण करो। राजा के समान प्रजा को बात सुनने वाले आप भी बनो ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! तुम्हारे वृत्र सुर हनन से हम तुम्हारे उपासक हैं। तुम यजमान की अभिलाषा पूर्ण करो। तुम अत्यधिक विशाल हो, आकाश तुम्हारी विशालता और पृथ्वी तुम्हारी शक्ति पर गर्व करती है ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! आपने अत्यधिक वीर मेघ को नदी रूप में प्रवाहित किया और पर्वत का भी खण्ड २ कर डाला। तुम अत्यधिक बलशाली हो और तुम्हारी महिमा यथार्थ ही है। ६ ॥

सूक्त (६)

(ऋषि—अयास्य. । देवता—बृहस्पति. । छन्द-त्रिष्टुप्)

उदप्रुतो न वयो रक्षमाणा वावदतो अभ्रियस्येव घोषाः ।
गिरिभ्रजो नोर्मयो मदन्तो बृहस्पतिमभ्यर्का अनावन् ॥ १ ॥
सं गोभिराङ्गिरसो नक्षमाणो भग इवेदर्यमणं निनाय ।

जने मित्रो न दम्पती अनक्ति बृहस्पते वाजयाशूँ-
रिवाजौ ॥ २ ॥
साध्वर्या अतिथिनीरिषिराः स्पार्हाः सुवर्णा अनवद्यरूपाः ।
बृहस्पतिः पर्वतेभ्यो वितूर्या निर्गा ऊपे यवमिव
स्थिविभ्यः ॥ ३ ॥
आप्रुषायन् मधुन ऋतस्य योनिमवक्षिपन्नर्क
उल्कामिव द्योः ।
बृहस्पतिरुद्धरन्नश्मनो गा भूम्या उद्नेव वि त्वचं
बिभेद ॥ ४ ॥
अप ज्योतिषा तमो अन्तरिक्षादुद्नः शीपालमिव वात आजत् ।
बृहस्पतिरनुमृश्या वलस्याभ्रमिव वात आ
चक्र आ गाः ॥ ५ ॥
यदा वलस्य पीयतो जसुं भेद् बृहस्पतिरग्नितपोभिरर्कैः ।
दद्भिर्न जिह्वा परिविष्टमाददाविर्निधीँरकृणो-
दुस्रियाणाम् ॥ ६ ॥
बृहस्पतिरमत हि त्यदासां नाम स्वरीणां सदने गुहा यत् ।
आण्डेव भित्त्वा शकुनस्य गर्भमुदुस्रियाः पर्वतस्य
त्मनाजत् ॥ ७ ॥
अश्नापिनद्धं मधु पर्यपश्यन्मत्स्यं न दीन उदनि क्षियन्तम् ।
निष्टज्जभार चमसं न वृक्षाद् बृहस्पतिर्विरवेणा विकृत्य ॥ ८ ॥
सोषामविन्दत् स स्वः सो अग्निं सो अर्केण वि बबाधे
तमांसि ।
बृहस्पतिर्गोवपुषो वलस्य निर्मज्जानं न पर्वणो
जभार ॥ ९ ॥
हिमेव पर्णा मुषिता वनानि बृहस्पतिनाकृपयद् वलो गाः ।

अनानुकृत्यमपुनश्चकार यात् सूर्यामासा मिथ उच्चरातः ॥ १० ॥

अभि श्याव न कृशनेभिरश्वं नक्षत्रेभिः पितरो द्यामपिशन् । राज्या तमो अदधुर्ज्योतिरहन् बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विदद् गाः ॥ ११ ॥

इदमकर्म नमो अभ्रियाय य पूर्वीरन्वानोनवीति । बृहस्पतिः स हि गोभिः सो अश्वैः स वीरेभिः स नृभिर्नो वयो धात् ॥ १२ ॥

मेघवत शब्दायमान, जल में विचरणशील, पक्षियो के समान बोलने वाली, रक्षक और मेघो की धारा रूप गिरती हुई उर्मियाँ जैसे शब्द करती हैं वैसे ही बृहस्पति की स्तुति के निमित्त मन झुकते हैं ॥ १ ॥

महर्षि अगिरस जसे भग के समान उसे घृत आदि सहित विवाह काल मे पति-पत्नि को अर्यमादेव द्वारा रक्षा कराते है उसी प्रकार इस दम्पत्ति को अर्यमादेव की शरण दिलावें। सूर्य अपने प्रकाश के लिये जैसे किरणो को एकत्रित करता है वैसे ही पति-पत्नि को एक करें। हे बृहस्पति! युद्ध के लिये तैयार वीर के समान ही इन वीर-वधु को तुम संयुक्त करो ॥ २ ॥

कोठियो मे से अन्न निकालने के समान बृहस्पति यजमानो को सुन्दर वर्ण और बल युक्त गायें पर्वत से लाकर प्रदान करें ॥ ३ ॥

धनका को आदित्यो द्वारा अधोमुखी डालने के समान ही बृहस्पति मेघो को अधोमुख करके डालें। मणि द्वारा अपहृत गौओ को निकालकर जैसे जल भूमि को फुलाते हैं

वैसे ही गौओं के खुरों से पृथ्वी को पृथक् कर देते हैं ॥ ४ ॥

बृहस्पति देव अन्धेरे को दूर करते हैं, वायु के द्वारा मेघों के छिन्न भिन्न के समान ही आप गौओं को इधर-उधर फैला देते हो ॥ ५ ॥

जब अग्नि के समान ताप वाले मन्त्रों से हिंसात्मक आयुध को नष्ट किया, तब चबाये हुये अलवत वल नामक असुर का संहार किया। उन्होंने पयस्विनी गायों को प्रकट किया ॥ ६ ॥

मोर आदि द्वारा अण्डे चीर कर गर्भ को निकालने के समान गुफाओं में छिपी हुई गौओं को बृहस्पति ने पर्वत चीर कर निकाल लिया। ७ ॥

जल के कम हो जाने से जैसे मछली दिखाई देती है उसी प्रकार बृहस्पति ने गुफा पर ढके पत्थर को उठाते ही गौओं को देखा। और उनको निकाला। ८ ॥

अन्धेरे में छिपी गौओं को देखने के निमित्त बृहस्पति ने उषा को प्राप्त किया, इन्हों ने आकाश निमित्त सूर्य तथा अग्नि को प्राप्त किया ॥ ९ ॥

पत्तों को निस्पत्र करके ग्रहण के समान बृहस्पति ने गौओं को प्राप्त किया। बृहस्पति के द्वारा ही, सूर्य, चन्द्रमा, दिन और रात्रि करते हुये गमन करते हैं। बृहस्पति कर्म को अन्य कोई नहीं जानता है ॥ १० ॥

जब बृहस्पति ने पर्वत को चीरा और गौओं को निकाला तो देवों ने अश्वों को सजाने के समान द्युलोक को सजाया। उन्होंने दिन में सूर्य और रात्रि में अन्धकार को विद्यमान किया ॥ ११ ॥

मेघ चीरक और जल वर्धक वृहस्पति को हवि देते हैं। वे हमारी स्तुतियों की प्रशंसा पर हमें गौयें, धन, अन्न और पुत्रादि से सम्पन्न करें ॥ १२ ॥

सूक्त (१७)

(ऋषि—कृष्णः । देवता—इन्द्रः । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

अच्छा म इन्द्र मतय. स्वर्विदः सध्रीचीर्विश्वा उशतीरनूषत ।
परि ष्वजन्ते जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्युं मघवान
मूतये ॥ १ ॥
न घा त्वद्रिगप वेति मे मनस्त्वे इत् कामं पुरुहूत शिश्रय ।
राजेव दस्म नि षदोऽधि बर्हिष्यस्मिन्त्सु
सोमेऽवपानमस्तु ते ॥ २ ॥
विषूवृदिन्द्रो अमतेरुत क्षुधः स इन्द्रायो मघवा वस्व ईशते ।
तस्येदिमे प्रवणे सप्त सिन्धवो वयो वर्धन्ति वृषभस्य
शुष्मिणः ॥ ३ ॥
वयो न वृक्षं सुपलाशमासदन्त्सोमास इन्द्र मन्दिनश्चमूषदः ।
प्रैषामनीकं शवसा दविद्युतद् विदत् स्वर्मनवे
ज्योतिरार्यम् ॥ ४ ॥
कृतं न श्वघ्नी वि चिनोति देवने संवर्गं यन्मघवा सूर्यं जयत् ।
न तत् ते अन्यो अनु वीर्यं शकन्न पुराणो मघवन् नोत
नूतनः ॥ ५ ॥
विशंविशं मघवा पर्यशायत जनानां धेना अवचाकशद् वृषा ।
यस्याह शक्रः सवनेषु रण्यति स तीव्रैः सोमैः सहते
पृतन्यतः ॥ ६ ॥
आपो न सिन्धुमभि यत् समक्षरन्त्सोमास इन्द्रं
कुल्या इव ह्रदम् ।

वर्धन्ति विप्रा महो अस्य सादने यवं न वृष्टिर्दिव्येन दानुना ॥ ७ ॥
वृषा न क्रुद्धः पतयद् रजःस्वा यो अर्यपत्नीरकृणोदिमा अपः ।
स सुन्वते मघवा जीरदानवेऽविन्दज्ज्योतिर्मनवे हविष्मते ॥ ८ ॥
उज्जायतां परशुर्ज्योतिषा सह भूया ऋतस्य सुदुघा पुराणवत् ।
वि रोचतामरुषो भानुना शुचिः स्वर्णं शुक्रं शुशुचीत सत्पतिः ॥ ९ ॥
गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥ १० ॥
बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥ ११ ॥
बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य ।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ १२ ॥

मुझ सुन्दर हाथ और वाणी वाले से इन्द्र की स्तुति की जाय। ये स्वर्ग दायक हैं। सन्तानाभिलाषी स्त्रियां जैसे पति से लिपटती हैं जैसे ही पिता को देखकर पुत्र लिपटता है वैसे ही मेरी स्तुतियाँ इन्द्र से लिपटती हैं ॥ १ ॥

हे इन्द्र! मेरा मन हमेशा तुम में अनुरक्त रहता है। तुम शत्रु संहारक हो। राजा के समान तुम इस कुशासन पर विराजमान होओ। सत्कार-युक्त सोम का भी पान करो ॥ २ ॥

इन्द्र क्षुधा को दूर कर हमारी दरिद्रता का नाश करें। इन्द्र धनदायक हैं और इन्द्र की गन्ता नदियाँ अन्न को बढ़ाने वाली हैं ॥ ३ ॥

पक्षियो के वृक्ष के आश्रय के समान सोम इन्द्र का आश्रय गृहण करते हैं। इन सोमो ने सूर्य को प्रकाशित किया और मनुष्यो को प्रदान कराया ॥ ४ ॥

जुआरी के पास प्रग्रहण करने के समान हमारी स्तुतियाँ इन्द्र को ग्रहण करे। इन्द्र ने ही सूर्य को आकाश मे विद्यमान किया है। हे इन्द्र तुम्हारे समान और कोई बलशाली नही बन सकता चाहे वह प्राचीन हो अथवा नवीन होवे ॥ ५ ॥

वे इन्द्र सभी उपासको के पास एक समय मे ही पहुँच कर उनकी स्तुतियों को ग्रहण कर लेते हैं। वे इन्द्र यजमानो द्वारा दिये गये सोम को बल से युद्धाभिलाषी शत्रुओ को वश मे करते है ॥ ६ ॥

जैसे जल सागर को, छोटी नदियां सरवर को प्राप्त होती है वैसे ही सोम इन्द्र को प्राप्त होते है। जैसे जल वर्षक मेघ अन्न की वृद्धि करते हैं वैसे ही हमारे स्तोत्र इन्द्र की वृद्धि करते हैं ॥ ७ ॥

सूर्य से रक्षित जलो को जो इन्द्र वर्षा रूप मे पृथ्वी पर लाते हैं वे सरस्काग्नि सोम को यहाँ आ ग्रहण करे ॥ ८ ॥

मेघ विदीर्ण वज्र प्रकट होवे। जल दोहक वाणी प्रगट होवे। जैसे सूर्य अपने तेज से प्रकाशित होते हैं वैसे ही इन्द्र साधुजनो की रक्षा करते हुये तेजस्वी बने ॥ ९ ॥

हे इन्द्र! तुम्हारी कृपा से प्राप्त गौओ से हमे दरिद्रता को दूर करें। तुम्हारे द्वारा दिया अन्न मनुष्यो की क्षुधा को शान्त करें। हम श्रेष्ठ बने, राजा से धन प्राप्त करें और शत्रुओ का सहार करे ॥ १० ॥

वृहस्पति, उत्तर और अर्द्ध दिशाओ मे आने वाले

हिंसक प्राणियों से हमारी रक्षा करें। सम्मुख मध्य और चारों ओर से आते हुये पापियों से इन्द्र हमारी रक्षा करें और हमें धन प्रदान करें ॥ ११ ॥

हे इन्द्र ! हे बृहस्पते ! तुम दोनों आकाश और पृथ्वी के धनों के स्वामी हो। अतः मुझे धन और रक्षा प्रदान करो ॥ १२ ॥

सूक्त १८ (तीसरा अनुवाक)

(ऋषि मेधातिथिः प्रियमेधश्च, वसिष्ठ । देवता— इन्द्रः । छन्द— गायत्री)

वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्त सखाय ।
कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥ १ ॥
न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ ।
तवेदु स्तोमं चिकेत ॥ २ ॥
इच्छन्ति देवाः सुन्वन्त न स्वप्नाय स्पृहयन्ति ।
यन्ति प्रमादमतन्द्राः ॥ ३ ॥
वयमिन्द्र त्वायवोऽभि प्र णोनुमो वृषन् विद्धी त्वस्य नो वसो ॥ ४ ॥
मा नो निदे च वक्तवेऽर्यो रन्धीरराव्णे ।
त्वे अपि क्रतुर्मम ॥ ५ ॥
त्वं वर्मासि सप्रथः पुरोयोधश्च वृत्रहन् ।
त्वया प्रति ब्रुवे युजा ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! हम कण्वगोत्रिय ऋषि तुम्हारी अभिलाषा से युक्त कल्याणों की स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

हे वज्रिन इन्द्र ! मैं नवीन यज्ञोवसर पर तुम्हारी ही केवल स्तुति करता हूँ ॥ २ ॥

इन्द्रादि देव गण सोम संस्कारित यजमान को चाहते हैं और सोम को देखते ही प्रमाद रहित बन जाते हैं ॥ ३ ॥

हे अभीष्ट दाता इन्द्र ! हम तुम्हारी कामना युक्त स्तोत्र पढ़ते हैं अतः तुम उनको सुनने की कामना से सुनो ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! हमको क्रूर वाणी युक्त, निदेक, श्रद्धाशील शत्रुओं के जाल से छुड़ाओ। मेरी स्तुतियों को स्वीकार करो। ५ ॥

हे वृत्रासुर संहारक इन्द्र ! तुम युद्ध में अग्रगणी रहने वाले धन्य हो। तुम ही मेरी कवच के समान रक्षा करते हो। मैं तुम्हारी सहायता ग्रहण कर शत्रुओं को लताकारता और विजय पाता हूँ। ६ ॥

सूक्त (१६)

(ऋषि—विश्व मित्र। देवता—इन्द्र। छन्द—गायत्री)

वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च।
इन्द्र त्वा वर्तयामसि। १ ॥
अर्वाचीनं सु ते मन उत चक्षुः शतक्रतो।
इन्द्र कृण्वन्तु वाघतः ॥ २ ॥
नामानि ते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे।
इन्द्राभिमातिषाह्ये ॥ ३ ॥
पुरुष्टुतस्य धामभिः शतेन महयामसि।
इन्द्रस्य चर्षणीधृतः ॥ ४ ॥
इन्द्रं वृत्राय हन्तवे पुरुहूतमुप ब्रुवे।
भरेषु वाजसातये ॥ ५ ॥
वाजेषु सासहिर्भव त्वामीमहे शतक्रतो।
इन्द्र वृत्राय हन्तवे ॥ ६ ॥
द्युम्नेषु पृतनाज्ये पृत्सुतूर्षु श्रवःसु च।
इन्द्र साक्ष्वाभिमातिषु ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! वृत्रासुर हनन के समान शत्रु संहारक तुमको शत्रुओं की सेनाओं के निस्तार के हेतु आह्वान करते हैं ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुम शतकर्मा हो । यज्ञ निर्वाही ऋत्विज तुम्हें हमारे सामने करें और अपनी दृष्टि को भी हमारे सामने करे ॥ २ ॥

हे शतकर्मा इन्द्र ! संग्राम भूमि में हम तुम्हारे सहस्राक्ष और पुरन्दर नामों का गान करते हैं ॥ ३ ॥

अनेकों स्तोत्राओं द्वारा पूज्य इन्द्र मनुष्यों की रक्षा का कार्य करते हैं । वे सैकड़ों तेजों से युक्त हैं अतः हम उनकी पूजा करते हैं ॥ ४ ॥

संग्राम भूमि में अनेक वीरों द्वारा बुलाये जाते हैं, यज्ञ में उनको यजमान बुलाते हैं ऐसे उन इन्द्रों का मैं बल प्राप्तनार्थ और पाप निवारणार्थ पूजता हूँ ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! तुम संग्राम भूमि में शत्रुओं का नाश करो । मैं शत्रु नाशक आपका पापनाशन के लिये स्तुति करता हूँ ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! धन को प्राप्त करने के अवसर पर, युद्ध के अवसर पर अन्न की सम्पन्नता के अवसर पर, पाप और शत्रुओं के नाश होने के अवसर पर हमारे सहयोगी बनो और हमें सुख प्रदान करते हुये स्वर्ग की प्राप्ति कराओ ॥ ७ ॥

सूक्त (२०)

(ऋषि विश्वामित्रः । गृत्समद । देवता—इन्द्र । छन्द गायत्री, अनुष्टुप्)

शुष्मिन्तमं न ऊतये द्युम्निनं पाहि जागृविम् ।

इन्द्र सोम शतक्रतो ॥ १ ॥
इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु ।
इन्द्र तानि त आ वृणे ॥ २ ॥
अगन्निन्द्र श्रवो बृहद् द्युम्नं दधिष्व दुष्टरम् ।
उत् ते शुष्मं तिरामसि ॥ ३ ॥
अर्वावतो न आ गह्यथो शक्र परावतः ।
उ लोको यस्ते अद्रिव इन्द्रेह तत आ गहि ॥ ४ ॥
इन्द्रो अङ्ग महद् भयमभी षदप चुच्यवत् ।
स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥ ५ ॥
इन्द्रश्च मृडयाति नो न नः पश्चादघं नशत् ।
भद्रं भवाति नः पुरः ॥ ६ ॥
इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत् ।
जेता शत्रून् विचर्षणि ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! अत्यधिक बलशाली, दुस्वान के नाश कर्ता, तेजवान सोम को हमारी रक्षा के निमित्त पान करो ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुम्हारे देखने सुनने योग्य जो बलदेव, पितर, असुर और प्राणी हैं मैं उनको प्राप्त करू ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुमसे अपरिचित अन्न हमको प्राप्त होवे । तुम शत्रु नाशक धन हमें दो । हम सोम और स्तोत्रों द्वारा बल वृद्धि करते है ॥ ३ ॥

हे शक्तिशाली इन्द्र ! तुम दूर देश अथवा समीप से हमारे पास आओ ! तुम सोम पान करो ॥ ४ ॥

इन्द्र हमारे भयो को भगाने मे समर्थ है, वे हमेशा रहने वाले सर्व दृष्टा हैं ॥ ५ ॥

इन्द्र हमारी रक्षा कर हमे सुखी करें । दुःखो का नाश और कल्याण को प्राप्त करे ॥ ६ ॥

समस्त दिशाओं से आने वाले भयों को इन्द्र देव दूर करें चूंकि ये सूक्ष्मदर्शी हैं ॥ ७ ॥

सूक्त (२१)

(ऋषि—सव्यः । देवता—इन्द्रः । छन्द जगती, त्रिष्टुप्)

न्यू षु वाच प्र महे भरामहे गिर इन्द्राय सदने विवस्वतः ।
नू चिद्धि रत्नं ससतामिवाविदन्न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते ॥ १ ॥

दुरो अश्वस्य दुर इन्द्र गोरसि दुरो यवस्य वसुन इनस्पतिः ।
शिक्षानरः प्रदिवो अकामकर्शनः सखा सखिभ्यस्तमिदं गृणीमसि ॥ २ ॥

शचीव इन्द्र पुरुकृद् द्युमत्तम तवेदिदमभितश्चेकिते वसु ।
अतः संगृभ्याभिभूत आ भर मा त्वायतो जरितुः काममूनयीः ॥ ३ ॥

एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभिर्निरुन्धानो अमतिं गोभिरश्विना ।
इन्द्रेण दस्युं दरयन्त इन्दुभिर्युतद्वेषसः समिषा रभेमहि ॥ ४ ॥

समिन्द्र राया समिषा रभेमहि सं वाजेभिः पुरुश्चन्द्रैरभिद्युभिः ।
सं देव्या प्रमत्या वीरशुष्मया गोअग्रयाश्वावत्या रभेमहि ॥ ५ ॥

ते त्वा मदा अमदन् तानि वृष्ण्या ते सोमासो वृत्रहत्येषु सत्पते ।
यत् कारवे दश वृत्राण्यप्रति बर्हिष्मते नि सहस्राणि बर्हयः ॥ ६ ॥

युधा युधमुप घेदेषि धृष्णुया पुरा पुरं समिदं हंस्योजसा ।
नम्या यदिन्द्र सख्या परावति निबर्हयो नमुचिं नाम मायिनम् ॥ ७ ॥

त्वं करञ्जमुत पर्णयं वधीस्तेजिष्ठयातिथिग्वस्य वर्तनी ।
त्वं शता वङ्गृदस्याभिनत् पुरोऽनानुदः परिषूता
ऋजिश्वना ॥ ८ ॥
त्वमेतां जनराज्ञो द्विर्दशाबन्धुना सुश्रवसोपजग्मुषः ।
षष्टिं सहस्रा नवतिं नव श्रुतो नि चक्रेण रथ्या
दुष्पदावृणक् । ९ ॥
त्वमाविथ सुश्रवसं तवोतिभिस्तव त्रामभिरिन्द्र तूर्वयाणम् ।
त्वमस्मै कुत्समतिथिग्वमायुं महे राज्ञे यूने
अरन्धनाय. ॥ १० ॥
य उदृचीन्द्र देवगोपा सखायस्ते शिवतमा असाम ।
त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः
प्रतरं दधानाः ॥ ११ ॥

हम इन्द्र का सुन्दर स्तोत्रों से गान करते हैं, यज्ञ मण्डप मे उनकी स्तुतियाँ हो रही हे । चोरो के समान इन्द्र शत्रुओ और राक्षसो के धन का अपहरण करे ? मैं उन इन्द्र को प्रेम पूर्वक नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुम गौ, अश्व, अन्न, जल आदि के साथ रत्नादि भी देते हो तुम अत्यधिक प्राची देव हो। उपासको की इच्छा पूर्ति करते हो। ऐसे ऋत्विजो के सखा रूप इन्द्र की मैं वंदना करता हूँ ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुम मेधावी बली और विश्वकर्मा हो। सभी धन के स्वामी होने से हमे धन प्रदान करो । मैं अभीष्ट फल कामना करता हूँ ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! हमारी हवियो और सोमो से प्रसन्न होकर हमे गौ अश्वादि देकर हमारी दरिद्रता को दूर करो। तुम हमारे

शत्रुओं का नाश करो और अन्न आदि से हमें परिपूर्ण करो ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! हम धन सम्पन्न होवें। हमें प्रजा को प्रसन्न करने की शक्ति प्रदान करो। तुम्हारी कृपामयी बुद्धि को पाकर हम गौओं से सम्पन्न होवें और दुःखों को नष्ट करें ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! तुम सज्जनों की रक्षा करते हो। तुम अभीष्ट फल दाता और शत्रु नाशक हो। यह सोम यजमान के लिये कार्य करते समय तुमको प्रसन्नता प्रदान करें ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! तुम मरुद्गण आदि के साथ वज्र के प्रहार से शत्रुओं का नगर सहित विध्वंस करते हो। तुम ही मायामयी नमुचि के मारक हो अतः हम तुम्हारा स्मरण करते हैं ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! तुम वर्तनी शक्ति से अतिथिग्व नामक राजा के करंजासुर के संहारक हो और पर्णासुर के भी हननकर्ता हो। ऋजिश्वम् राजा के शत्रुओं का भी तुमने विध्वंस किया था ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! निसहाय सुश्रवा राजा को घेरने वाले साठ हजार निन्यानवे सेनाध्यक्षों को इस चक्र से मारा, जिसे शत्रुगण नहीं पा सकते हैं ॥ ९ ॥

हे इन्द्र ! सुश्रवा के साथ तुमने तुर्वयाण राजा की भी रक्षा की। तुमने सुश्रवा को कुत्स, अतिथिग्व और आयु का आश्रय प्रदान किया ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! यज्ञ की सम्पन्नता हेतु हम आपसे रक्षा माँगते हैं। हम तुम्हारे सखा रूप बन कर मंगल को धारण करें। यज्ञ की पूर्ति पर हम सुन्दर पुत्रों को प्राप्त करते हुये दीर्घायु धारण करें ॥ ११ ॥

सूक्त (२२)

(ऋषि—त्रिशोकः; प्रियमेधः । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

अभि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये ।
तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥ १ ॥
मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आ दभन् ।
माकीं ब्रह्मद्विषो वनः ॥ २ ॥
इह त्वा गोपरीणसा महे मन्दन्तु राधसे ।
सरो गौरो यथा पिब ॥ ३ ॥
अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे ।
सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥ ४ ॥
आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि ।
यत्राभि संनवामहे ॥ ५ ॥
इन्द्राय गाव आशिर दुदुह्रे वज्रिणे मधु ।
यत् सीमुपह्वरे विदत् ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! संस्कारित सोम पीने को हम तुमको बुलाते हैं। तुम हर्षमयी सोम को उदरस्थ करो ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुम्हारी सहायता न पाते हुये मूर्ख हिंसित न हो जाय। तुम ब्राह्मण द्वेषी की सेवा मत करो। तुम्हारे व्यंगी तुम्हे दवाने मे समर्थ न होवें ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! गोरस मिश्रित द्वारा तुम्हे ऋत्विज प्रसन्न करें। प्यासे मृग के सरोवर पहुँचने के समान तुम सोम पान करो ॥ ३ ॥

हे स्तुति करने वाले प्राणियों। जैसे इन्द्र हमें आपना

स्वीकार करें वैसे ही उसका पूजन करो। ये इन्द्र साधुजन रक्षक है ॥ ४ ॥

इन्द्र अपने सुन्दर अश्वों को स्तुति स्थान पर बिछी हुई कुशाओं के समीप लावें ॥ ५ ॥

पास में रखे हुये मधुर का जब इन्द्र पान करते हैं तो गायें उनको मधुर दुग्ध का दोहन करती है ॥ ६ ॥

सूक्त (२३)

(ऋषि—विश्वामित्र । देवता—इन्द्र । छन्द—गायत्री)

आ तू न इन्द्र मद्रयाग्घुवानः सोमपीतये ।
हरिभ्यां याह्यद्रिवः ॥ १ ॥
सत्तो होता न ऋत्वियस्तिस्तिरे बर्हिरानुषक् ।
अयुज्रन् प्रातरद्रय ॥ २ ॥
इमा ब्रह्म ब्रह्मवाहः क्रियन्त आ बर्हिः सीद ।
वीहि शूर पुरोडाशम् ॥ ३ ॥
रारन्धि सवनेषु ण एषु स्तोमेषु वृत्रहन् ।
उक्थेष्विन्द्र गिर्वणः ॥ ४ ॥
मतयः सोमपामुरुं रिहन्ति शवसस्पतिम् ।
इन्द्र वत्स न मातर ॥ ५ ॥
स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे ।
न स्तोतारं निदे करः ॥ ६ ॥
वयमिन्द्र त्वायवो हविष्मन्तो जरामहे ।
उत त्वमस्मयुर्वसो ॥ ७ ॥
मारे अस्मद् वि मुमुचो हरिप्रियार्वाङ् याहि ।
इन्द्र स्वधावो मत्स्वेह ॥ ८ ॥
अर्वाञ्चं त्वा सुखे रथे वहतामिन्द्र केशिना ।
घृतस्नू बर्हिरासदे ॥ ९ ॥

हे इन्द्र ! हमारे यज्ञ मे अह्न न किये जाते हुये तुम अपने हरित अश्वो से सोम पीने के निमित्त यहाँ आओ ॥ १ ।

हे इन्द्र ! यज्ञावसर पर होता, कुशा और सोम के सस्कार करने वाले पाषाण प्रस्तुत हैं ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! इन कुशाओ पर विद्यमान होकर हमारे द्वारा दी हवि को ग्रहण करो । हम तुम्हारी स्तुति करते है ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! तुम वृत्रासुर हनन से स्तुति योग्य हो । अत तुम तानो सवनों के स्तोत्रो से व्याप्त होओ ॥ ४ ।

गौ के वत्स के चाटने के समान हमारी स्तुतिया इन्द्र के हृदय मे वास करती है ।। ५ ॥

हे इन्द्र ! वल पाने को सोम पान करो । मैं तुम्हारी स्तुति करता हुआ किसी की निन्दा न करूँ । हर्षित हो हमे धन धान्य से सम्पन्न करो ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! हम सोममयी हवियो से सम्पन्न हुये तुमको आह्वान करते हैं । तुम हमको अभीष्ट वर्षक बनो ।। ७ ।।

हे इन्द्र ! तुम अश्व प्रियी हो । अपने अश्वो के साथ रथ पर आरूढ हो यहाँ आओ और यज्ञ के सोम का पान करो ।। ८ ।।

हे इन्द्र ! तुम्हारी श्रमयुक्त बूँदो से भीगे अश्व तुम्हे रथारूढ कर कुशासन पर लाकर विद्यमान करें ।। ९ ।।

सूक्त (२४)

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता —इन्द्रः छन्द—गायत्री)

उप न. सुतमा गहि सोममिन्द्र गवाशिरम् ।
हरिभ्यां यस्ते अस्मयुः ॥ १ ॥
तमिन्द्र मदमा गहि बर्हिष्ठां ग्रावभिः सुतम् ।

कुविन्नस्य तृप्णव ॥ २ ॥
इन्द्रमित्था गिरो ममाच्छागुरिषिता इत ।
आवृते सोमपीतये ॥ ३ ॥
इन्द्र सोमस्य पीतये स्तोमैरिह हवामहे ।
उक्थेभि कुविदागमत् ॥ ४ ॥
इन्द्र सोमा सुता इमे तान् दधिष्व शतक्रतो ।
जठरे वाजिनीवसो ॥ ५ ॥
विद्मा हि त्वा धनजय वाजेषु दधृषं कवे ।
अधा ते सुम्नमीमहे । ६ ॥
इममिन्द्र गवाशिर यवाशिर च न पिव ।
आगत्या वृषभि सुतम् ॥ ७ ॥
तुभ्येदिन्द्र स्व ओक्ये सोम चोदामि पीतये ।
एष रारन्तु ते हृदि ॥ ८ ॥
त्वां सुतस्य पीतये प्रत्नमिन्द्र हवामहे ।
कुशिकासो अवस्यव ॥ ९ ॥

हे इन्द्र ! हमारे सोम का पान करो तुम्हारा अश्वों का रथ यहाँ आने की अभिलाषा करता है ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! कुशाओं पर रखे हुये सोम की तरफ आकर इसका पान करो ॥ २ ॥

हमारी स्तुति इन्द्र का यज्ञ मण्डप में लाने को उनके पास जाती है ॥ ३ ॥

सोम पान के निमित्त हम इन्द्र को स्तुति स आहुत करते हैं वे हमारे यज्ञ मे अनेक बार आवें । ४ ॥

हे इन्द्र ! ये सोम चमस तुम्हारे निमित्त है अत इनका पान करो ॥ ५ ॥

हे इन्द्र तुम संग्राम मे विजेता हो अतः हम हर्षदायक धन की कामना करते हैं ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! पाषाणों से संस्कारित गौ रस युक्त सोम का पान करो ॥ ७ ।

हे इन्द्र ! मैं तुम्हें सोम को उदरस्थ करने को उद्धृत करता हूँ यह सोम तुम्हारे हृदय मे वास करें ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! हम कौशिक तुमसे रक्षा चाहते हुए निष्पन्न सोम के पान को तुम्हें बुलाते हैं ॥ ९ ॥

सूक्त (२५)

(ऋषि—गोतम । देवता—इन्द्र । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

अश्वावति प्रथमो गोषु गच्छति सुप्रावीरिन्द्र मर्त्यस्तवोतिभि. ।
तमित् पृणक्षि वसुना भवीयसा सिन्धुमापो यथाभितो विचेतसः ॥ १ ॥
आपो न देवीरुप यन्ति होत्रियमवः पश्यन्ति विततं यथा रजः ।
प्राचैर्देवासः प्र णयन्ति देवयुं ब्रह्मप्रियं जोषयन्ते वराइव ॥ २ ॥
अधि द्वयोरदधा उक्थ्यं वचो यतस्रुचा मिथुना या सपर्यतः ।
असंयत्तो व्रते ते क्षेति पुष्यति भद्रा
शक्तिर्यजमानाय सुन्वते ॥ ३ ॥
आदङ्गिराः प्रथमं दधिरे वय इद्धाग्नयः शम्या ये सुकृत्यया ।
सर्वं पणेः समविन्दन्त भोजनमश्वावन्त
गोमन्तमा पशुं नर. ॥ ४ ॥
यज्ञै रथर्वा प्रथमः पथस्तते ततः सूर्यो व्रतपा वेन आजनि ।
आ गा आजदुशना काव्य सचा यमस्य
जातममृत यजामहे ॥ ५ ॥

बर्हिर्वा यत् स्वपत्याय वृज्यतेऽर्को वा श्लोकमाघोषते दिवि ।
ग्रावा यत्र वदति कारुरुक्थ्य स्तस्येदिन्द्रो
अभिपित्वेषु रण्यति ॥ ६ ॥
प्रोग्रां पीतिं वृष्ण इयर्मि सत्यां प्रयै सुतस्य हर्यश्व तुभ्यम् ।
इन्द्र धेनाभिरिह मादयस्व धीभिर्विश्वाभि
शच्या गृणान ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! तुम्हारे द्वारा रक्षित पुरुष संग्राम में अश्वारोहियों के सम्मुख प्रस्तुत हो उन्हें जीतता है । समुद्र में जल के भरे रहने के समान तुम उसे धन सम्पन्न करते हो । १॥

हे इन्द्र जल के नीचे की ओर बहने के समान हमारी स्तुतियाँ तुम्हारे पास चली जाती है । सूर्य के प्रकाशवत ही तुम्हारे तेज से मनुष्य चैतन्य हो जाते हैं । स्तोताओं के समान ही ऋत्विज तुम्हारी सेवा काय करते हैं ॥ २ ॥

कलशों पर स्तुति योग्य द्रव्य स्थापित होते हैं । हे इन्द्र ! यह यज्ञ कर्त्ता तुम्हारी कृपा से धन-धान्य, पशु और संतान आदि को पाता हुआ सुख प्राप्त करे ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! पणियों द्वारा गौओं के चुराने पर अंगिराओं ने तुम्हें ही पहिले हविरन्न प्रदान किया । ये अंगिरावंशी ऋषि सुन्दर कार्यों से युक्त अग्नि को प्रदीप्त करते हैं । इनके पूर्वजों ने पणि से छीना हुआ गौ, अश्व, बकरी आदि बहुत सा धन प्राप्त किया था ॥ ४ ॥

महर्षि अथर्वा ने इन्द्र के लिए यज्ञ करते चुराई हुई गायों के मार्ग को सूर्य से पहिले ही जान लिया था । सूर्योदय होने पर उशना ने इन्द्र की सहायता से गौओं को प्राप्त किया था ॥५॥

संतानोत्पत्ति के फल के निमित्त कुशायें विस्तृत की

जाती है। जिसमे स्तोत्र से स्तुति की जाती है उस यज्ञ में इन्द्र विराजमान रहते हैं ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! तुम अभीष्ट दाता हो। तुमको मैं सोम रस पीने के लिए प्रेरित करता हूँ। हमारी स्तुतियों से तुम प्रसन्न होवें ॥ ७ ॥

सूक्त (२६)

(ऋषि—शुनः शेप ; मधुच्छन्दाः । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

योगेयोगे तवस्तरं वाजवाज हवामहे ।
सखाय इन्द्रमूतये ॥ १ ॥
आ घा गमद् यदि श्रवत् सहस्रिणीभिरूतिभिः ।
वाजेभिरुप नो हवम् ॥ २ ॥
अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम् ।
यं ते पूर्वं पिता हुवे ॥ ३ ॥
युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः ।
रोचन्ते रोचना दिवि ॥ ४ ॥
युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे ।
शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ ५ ॥
केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे ।
समुषद्भिरजायथाः ॥ ६ ॥

हम संग्रामावसर पर इन्द्र को बुलाते हैं। तथा अन्न प्राप्ति के अवसर पर भी उनको बुलाते है ॥ १ ॥

मेरे स्तोत्रों को श्रवण कर यहाँ पर पधारो ॥ २ ॥

तुम प्राचीन यज्ञों के स्वामी और वीरो के नायक हो। मेरे पिता के समान ही मैं तुम्हारा आह्वान करता हूँ ॥ ३ ॥

इन्द्र के महान, देदीप्यमान, विचरणशील रथ में हर्यश्व संयुक्त होवें। वे अश्व आकाश में प्रकाशमान होते हैं ॥ ४ ॥

इन्द्र के सारथी अश्वों को रथ के दोनों ओर जोड़ते हैं। ये अश्व इन्द्र को रथारूढ़ कराते हैं। ५ ॥

हे प्राणियो ! पदार्थों को प्रकाशित करने वाले, अन्धकार को भगाने वाले और ज्ञान प्रदान करने वाले सूर्य उदित हो गये हैं। अतः इनका दर्शन करो ॥ ६ ॥

सूक्त (२७)

(ऋषि—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् ।
स्तोता मे गोषखा स्यात् ॥ १ ॥
शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे ।
यदहं गोपतिः स्याम् ॥ २ ॥
धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते ।
गामश्वं पिप्युषी दुहे ॥ ३ ॥
न ते वर्तास्ति राधस इन्द्र देवो न मर्त्यः ।
यद् दित्ससि स्तुतो मघम् ॥ ४ ॥
यज्ञ इन्द्रमवर्धयद् भूमिं व्यवर्तयत् ।
चक्राण ओपशं दिवि ॥ ५ ॥
वावृधानस्य ते वयं विश्वा धनानि जिग्युषः ।
ऊतिमिन्द्रा वृणीमहे ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! तुम ऐश्वर्य से युक्त हो। मैं तुम्हारे समान मनुष्यों में धन का स्वामी बनूं। तुम्हारे समान ही मेरी स्तुति करने वाला गौ आदि को प्राप्त होता है ॥ १ ॥

हे शचिपते ! तुम्हारी कृपा से मैं धन धान्य से सम्पन्न हो स्तुति करने वालो को धन प्रदान करू ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! हमारी सत्य वाणी गौ के समान तृप्तिकर हो और यजमान की वृद्धि करें ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! तुम्हारे धन को देव और मनुष्य नष्ट नहो कर सकते है। हमारी स्तुतियों से प्रसन्न होकर दिए गये धन को कोई नष्ट नही कर सकता है ॥ ४ ॥

जो इन्द्र मेघों को विस्तृत करते और पृथ्वी को वर्षा जल से फुलाते हैं, वे ही धान्यों को पुष्ट करते हैं। हम इन्द्र को तब हवियाँ प्रदान करते है ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! तुम स्तुतियो द्वारा प्रवृद्ध होते हो। हम तुम्हारी शत्रु धन जयी और रक्षात्मक शक्ति को धारण करते हैं ॥६॥

सूक्त (२८)

(ऋषि—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

व्यन्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना ।
इन्द्रो यदभिनद् वलम् ॥ १ ॥
उद्गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन् गुहा सतीः ।
अर्वाञ्चं नुनुदे वलम् ॥ २ ॥
इन्द्रेण रोचना दिवो दृढानि दृंहितानि च ।
स्थिराणि न पराणुदे ॥ ३ ॥
अपामूर्मिर्मदन्निव स्तोम इन्द्राजिरायते ।
वि ते मदा अराजिषुः ॥ ४ ॥

सोम पान के प्राप्त बल से इन्द्र के द्वारा मेघों को चीरने पर अन्तरिक्ष वर्षा जल से व्याप्त हो गया ॥ १ ॥

० गिराओ को इन्द्र से कन्दरा म छिपी गाओ को प्रदान किया और राक्षसो को अधोमुख कर पतित किया ॥ २ ॥

आकाश में विद्यमान नक्षत्र और ग्रहो को स्थिरता और दृढ़ता प्रदान की। अत अब उन्हे कोई गिराने मे समर्थ नही। ३ ।

हे इन्द्र ! तुम्हारा स्तोत्र वर्षा जल के समान हर्ष दायक होता हुआ मुख से प्रकट होता है। सोम पान कर लेने पर तुम अत्यधिक शक्तिशाली बन जाते हैं ॥ ४ ॥

सूक्त (२९)

(ऋषि—गोपूक्त्यश्वसूक्तिनौ । देवता इन्द्र । छन्द—गायत्री)

त्वं हि स्तोमवर्धन इन्द्रास्युक्थवर्धन ।
स्तोतृणामुत भद्रकृत् ॥ १ ॥
इन्द्रमित् केशिना हरी सोमपेयाय वक्षत ।
उप यज्ञं सुराधसम् ॥ २ ॥
अपां फेनेन नमुचे शिर इन्द्रोदवर्तय ।
विश्वा यदजय स्पृध ॥ ३ ॥
मायाभिरुत्सिसृप्सत इन्द्र द्यामारुरुक्षत ।
अव दस्यूंरधूनुथा ॥ ४ ॥
असुन्वामिन्द्र संसदं विषूचीं व्यनाशय ।
सोमपा उत्तरो भवन् ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! तुम स्तोत्रो और उक्थो से वृद्धि को प्राप्त हो यजमानो को मंगलमयी बना ॥ १ ॥

इन्द्र को हर्यश्व फल युक्त हमारे यज्ञ में इन्द्र को सोम पान के निमित्त आह्वान करें ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! नमुचि राक्षस का सिर तुमने जल फेन से बने वज्र से काटा और शत्रुओं पर विजय को पाया ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! अपनी माया से आकाशगामी असुरों को अधोमुख कर नीचे गिराओ ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! तुम सोम पीकर बल युक्त बनते हो और जहाँ सोम का अभिषव नहीं होता वहाँ के समाज को नष्ट भ्रष्ट कर डालते हो ॥ ५ ॥

सूक्त (३०)

(ऋषि—वरु सर्वहरिर्वा । देवता इन्द्रः । छन्द—जगती)

प्र ते महे विदथे शंसिषं हरी प्र ते वन्वे वनुषो हर्यतं मदम् ।
घृतं न यो हरिभिश्चारु सेचत आ त्वा विशन्तु हरिवर्पसं गिरः ॥ १ ॥
हरिं हि योनिमभि ये समस्वरन् हिन्वन्तो हरी दिव्यं यथा सदः ।
आ यं पृणन्ति हरिभिर्न धेनव इन्द्राय शूषं हरिवन्तमर्चत ॥ २ ॥
सो अस्य वज्रो हरितो य आयसो हरिर्निकामो हरिरा गभस्त्योः ।
द्युम्नी सुशिप्रो हरिमन्युसायक इन्द्रे नि रूपा हरिता मिमिक्षिरे ॥ ३ ॥
दिवि न केतुरधि धायि हर्यतो विव्यचद् वज्रो हरितो न रंह्या ।
तुददहिं हरिशिप्रो य आयसः सहस्रशोका अभवद्धरिम्भरः ॥ ४ ॥
त्वंत्वमहर्यथा उपस्तुतः पूर्वेभिरिन्द्र हरिकेश यज्वभिः ।
त्वं हर्यसि तव विश्वमुक्थ्यमसामि राधो हरिजात हर्यतम् ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! तुम्हारे अश्व शीघ्रगामी हैं। तुम शत्रु नाशक हो। सोम पान से उत्पन्न शक्ति द्वारा मेरी अभिलाषा पूर्ण करो। इन्द्र धन के वर्षक हैं। मैं उनका स्तवन करता हूँ ॥ १ ॥

प्राचीन ऋषियों ने इन्द्र को शीघ्रता से बुलाने के लिए अश्वों को प्रेरित किया वह स्तोत्र मूल रूप से इन्द्र के ही निमित्त था। नव प्रसूता गौ के दुग्ध से प्रसन्न हुए मालिक के समान मेरे स्तोत्र इन्द्र को प्रसन्नता और तृप्ति प्रदान करें ॥ २ ॥

इन्द्र का लोह वज्र भी हरा है और कमनीय देह भी हरे रंग का है। इनका बाण तथा सम्पूर्ण साज-सज्जा हरे रंग की ही है ॥ ३ ॥

इन्द्र का वज्र सूर्यवती आकाश में स्थित है। सूर्य के अश्वों के समान ही इन्द्र का वज्र गन्तव्य स्थान को प्राप्त होता है। इन्द्र ने वृत्रासुर और उसके अनेक साथियों को शोक से संतप्त किया ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! तुम्हारे केश हरे रंग के हैं। जहां सोम रूप हवि है वहां पर तुम हो। तुम स्तुत्य हवि की कामना से युक्त हो। तुम हर्यश्व सहित यज्ञ में पधारो। ऐसे हे इन्द्र ! यह सोम, मन्न और उक्थ तुम्हारे ही हैं ॥ ५ ॥

सूक्त (३१)

(ऋषि—वरु सर्वहरिर्वा । देवता—इन्द्र । छन्द—जगती)

ता वज्रिणं मन्दिनं स्तोम्यं मद इन्द्रं रथे वहतो हर्यता हरी ।
पुरूण्यस्मै सवनानि हर्यत इन्द्राय सोमा हरयो दधन्विरे ॥ १ ॥
अरं कामाय हरयो दधन्विरे स्थिराय हिन्वन् हरयो हरी तुरा ।

अर्वाङ्क्रियो हरिभिर्जोषमीयते सो अस्य काम
हरियन्तमानशे ॥ २ ॥
हरिश्मशारुर्हरिकेश आयसस्तुरस्पेये यो हरिपा अवर्धत ।
अर्वाङ्क्रियो हरिभिर्वाजिनीवसुरति विश्वा दुरिता
पारिषद्धरी ॥ ३ ।
स्रुवेव यस्य हरिणी विपेततुः शिप्रे वाजाय
हरिणी दविध्वत. ।
प्र यत् कृते चमसे मर्मृजद्धरी पीत्वामदस्य
हर्यतस्यान्धसः ॥ ४ ॥
उत स्म सद्म हर्यतस्य पस्त्योरत्यो न वाजं
हरिवाँ अचिक्रदत् ।
मही चिद्धि धिषणाहर्य दोजसा बृहद् वयो दधिषे
हर्यतश्चिदा ॥ ५ ॥

सोमोत्पन्न शक्ति से निमित इन्द्र के अश्व उन्हे हमारे यज्ञ मे लाने को उद्यत करते है। तीनो सवनो वाले सोम इन्द्र को धारण करते हैं ॥ १ ॥

हरे रग के सोम इन्द्र को युद्ध में धारण करते हैं। सोम ही उनके अश्वो को यज्ञ की ओर प्रेरित करता है। इन्द्र शीघ्र ही यज्ञ में पधारते है ॥ २ ॥

इन्द्र के केश दाढो, मूँछ सब हरे रग के हैं। वे सस्कारित सोम को पीकर वृद्धि को प्राप्त होते हैं। वे अपने शीघ्रगामी अश्वो सहित यज्ञ मे पधारते हैं। इन्द्र रथ में घोडो को जोडकर हमारे पापों का नाश करें ॥ ३ ॥

जैसे यज्ञ मे स्रुवें चलते है वैसे ही इन्द्र की हरे रग की चिबुक सोम पीने के निमित्त चलती है चमस जव सोम से सम्पन्न

होता है तो इन्द्र की चिबुक फड़कती है। उस समय वे अपने अश्वों को परिमार्जन करते हैं ॥ ४

इनका निवास द्यावा पृथ्वी में है। अश्वों के युद्ध में अग्रसर होने के समान इन्द्र यज्ञस्थान की ओर अग्रसर होते हैं। हे इन्द्र! हमारा स्तोत्र तुम्हारी कामना करता है और तुम यजमान की कल्याण की कामना करो। यजमान को धन धान्य से सम्पन्न करो ॥ ५ ॥

सूक्त (३०)

(ऋषि वरु सर्वहरिर्वा। देवता—इन्द्र। छन्द—जगती, त्रिष्टुप)

आ रोदसी हर्यमाणो महित्वा नव्यं नव्यं हर्यसि मन्म नु प्रियम्।
प्र पस्त्यमसुर हर्यतं गोराविष्कृधि हरये सूर्याय ॥ १ ॥
आ त्वा हर्यन्तं प्रयुजो जनानां रथे वहन्तु हरिशिप्रमिन्द्र।
पिबा यथा प्रतिभृतस्य मध्वो हर्यन् यज्ञं सधमादे दशोणिम् ॥ २ ॥
अपाः पूर्वेषां हरिवः सुतानामथो इदं सवनं केवलं ते।
ममद्धि सोमं मधुमन्तमिन्द्र सत्रा वृषञ्जठर आ वृषस्व ॥ ३ ॥

हे इन्द्र! आकाश और पृथ्वी तुम्हारे तेज से व्याप्त है। तुम नवीन हो और प्रिय स्तोत्रों की अभिलाषा से युक्त हो। तुम प्राणियों द्वारा अपहृत गौओं के स्थान को सूर्य को देते हो। सूर्य स्तोता को उन गौओं को प्रदान करें, ऐसी कृपा करो ॥१॥

हे इन्द्र! तुम सोम पीने हुए हरे रंग की ठोढ़ी से युक्त हो। तुमको रथारूढ़ कर अश्व यहाँ पर लावें ये अश्व सोम पीने के निमित्त तुम्हें इस मण्डप में लावें ॥ २ ॥

हे इन्द्र! तुमने प्रातः सवन में सोम ग्रहण किया है अन

अब मध्यान्ह में भी सोम ग्रहण करो और बल युक्त बनो। यह सोम तुम्हारे निमित्त ही है। सोम को एक साथ ही तुम उदरस्थ करते हुए ग्रहण करो ॥ ३ ॥

सूक्त (३३)

(ऋषि—अष्टकः। देवता—इन्द्रः। छन्द—त्रिष्टुप्)

अप्सु धूतस्य हरिवः पिबेह नृभिः सुतस्य जठरं पृणस्व।
मिमिक्षुर्यमद्रय इन्द्र तुभ्यं तेभिर्वर्धस्व मदमुक्थवाहः ॥ १ ॥
प्रोग्रां पीतिं वृष्ण इयर्मि सत्यां प्रयै सुतस्य हर्यश्व तुभ्यम्।
इन्द्र धेनाभिरिह मादयस्व धीभिर्विश्वाभिः
शच्या गृणानः ॥ २ ॥
ऊती शचीवस्तव वीर्येण वयो दधाना उशिज ऋतज्ञाः।
प्रजावदिन्द्र मनुषो दुरोणे तस्थुर्गृणन्तः सधमाद्यासः ॥ ३ ॥

हे इन्द्र! अध्वर्युओं द्वारा सस्कारित सोम से उदर को भरो। पाषाण द्वारा संस्कारित सोम को पीकर प्रसन्नता से युक्त बनो ॥ १ ॥

हे इन्द्र! तुम अभीष्ट वर्षक हो। मैं तुम्हें सोम की तीव्र बल रूपी शक्ति की ओर प्रेरित करती हूँ। तुम यज्ञ में हवि और स्तोत्रों को प्राप्त कर प्रसन्न चित्त बनो ॥ २ ॥

हे इन्द्र! तुम्हारे द्वारा रक्षित पुत्रादि सतान और अन्न से संपन्न हो। ऋत्विज और यजमान तुम्हारी भूरि २ प्रशंसा करते हैं ॥ ३ ॥

सूक्त (३४)

(ऋषि—गृत्समद। देवता—इन्द्रः। छन्द— त्रिष्टुप)

यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत्।

यस्य शुष्माद् रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स
जनास इन्द्रः ॥ १ ॥
य पृथिवीं व्यथमानामदृंहद् य पर्वतान प्रकुपितां अरम्णात् ।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तम्नात् स
जनास इन्द्र ॥ २ ॥
यो हत्वाहिमरिणात् सप्त सिन्धून् यो गा उवाजदपधा वलस्य ।
यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान संवृक् समत्सु
स जनास इन्द्र ॥ ३ ॥
येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दास वर्णमधरं गुहाकः ।
श्वघ्नीव यो जिगीवाल्लँ क्षमाददर्य पुष्टानि स
जनास इन्द्र ॥ ४ ॥
य स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरमुतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम् ।
सो अर्य पुष्टीर्विजइवा मिनाति श्रदस्मै धत्त स
जनास इन्द्र ॥ ५ ॥
यो रध्रस्य चोदिता य कृशस्य यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः ।
युक्तग्राव्णो योऽविता सुशिप्र सुतसोमस्य स
जनास इन्द्रः ॥ ६ ॥
यस्याश्वास प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा
यस्य विश्वे रथास ।
य सूर्यं य उषस जजान यो अपां नेता स जनास इन्द्र ॥ ७ ॥
य क्रन्दसी संयती विह्वयेते परेऽवर उभया अमित्रा ।
समान चिद्रथमातस्थिवांसा नाना हवेते स जनास इन्द्र ॥ ८ ॥
यस्मान्न ऋते विजय ते जनासो य युध्यमाना अवसे हव ते ।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत स
जनास इन्द्र ॥ ९ ॥
य शश्वतो मह्येनो दधानानमन्यमानाञ्छर्वा जघान ।

व शर्धते नानुददाति शृध्यां यो दस्य हन्ता स
जनास इन्द्र ॥ १० ।

आकाश और पृथ्वी इन्द्र के बल से भयभीत हैं । इन्द्र ने उत्पन्न होते ही दूसरे देवों को रक्षा रूप मे ग्रहण किया ।१॥

हे राक्षसो ! जिन्होने अस्थिर पृथ्वी को स्थिर किया, जिन्होने पर्वतो के पंख काट उन्हे अचल कर दिया, जिन्होंने अन्तरिक्ष और आकाश को भी स्थिर किया, वह इन्द्र हैं ॥ २ ॥

जिस इन्द्र ने अन्तरिक्ष मेघो को चीर कर नदियो में प्रेरित किया और अपहृत गौओ को प्रकट किया । जिन्होने मेघो में विद्यमान पाषाणो से विजली पैदा की, जो युद्ध में शत्रु नाशक हैं, वह इन्द्र हैं ॥ ३ ॥

हे राक्षसो ! दृश्यमान लोकों को स्थिरता देने वाले, असुरों को गुफा और कन्दराओं में डालने वाले, प्रत्यक्ष शत्रु विजयी और शत्रु धन को छीनने वाले वह इन्द्र ही हैं । ४ ॥

इन्द्र के वारे मे लोग विभिन्न प्रकार की शकायें करते हैं । वे शत्रु सैन्य के नाशक हैं । हे मनुष्यो उन पर विश्वास और श्रद्धा करो । वृत्रादि असुरो को उनके अलावा और कोई नही जीत सकता है ॥ ५ ।

जो इन्द्र निर्धन को धनवान और असहाय को सहायता युक्त करते हैं । जो अपने भक्तो को धन धान्य से सम्पन्न करते हैं । सोम को संस्कारित करने वाले के रक्षक, इन्द्र ही हैं ।६॥

जो याचक गणो को देने के लिये वहुत से ऊँट, अश्व, गौ, ग्राम, रथ हाथी आदि रखते हैं जिन्होने प्रकाश को सूर्य उदय किया है । वर्षा जल के प्रेरक इन्द्र ही हैं ॥ ७ ॥

द्युलोक हवि के लिए और पृथ्वी वृष्टि के लिए जिनका एक साथ आह्वान करते हैं। समान रथ में बैठे हुए सेनापति जिनका आह्वान करते हैं वे इन्द्र ही हैं ॥ ८ ॥

जिनकी बिना अभिलाषा के शत्रु पर विजय नही पा सकते अत मग्रम भूमि पर वे हमारी रक्षा निमित्त आवें। अचल पर्वतों को हटाने वाले और समस्त जीवों के पुण्य पाप के ज्ञाता इन्द्र ही हैं। ९ ॥

महापापियों और इन्द्र शक्ति द्वेषी को वे मार देते हैं। जो अपने कर्म मे इन्द्र को भूला नहीं सकते उनके अनुकूल रहते हैं। वृत्रादि राक्षसों के संहारक इन्द्र ही हैं ॥ १० ॥

यः शम्बर पर्वतेषु क्षियन्त चत्वारिंश्या शरद्यन्वविन्दत्।
ओजायमान यो अहिं जघान दानुं शयानं स
जनास इन्द्रः । ११ ॥

य शम्बर पर्यतरत् कसीभिर्योऽचारुकास्नापिबत् सुतस्य।
अन्तर्गिरौ यजमान बहुं जन यस्मिन्नामूर्छत स
जनास इन्द्र ॥ १२ ॥

य सप्तरश्मिर्वृषमस्तुविष्मानवासृजत सर्तवे सप्त सिन्धून्।
यो रौहिणमस्फुरद् वज्रबाहुर्द्यामारोहन्त स
जनास इन्द्रः ॥ १३ ॥

द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते।
य. सोमपा निचितो वज्रबाहुर्यो वज्रहस्त· स
जनास इन्द्र ॥ १४ ॥

य सुन्वन्तमवति य. पचन्त य शसन्त य शशमानमूती।
यस्य ब्रह्म वर्धन यस्य सोमो यस्येद राध
स जनास इन्द्र ॥ १५ ॥

जातो व्यख्यत् पित्रोरुपस्थे भुवो न वेद जनितुः परस्य ।
स्तविष्यमाणो नो यो अस्मद् व्रता देवानां स
जनास इन्द्रः ॥ १६ ॥

यः सोमकामो हर्यश्व सूरिर्यस्माद् रेजन्ते भुवनानि विश्वा ।
यो जघान शम्बरं यश्च शुष्णं य एकवीर
स जनास इन्द्रः ॥ १७ ॥

यः सुन्वते पचते दुध्र आ चिद् वाजं दर्दर्षि स किलासि सत्य. ।
वयं त इन्द्र विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम ॥ १८ ॥

शयन कर्ता वृत्रासुर के सहारक और चालीस वर्ष तक छिपकर पर्वतो मे घूमने वाले शम्बर के सहारक इन्द्र ही हैं ॥ ११ ॥

जिस इन्द्र की हिंसा निमित्त राक्षसो ने सोमयागकर्ता अध्वर्युओ को घेर लिया, बज्रवत शम्बर के हनन कर्ता और निष्पन्न सोम के ग्रहण करने वाले इन्द्र देव ही हैं ॥ १२ ॥

जो जल और अभीष्ट वर्षक हैं, जो सात रश्मियो वाले सूर्य में विद्यमान हैं, जिन्होने आकाश की ओर चढते हुए रौहणा सुर को वज्र से मारा और सात नदियो को उत्पन्न करने वाले इन्द्र ही है ॥ १३ ॥

जिसके सम्मुख आकाश, पृथ्वी नतमस्तक रहती है पर्वत कम्पायमान रहते हैं, जो सोमपायी बल युक्त हैं वे इन्द्र ही हैं ॥ १४ ॥

हवि देने वाले और सोम को संस्कारित करने वालो के रक्षक हैं उन्हे सोमगान और हमारे स्तोत्र वृद्धि को प्रदान करते हैं। हमारा हवि रत्न उनको पुष्ट प्रदान करता है हे मनुष्यो ! ये वह इन्द्र हैं ॥ १५ ॥

जो उत्पन्न होते ही आकाश पृथ्वी में व्याप्त हैं। जो पृथ्वी रूपी माता और आकाश रूप पिता को भी नहीं जानते और जो हमारे स्तोत्रों द्वारा ही देवों को सम्पन्न करते हैं वे इन्द्र हैं ॥ १६ ॥

ग मा'मलापी, शम्बर और शुष्ण के हननकर्त्ता समस्त ी का ह न वाले अ यधिक बल युक्त वे इन्द्र हैं ॥ १७ ॥

हे इन्द्र! तुम दुधप होने पर भी सोम सस्कार कर्ता को धन धान्य स सम्पन्न करने वाले हो। तुम हमेशा सत्य रूप हो। तुम स्नेह युक्त हो। अत हम पुत्रादि और गवादि धन की कामना करते हुए धन धान्य युक्त होवें ॥ १८ ॥

सूक्त (३५)

(ऋषि — नोधाः । देवता—इन्द्र । छन्द—त्रिष्टुप ।)
अस्मा इदु प्र तवसे तुराय प्रयो न हर्मि स्तोम माहिनाय ।
ऋचीषमायाध्रिगव ओहमिन्द्राय ब्रह्माणि राततमा ॥ १ ॥
अस्मा इदु प्रय इव प्र यसि भराम्याङ्गूष बाधे सुवृक्ति ।
इन्द्राय हृदा मनसा मनीषा प्रत्नाय पत्ये
धियो मर्जयन्त ॥ २ ॥
अस्मा इदु त्यमुपम स्वर्षां भराम्याङ्गूषमास्येन ।
म हिष्ठमच्छोक्तिभिर्मतीना सुवृक्तिभि सूरिं वावृधध्यै ॥ ३ ॥
अस्मा इदु स्तोम स हिनोमि रथ न तष्टेव तत्सिनाय ।
गिरश्च गिर्वाहसे सुवृक्तीन्द्राय विश्वमिन्व मेधिराय ॥ ४ ॥
अस्मा इदु सप्तिमिव श्रवस्येन्द्रायार्क जुह्वा समञ्जे ।
वीर दानौकस वन्दध्यै पुरां गूर्तश्रवस दर्माणम् ॥ ५ ॥
अस्मा इदु त्वष्टा तक्षद् वज्र स्वपस्तम स्वर्य रणाय ।
वृत्रस्य चिद् विदद् येन मर्म तुजन्नीशानस्तुजता
कियेधा ॥ ६ ॥

अस्येदु मातु सवनेष सद्यो मह पितं पपिवाञ्चावन्ना ।
मुपायद् विष्णु पचत सहीयान् विध्यद् वराह
तिरो अद्रिमस्ता ॥ ७ ॥
अस्मा इदु ग्नाश्चिद् देवपत्नीरिन्द्रायार्कमहिहत्य ऊवुः ।
परि द्यावापृथिवी जभ्र उर्वी नास्य ते
महिमान परिष्ट ॥ ८ ॥
अस्येदेव प्र रिरिचे महित्वं दिवस्पृथिव्या पर्यन्तरिक्षात् ।
स्वराडिन्द्रो दम आ विश्वगूर्त. स्वरिरमत्रो
ववक्षे रणाय । ९ ॥
अस्येदेव शवसा शुषन्त वि वृश्चद् वज्रेण वृत्रमिन्द्रः ।
गा न व्राणा अवनीरमुञ्चदभि श्रवो दावने सचेता ॥ १० ॥

मैं इन्द्र के निमित्त इस सर्वोतम स्तोत्र को बोलता हूँ। सोमपायी इन्द्र ऋचाओ के अनुरूप हैं, महान हैं बलवान हैं, और अगाध गति युक्त है। मैं प्राचीन ऋषियो के समान ही उन्हे हवि प्रदान करता हूँ ॥ १ ॥

मैं अन्नवत इन्द्र के लिए अपने स्तोत्रो को भेजता हूँ। ऋत्विज भी अपने हृदय से इन्द्र की स्तुति करें ॥ २ ॥

धनदायक इन्द्र को मैं सुसस्कृत स्तोत्र द्वारा प्रसन्न करता हूँ। मैं इन्द्र को उपमायोग उच्चारणो से प्रसन्न करता हूँ। ३ ॥

रथ शिल्पी द्वारा रथ का निर्माण करने के समान मे इन्द्र को स्तोत्रो का निर्माण करता हूँ। यह इन्द्र स्तुति योग्य और यज्ञ योग्य हैं मैं इन्द्र को स्तुति और हवि देता हूँ॥ ४ ॥

अन्नाभिलाषी मैं हविरत्न को यज्ञ मे देता हूँ। मैं रथ मे अश्व जोड़ने के समान हवियो को यज्ञ में जोड़ता हूँ। प्रचुर

धन नाशक, शत्रुजयी, यशवान इन्द्र को स्तुति के निमित्त युनाता हूँ ॥ ५ ॥

ब्रह्मा ने वज्रायुध को इन्द्र के लिए बनाया। इस आयुध से शत्रु मरन को पाते हैं। वृत्रासुर के मर्मस्थल को इसी द्वारा शत्रु ने भेदा था ॥ ६ ॥

यह इन्द्र सोमयोगात्मक तीनों सवनो मे सोम पान कर जाते हैं यह उनका असाधारण बल है। इन्द्र सोम के बल से ही शत्रुओं का नाश करते हैं और धनों को छीनते हैं। इन्द्र ने जल निकालने के निमित मेघों को चीर डाला था ॥ ७ ॥

वृत्रासुर को मारते समय देव पत्नियो ने इन्द्र के लिए अर्चन साधन स्तोत्र को बढ़ाया और इन्द्र ने विस्तृत आकाश पृथ्वी को अपने तेज से आच्छादित किया द्यावा और पृथ्वी भी इन्द्र की महिमा को कम करने मे समर्थ नहीं है ॥ ८ ॥

आकाश, पृथ्वी और अन्तरिक्ष मे इन्द्र की महिमा विस्तृत रूप से फैली हुई है। ये शत्रु नाशक और मेघो द्वारा वर्षा करने वाले हैं ॥ ९ ॥

इन्द्र के तेज ने सूखते हुये वृक्ष के समान वृत्रासुर को काट डाला और पणियो द्वारा अपहृत गौओ को मुक्त किया। वृत्रासुर द्वारा रोके गये मेघों और जलो को चीर कर निकाला और यजमान को उन्होने अन्न धन से सम्पन्न बनाया ॥ १० ॥

अस्येदु त्वेषसा रन्त सिंधवः परि यद् वज्रेण सीमयच्छत् ।
ईशानकृद् दाशुषे दशस्यन् तुर्वीतये गाधं तुर्वणिः कः ॥ ११ ॥

अस्मा इदु प्र भरा तू तुजानो वृत्राय वज्रमीशानः कियेधाः ।
गोन पर्व वि रदा तिरश्चेष्यन्नर्णांस्यपां चरध्यै ॥ १२ ॥

अस्मेदु प्र ब्रूहि पूर्व्याणि तुरस्य कर्माणि नव्य उक्थैः ।
युधे यदिष्णान आयुधान्यृघायमाणो
निरणाति शत्रून ॥ १३ ॥
अस्येदु भिया गिरयश्च दृढा द्यावा च भूमा जनुषस्तुजेते ।
उपो वेनस्य जोगुवान ओणिं सद्यो भुवद् वीर्या
य नोधाः ॥ १४ ॥
अस्मा इदु त्यदनु दाय्येषामेको यद् वव्ने भूरेरीशानः ।
प्रैतशं सूर्ये पस्पृधानं सौवश्व्ये सुष्विमावदिन्द्रः ॥ १५ ॥
एवा ते हारियोजना सुवृक्तीन्द्र ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन् ।
एषु विश्वपेशसं धियं धाः प्रातर्मक्षू
धियावसुर्जगम्यात् ॥ १६ ॥

इन्द्र के बल रूप तेज से चारो ओर नदियाँ बहती हैं। ये यजमान को धन देने वाले और प्रतिष्ठा युक्त करने वाले हैं ॥ ११ ॥

हे इन्द्र ! तुम शत्रु का सहार करो मांसाभिलाषी व्यक्ति कि पशु के टुकडे २ करने के समान तुम जल को पृथ्वी पर प्रवाहित करने के निमित्त मेघों को छिन्न भिन्न कर डालो ॥१२॥

हे स्तोता ! स्तुत्य इन्द्र का प्राचीन कर्मों द्वारा गान करो शत्रु बध के समय जब वे उस पर बार-बार वज्र प्रहार करें तो उनके गुणो का बखान करो ॥ १३ ॥

इन्द्र के आविर्भाव से पख कटने के भय से पर्वत स्थिर हो गए। आकाश, पृथ्वी भी इनसे कम्पायमान हैं। नोधा ऋषि इनकी स्तुति करते हुए बल युक्त हुए ॥ १४ ॥

हवियो के स्वामी इन्द्र द्वारा स्तुतियो की अभिलाषा की गई अत इन्हें सोम रस का पान कराया गया। इन्होने ही एतश की रक्षा की ॥ १५ ॥

हे इन्द्र ! गौतम गोत्रिय ऋषि ने तुम्हारी प्रशंसा इन मन्त्रों से क । तुम इन स्तुतियों वालों को धन-धान्य पूर्ण करो। जैसे आज इन्द्र हमारी रक्षा निमित्त पधारें वैसे ही कल हमारे यज्ञ में पधार ॥ १६ ॥

सूक्त (३६)

(ऋषि—भरद्वाज । देवता—इन्द्रः । छन्द - त्रिष्टुप्)

य एक इद्धव्यश्चर्षणीनामिन्द्र तं गीर्भिरभ्यर्च आभिः ।
य. पत्यते वृषभो वृष्ण्यावान्त्सत्य सत्वा पुरुमायः सहस्वान् ॥ १ ॥
तमु न पूर्वे पितरो नवग्वा· सप्त विप्रासो अभि वाजयन्तः ।
नक्षद्दाभ ततुरि पर्वतेष्ठामद्रोघवाचं मतिभिः शविष्ठम् ॥ २ ॥
तमीमह इन्द्रमस्य रायः पुरुवीरस्य नृवतः पुरुक्षो· ।
यो अस्कृधोयुरजर. स्वर्वान् तमा भर हरिवो मादयध्यै ॥ ३ ॥
तन्नो वि वोचो यदि ते पुरा चिज्जरितार आनशुः सुम्नमिन्द्र ।
कस्ते भाग कि वयो दुध्र खिद्वः पुरुहूत पुरूवसोऽसुरघ्न. ॥ ४ ॥
तं पृच्छन्ती वज्रहस्त रथेष्ठामिन्द्रं वेपी वक्वरी यस्य नू गी ।
तुविग्राभं तुविकूर्मि रभोदा गातुमिषे नक्षते तुम्रमच्छ ॥ ५ ॥
अया ह त्यं मायया वावृधानं मनोजुवा स्वतव पर्वतेन ।
अच्युता चिद् वीडिता स्वोजो रुजो वि दृढा धृषता विरप्शिन् ॥ ६ ॥
तं वो धिया नव्यस्या शविष्ठ प्रत्न प्रत्नवत् परितंसयध्यै ।
स नो वक्षदनिमान सुवह्मेन्द्रो विश्वान्यति दुर्गहाणि ॥ ७ ॥
आ जनाय द्रुह्वणे पार्थिवानि दिव्यानि दीपयोऽन्तरिक्षा ।

तथा वृषन् विश्वन् शोचिषा तान् ब्रह्मद्विषे शोचय क्ष मपश्च ॥ ८ ॥

भुवो जनस्य दिव्यस्य राजा पार्थिवस्य जगतस्त्वेदसदृक् ।
धिष्व वज्रं दक्षिण इन्द्र हस्ते विश्वा अजुय दयसे वि माया ॥ ९ ॥

आ संयतमिन्द्र णः स्वस्ति शत्रुतूर्याय बृहतीममृध्राम् ।
यया दासान्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन्त्सुतुका नाहुषाणि ॥ १० ॥

स नो नियुद्भिः पुरुहूत वेधो विश्ववाराभिरा गहि प्रयज्यो ।
न या अदेवो वरते न देव आभिर्याहि तूयमा मद्र्यद्रिक् ॥ ११ ॥

मैं इन्द्र को बुलाता हूँ। यह इन्द्र काम्य दाता, सत्य फल रूप बहु कर्मा, बलदाता और समस्त प्राणियों के ईश्वर रूप है। मैं इन इन्द्र का अपनी स्तुतियों से पूजन धर्म करता हूँ ॥ १ ॥

— हमारे जिन सात पूर्व पुरुषों ने हवि रूप अन्न से इन्द्र की अभिलाषा की और नव महीनों में सिद्धि प्राप्त की, वे इन्द्र की स्तुति करते हुए पितृ लोक को प्राप्त हुए। ये शत्रु नाशक और दुर्गम जयी है। ये अत्यधिक बली होने से किसी द्वारा भी उल्लंघनीय नहीं ॥ २ ॥

वीर पुत्रों और सेवकों से सम्पन्न धन हम इन्द्र से मांगते हैं। हे इन्द्र हमें अविनाशी सुख प्रदान करो ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! पूर्व काल ऋषियों के समान हमें सुख प्रदान करो। यज्ञ भाग का कौन सा सुख है ? तुम शत्रु दुःखदायी और बहुत से धनों के स्वामी हो। ४

जिस स्तोता की वाणी को इन्द्र सुनता है उसके लिये वह बहुत सुख प्रदान करता है। ऐसा यजमान शत्रु जयी होता है ॥ ५ ॥

हे इन्द्र! तुम मन के समान वेग वाले अपने वज्र और माया से वृत्रासुर और नगरों को नष्ट किया है। जिन्हें अन्य कोई नही कर सकता है ॥ ६ ॥

हे यजमानो! प्राचीन ऋषियों के समान ही मैं भी इन्द्र के नवीन स्तोत्रो द्वारा सजाता हूँ। सुन्दर वाहनो वाले वे इन्द्र हमारी मार्ग बाधाओं को दूर करे ॥ ७ ॥

हे इन्द्र! पृथ्वी, द्युलोक, और अन्तरिक्ष मे राक्षस आदि के स्थानो को ताप सम्पन्न करो और उन्हे भस्म कर दो। ब्राह्मण द्वेषी राक्षसों का नाश करो ॥ ८ ॥

हे इन्द्र! तुम स्वय राजा हो अत वज्र को हाथ में धारण कर राक्षसी माया का अन्त करो ॥ ९ ॥

हे वज्रिन! जिस मगल मयी महिमा से शत्रुओं को भी श्रेष्ठ बना देते हो उसे हमको प्रदान करो ॥ १० ॥

हे इन्द्र! तुम पूजा योग्य, सभी के निर्माण कर्त्ता और यजमानों द्वारा आह्वानीय हो। तुम्हारे घोडो को देव और मनुष्य कोई भी रोकने मे समर्थ नहीं। अत तुम शीघ्र ही यहाँ पधारो ॥ ११ ॥

सूक्त (३७)

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—इन्द्र । छन्द—त्रिष्टुप्)

यस्तिग्मशृङ्गो वृषभो न भीम एक. कृष्टीश्च्यावयति प्र विश्वा. ।

य पश्यतो अबाधवो गयस्य प्रतन्तासि
सुष्वितराय वेदः ॥ १ ॥
त्वं ह त्यदिन्द्र कुत्समावः शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये ।
दासं यच्छुष्णं कुयवं न्यस्मा अरन्धय
आर्जुनेयाय शिक्षन् ॥ २ ॥
त्वं धृष्णो धृषता वीतहव्यं प्रावो विश्वाभिरूतिभिः सुदासम् ।
प्र पौरुकुत्सिं त्रसदस्युमावः क्षेत्रसाता वृत्रहत्येषु पूरुम् ॥ ३ ॥
त्वं नृभिर्नृमणो देववीतौ भूरीणि वृत्रा हर्यश्व हंसि ।
त्वं नि दस्युं चुमुरिं धुनिं चास्वापयो
दभीतये सुहन्तु ॥ ४ ॥
तव च्यौत्नानि वज्रहस्त तानि नव यत् पुरो
नवतिं च सद्यः ।
निवेशने शततमाविवेषीरहं च वृत्रं नमुचिमुताहन् ॥ ५ ॥
सना ता त इन्द्र भोजनानि रातहव्याय दाशुषे सुदासे ।
वृष्णे ते हरी वृषणा युनज्मि व्यन्तु ब्रह्माणि
पुरुशाक वाजम् ॥ ६ ॥
मा ते अस्यां सहसावन् परिष्टावघाय भूम हरिवः परादै ।
त्रायस्व नोऽवृकेभिर्वरूथैस्तव प्रियासः सूरिषु स्याम ॥ ७ ॥
प्रियास इत ते मघवन्नभिष्टौ नरो मदेम शरणे सखायः ।
नि तुर्वशं नि याद्वं शिशीह्यतिथिग्वाय
शंस्यं करिष्यन् ॥ ८ ॥
सद्यश्चिन्नु ते मघवन्नभिष्टौ नरः शंसन्त्युक्थशास उक्था ।
ये ते हवेभिर्वि पणीँरदाशन्नस्मान् वृणीष्व
युज्याय तस्मै ॥ ९ ॥
एते स्तोमा नरां नृतम तुभ्यमस्मद्र्यञ्चो ददतो मघानि ।

तेषामिन्द्र वृत्रहत्ये शिवो भूः सखा च शूरोऽविता च नृणाम् ॥ १० ॥
नू इन्द्र शूर स्तवमान ऊती ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधस्व ।
उप नो वाजान् मिमीह्युप स्तीन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ११ ॥

हे इन्द्र ! टेढे सींग के वृष के समान शत्रुओं को भय उत्पन्न करने वाले हो। तुम हवि न देने वाले के अन्न को हवि दाता को प्रदान करने वाले हो ॥ १ ॥

हे इन्द्र तुमने कुत्स के निमित्त शुष्ण को दण्ड दिया और कुयव के धन पर अपना अधिकार किया तब तुमने कुत्स का उपकार करके उसके शरीर की रक्षा की ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुमने वीतहव्य और सुदास की रक्षा की। और तुमने पुरुकुत्स के पुत्र त्रसदस्यु और पुरु की भी युद्ध में रक्षा की । ३ ।

हे इन्द्र ! तुम युद्ध संग्राम मे मरुद्गण साथ अनेक दस्युओं का हनन करते हो। तुमने राजर्षि दभीति के निमित्त वज्र से चुमुरि और धुनि नाम के दस्युओं का संहार किया ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! तुम अपने तेज से प्रसिद्ध हो। तुमने बल द्वारा निन्यानवे राक्षस पुरों का नाश कर सोवें पुर में घुस गये। तुम वृत्र और नमुचि के भी हनन कर्त्ता हो ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! तुमने हविदाता सुदास के अनन्त धन प्रदान किया। तुम बहुकर्मी और अभीष्ट दाता हो। तुम्हे लाने के निमित्त हर्यश्वों को तुम्हारे रथ में जोडता हूँ। हमारी स्तुतियों को तुम ग्रहण करो ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! हमारी तुम रक्षा साधनो द्वारा रक्षा करो। हम स्तुति कर्त्ता और विद्वानो में तुम्हे प्रिय लगे ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! हम तुम्हारे मित्र रूप यजमान अपने घर मे प्रसन्न रहे। तुम अतिथि सुख को हमे दो। तुम तुर्वश तथा यादव राजाओ को नष्ट करो ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! तुम्हारे अभिगमन के वक्त ऋत्विज तुम्हारे लिए उक्थो को गाते हैं। अत तुम हमको फल प्रदान करो ॥ ९ ॥

हे नरोत्तम इन्द्र ! ये स्तोत्र तुम्हारे सामने आकर हमे धन दें। तुम हमारे पापो का नाश करो और हमे सुख प्रदान करो। १०॥

हे इन्द्र ! तुम स्तुतियो और हवियो से प्रसन्न होओ और वृद्धि को प्राप्त करो। हमको धन और पुत्र आदि धन प्रदान करो। हे अग्नि आदि देवगणो ! तुम भी हमारे कल्याणकारी बनो और हमें रक्षा प्रदान कर सुखी बनाओ ॥ ११ ॥

सूक्त (३८)

(ऋषि इरिम्बिठि, मधुच्छन्दा. । देवता—इन्द्र । छन्द गायत्री)

आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोम पिबा इमम् ।
एद बर्हि सदो मम ॥ १ ॥
आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना ।
उप ब्रह्माणि न· शृणु ॥ २ ॥
ब्रह्माणस्त्वा वय युजा सोमपामिन्द्र सोमिन. ।
सुतावन्तो हवामहे ॥ ३ ॥
इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किण ।

इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ ४ ॥
इन्द्र इद्धर्यो सचा संमिश्ल आ वचोयुजा ।
इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ ५ ॥
इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद् दिवि ।
वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! हमने सोम को पवित्र कर लिया है तुम यहाँ विस्तृत कुशाओं पर बैठकर सोम पान करो ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुम्हारे घोड़ों मन्त्र द्वारा रथ में जुड़कर तुम्हें अभीष्ट स्थान को ले जाते हैं। वे अश्व तुम्हें यहाँ लावें ताकि तुम हमारे आह्वान को श्रवण करो ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! हमारे पास सस्कारित सोम को तुम पूज्य ग्रहण करो । हम तुम सोमपायी को बुलाते हैं । ३ ॥

पूजामन्त्र से इन्द्र का पूजन किया जाता है । सोम गान भी इन्द्र की स्तुति रूप गान ही है । ४ ॥

इन्द्र वज्रधारी और उपासको की रक्षा करते हैं । इनके अश्व साथ रहते हैं और मन्त्रो द्वारा रथ में जुड़ते हैं ॥ ५ ॥

इन्द्र ने सूर्य को दीर्घ दर्शन निमित्त सूर्य मे आरूढ किया । सूर्य रूपी इन्द्र ने ही अपनी किरणो से मेघों को चीर डाला ॥ ६ ॥

सूक्त (७१)

(ऋषि—मधुच्छन्दाः; गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ । देवता—इन्द्र । छन्द—गायत्री)

इन्द्र वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः ।
अस्माकमस्तु केवलः ॥ १ ॥
व्यन्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना ।

इन्द्रो यदभिनद् वलम् ॥ २ ॥
उद् गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन् गुहा सती ।
अर्वाञ्चं नुनुदे वलम् ॥ ३ ॥
इन्द्रेण रोचना दिवो दृढानि दृंहितानि च ।
स्थिराणि न पराणुदे । ४ ।
अपामूर्मिर्मदन्निव स्तोम इन्द्राजिरायते ।
वि ते मदा अराजिषु ॥ ५ ॥

हम समस्त संसार के प्राणियों की ओर से इन्द्र को आहूत करते हैं ॥ १ ॥

इन्द्र ने सोम को ग्रहण कर हर्षित होने पर अन्तरिक्ष को वृष्टि जल से प्रवृद्ध किया। तुमने मेघों को चीरा । २ ।

अंगिराओं के निमित्त इन्द्र ने गुफा स्थित गौओं को प्रकट किया और निकाला। तुमने अपहरण करने वाले को नीचे गिराया ॥ ३ ॥

आकाश मे प्रदीप्त नक्षत्रों को इन्द्र ने स्थिर किया अतः अब उन्हे कोई हरा नही सकता है ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! वर्षा के जल से समुद्र आदि को मत्त बनाने के समान यह स्तोत्र तुम्हे मस्त बनाता है। हम तुम्हारी स्तुति करते हैं तुम सोम ग्रहण कर प्रसन्नचित्त होओ ॥ ५ ॥

सूक्त (४०)

(ऋषि मधुच्छन्दा । देवता—इन्द्रः, मरुतः । छन्द– गायत्री)

इन्द्रेण स हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा ।
मन्दू समानवर्चसा ॥ १ ॥
अनवद्यैरभिद्युभिर्मखः सहस्वदर्चति ।

गणैरिन्द्राय काम्यैः ॥ २ ॥
आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे ।
दधाना नाम यज्ञियम् ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! तुम अभयदायी मरुद्गणों के साथ रहते हो। तुम प्रसन्न चित्त होकर एक साथ रहते हो और तुम्हारा तेज एक सा ही है ॥ १ ॥

इन्द्राभिलाषी द्वारा यज्ञ सुशोभित होता है। इन्द्र अत्यन्त तेजस्वी और निष्पापी है ॥ २ ॥

हवि देने से वे गर्भत्व को प्राप्त होते हैं, और यज्ञिय नाम प्रदान करते हैं ॥ ३ ॥

सूक्त (४१)

(ऋषि—गोतमः । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः ।
जघान नवतीर्नव ॥ १ ॥
इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम् ।
तद् विदच्छर्यणावति ॥ २ ॥
अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् ।
इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥ ३ ॥

इन्द्र ने पीछे न हटने वाले वृत्रासुर के निन्यानवे नगरों को नष्ट किया ॥ १ ॥

पर्वतों में अपश्रित अश्व के शीर्ष की अभिलाषा से उन्होंने उसे शर्यणावत् में प्राप्त किया ॥ २ ॥

चन्द्रमा रूपी मण्डल में सूर्य इन्द्र ही एक राशी रूप स्थित है। अन्य सूर्य रश्मियां भी इनको भली-भांति जानती हैं ॥ ३ ।

सूक्त (४२)

(ऋषि—कुरुस्नुति । देवता—इन्द्र । छन्द—गायत्री)

वाचमष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृतस्पृशम् ।
इन्द्रात् परि तन्वं ममे ॥ १ ॥
अनु त्वा रोदसी उभे क्रक्षमाणमकृपेताम् ।
इन्द्र यद् दस्युहाभवः ॥ २ ॥
उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वी शिप्रे अवेपयः ।
सोममिन्द्र चमू सुतम् ॥ ३ ॥

मैंने इन्द्र से ही सत्यास्पर्शा और अष्ट पदावली और मन शक्ति वाणी को अपने शरीर मे धारण किया है ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! जब-जब हमने असुरो को नष्ट किया तो द्यावा पृथ्वी ने तुम पर कृपा की थी ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! पवित्र सोम को पान करो और अपने हनु को चलाते हुए बैठे होवो ॥ ३ ॥

सूक्त (४३)

(ऋषि—त्रिशोक । देवता—इन्द्र । छन्द—गायत्री)

भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः ।
वसु स्पार्हं तदा भर ॥ १ ॥
यद् वीडाविन्द्र यत् स्थिरे यत् पर्शाने पराभृतम् ।
वसु स्पार्हं तदा भर ॥ २ ॥
यस्य ते विश्वमानुषो भूरेर्दत्तस्य वेदति ।
वसु स्पार्हं तदा भर ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! हमारे शत्रुओ का नाश करो, सग्राम की बाधा को दूर कर हमे ग्रहणीय धन की प्राप्ति कराओ ॥ १ ॥

जो धन स्थिर व्यक्ति और पार्श्वों में भरा जाता है उसे हे इन्द्र ! हमको प्रदान करो ॥ २ ॥

उपासक जिस धन को प्राप्त करते है और जिसे तुम उनको देते हो उसे हमें भी दो ॥ ३ ॥

सूक्त (४४)

(ऋषि—इरिम्बिठि देवता—इन्द्र । छन्द-गायत्री)

प्र सम्राज चर्षणीनामिन्द्र स्तोतो नव्य गीर्भि ।
नर नृषाह महिष्ठम् ॥ १ ॥
यस्मिन्नुक्थानि रण्यन्ति विश्वानि च श्रवस्या ।
अपामवो न समुद्रे ॥ २ ॥
त सुष्टुत्या विवासे ज्येष्ठराज भरे कृत्नुम् ।
महो वाजिन सनिभ्य ॥ ३ ॥

प्राणियो मे सहनशील अग्रगण्य, नित्य नवीन और पूजा योग्य मनुष्यो के ईश को मैं स्तोत्रों द्वारा स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

बहने वाले जल जैसे समुद्र को प्राप्त होते हैं वैसे ही मेरे अन्न और उक्थ इन्द्र को प्राप्त होवें ॥ २ ॥

मैं इन्द्र को शत्रु नाशक के लिए स्तुति से प्रकट करता हूँ। वे यजमानो को धन-धान्य से सम्पन्न करते हैं। मैं उनको हवि द्वारा प्रसन्न करता हूँ ॥ ३ ॥

सूक्त (४५)

(ऋषि—शुन शेपो देवरात परनामा। देवता—इन्द्र । छन्द—गायत्री)

अयमु ते समतसि कपोतइव गर्भधिम् ।
वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥ १ ॥

स्तोत्र राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते ।
विभूतिरस्तु सूनृता ॥ २ ॥
ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन् वाजे शतक्रतो ।
समन्येषु ब्रवावहै । ३ ।

हे इन्द्र ! जैसे गर्भ धारण करने वाली कबूतरी के पास ही कबूतर जाता है वैसे ही हमारे तर्वना वाले वचन ही तुमको प्राप्त होवें ॥ १ ॥

हे धनेश्वर इन्द्र ! तुम्हारी हम प्रशसा करते है । तुम्हारा ऐश्वय सच्चा बना रहे ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुम शत कर्मी हो । तुम ऊँचे स्थान पर हमारी रक्षा निमित्त खड़े होओ । अन्य पुरुषो से द्वेष पाते हुए हम तुम्हारा चिन्तवन करते हैं ॥ ३ ॥

सूक्त (४६)

(ऋषि—इरिम्बिठिः । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

प्रणेतारं वस्यो अच्छा कर्तारं ज्योतिः समत्सु ।
सासह्वांसं युधामित्रान् ॥ १ ॥
स नः पप्रिः पारयाति स्वस्ति नावा पुरुहूतः ।
इन्द्रो विश्वा अति द्विषः ॥ २ ॥
स त्वं न इन्द्र वाजेभिर्दशस्या च गातुया च ।
अच्छा च नः सुम्नं नेषि ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! नेता, रणास्थल, में शत्रु जयी हो और यज्ञों में ज्योति रूप कर्त्ता हो ॥ १ ॥

हमारे कल्याण को ध्यान मे रखकर वे हमें सब शत्रुओं से आगे बढावें ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुम अपनी दानो उ गनियों से अन्नादि से युक्त सुख को हमे प्रदान करते हो ॥ ३ ॥

सूक्त (४७)

(ऋषि—पुवक्ष प्रभति । देवता—इन्द्र, सूर्यः । छन्द—गायत्री)

तमिन्द्र वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे ।
स वृषा वृषभो भुवत् ॥ १ ॥
इन्द्र स दामने कृत ओजिष्ठ स मदे हित ।
द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ॥ २ ॥
गिरा वज्रो न सम्भृत सबलो अनपच्युतः ।
ववक्ष ऋष्वो अस्तृतः । ३ ॥
इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्कभिरर्किणः ।
इन्द्र वाणी नूषत ॥ ४ ॥
इन्द्र इद्धर्योः सचा सम्मिश्ल आ वचोयुजा ।
इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ ५ ।
इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद् दिवि ।
वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥ ६ ॥
आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् ।
एद बर्हि सदो मम ॥ ७ ॥
आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना ।
उप ब्रह्माणि न श्रृणु ॥ ८ ॥
ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिन ।
सुतावन्तो हवामहे ॥ ९ ॥
युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्त परि तस्थुषः ।
रोचन्ते रोचना दिवि । १० ॥

हे इन्द्र ! तुम अभीष्ट दाता हो। वृत्र का नाश को हम उनको हृष्ट-पुष्ट करते है ।। १ ।।

इन्द्र प्रशसनीय, सौम्य और बलयुक्त है। वे यज्ञ मे आते है। उन्हे निग्रहार्थ रज्जू रूप मे किया है ॥ २ ॥

वे वज्र समान बल सम्पन्न और अविनाशी होते हुए उत्तम पुरुषों को धन प्रदान करते हैं ।। ३ ।।

वाणी तथा गायक इन्द्र की स्तुति करते हैं। पूजा मन्त्रो से भी इन्द्र का पूजन होता है ॥ ४ ।

इन्द्र के अश्व साथ रहते हैं वे मन्त्रो से रथ मे जुडते हैं और वज्रधारी इन्द्र हिरण्य युक्त है ।। ५ ।।

दीर्घ दर्शन के निमित्त इन्द्र ने सूर्य को आकाश में स्थित किया और वे ही सूर्य रूप होकर मेघो को चीरते है ।। ६ ॥

हे इन्द्र हमारे द्वारा सस्कारित सोम को विस्तृत कुशाओ पर विराजमान हो उदरस्थ करो ।। ७ ।।

हे इन्द्र ! तुम्हारे अश्व मन्त्रो द्वारा जुडते हैं। वे अभीष्ट स्थान पर तुम्हे ले जाते हैं अत. तुम यहाँ आकर स्तुतियो को श्रवण करो ।। ८ ।।

हे इन्द्र ! हमने सोम याग किया है और सोम को तुम आकर ग्रहण करो । ९ ।

तुम्हारा यह रथ समस्त प्राणियो को लाँघ जाता है। उसमे जुते हुए हर्यश्व आकाश मे प्रकाशित होते हैं ।। १० ॥

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे।
शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ ११ ॥
केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे ।
समुष[illegible] था ।। १[illegible] ॥

उदुत्य जातवेदस देव वह्नि केतव ।
दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ १३ ॥
अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभि ।
सूराय विश्वचक्षसे ॥ १४ ॥
अदृश्रन्नस्य केतवो वि रश्मयो जनां अनु ।
भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥ १५ ॥
तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योति ष्कृदसि सूय ।
विश्वमा भासि रोचन । १६ ॥
प्रत्यङ् देवानां विश प्रत्यङ्ङ् देषी मानुषी ।
प्रत्यङ् विश्व स्वर्दृशे ॥ १७ ॥
येना पावक चक्षसा भुरण्य त जना अस्तु ।
त्व वरुण पश्यसि ॥ १८ ॥
वि द्यामेषि रजस्पृथ्वहर्मिमानो अक्तुभि ।
पश्यञ्जन्मानि सूय ॥ १९ ॥
सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य ।
शोचिष्केश विचक्षणम् ॥ २० ॥
अयुक्त सप्त शुन्ध्युव सूरो रथस्य नप्त्य ।
ताभिर्याति स्वयुक्तिभि ॥ २१ ॥

इन्द्र के सारथि अश्वों को रथ मे जोडे । यह सवारी देने योग्य और रथ के दोनों ओर रहते हैं ॥ ११ ॥

हे मनुष्यों ! तुम सूर्य के दर्शन करो । ये ज्ञान को देने वाले और पदार्थों को प्रकाशित करने वाले हैं । इनकी रश्मियाँ पूर्णत निकल चुकी है ॥ १२ ॥

सूर्य रश्मियाँ उत्पन्न प्राणियों को जगाती है । ससार को सूय रूपी इन्द्र के दर्शन निमित्त उन्हें ऊपर चढाती है ॥ १३ ॥

जेसे रात के जाते ही चोर भाग जाते हैं वैसे ही सूर्य के आते ही नक्षत्र भाग जाते हैं ॥ १४ ॥

इनकी ज्ञान प्रदायिनी किरणें मनुष्य को अग्नि के समान दीप्त बाद में दिखलाई देती हैं ॥ १५ ॥

हे इन्द्र ! तुम भव नौका रूप में विद्यमान हो। तुम सर्व द्रष्टा, ज्ञाता और प्रकाशक रूप मे विद्यमान हो ॥ १६ ॥

हे इन्द्र ! तुम देवगणों और प्राणियो के लिए प्रकाशमान होते हो तुम सबके सन्मुख प्रकाशित होते हो ॥ १७ ॥

हे पाप नष्ट करने वाले इन्द्र ! पुराने ऋषि-मुनियो द्वारा स्वीकार किये गये रास्ते पर जो मनुष्य चलते है। उन्हे तुम हमेशा दया की दृष्टि से देखते हो ॥ १८ ॥

हे इन्द्र ! तुम सब प्राणियो पर दया करते हो और उन्हे देखते हुए रात और दिन को बनाते हुए तीनो लोको मे भ्रमण करते हो ॥ १९ ॥

हे इन्द्र देवता ! तुम्हारी चमकती हुई सात रश्मियाँ अश्व रूप से रथ में जुड़ती और तुम्हे खीचती है ॥ २० ॥

इन इन्द्र ने सात घोडो को अपने रथ मे जोड़ा है। वह अपने रथ मे उनके द्वारा चलते हैं ॥ २१ ॥

सूक्त (४८)

(ऋषि—उपरिबभ्रव सार्पराज्ञी वा । देवता—गौ । छन्द—गायत्री)

अभि त्वा वर्चसा गिरः सिञ्चन्तीराचरण्यवः ।
अभि वत्सं न धेनवः ॥ १ ॥
ता अर्षन्ति शुभ्रियः पृञ्चन्तीर्वर्चसा प्रियः ।
जातं जात्रीर्यथा [illegible] ॥ २

वज्रावबसाद्य कीतिर्भ्रियमार भादरन ।
मह्यमायुघृंत पय ॥ ३ ॥
आय गो पृश्निरक्रमादसदन्मातर पुर ।
पितर च प्रयन्त्स्व ॥ ४ ॥
अन्तश्चरति रोचना अस्य प्राणादपानत ।
व्यख्यन्महिष स्व. ॥ ५ ॥
त्रिंशद् धामा वि राजति वाक् पतङ्गो अशिश्रियत् ।
प्रति वस्तोरहद्य भि ॥ ६ ।

इधर उधर भ्रमण करने वाली गायें जैसे अपने बछड़ा के सामने जाती है वैसे ही वाणी तुम्हें मधुर शब्दो द्वारा सीचती है ॥ १ ॥

जैसे पैदा हुये बच्चे की माँ अपने बच्चे की रक्षा के लिय उसे हृदय से लगा लेती है वैसे ही सुन्दर सुन्दर प्रार्थनायें इन्द्र देवता को सजाती हैं ॥ २ ॥

यह वज्र को धारण करने वाले मुझे यश, उम्र, घी दूध दिलावें ॥ ३ ॥

यह सूर्यात्मक इन्द्र उदयाचल को चले गये। उन्होने प्राची मे दर्शन दिखलाकर सब प्राणी मात्र को अपनी रश्मियो से ढक दिया। फिर इन्होने वृष्टि पानी को सीचकर स्वर्ग और आकाश को बनाया वर्षा मे पानी की तरह अमृत को काढ़ने के कारण ये गायें कहलाती हैं ॥ ४ ॥

प्राणन के बाद व्यापार करने वाले मनुष्यो के शरीर में सूर्य की प्रभा प्राण के समान है। सूर्य देवता ही तीनो लोकों को प्रकाशमान करते हैं ॥ ५ ॥

सूर्य की किरणो से दिन- रात्रि के अंग रूप तीस

मुहूर्त प्राप्त होते हैं। और वेद की वाणी सूर्य के पक्षी के समान आश्रय पाती है ॥ ६ ॥

सूक्त (४९)

(ऋषि—नोधाः, मेध्यातिथि । देवता इन्द्र । छन्द—गायत्री प्रभृति)

यच्छक्रा वाचमारुहन्नन्तरिक्षं सिषासथ ।
स देवा अमदन् वृषा ॥ १ ॥
शक्रो वाचमधृष्टायोरुवाचो अघृष्णुहि ।
मंहिष्ठ आ मदर्दिवि ॥ २ ॥
शक्रो वाचमधृष्णुहि धामधर्मन् वि राजति ।
विमदन् बर्हिरासरन् ॥ ३ ॥
तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥ ४ ॥
द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम् ।
क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ ५ ॥
तत् त्वा यामि सुवीर्यं तद् ब्रह्म पूर्वचित्तये ।
येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ ॥ ६ ॥
येना समुद्रमसृजो महीरपस्तदिन्द्र वृष्णि ते शवः ।
सद्यः सो अस्य महिमा न सनशे यं क्षोणीरनुचक्रदे ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! जब प्रार्थना करने वाले मनुष्य बड़े सुन्दर ढंग से प्रार्थना करते है तब सब देवता आनन्दित होते हैं ॥ १ ॥

वे सज्जन पुरुष पर कड़े वचनों की वर्षा न करें हे महिष्ठ ! तुम आकाश को आनन्द युक्त करो ॥ २ ॥

हे शक्र ! कड़ी वाणी न बोलो। आप घासों पर आकर प्रसन्न हुये बैठते हैं ॥ ३ ॥

हे यजमानो ! यह इन्द्र मुसीबतो को नष्ट करने वाले, दर्शन देने वाले एवं चन्द्रमा से प्रसन्न रहने वाले हैं। तुम्हारे यज्ञ के सम्पन्न होने के लिये हम इन्द्र की प्रार्थना करते हैं जैसे सूर्य द्वारा प्रकाशित हुये दिन के निकलने और छिपने के समय गायें रंभाती हुई अपने बछड़ो की तरफ आती हैं, वैसे हम भी अपनी प्रार्थनाओं के बल पर इन्द्र के समीप जाते हैं ॥ ४ ॥

जैसे अकाल पड़ने पर सब प्राणी मात्र फल, फूल से युक्त पर्वत की कामना करते हैं वैसे ही हम दान देने वाले, स्तुत्य, पालन पोषण करने वाले और गायो से पूर्ण तेजवान धन की प्रार्थना करते हैं ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! मैं तुमसे बल से पूर्ण अन्न माँगता हूँ। जिस अनाज रूपी धन से भृगु की भूख मिट्टी और कराव के वेटे प्रस्कण्व की भी रक्षा हुई। वही धन हम भी माँगते है। ६ ॥

हे इन्द्र! जिस बल पर तुमने समुद्र को भरने के लिये जलो की रचना की वह बल सबको नीचा फल देता है। उनकी महिमा को दुश्मन कभी भी नही पा सकते ॥ ७ ।

सूक्त (५०)

(ऋषि – मेध्यातिथि.। देवता—इन्द्र । छन्द—प्रगाथ)

कन्नव्यो अतसीनां तुरो गृणीत मर्त्यः ।
नही न्वस्य महिमानमिन्द्रियं स्वर्गृणन्त आनशुः ॥ १ ॥
कदु स्तुवन्त ऋतयन्त देवत ऋषि को विप्र ओहते ।
कदा हव मघवन्निन्द्र सुन्वतः कदु स्तुवत आ गमः ॥ २ ॥

जो धर्म पर मरने वाले मनुष्यों का अवतार धारण करने वाले, प्रत्येक दिन नये और बलवान् हैं, उनकी कामना करो।

यदि तुम उनकी महिमा का पूरा व्याख्यान न कर सको तो थोड़ा गुणगान करने पर भी स्वर्ग की प्राप्ति होती है। १ ॥

हे इन्द्र ! कौन सा मुनि तुम्हारे बारे में वाद विवाद करता है, किस लिए तुम सोम वाले स्तोता के पुकारने पर आते हो और सन्य की प्रार्थना वाले देवता लोग किस लिए तुम्हारी प्रार्थना करते है ॥ २ ॥

सूक्त (५१)

(ऋषि—प्रस्कण्व, पुष्टिगु । देवता—इन्द्र. । छन्द – प्रगाथ)

अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे ।
यो जरितृभ्यो मघवा पुरुवसु सहस्रेणेव शिक्षति ॥ १ ॥
शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे ।
गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः ॥ २ ॥
प्र सु श्रुतं सुराधसमर्चा शक्रमभिष्टये ।
य सुन्वते स्तुवते काम्यं वसु सहस्रेणेव मंहते ॥ ३ ॥
शतानीका हेतयो अस्य दुष्टरा इन्द्रस्य समिषो महीः
गिरिर्न भुज्मा मघवत्सु पिन्वते यदीं सुता अमन्दिषुः ॥ ४ ॥

हे स्तुति करने वालो ! उन इन्द्र को प्राप्त करने मे मेरी मदद करो जो इन्द्र बहुत सा धन और अनाज को देने वाले हैं ॥ १ ॥

जो हवन की सामिग्री देने वाले पुरुष अपने दुश्मनो पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् उन्हे मारते है, उन यजमानो के पहाड से जल निकलने के समान धन बरसता है ॥ २ ॥

अभिषव स्तुति करने वाले को जो इन्द्र बहुत सा धन देते है, हे स्तुति करने वाले ! तू उन्ही इन्द्र का अच्छी प्रकार से पूजन कर । ३ ॥

इन्द्र के आयुधों से पापी पुरुष भव सागर से पार नहीं हो सकते क्योंकि वे आयुध और सभाओं के बराबर शक्ति रखते हैं। जैसे खाद्य पदार्थ देने वाला पहाड़ अपने पदार्थों के बल पर ही अपनों को धनवान समझता है। वैसे ही संस्कार किए सोम के पान करने से इन्द्र में अधिक बल आ जाता है। तो यजमान को इन्द्र धना बना देते हैं ॥ ४ ॥

सूक्त (५२)

(ऋषि—मेध्यातिथि देवता—इन्द्र । छन्द—बृहती)

वय घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते ॥ १ ॥
स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।
कदा सुतं तृषाण ओक आ गम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः ॥ २ ॥
कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद् वाजं दर्षि सहस्रिणम् ।
पिशङ्गरूपं मघवन् विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! जल के समान संस्कारित सोम हमारे पास हैं। हम तुम्हारी प्रार्थना कर रहे हैं ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! सोम निष्पन्न करने के बाद तुमको बुलावा देते हैं। तुम इस सोम का पान करने के लिए एक प्यासे बैल के समान यहाँ कब आवोगे ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुम बलवान् पुरुष को भी मार देते हो और धन पर काबू कर लेते हो। हम तुमसे गवादि से पूर्ण धन माँगते हैं ॥ ३ ॥

सूक्त (५३)

(ऋषि—मेध्यातिथि । देवता—इन्द्र । छन्द—बृहती)

क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद् वयो दधे ।

अथ यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्रयन्धसः ॥ १ ॥
दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे ।
नकिष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महांश्चरस्योजसा ॥ २ ॥
य उग्रः सन्ननिष्टृत स्थिरो रणाय संस्कृत ।
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत् ॥ ३ ॥

यह सुन्दर चिबुक वाले इन्द्र यज्ञ से आनन्दित होकर दुश्मनों के निवास स्थानों को उजाडते है । इसे कोई भी नहीं जानता कि सोम के संस्कारित होने पर यह कौन सा अन्न लेते हैं ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुम रथ मे सवार होकर एक प्रसन्न मय हिरण के समान अनेक जगहों पर जाते हो । तुम्हारे भ्रमण को कोई भी नही रोक सकता । तुम अपने बल के कारण ही बड़े हो । सोम का सस्कार होने पर तुम यहां आना । २ ॥

जो दुश्मनों द्वारा नही मारे जाते, वे लड़ाई के मैदान में डटे रहते हैं । जिस प्रकार कि पति अपनी पत्नी पत्नी के पास जाता हैं उसी प्रकार यदि इन्द्र हमारी पुकार को सुनें तो अवश्य आवेंगे । ३ ॥

सूक्त (५४)

(ऋषि—रेभः । देवता—इन्द्र । छन्द—जगती; बृहती)

विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरं सजूस्ततक्षुरिन्द्र
जजनुश्च राजसे ।
क्रत्वा वरिष्ठं वर आमुरिमुतोग्रमोजिष्ठं
तवसं तरस्विनम् । १ ॥
समीं रेभासो अस्वरन्निन्द्र सोमस्य पीतये ।
स्वर्पतिं यदीं वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः ॥ २ ॥

नेमि नमन्ति चक्षसा मेष विप्रा अभिस्वरा ।
सुदीतयो वो अद्रुहोऽपि कर्णे तरस्विन समृक्वभि ॥ ३ ॥

युद्ध मे लड़ने वाली समस्त सेनाओं ने बेहोश करने वाले इन्द्र देवता का वरण किया। वे देवता बहुत ही शक्ति शाली एव उग्र है ॥ १ ।

यह प्रार्थना करने वाले सोम का पान करने के लिए इन्द्र की विनती कर रहे हैं। यह सोम उनकी ओर अपनी ओर अपनी रक्षा के लिए जाता है ॥ २ ।

इन्द्र के वज्र पर एक नजर पड़ते ही स्तोता उसे नमस्कार करते हैं। हे स्तोताओ! ऋक्व नामक पूर्वजो सहित यह व्रज की आवाज तुम्हारे कानो को दु खी न करे ॥ ३ ॥

सूक्त (५५)

(ऋषि—रेभ । देवता—इन्द्र । छन्द-जगती, बृहती)

तमिन्द्र जोहवीमि मघवानमुग्रं सत्रा दधानमप्रतिष्कुत शवांसि ।
महिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो ववर्तद् राये नो विश्वा सुपथा कृणोतु वज्री ॥ १ ॥
या इन्द्र भुज आभर स्वर्वा असुरेभ्य ।
स्तोतारमिन्मघवन्नस्य वर्धय ये च त्वे वृक्तबर्हिषः ॥ २ ॥
यमिन्द्र दधिषे त्वमश्व गा भागमव्ययम् ।
यजमाने सुन्वति दक्षिणावति तस्मिन् त धेहि मा पणौ ॥ ३ ॥

धंसे वाले, वज्र को धारण करने वाले, लड़ाईयो मे आगे रहने वाला, शक्तिवान् स्तुत्य इन्द्र को मैं प्रणाम करता हूँ। वे इन्द्र हमारे धन के मार्गों को अच्छे बनावें ॥ १ ॥

हे इन्द्र! तुम स्वर्ग लोक के स्वामी हो। पिशाचो का तुम जिन बाँहो से सहार करते है उन्ही भुजाओ द्वारा यजमान

के स्तोता की बढोत्तरी करो और तुममे परायण ऋत्विज को भी बढाओ ॥ २ ॥

तुम जिस गाय, घोड़े आदि को पूर्ण करते हो, उसे सोमाभिषव वाले दक्षिणादाता यजमान को दो, पणि जैसे राक्षसो को न दो ॥ ३ ॥

सूक्त (५६)

(ऋषि--गोतमः । देवता--इन्द्रः । छन्द—पंक्तिः)

इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।
तमिन्महत्स्वाजिषूतेमर्भे हवामहे स वाजेषु
प्र नोऽविषत् ॥ १ ॥
असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि परादिदः ।
असि दभ्रस्य चिद् वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते
भूरि ते वसु ॥ २ ॥
यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धना ।
युक्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्माँ
इन्द्र वसौ दधः ॥ ३ ॥
मदेमदे हि नो ददिर्यूथा गवामृजुक्रतुः ।
स गृभाय पुरू शतोभयाहस्त्या वसु शिशीहि
राय आ भर ॥ ४ ॥
मादयस्व सुते सचा शवसे शूर राधसे ।
विद्मा हि त्वा पुरूवसुमुप कामान्त्ससृज्महेऽथा
नोऽविता भव ॥ ५ ॥
एते त इन्द्र जन्तवो विश्वं पुष्यन्ति वार्यम् ।
अन्तर्हि ख्यो जनानामर्यो वेदो अदाशुषां तेषां नो वेद
आ भर ॥ ६ ॥

वृत्रहव इन्द्र को शक्ति और खुशी के लिए आमन्त्रित किया जाता है। उन्हे हम बडी और छोटी सभी प्रकार की लडाईयो में बुलाते है। वे उस समय हममें समा जाय ॥ १ ॥

हे बहादुर ! तुम दुश्मनो के नाश कर्त्ता, पथियो को दण्ड देने वाले और हवन करने वालो को यश देने वाल हो ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! लडाई के मैदान में धनवान पुरुष को अपने धन का घमन्ड हो जाने पर तुम अपने हथियारो से किसे मारोगे। किसको धन को दोगे। उस समय तुम अपने धन का हमें देना ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! तुम्हारा यज्ञ सरलता से सम्पन्न होने वाला है। तुम खुशी होकर हमें गायें देते हो। तुम धन को तेज करके हमें दो ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! तुम बहादुर हो, चन्द्रमा के सस्कारित होने पर प्रसन्नता से भरी शक्ति को धारण करो। हम तुम्हे बहुत बलवान् जानते हैं। तुम हम प्रार्थना करने वाले पुरुषो की रक्षा करो ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! यह सभी जीव तुम्हारे वीर्य को पीते हैं। तुम यज्ञ न करने वाले और निन्दा करने वालो के धन को हमें दो ॥ ६ ॥

सूक्त (५७)

(ऋषि—मधुच्छन्दाः प्रभृति । देवता– इन्द्र । छन्द – बृहती)

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे ।
जुहूमसि द्यविद्यव ॥ १ ॥

उप न सवना गहि सोमस्य सोमपा पिब ।
गोदा इद् रेवतो मद ॥ २ ॥
अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् ।
मा नो अति ख्य आ गहि । ३ ।।
शुष्मिन्तम न ऊतये द्युम्निन पाहि जागृविम् ।
इन्द्र सोम शतक्रतो । ४ ।
इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु ।
इन्द्र तानि त आ वृणे । ५ ॥
अगन्निन्द्र श्रवो बृहद्द्युम्न दधिष्व दुष्टरम् ।
उत् ते शुष्म तिरामसि ॥ ६ ॥
अर्वावतो न आ गह्यथो शक्र परावत ।
उ लाको यस्ते अद्रिव इन्द्रेह तत आ यहि ॥ ७ ॥
इन्द्रो अङ्ग महद् भयमभी षदप चुच्यवत् ।
स हि स्थिरो विचर्षणि ॥ ८
इन्द्रश्च मृडयाति नो न न पश्चादघ नशत् ।
भद्र भवाति न पुर ॥ ९ ॥
इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभय करत् ।
जता शत्रून् विचर्षणि ॥ १० ।

जैसे दूध दुहने के लए हम दूधिया या दूध दुहने वाले पुरुष को बुलाते हैं वैसे ही हम प्रत्येक समय अपनी रक्षा हेतु इन्द्र को बुलाते है । १ ।

इन्द्र हमेशा प्रसन्न रहते हैं, वे धनी हैं, गायें देने वाले हैं। हे इन्द्र ! हमारे सोम सवन मे आ करके सोम का पान करो ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! हम आपकी अच्छी मतियो को जानने वाले

हैं। तुम हमारी निन्दा मत करवाओ। हमारे यहां आओ॥ ३॥

हे इन्द्र! तुम सैकड़ों काम करने वाले हो। तुम हमारी मदद के लिए इस शान्ति देने वाले सोम का पान करो॥ ४॥

हे इन्द्र! तुम बहुत से कार्यों को करने वाले हो। मैं तुम्हारी उन इन्द्रियों का वर्णन करता हूं जो देवता पितर आदि में है॥ ५॥

हे इन्द्र! तुम्हारा अपरिमित भोजन हमें प्राप्त हो। तुम हमारे अन्दर चमकते हुए धन को, जो कि दुश्मनों से पार कर सके हममें विराजमान करो। हम इस प्रकार इस सोम को बढ़ाते हुए तुम्हें शान्ति से सम्पन्न करते हैं॥ ६॥

हे इन्द्र! तुम पास या दूर जहां कहीं हो वहीं से हमारे पास आओ। हे वज्रधारी! अपने सुनज्जित लोक से भी सोम का पान करने के लिए इस पूजनीय घर में आओ॥ ७॥

हे ऋत्विज! वह इन्द्र बड़े से बड़े डर को भी दूर करने वाले हैं। उन इन्द्र को कोई मिटा नहीं सकता, व सर्व शक्तिमान हैं॥ ८॥

यदि इन्द्र हमारी मदद करें तो हमारे दुःखों को मिटाकर सुख को दें। व हमेशा आनन्द करने वाले हैं॥ ९॥

व इन्द्र! चारों दिशाओं में बैठे हुये हमारे वैरियों को दमने हैं। व सब दिशाओं और उपदिशाओं से प्राप्त होने वाले हमारे डर को दूर करें॥ १०॥

क ई वेद सुते सचा पिबन्त कद् वयो दधे
य पुरा बिभिनत्योजसा मन्दान शिप्रयन्धस॥ ११॥
दाना मृगो न वारण पुरुत्रा चरथ दधे।

नकिष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महांश्चरस्योजसा ॥ १२ ॥
य उग्रः सन्ननिष्टृत स्थिरो रणाय संस्कृतः ।
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत् ॥ १३ ॥
वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते ॥ १४ ॥
स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।
कदा सुतं तृषाण ओक आ गम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः ॥ १५ ॥
कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद्वाजं दर्षि सहस्रिणम् ।
पिशङ्गरूपं मघवन् विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ १६ ॥

इसे कोई भी नही जानता कि सोमाभिषव के अवसर पर यह कौन से अन्न से बलवीर इन्द्र दुश्मनो के निवास स्थानों को अपने बल पर उजाड़ते हैं ॥ ११ ।

तुम रथ मे चढ़कर एक प्रसन्न हिरण के समान अनेको जगहों पर जाते हो। सोमाभिषव काल मे तुम्हें रोकने की किसी मे ताकत नहीं है। तुम अपनी शक्ति के ऊपर ही घूमते हो। इसलिए सोम के सस्कारित होने के बाद यहाँ आओ ॥ १२ ॥

जो दुश्मनो से शक्तिवान होने पर भी रण से पीठ मोड़ते हैं जैसे अपनी पत्नी के पास उसका पति जाता है वैसे ही ये इन्द्र प्रार्थना करने वालों के आह्वान करने पर आते हैं ॥ १३ ॥

हे इन्द्र ! पवित्र होने के कारण पानी के समान पतले हुए सोम से पूर्ण हम ऋत्विज तुम्हारा स्तोत्र करते हुए बठे हैं ॥ १४ ॥

हे इन्द्र ! सोम के निष्पन्न हो जाने पर गाने वाले तुम्हे बुलाते हैं। तुम एक बैल की तरह प्यासे होकर कब हमारे सोम का पान करने के लिये आओगे । १५ ॥

जैसे तीनों लोकों के स्वामी इन्द्र के लिये कण्वो की प्रार्थनाय होती है जैसे धाता अर्यमा आदि सूर्य अपने प्रेमी इन्द्र मे प्राप्त होते हैं, जसे भृगुवशी मुनि इन्द्र को शरण लेते हैं, वैसे ही सुमति वाले पुरुष इन्द्र का ही ध्यान घरते हैं ॥ २ ॥

इन्द्र का यज्ञ का भाग विजयी हुये धन के बराबर होता है। जो इन्द्र हर्यश्व वाले हैं, उन पर पाप का कोई भी कलक नही लग सकता। सोम देने वाले यजमान मे यह इन्द्र शक्ति देते हैं ॥ ३ ॥

हे स्तुति करने वालो ! सुन्दर, तीक्ष्ण और रूप प्रदान करने वाले यज्ञ के मन्त्रो को बोलो। जो पुरुष इन्द्र की सेवा करता है वह पहिले बन्धनो से मुक्ति होकर कल्याण को प्राप्त होता है ॥ ४ ।

सूक्त (६०)

(ऋषि सुतकक्षः सुकक्षो वा; मधुच्छन्दाः। देवता–इन्द्रः। छन्द –गायत्री)

एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः ।
एवा ते राध्यं मनः ॥ १ ॥
एवा रातिस्तुवीमघ विश्वेभिर्धायि धातृभिः ।
अधा चिदिन्द्र मे सचा ॥ २ ॥
मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भुवो वाजानां पते ।
मत्स्वा सुतस्य गोमतः ॥ ३ ॥
एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही ।
पक्वा शाखा न दाशुषे ॥ ४ ॥
एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते ।
सद्यश्चित् सन्ति दाशुषे ॥ ५ ॥

एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थं च शंस्या ।
इन्द्राय सोमपीतये ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! तुम बहादुर हो ! अडिग हो एवं बुरे कार्य करने वाले वीरो को रोकने वाले हो ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुम्हारे पास बहुत धन है । तुम मेरे मददगार बनो । अपनी पालन करने वाली शक्ति से हम यजमानो में दान देने वाली शक्ति को प्रदान करो ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुम अन्नों के स्वामी हो । तुम ब्रह्मा के समान नींद में मत सोओ । तुम सुमति प्रदान करने वाले संस्कारित सोम के द्वारा अत्यन्त आनन्द में भरो ॥ ३ ॥

इन्द्र की पृथ्वी गायो को देने वाली है । वह हवन सामिग्री देने वाले को पकी हुई डाली के समान हो ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! हवि प्रदान करने वाले यजमान की रक्षा के लिए तुम्हारी मदद शीघ्र ही मिल जाती है ॥ ५ ।

इन्द्र को सोम का पान कराते समय स्तोत्र, उक्थ और शंस्वा नाम की प्रार्थनायें सुनायी देती है ॥ ६ ॥

सूक्त (६१)

(ऋषि—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ । देवता—इन्द्रः । छन्द—उष्णिक्)

तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृत्सु सासहिम् ।
उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥ १ ॥
येन ज्योतींष्यायवे मनवे च विवेदिथ ।
मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥ २ ॥
तदद्या चित्त उक्थिनोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ।
वृषपत्नीरपो जया दिवेदिवे ॥ ३ ॥

तम्वभि प्र गायत पुरुहूत पुरुष्टुतम् ।
इन्द्र गीर्भिस्तविषमा विवासत ॥ ४ ॥
यस्य द्विबर्हसो बृहत् सहो दाधार रोदसी ।
गिरीरज्राँ अप स्वर्वृषत्वना ॥ ५ ॥
स राजसि पुरुष्टुत एको वृत्राणि जिघ्नसे ।
इन्द्र जैत्रा श्रवस्या च यन्तवे ॥ ६ ॥

हे वोचन ! वैरियो को हराने वाले, घोडो को श्री मे युक्त और अभीष्टा के वषक आपकी खुशी की हम पूजा करते हैं ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुमने आयु और मनु को जिस सोम के प्रभाव से ओजवान बनाया था उसी सोम से ताकतवान हुए तुम इस यजमान को कुशा के शासन पर बैठाओ ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! ये उक्थ गायक आपके यश के बखान रहे हैं। तुम हर अवसर पर धर्म के कर्म करते हुए विजयी हो ॥ - ॥

वे इन्द्र अनेको के द्वारा स्तुत है। अनकों ने उनको बुलाया। आप उन्ही इन्द्र की महिमा के गुण गाओ। तथा स्तुति रूप वाणी से उन्हे उपस्थित करो ॥ ४ ॥

द्यावा पृथ्वी जिन इन्द्र के धर्म आश्रय के कारण उनके महान, ताकत, नीर, पहाड तथा वज्र को धारण करते हैं उसी इन्द्र का अर्चन करो ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! तुम ओजस्वी तथा यशशाली हो। अकेले ही अपने दुश्मनो का सहार करते हो ॥ ६ ॥

सूक्त (६७)

(ऋषि—सोमरि प्रभृति । दवता—इन्द्र । छन्द—बृहती, उष्णिक्)

वयमु त्वामपूर्व्य स्थूर न कच्चिद् भरन्तोऽवस्यव ।

वाजे चित्र हवामहे ॥ १ ॥
उप त्वा कर्मन्ननये स नो यवोग्रश्चकाम यो घृषत् ।
त्वामिद्धयवितार ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम ।। २ ॥
यो न इदमिद पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु व स्तुप ।
सखाय इन्द्रमतये ॥ ३ ॥
हर्यश्वं सत्पति चर्षणीसह स हि ष्मा यो अमन्दत् ।
आ तु नः स वयति गव्यमश्व्य स्तोतृभ्यो मघवा तम् ॥ ४ ॥
इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत ।
धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥ ५ ॥
त्वमिन्द्राभिभूरसि त्व सूर्यमरोचयः ।
विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि ॥ ६ ॥
विभ्राज ज्योतिषा स्वरगच्छो रोचन दिवः ।
देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे ॥ ७ ॥
तम्वभि प्र गायत पुरुहूत पुरुष्टतम् ।
इन्द्र गीर्भिस्तविषमा विवासत ।। ८ ॥
यस्य द्विबर्हसो बृहत् सहो दाधार रोदसी ।
गिरींरज्राँ अप स्ववृंषत्वना ॥ ९ ॥
स राजसि पुरुष्टुतँ एको वृत्राणि जिघ्नसे ।
इन्द्र जैत्रा श्रवस्या च यन्तवे ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! तुम सदैव नये रहते हो । अन्न पाने के मौके पर हम रक्षा की कामना वाले हो तुमको आहूत करते हैं । विजय हमारी ही कराओ शत्रुओं की तरफ मत जाओ । जैसे गुण वाले राजा को जीत की इच्छा से बुलाते हैं उसी तरह हम आपको बुलाते हैं ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! कार्य के मौके पर आप ही हमारे सहारे हो तुम दुश्मनो को वश मे करने वाले, रोजाना युवा और पराक्रमी

हो, तुम हमारे मददगार के रूप में मिल, आप हमारी रक्षा करो और हमारे मित्र हो ॥ २ ॥

हे यजमानो ! आपकी रक्षा को मैं इन्द्र के लिए बुलाता हूँ। हमारे लिए इन्द्र पहले ही गो आदि का धन समर्पण कर चुके हैं मैं उस इन्द्र की वन्दना करता हूँ जो हमको अभीष्ट फल दिलाने में समर्थ रखते हैं ॥ ३ ॥

जो मनुष्यों की रक्षा करने वाले इन्द्र हैं, जिनके हरे रंग के घोड़े हैं जो सर्वत्र नियामक हैं जो प्रार्थनाओं से खुश हो जाते हैं। मैं उन्हीं इन्द्र की वन्दना करता हूँ वह इन्द्र घोड़े और गौयें हम भक्तों को दें ॥ ४ ॥

हे स्तुति करने वालो ! तुम धर्मात्मा तथा पंडित हो। उस बड़े इन्द्र की साम गान से वन्दना करो ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! तुमने ही दिवाकर को आकाश में चमकाया तुम वैरियों के तिरस्कारक विश्वे देवा और बड़े विश्वकर्मा हो ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! तुम्हारे मित्र भाव को देवगण प्राप्त हैं। स्वर्ग में चमकते हुए सूर्य तुम्हारे ही द्वारा प्रकाशवान हैं। ७ ॥

हे प्रार्थीयो ! वह इन्द्र बहुतों के द्वारा आहूत किये जा चुके हैं। बहुतों ने उनकी प्रार्थनायें की हैं। तुम भी उन्हीं पराक्रमी इन्द्र को प्रार्थनाओं से अलंकृत करो ॥ ८ ॥

जिस इन्द्र के यश से आकाश, भूमि, जल, पर्वत, वच्च ताकत और स्वर्ग को पहुनते हैं उसी इन्द्र की सेवा करो ॥ ९ ॥

हे इन्द्र ! तुम विजयात्मक महिमा के लिये ओजस्वी हुए हो। आप अकेले ही दुश्मनों को मार डालते हैं ॥ १० ॥

सूक्त (६३)

(ऋषि—भुवन साधनो वा; भरद्वाज:, गोतम:, (रर्वत:) । देवता—इन्द्र । छन्द—त्रिष्टुप्, उष्णिक्)

इमा न क भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवा ।
यज्ञं च न नम्तन्वं च प्रजा च दित्यैरिन्द्र.
मह चीक्लृपाति ॥ १ ॥
आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्माक भूत्वविता तनूनाम् ।
हत्वाय देवा असुरान् यदायन् देवा
देवत्वमभिरक्षमाणाः ॥ २ ॥
प्रत्यञ्चमर्कमनयञ्छचीभिरादित् स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् ।
अया वाज देवहितं सनेम मदेम शतहिमा सुवीरा. ॥ ३ ॥
य एक यद् विदयते वसु मर्ताय दाशुषे ।
ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥ ४ ॥
कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत् ।
कदा न· शुश्रवद् गिर इन्द्रो अङ्ग ॥ ५ ॥
यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आविवासति ।
उग्रं तत् पत्यते शव इन्द्रो अग । ६ ॥
य इन्द्र सोमपातमो मदः शविष्ठ चेतति ।
येना हसि न्यत्रिणं तमीमहे । ७ ॥
येना दशग्वमध्रिगु वेपयन्त स्वणरम् ।
येना समुद्रमाविथा तमीमहे । ८ ॥
येन सिन्धु महीरपो रथांइव प्रचोदय: ।
पन्थामृतस्य यातवे तमीमहे ॥ ९ ॥

यह इन्द्र ! सारे विश्व के देवताओ, की और भुवन सुख

की कोशिश करते हैं। वे इन्द्र आदित्यों के साथ हमारे यज्ञ शरीर और प्रजा का साहस देवें । १ ॥

जिन देवों ने दशरथ की रक्षा के लिए राक्षसों को नष्ट किया था, हमारे शरीर को रक्षा करने वाले वे आदित्यवान और मरुत्वान हों । २ ॥

जो अपने पर रूप मे सूर्य को प्रत्यक्ष कर सके जिन्होंने भूमि को अन्नवती किया और उन्ही मे हम देवगणों का भलाई का अन्न पात्र तथा योद्धाओं से सम्पन्न रहते हुए सौ वर्ष जीवें ॥ ३ ॥

यजमान को हविदाता इन्द्र धन समर्पित करते हैं । इस कार्य मे उनके मुकाबले कोई भी नही है ॥ ४ ॥

अपने पद प्रहार द्वारा वे इन्द्र अयज्ञिक को ताडना कब देंगे और हम भक्तों की प्रार्थनाओं को सुनेंगे कब ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! जो सोमवान व्यक्ति अनेक प्रार्थनाओं से आपकी प्रार्थना करता है, वह व्यक्ति प्रचण्ड बल और वैभव युक्त होता है ॥ ६ ॥

सोम के जो इन्द्र अत्यन्त पान करने वाले हैं और जिनमे बलप्रद उत्साह पैदा है, ऐसे हे इन्द्र ! इस ताकत से तुम राक्षसो का संहार करते हैं उसी बल को हमें दो ॥ ७ ॥

दशग्व अध्रिगु और स्वर्णर को तुमने जिस बल से रक्षा की थी और अपनी ताकत तुमने समुद्र को बलशाली बनाया वही बल मुझको दो ॥ ८ ॥

जिस बल से तुमने रथ के समान, पानी का बहाव समुद्र की ओर किया इस बल को हमें दो क्यों कि अन्नत रास्ते से आगे जाने के लिए हमें यह बल दो ॥ ९ ॥

सूक्त (६४)

(ऋषि—नृमेध, विश्वमनाः । देवता—इन्द्र । छन्द – उष्णिक्)

एन्द्र नो गधि प्रियः सत्राजिदगोह्यः ।
गिरिर्न विश्वतस्पृथु पतिर्दिवः ॥ १ ॥
अभि हि सत्य सोमपा उभे बभूथ रोदसी ।
इन्द्रासि सुन्वतो वृधः पतिर्दिवः ॥ २ ॥
त्वं हि शश्वतीनामिन्द्र दर्ता पुरामसि ।
हन्ता दस्योर्मनोर्वृधः पतिर्दिवः ॥ ३ ॥
एदु मध्वो मदिन्तरं सिञ्च वाध्वर्यो अन्धसः ।
एवा हि वीर स्तवते सदावृधः ॥ ४ ॥
इन्द्र स्थातर्हरीणां नकिष्टे पूर्व्यस्तुतिम् ।
उदानंश शवसा न भन्दना ॥ ५ ॥
तं वो वाजानां पतिमहूमहि श्रवस्यवः ॥
अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम् ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! सत्य के द्वारा ही तुम अजेयी हो, तुम हमारे प्यारे हो, तुम्हे कोई आच्छादित नही कर सकता। तुम स्वर्ग के स्वामी और स्वर्ग के समान विस्तार युक्त हो। हम तेरे प्रिय बन ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुम प्रत्यक्ष से सोम पीने वाले हो और तुम आकाश-भूमि में व्याप्त हो। तुम स्वर्ग के अधीश्वर और सोमाभिषव वाले की उन्नति करते हो ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुम राक्षसो को मारने वाले तथा उनके दृढ पुरो का सहार करने वाले हो ॥ ३ ॥

हे अध्वर्युओ ! शहद से भी अधिक मीठा इन्द्र को अन्न

से शांत करो। यजमान ! यह इन्द्र सदैव वृद्धि करते हैं और मार्गों को पूरा कराते हैं ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! तुम अपने हयश्वो पर चढते हो तुम्हारे पुराने कार्य वाले बलो और कल्याणो की समानता कोई नही कर सकता आपकी प्राथनाओ को कोई नही पा सकता ॥ ५ ॥

हम अन्न की इच्छा करते हैं। अन्न के स्वामी इन्द्र को हम त्यागते हैं। नियमानुसार किये जाने वाले यज्ञानुष्ठानो से यह इन्द्र लगातार उन्नति प्राप्त करते हैं ॥ ६ ॥

सूक्त (६५)

(ऋषि विश्वमना । देवता—इन्द्रः । छन्द—उष्णिक्)

एतो न्विन्द्रं स्तवाम सखायः स्तोम्यं नरम् ।
कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत् ॥ १ ॥
अगोरुधाय गविषे द्युक्षाय दस्म्यं वचः ।
घृतात् स्वादीयो मधुनश्च वोचत ॥ २ ॥
यस्यामितानि वीर्या न राधः पर्येतवे ।
ज्योतिर्न विश्वमभ्यस्ति दक्षिणा ॥ ३ ॥

यह इन्द्र वन्दनीय हैं हम सब मित्र रूप उनके ऐश्वर्य सिधारने के लिए प्रार्थना करते हैं ये इन्द्र सारे फलो के कर्मों के फल के देने वाले हैं। १ ॥

हे प्रार्थीवा ! इन तेजस्वी दर्शनीय वाणो रूप अन्न वाले, गायो के रोकने में असमर्थ ऐसे इन्द्र को शहद घी से भी मधुर वाणा बोलो ॥ २ ॥

कार्य साधन के लिये यह इन्द्र बेशुमार बल वाले हैं। दीप्तमती दक्षिणा के रूप हैं ॥ ३ ॥

सूक्त (६६)

(ऋषि—विश्वमनाः । देवता— इन्द्रः । छन्द—उष्णिक्)

स्तुहीन्द्र व्यश्ववदनूर्मि वाजिनं यमम् ।
अर्यो गय महमान वि दाशुषे ॥ १ ॥
एवा नूनमुप स्तुहि वैयश्व दशम नवम् ।
सुविद्वांस चर्कृत्य चरणीनाम ॥ २ ॥
वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम् ।
अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव ॥ ३ ॥

हे ऋत्विज ! अपने घोडो को खोल कर जो इन्द्र निस्वार्थ भावना से यज्ञ मे बैठे है उन्हो प्रशंसा क पास इन्द्र को यजमान के कुशलता के लिए प्रार्थना करो । १ ।

वे इन्द्र सदा नवीन, मेधावी है, तुम उसी इन्द्र की पूजा करो । २ ॥

हे वज्रिन ! जैसे आदित्य अपने परिषदो के ज्ञाता है वैसे ही तुम सताप करने वाले सशक्त राक्षसो के जानने वाले हो ॥ ३ ॥

सूक्त ६७ (छटवां अनुवाक)

(ऋषि—परुच्छेप, गृत्समद. देवता –इन्द्रः मरुत, अग्निः । छन्द—अष्टि जगती)

वनोति हि सुन्वन् क्षयं परीणसः सुन्वानो हि ष्मा
यजत्यव द्विषो देवानामव द्विष ।
सुन्वान इत् सिषासति सहस्रा वाज्यवृतः ।
सुन्वानायेन्द्रो ददात्याभुवं रयिं ददात्याभुवम् । १ ॥
मो षु वो अस्मदभि तानि पौंस्या सना भूवन् द्युम्नानि
मोत जारिषुरस्मत् पुरोत जारिषुः ।

यद् वशिचत्र युगेयुगे नव्य घोषादमर्त्यम् ।
अस्मासु तन्मरुतो यच्च दुष्टर दिधृता यच्च दुष्टरम् ॥ २ ॥
अग्नि होतार मन्ये दास्वन्त वसु सूनु सहसो
जातवेदस विप्र न जातवेदसम् ।
य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।
घृतस्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शोचिषाजुह्वानस्य सर्पिष ॥ ३ ॥
यज्ञै समिश्ला पृषतीभिर्ऋष्टिभिर्यामञ्छुभासो
अञ्जिषु प्रिया उत ।
आसद्या बर्हिर्भरतस्य सूनव पोत्रादा सोम
पिबता दिवो नर ॥ ४ ॥
आ वक्षि देवाँ इह विप्र यक्षि चोशन् होतर्नि
षदा योनिषु त्रिषु ।
प्रति वीहि प्रस्थित सोम्य मधु पिबाग्नीध्रात् तव
भागस्य तृष्णुहि ॥ ५ ॥
एष स्य ते तन्वो नृम्णवर्धन सह ओज प्रदिवि बाह्वोर्हित ।
तुभ्य सुतो मघवन् तुभ्यमाभृतस्त्वमस्य ब्राह्मणादा
तृपत् पिब ॥ ६ ॥
यमु पूर्वमहुवे तमिद हुवे सेदु हव्यो ददिर्यो नाम पत्यते ।
अध्वर्युभि प्रस्थित सोम्य मधु पोत्रात् सोम द्रविणोद
पिब ऋतुभि ॥ ७ ॥

सोमाभिषवकर्ता अपने वैरियो का और देवगणो के दुश्मनो का पराभव करता है वह अनेको घरो को पाता हुआ, अनेक प्रकार के पदार्थो की कामना रखता है। वह अपने दुश्मनो से घिरा हुआ न रहकर अन्नवान होता है उसको इन्द्र सारे पदार्थों को दे देते हैं ॥ १ ॥

हे मरुतो ! हमारे प्रत्यक्ष आकर तुम्हारा सताप देने

वाला तेज हमे वृद्ध न करें। तुम्हारा जो नवीन, चयनयोग्य अविनाशी बल है, उस दुश्मनो को बुरे पाप बल को हममे दो ॥ २ ॥

अग्नि देव, धन के देने वाले, देव होता पंदार्थो के ज्ञाता और ताकत के अनुज हो। यज्ञ को यह अपनी ज्वालाओ से सजाते हैं और आहूत घी के बूंदो से तथा उसकी दीप्ति की कामना करते हैं ॥ ३ ॥

हे मरुतो ! स्वर्ग के तुम नेता हो। परिणाम देते समय आप अपनी पृष्टी नाम की घोडीयो द्वारा यज्ञ मे भेजते हो। तुम इन कुशाओ पर बैठकर सोम को पीओ ॥ ४ ॥

हे अग्ने ! इस यज्ञ मे लाकर के देवगणों की पूजा करो। तुम तीनो स्थानो मे विद्यमान होकर होता के समान तुम हवि को पाओ और मीठे सोम को पीकर सतुष्ट होओ ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! तुम्हारे शरीर को पुष्ट करने वाला है औरो को पराभूत करने के लिए आपकी भुजाओ मे ताकत तथा तेज आपके अन्दर विद्यमान हैं। हे इन्द्र ! यह सोम अभिपुत होकर तुम्हारे लिए वर्तन मे रखा है तुम आह्वान के तृप्त होने पर इसको पियो ॥ ६ ॥

मैं पूर्ववत् इन्द्र को बुलाता हूँ। यह हवि वभव देने वाली है। हे इन्द्र ! अध्वर्युओ द्वारा प्रदत्त इस सोमरूपी शहद को पिओ ॥ ७ ॥

सूक्त (६८)

(ऋषि—मधुच्छन्दा । देवता – इन्द्र । छन्द—गायत्री)

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे ।
जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ १ ।

उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब ।
गोदा इद्र् रेवतो मदः ॥ २ ॥
अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् ।
मा नो अति ख्य आ गहि ॥ ३ ॥
परेहि विग्रमस्तृतमिन्द्रं पृच्छा विपश्चितम् ।
यस्ते सखिभ्य आ वरम् ॥ ४ ॥
उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत ।
दधाना इन्द्र इद् दुवः ॥ ५ ॥
उत नः सुभगाँ अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः ।
स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि ॥ ६ ॥
एमाशुमाशवे भर यज्ञश्रियं नृमादनम् ।
पतयन्मन्दयत्सखम् ॥ ७ ॥
अस्य पीत्वा शतक्रतो घनो वृत्राणामभवः ।
प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥ ८ ॥
तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो ।
धनानामिन्द्र सातये ॥ ९ ॥
यो रायोवनिर्महान्त्सुपारः सुन्वतः सखा ।
तस्मा इन्द्राय गायत ॥ १० ॥
आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत ।
सखाय स्तोमवाहसः ॥ ११ ॥
पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्याणाम् ।
इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥ १२ ॥

दूध दुहने के लिए आसानी से जिस प्रकार उस ग्वालिया को बुलाते हैं उसी तरह रक्षा के समय पर हम बार-बार इन्द्र को ही बुलाते हैं ॥ १ ॥

इन्द्र वैभव वाले हैं, वे सदैव खुश रहते हैं और गायों

को समर्पित करते हैं। हे इन्द्र! इन सोम सवनो मे आकर सोम का सेवन करो ॥ २ ॥

हे इन्द्र! आपके पास जो मेधावी हैं, उसे हम जानते हैं, तुम हमारी निंदा न होने दो एव हमारे यहाँ पर पधारो ॥ ३ ॥

हे स्तोताओ! इन्द्र की कोई भो निन्दा नही कर सकता वे इन्द्र सखाओ का कुशल ही करते हैं, उन्ही के यहाँ पर ठहरो ॥ ४ ॥

हे स्तोताओ! तुम इन्द्र के ही शरणार्थी बनो जिससे हमारी कोई भी निन्दा न करे ॥ ५ ॥

हम इतने यश वाले हो जिसको हमारे दुश्मन भी बखान करें। इन्द्र हमको सुखशाली करें तथा हम अच्छी खेती से युक्त होवें ॥ ६ ॥

हे स्तोता! मनुष्यो को यह इन्द्र मुदित करते मित्रो को खुश करते तथा यज्ञ की शोभा रूप हो, इन इन्द्र का घोड़े के ऊपर भरण कर ॥ ७ ॥

हे इन्द्र तुम सोम का सेवन करके वृत्र के लिये धन के तुल्य हो तथा लडाई के मैदान मे हमारे घोडो की रक्षा करो ॥ ८ ॥

हे इन्द्र! तुम सैकडो कार्यों के करने वाले हो। हम हवियो के द्वारा तुम्हे बुलाते हैं। हे इन्द्र! धन प्राप्ति के लिए हम तुमको यज्ञ मे बुलाते है ॥ ९ ॥

इन्द्र धन के पालन करने वाले एव रक्षा करते है। सोम का चूडाकडनादि करने वाले के लिए वे मित्र तुल्य है। हे स्तोताओ! तुम यहाँ पर आओ तथा इन्द्र के गुणो को गाईए ॥ १०॥११ ॥

हे स्तोताओ ! वरण करने वालो के वे भगवान अत्यन्त बड़े हैं, उन्हे सोमाभिषव होने पर बुलाओ ॥ १२ ॥

सूक्त (६९)

(ऋषि—मधुच्छन्दः । देवता—इन्द्रः, मरुत । छन्द—गायत्री)

स घा नो योग आ भुवत् स राये स पुरध्याम् ।
गमद् वाजेभिरा स नः ॥ १ ॥
यस्य संस्थे न वृण्वते हरी समत्सु शत्रवः ।
तस्मा इन्द्राय गायत ॥ २ ॥
सुतपाव्ने सुता इमे शुचयो यन्ति वीतये ।
सोमासो दध्याशिरः ॥ ३ ॥
त्वं सुतस्य पीतये सद्यो वृद्धो अजायथाः ।
इन्द्र ज्यैष्ठ्याय सुक्रतो ॥ ४ ॥
आ त्वा विशन्त्वाशवः सोमास इन्द्र गिर्वणः ।
शं ते सन्तु प्रचेतसे ॥ ५ ॥
त्वां स्तोमा अवीवृधन् त्वामुक्था शतक्रतो ।
त्वां वर्धन्तु नो गिरः ॥ ६ ॥
अक्षितोतिः सनेदिमं वाजमिन्द्रः सहस्रिणम् ।
यस्मिन् विश्वानि पौंस्या ॥ ७ ॥
मा नो मर्ता अभि द्रुहन् तनूनामिन्द्र गिर्वणः ।
ईशानो यवया वधम् ॥ ८ ॥
युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः ।
रोचन्ते रोचना दिवि ॥ ९ ॥
युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे ।
शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ १० ॥

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे ।
समुषद्भिरजायथाः ॥ ११ ॥
आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे ।
दधाना नाम यज्ञियम् ॥ १२ ॥

इन्द्र सोच के समय पर हमारे प्रत्यक्ष आविर्भूत होते हैं, अन्नो सहित वे हमारे समीप आवें ॥ १ ॥

जिन इन्द्र के युद्ध रत होने पर इनके अांसुओ को दुश्मन नही घेरते, हे स्तोताओ ! उस इन्द्र को प्रार्थना करो ॥ २ ॥

सोम दही महित पवित्र है । यह सोम पायी इन्द्र के भक्षण के लिए आगे हो रहे हैं ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! तुम सोम का सेवन करने के लिये ही जल्दी से अपने शरीर की वृद्धि करो ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! स्फूर्ति देने वाला सोम तुम्हारे शरीर मे प्रवेश करें और वे तुम्हे सन्तुष्ट करें ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! तुम्हे स्तोम, उकथ्य और हमारी वाणी तुल्य प्रार्थनाओं को तेज करें ॥ ६ ॥

जिस इन्द्र के अन्द्र हजारो पराक्रम विद्यमान हैं, वे इन्द्र यज्ञ कार्य की रक्षा करते हैं हम उन्हीं की पूजा करें ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! दुश्मन हमारी देह के प्रति द्वेष भावना न रखें । तुम हमारे हत्या रूप कारण को दूर करो, तुम हमारे अधिपति हो ॥ ८ ॥

इन्द्र के रथ मे हर्यश्व जोडे जाते हैं वे आकाश मे चमकते हुए स्थावर जगम जीवो को लाँघते हैं ॥ ९ ॥

साथी इन्द्र के रथ में हर्यश्वो को जोडते हैं । वह रथ के दोनो तरफ रहने वाले घोडे की इच्छा करने योग्य, चढने के योग्य है और सबो को वशी भूत करते हैं ॥ १० ॥

हे मृत-धर्मा मनुष्यो ! अज्ञानी को ज्ञान देन और अधेरे मे छिपे रूप रहित पदाथ को रूप देन वाले सूय रूप इन्द्र अपनी रश्मियो सहित निकल आये हैं उनके दशन करो ॥ ११ ॥

हवि देने वाले यह मरुदगण गभत्व को प्राप्त हुए और यज्ञिय नाम से प्रसिद्ध हैं ॥ १२ ॥

सूक्त (७०)

(ऋषि--मधुच्छन्दा । देवता—इन्द्र मरुत । छन्द—गायत्री)

वीडु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभि ।
अविन्द उस्रिया अनु ॥ १ ॥
देवयन्तो यथा मतिमच्छा विदद्वसु गिर ।
महामनूषत श्रुतम् ॥ २ ॥
इन्द्रेण स हि दृक्षसे सजग्मानो अबिभ्युषा ।
मन्दू समानवर्चसा ॥ ३ ॥
अनवद्यैरभिद्युभिर्मख सहस्वदर्चति ।
गणैरिन्द्रस्य काम्य ॥ ४ ॥
अत परिज्मन्ना गहि दिवो वा रोचनादधि ।
समस्मिन्नृञ्जते गिर ॥ ५ ॥
इतो वा सातिमीमहे दिवो वा पार्थिवादधि ।
इन्द्र महो वा रजस ॥ ६ ॥
इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्कभिरर्किण ।
इन्द्र वाणीरनूषत ॥ ७ ॥
इन्द्र इद्धर्यो सचा संमिश्ल आ वचोयुजा ।
इन्द्रो वज्री हिरण्यय ॥ ८ ॥
इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद् दिवि ।

वि गोभिरद्रिमैरयत ॥ ९ ॥
इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च ।
उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! तुमने उषा के बाद ही अपनी ज्योतिमयता शक्तियों से गफा मे छिपे हुए धन को पाया ॥ १ ॥

हे स्तुतिओ ! तुम देवगणो की कामना वाले प्रार्थी, अपनी बुद्धि को इन्द्र के समक्ष प्रस्तुत करें। इस प्रकार उस यशशाली इन्द्र की प्रार्थना करो ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुम सदैव ही निर्भीक मरुतो के साथ देखे जाते हो। तुम रोजाना ही मरुतो के साथ खुश रहते हो। तुम्हारा और उनका एक सा ही ओज है ॥ ३ ॥

इन्द्र की इच्छा करने वालो से यज्ञ सजता है ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! तुम प्रकाशवान स्वर्ग से आओ। हमारी वाणी रूप प्रार्थनायें इन्द्र मे ही जुड़ती हैं ॥ ५ ॥

भूमि पर इन्द्र हो, महर्लोक मे हो या स्वर्ग मे हो, वे जहाँ कहीं पर भी हो वहाँ से उन्हे बुलाना चाहते है ॥ ६ ॥

पुजारी यजमान इन्द्र की पूजा करते हैं, प्रार्थी इन्द्र के ही महिमा का बखान करते है ॥ ७ ॥

इन्द्र के संग रहने वाले घोड़े मन्त्रो द्वारा रथ मे जोड़े जाते हैं। वे पुरुषो के शुभचिंतक इन्द्र वज्र को धारण करते हैं ॥ ८ ॥

इन्द्र ने ही सूर्य को बहुत दर्शन के लिए स्वर्ग मे चढा दिया तथा इन्द्र ने ही सूर्य रूप से अपने रश्मियो द्वारा बादल का भेदन किया ॥ ९ ॥

हे इन्द्र ! उत्तम धन प्राप्त कराने वाले लड़ाइयो मे अपने असीमित रक्षा साधनो से रक्षा करो ॥ १० ॥

इन्द्र वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे ।
युज वृत्रेषु वज्रिणम् ॥ ११ ॥
स नो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपा वृधि ।
अस्मभ्यमप्रतिष्कुत ॥ १२ ॥
तुञ्जे तुञ्जे य उत्तरे स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिणः ।
न विन्धे अस्य सुष्टुतिम् ॥ १३ ॥
वृषा यूथेव वसगः कृष्टीरियर्त्योजसा ।
ईशानो अप्रतिष्कुत ॥ १४ ॥
य एकश्चर्षणीना वसूनामिरज्यति ।
इन्द्र पञ्च क्षितीनाम् । १५ ॥
इन्द्र वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः ।
अस्माकमस्तु केवल ॥ १६ ॥
एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम् ।
वर्षिष्ठमूतये भर ॥ १७ ॥
नि येन मुष्टिहत्यया नि वृत्रा रुणधामहै ।
त्वोतासो न्यर्वता ॥ १८ ।
इन्द्र त्वोतास आ वयं वज्रं घना ददीमहि ।
जयेम सं युधि स्पृधः ॥ १९ ॥
वयं शूरेभिरस्तृभिरिन्द्र त्वया युजा वयम् ।
सासह्याम पृतन्यतः ॥ २० ॥

वृत्र पर यह इन्द्र वज्र फेंकते है। कम या बहुत धन पाने पर भी हम इन्द्र को ही बुलाते हैं ॥ ११ ॥

हे इन्द्र ! तुम सत्य धन के प्रदाता हो तथा फलो के वर्षक तुम हटाने से तुम किसी से भी हटते नही। इस चरु का सेवन करो और हमारी उन्नति करो ॥ १२ ॥

मैं धन पाने के हर समय पर तथा समान मिलने पर धन से तृप्त करता हुआ इन्द्र के जिन स्तोत्रों पर ध्यान मे लाता हूँ, उसमे इन्द्र का छोर नही पाता ॥ १३ ॥

हे इन्द्र ! तुम खेतीयो को युक्त करने वाली ताकत से फलों को भेजते हो। तुम मनुष्य हो तुम्हारा कोई भी तिरस्कार नही कर सकता ॥ १४ ॥

इन्द्र पंच क्षितियों के ईश्वर तथा पुरुषो और वैभवों के भी ईश्वर है ॥ १५ ॥

इन्द्र का ध्यान यदि अन्य जीवों की ओर हो तो भी हमें उनको बुलाते हैं, वे इन्द्र हमारे ही हैं ॥ १६ ॥

हे इन्द्र ! तुम सदासह, प्रीतिकर धन रूप और फल वर्षक शील को हमारो रक्षा करने के लिये धारण करो ॥ १७ ॥

आपके द्वारा रक्षित हम घोडो से युक्त हों तथा वृत्राकार दुश्मनों को नष्ट कर डालें ॥ १८ ॥

हे इन्द्र ! तुम्हारे द्वारा रक्षित हम तुम्हारे वज्र को विकराल रूप से ग्रहण करते हुए शत्रुओ पर विजय प्राप्त करें ॥ १९ ॥

हे इन्द्र ! हमारे योद्धाहिंसित न हों, उनके सहित हम सेना को लेकर प्रहार करने वालो को वशीभूत करे ॥ २० ।

सूक्त (७१)

(ऋषि—मधुच्छन्दा । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

महाँ इन्द्रः परश्च नु महित्वमस्तु वज्रिणे ।
द्यौर्न प्रथिना शवः ॥ १ ॥
समोहे वा य आशत नरस्तोकस्य सनितौ ।
विप्रासो वा धियायवः ॥ २ ॥

प्र कुक्षि सोमपातम मन्द्रइव पिन्वते ।
उर्वीरापो न काकुद ॥ ३ ॥
एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही ।
पक्वा शाखा न दाशुषे ॥ ४ ॥
एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते ।
सद्यश्चित् सन्ति दाशुषे ॥ ५ ॥
एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थ च शस्या ।
इन्द्राय सोमपीतये ॥ ६ ॥
इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभि सोमपर्वभि ।
महाँ अभिष्टिरोजसा ॥ ७ ॥
एमेन सृजता सुते मन्दिमिन्द्राय मन्दिने ।
चक्रि विश्वानि चक्रये ॥ ८ ॥
मत्स्वा सुशिप्र मन्दिभि स्तोमेभिर्विश्वचर्षणे ।
सचैषु सवनेष्वा ॥ ९ ॥
असृग्रमिन्द्र ते गिर प्रति त्वामुदहासत् ।
अजोषा वृषभ पतिम् ॥ १० ॥

इन्द्र सर्वोत्तम तथा बडे हैं वे यशशाली हैं उनका पराक्रम आकाश के समान बडा हो ॥ १ ॥

वृद्धि की इच्छा वाले विद्वान पुरुष पुत्र के साथ भी युद्ध में लग जाते हैं ॥ २ ॥

सोमपायी इन्द्र की कुक्षि ककुदयुक्त वृषभ तथा प्रवाह जल वाले समुद्र की तरह उन्नति को प्राप्त करता है ॥ ३ ॥

इन्द्र को धेनु देने वाली भूमि हवि देने वाले को पके की पकी हुई शाखा की तरह है ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! हविदाता यजमान के लिए तुम्हारे रक्षा साधन सदैव प्राप्त है ॥ ५ ॥

सोम का सेवन करते समय स्तोम, उक्थ और शस्या इन्द्र के निमित्त घूमने के योग्य है ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! यहाँ पर पधारो । सब सोम सवनो में सोम से हर्षित तेज से तुम्हारा उद्देश्य महान है ॥ ७ ॥

हे इन्द्र अध्वर्युओ ! तुम उक्थो और चमसो मे सोम को मनाइये । अभिषव होने पर इन्द्र को प्रसन्न करता है । हे इन्द्र ! चिबुक वाले तथा तुम सुन्दर हो । युश करने वाले सोत्रों के द्वारा तुम सोम सवनो मे प्रसन्न होओ ॥ ९ ॥

जिस प्रकार दुश्चरित वाली औरत सेचन युक्त अपने पति को छोड देती है उसी प्रकार ही क्या ये प्रार्थनायें तुमको त्यागती हैं ॥ १० ॥

स चोदय चित्रमर्वाग् राध इन्द्र वरेण्यम् ।
असदित् ते विभु प्रभु ॥ ११ ॥
अस्मान्त्सु तत्र चोदयेन्द्र राये रभस्वतः ।
तुविद्युम्न यशस्वतः ॥ १२ ॥
स गोमदिन्द्र वाजवदस्मे पृथु श्रवो बृहत् ।
विश्वायुर्धेह्यक्षितम् ॥ १३ ॥
अस्मे धेहि श्रवो बृहद् द्युम्नं सहस्रसातमम् ।
इन्द्र ता रथिनीरिषः ॥ १४ ॥
वसोरिन्द्रं वसुपतिं गीर्भिर्गृणन्त ऋग्मियम् ।
होम गन्तारमूतये ॥ १५ ॥
सुतेसुते न्योकसे बृहद् बृहत एदरिः ।
इन्द्राय शूषमर्चति ॥ १६ ॥

हे इन्द्र ! वरणीय, सुन्दर, सन्तावान धनों को हमारी तरफ भेजो ॥ ११ ॥

हे इन्द्र ! तुम हमको बड़ा तथा यशशाली होने का वैभव दो ॥ १२ ।

हे इन्द्र ! गायों से सम्पन्न तथा हवियों युक्त हमें यश- शाली करो और आयुष्मान करो ॥ १३ ।

हे इन्द्र ! हजारों के द्वारा सेवनोय श्रव तथा रथिनो इषाओं को हमें दो ॥ १४ ॥

हम धनेश्वर, वसूपति, ऋग्मिय और यज्ञ मे आने वाले रक्षा साधनो को हम पूजा करते हैं ॥ १५ ॥

बड़े इन्द्र के लिए 'न्योकम' में प्रत्येक वार सोम अभिपुत होने पर वैरी भी इन्द्र के बल की महिमा का बखान करते हैं ॥ १६ ॥

सूक्त ७२ (सातवां अनुवाक)

(ऋषि—परुच्छेपः । देवता—इन्द्रः । छन्द—अष्टि)

विश्वेषु हि त्वा सवनेषु तुञ्जते समानमेकं वृषमण्यवः-
पृथक् स्वः सनिष्यव. पृथक् ।
तं त्वां नावं न पर्षणिं शूषस्य धुरि धीमहि ।
इन्द्रं न यज्ञैश्चितयन्त आयव स्तोमेभिरिन्द्रमायवः ॥ १ ॥
वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता गव्यस्य-
निःसृज. सक्षन्त इन्द्र निःसृजः ।
यद् गव्यन्ता द्वा जना स्वर्यन्ता समूहसि ।
आविष्करिक्रद् वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम् ॥ २ ॥
उतो नो अस्या उषसो जुषेत ह्यर्कस्य बोधि हविषो-
हवीमभिः स्वर्षाता हवीमभिः

यदिन्द्र इन्तवे मघो वृषा वज्रिन्चकेतसि ।
आ मे अस्य वेधसो नवीयसो मन्म श्रूधि नवीयस ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! फल वृष्टि को प्रार्थना करने अनेको स्वर्ग की चाह करने वाले मारे सवनो में तुमसे प्रार्थना करते है। पनडुब्बी की तरह अन्न क पूले मे सम्पन्न तुमको हम शक्तिशाली नियुक्त करते हैं। हम इन्द्र की इच्छा से स्तोत्र को प्रवोन्नित करते हैं ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! अन्न कामना वाले दम्पति गोदान के समय पर तुम्हारा ध्यान एकाग्रत करते है और फल देने की प्रार्थना करते हैं। तुम स्वग जाने वाले उन दो प्राणियो को जानते हो। तुम्हारा वर्धनशील एव सहायक वज्र प्रकट होता है ॥ २ ।

स्वग की प्राप्ति के लिए सूय का ज्ञापन करने वाली उषा की हवि को देते हैं। हे व रुणशील इन्द्र ! तुम लडाईयो की कामना वाले वरियो को नष्ट करने के लिए वज्र को धारण करते हो। तुम मेरे द्वारा नये रचे हुए स्तोत्र को सुनो ॥ ३ ।

सूक्त (७३)

(ऋषि—वसिष्ठ, वसुक। देवता—इन्द्र । छन्द—जगती, त्रिष्टुप)

तुभ्येदिमा सवना शर विश्वा तुभ्य ब्रह्माणि वधना कृणोमि ।
त्व नृभिर्हव्यो विश्वधासि ॥ १ ॥
नू चिन्नु ते मन्यमानस्य दस्मोदश्नुवन्ति महिमानमुग्र ।
न वीर्यं मिन्द्र ते न राध ॥ २ ॥
प्र वो महे महिवृधे भरध्व प्रचेतसे प्र सुमति कृणुध्वम् ।
विश पूर्वी प्र चरा चर्षणिप्रा ॥ ३ ॥

यथा वज्रं हिरण्यमिदथा रथं हरी यमस्य वहतो वि सूरिभिः ।
आ तिष्ठति मघवा सनश्रुत इन्द्रो वाजस्य दीर्घश्रवसस्पतिः ॥ ४ ॥
सो चिन्नु वृष्टिर्यूथ्या स्वा सचाँ इन्द्रःश्मश्रूणि हरिताभि प्रुष्णुते ।
अव वेति सुक्षयं सुते मधूदिद्धूनोति वातो यथा वनम् ॥ ५ ॥
यो वाचा विवाचो मृध्रवाचः पुरू सहस्राशिवा जघान ।
तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसि पितेव यस्तविषीं वावृधे शवः ॥ ६ ॥

हे वीर इन्द्र ! यज्ञ के सारे सवन तेरे निमित्त हैं । आपके निमित्त इन मन्त्रों की वृद्धि करता हूँ । तुम सबो के पालक एवं आहुति के योग्य हो ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुम उग्र हो । तुम्हारे सुन्दर दर्शन, वीर्य, धन एवं यश को और कोई भी नही पा सकता है ॥ २ ॥

हे यजन करने वालो ! तुम हवियो द्वारा इन्द्र को सम्पन्न करो । तुम पुरुष को अच्छे फलों से सम्पन्न करो । मेरे हवि तुल्य अन्न का भक्षण करो ॥ ३ ॥

रथ में लगी हुई लगामों से इन्द्र के सोने के वज्र को खीचते है, तब अत्यन्त ओजस्वी इन्द्र रथ पर चढते हैं ॥४॥

सोम के अभिषुत इन्द्र हमारे यज्ञ कक्ष में आते हैं । हवा जैसे जगल को कंपित करता है उसी प्रकार शहद को कम्पायमान करते है । उसी सोमरस अपनी मूँछों को ऊँचे रखने वाले इन्द्र की ही यह वृष्टि है ॥ ५ ॥

कुकर्म करनेवालों का इन्द्र संहार करें और बिगडी हुई

आवाज को मीठी आवाज कर देते हैं। परम शक्तिशाली ऐसे परमब्रह्म परमात्मा की हम वन्दना करते हैं ॥ ६ ॥

सूक्त (७४)

(ऋषि—शुन शेप । देवता—इन्द्र । छन्द—पंक्ति)

यच्चिद्धि सत्य सोमपा अनाशस्ताइव स्मसि ।
आ तू न इन्द्र शसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु तुवीमघ ॥ १ ॥
शिप्रिन् वाजान पते शचीवस्तव दसना ।
आ तू न इन्द्र शसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु
सहस्रेषु तुवीमघ ॥ २ ॥
नि ष्वापया मिथूदृशा सस्तामबुध्यमाने ।
आ तू न इन्द्र शसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु
सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ३ ॥
ससन्तु त्या अरातयो बोधन्तु शूर रातय ।
आ तू न इन्द्र शसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु
सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ४ ॥
समिन्द्र गर्दभं मृण नुवन्त पापयामुया ।
आ तू न इन्द्र शसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु
सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ५ ॥
पतानि कुण्डृणाच्या दर वातो वनादधि ।
आ तू न इन्द्र शसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु
सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ६ ॥
सर्वपरिक्रोश जहि जम्भया कृकदाश्वम् ।
आ तू न इन्द्र शसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु
सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ७ ॥

हे सोमपायी इन्द्र ! हमारे पास हजारो गाय अश्व एव

भियो को अमृतत्व को कहो गयो कि तुमने अमृतत्व की प्राप्ति
ली है ॥ १ ॥

हे धनपति इन्द्र ! तुम दुश्मनो को दर्शित करने मे समर्थ
, तुम उसी सामर्थ्य से हमारी हजारो गायो को अश्व एव
भूयाँ प्रदान करो ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! मुझे दोनो आखो से सुला दो और हमारी
हों गायो के लिये निन्दा दीजिये ॥ ३ ॥

हे बहुदनेन्द्र ! तुम हमारो हजारो गायो अश्वादि मे धन
दो । हम जगते रहें तथा शत्रु सोते रहें । ४ ॥

हे इन्द्र ! तुम पापो राक्षस का वध कर डालो और
ारी गायो मे नाशक शक्ति प्रदान करो ॥ ५ ॥

ग्वा कुण्डृणाची के द्वारा जगल से दूर जाता है । हे इन्द्र
ा आदि जावो मे कुण्डृणाची के लिये बढ़िये । ६ ।

हे इन्द्र ! कृकदाश्व का सवार करो परिक्रोशका दुर
ो। हमारी गायो, घोडे, आदि जीवो मे से परिक्रोश को दूर
ो ॥ ७ ॥

सूक्त (७७)

(ऋषि—परुच्छेद । देवता—इन्द्र । छन्द—अत्यष्टि ।

त्वा न्तस्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता गव्यस्य नि सृज
न्त इन्द्र नि.सृजः ।
गव्यन्ता द्वा जना स्वयन्ता समूहसि ।
वेष्कन्क्रिदृ वृषण सचाभुव वज्र मिन्द्र सचाभुवम् ॥ १ ॥
ष्टे तस्य वोर्यस्य पूरव पुरो यदिन्द्र शारदीरवातिरः ।
ासानो अवातिर ।
ास्तमिन्द्र मर्त्यमयज्यु शवसस्पते ।

महोनमुष्गाः पृथिवोमिमा अतो मन्दसान इमा अपः ॥ २ ॥
आदित् ते अस्य वीर्यस्य चर्किरन्मदेषु वृषन्नुशिजो यदाविथ
सखीयतो यदाविथ ।
चकर्थ कारमेभ्यः पृतनासु प्रवन्तवे ।
ते अन्यामन्यां नद्यं सनिष्णत श्रवस्यन्तः सनिष्णत ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! गोदान के समय पर अन्न की इच्छा वाले दम्पति आपको ध्यान में रखते हुए फल देने को आपको आकर्पण करते हैं स्वर्ग को जाने वाले उन दोनों को आप जानते है । उस अवसर पर आप अपने वर्षणशील सहायक वज्र को जानते हो ॥ १ ॥

यह इन्द्र जाड़े के मोसम की वस्तुओं में परिवर्तित होकर बार-बार दुश्मनों को व्यथित करते है पुरुष इनके बल के ज्ञाता हैं । हे इन्द्र ! जो स्वर्ग निवासी आपकी पूजा नही करता है उस पर आप शासन करो । इस भूमि एवं पानी का निवारण करो ॥ २ ॥

हे सेचन समर्थ जले ! आपके वीर्य का हम बखान करते हैं । इन्द्र के खुश होने पर तुम उनकी रक्षा करो । सखाम्रो के पोषक हो । पृतनाम्रो मे सेवनीय कार्यों के कर्ता हो । तुम नदियो का सहारा लो और हमें अन्न दो तथा स्नान कराने वाले बनो ॥ ३ ॥

सूक्त (७६)

(ऋषि—वसुक्रः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्)

वने न वायो न्यधायि चाकञ्छुचिर्वां स्तोमो भुरणावजीगः ।
यस्येदिन्द्रः पुरुदिनेषु होता नृणां नर्यो नृतमः क्षपावान् ॥ १ ॥
प्र ते अस्या उपसः प्रापरस्या नृतौ स्याम नृतमस्य नृणाम् ।

अनु त्रिशोक शतमावहन्नॄन् कुत्सेन रथो यो असत् ससवान् ॥ २ ॥
कस्मै मद इन्द्र रन्त्यो भूद् दुरो गिरो अभ्युग्रो वि धाव ।
कद् वाहो अर्वागुप मा मनीषा आ त्वा शक्यामुपमं राधो अन्नैः ॥ ३ ॥
कद् द्युम्नमिन्द्र त्वावतो नॄन् कया धिया करसे कन्न आगन् ।
मित्रो न सत्य उरुगाय भृत्या अन्ने समस्य यदसन्मनीषाः ॥ ४ ॥
प्रेरय सूरो अर्थं न पारं ये अस्य कामं जनिधाइव ग्मन् ।
गिरश्च ये ते तुविजात पूर्वीर्नर इन्द्र प्रतिशिक्षन्त्यन्नैः ॥ ५ ॥
मात्रे नु ते सुमिते इन्द्र पूर्वी द्यौर्मज्मना पृथिवी काव्येन ।
वराय ते घृतवन्तः सुतासः स्वाद्मन् भवन्तु पीतये मधूनि ॥ ६ ॥
आ मध्वो अस्मा असिचन्नमत्रमिन्द्राय पूर्णं स हि सत्यराधाः ।
स वावृधे वरिमन्ना पृथिव्या अभि क्रत्वा नर्यः पौंस्यैश्च ॥ ७ ॥
व्यानळिन्द्रः पृतनाः स्वोजा आस्मै यतन्ते सख्याय पूर्वीः ।
आ स्मा रथं न पृतनासु तिष्ठ यं भद्रया सुमत्या चोदयासे ॥ ८ ॥

हे अश्विनी कुमारो ! तुम देवगणों के भरण करने वाले हो। यह वे कसूर एवं इन्द्र की इच्छा करने वाला सोम हमारे पास है, इन्द्र इसकी सर्वप्रथम इच्छा करते थे। वे इन्द्र पुरुषोत्तम एवं सोम के प्रापक हैं। यह स्तोम उन्हीं की ओर आगे बढ़ता है ॥ १ ॥

हम दोनों से सर्वोत्तम और सत्य के अन्तर्गत रहें और

उषा के पार दूसरी हो। तीनों लोक के ऋषि ने हजारों उषाओं को प्राप्त कराया। कुत्स ऋषि ने संसार रूपी रथ को अन्नवान किया ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुमको खुश करने वाला कौन सा स्तोम होगा और कौन सा घोड़ा आपको मेरे पास लावेगा। मेरे स्तोम के प्रति तुम आओ। तुम उपमेय हो, मैं आपको हवियो द्वारा खुश करूंगा ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! तुम अपने स्वामियों को किस तरह से यशशाली बनाते हो ? तुम कीर्ति वाले हो इसलिए यथार्थ मित्र के लिए इमे अन्नवती बुद्धि से युक्त करो ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! इसकी कामनाओं को पूर्ण करने के लिए गौ माता की तरह मिलती है उन रश्मियो से अथवत हमको पार करो। वायु उसे अन्न प्रदान करें। हे इन्द्र ! तुम अपनी पुरानी प्रार्थनाओं को इसके ध्यान मे लाओ ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! यह घृत सहित सोम तुमको स्वादिष्ट लगे। अपने श्रेष्ठ काव्य सृजन निमित्त द्यावा पृथ्वी श्रेष्ठ मति वाले हों ॥ ६ ॥

इन्द्र के पानार्थ यह पात्र मधुर रस से परिपूर्ण किया गया है। वे इन्द्र अपने पराक्रम के कारण ही पृथ्वी पर पूजनीय है तथा वे सत्य के द्वारा पूजे जाते हैं ॥ ७ ॥

इन्द्र का पराक्रम महान है तथा वे सेनाओ से व्याप्त हैं। इनसे मित्र भाव की इच्छा रखने वाले असंख्यो वीर है। हे इन्द्र तुम जिस श्रेष्ठ बुद्धि द्वारा लोगो को प्रेरणा प्रदान करते हो, उसी रथ सदृश्य श्रेष्ठ बुद्धि से हमारे वीरो को अनुप्राणित करो ॥ ८ ॥

सूक्त (७७)

(ऋषि—वामदेव । देवता—इन्द्र । छन्द – त्रिष्टुप)

आ सत्यो यातु मघवाँ ऋजीषी द्रवन्त्वस्य हरय उप नः ।
तस्मा इदन्धः सुषुमा सुदक्षमिहाभिपित्वं
करते गृणानः ॥ १ ॥
अव स्य शूराध्वनो नान्तेऽस्मिन् नो अद्य सवने मन्दध्यै ।
शंसात्युक्थमुशनेव वेधाश्चिकितुषे असुर्याय मन्म ॥ २ ॥
कविर्न निण्यं विदथानि साधन् वृषा यत् सेकं
विपिपानो अर्चात् ।
दिव इत्था जीजनत् सप्त कारूनह्ना चिच्चक्रुर्वयुना
गृणन्तः ॥ ३ ॥
स्वर्यद् वेदि सुदृशीकमर्कैर्महि ज्योती रुरुचुर्यद्ध वस्तोः ।
अन्धा तमांसि दुधिता विचक्षे नृभ्यश्चकार नृतमो
अभिष्टौ ॥ ४ ॥
ववक्ष इन्द्रो अमितमृजीष्युभे आ पप्रौ रोदसी महित्वा ।
अतश्चिदस्य महिमा वि रेच्यभि यो विश्वा
भुवना बभूव ॥ ५ ॥
विश्वानि शक्रो नर्याणि विद्वानपो रिरेच सखिभिर्निकामैः ।
अश्मानं चिद् ये बिभिदुर्वचोभिर्व्रजं
गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ॥ ६ ॥
अपो वृत्रं वव्रिवांसं पराहन् प्रावत् ते वज्रं पृथिवी सचेताः ।
प्राणांसि समुद्रियाण्यैनोः पतिर्भवञ्छवसा शूर धृष्णो ॥ ७ ॥
अपो यदद्रिं पुरुहूत दर्दराविर्भुवत् सरमा पूर्व्यं ते ।
स नो नेता वाजमा दर्षि भूरिं गोत्रा
रुजन्नङ्गिरोभिर्गृणानः ॥ ८ ॥

इन्द्र के घोड़े हमारी तरफ आवें। धनी, सत्यवादी, सोम का पान करने वाले इन्द्र हमारे यहाँ आयें। प्रार्थना करने वाला गुणो पुरुष इसलिए पवित्र हो रहा है और हम सोम को सत्कारित कर रहे हैं ॥ १ ॥

हे बहादुर ! हमारे इस यज्ञ मे आप आगमन करें। अपने रास्ते को हमारे निकट करो। यह विद्वान उशना के समान इन्द्र के लिए मन्त्रो का उच्चारण करते हैं ॥ २ ॥

इन्द्र फलो की वर्षा करने वाले हैं। वे वर्षा के जल से पृथ्वी को सम्पन्न करते हुए आवें। ऋत्विज यज्ञ अपना कार्य कर रहा है। सात कामना करने वाले सोमनीय मन्त्रो से प्रार्थना कर रहे हैं ॥ ३ ॥

जिन मन्त्रों के उच्चारण से स्वर्ग के दर्शन करने का ज्ञान प्राप्त होता है, जो मन्त्र सूर्य को उदित करते हैं, जिन मन्त्रो से सूर्य रूपी इन्द्र अन्धेरे को नष्ट कर देते हैं वे शक्तिशाली इन्द्र कामनाओ को स्थापित करते है ॥ ४ ॥

सोम का पान करने वाले इन्द्र अधिक धन का प्रेरण करते हैं। वे सब लोको मे विस्तृत हैं। उन्ही इन्द्र भगवान की महिमा पृथ्वी और आकाश को पूर्ण करती है ॥ ५ ॥

अपनी इच्छा से संचित बादलो द्वारा इन्द्र ने भलाई के लिए जलो मे बढ़ोतरी की। वे जल अपने शब्दो से पत्थरो को भी चूर-चूर कर देते हैं। और इच्छा होने पर गायो के चरने वाली जमीन पर आ जाते हैं ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! यह पृथ्वी तुम्हारे वज्र की बड़ी सावधानी से देखभाल करती है। यह पृथ्वी ही समुद्र की भी रक्षा करती है। आवरक वृत्र को सभी जलो ने नष्ट कर दिया है। हे इन्द्र तुम अपने बल पर ही पृथ्वी के मालिक हो ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! तुम अनेक भक्तो द्वारा पुकारे जा चुके हो। तुम

जिस जल को देते हो वह जल पहले ही अवतरित होकर बहने लगता है। तुम आंगिरसों द्वारा प्रार्थनीय बादलों को बरसाते हुए हमको असीमित अन्न देते हो ॥ ८ ॥

सूक्त (७८)

(ऋषि—शयुः । देवता—इन्द्रः । छन्द गायत्री)

तद् वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने ।
शं यद् गवे न शाकिने ॥ १ ॥
न घा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमतः ।
यत् सीमुप श्रवद् गिरः ॥ २ ॥
कुवित्सस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमत् ।
शचीभिरप नो वरत् ॥ ३ ॥

हे स्तुति करने वालो ! सोम के पान होने पर इन्द्र की प्रार्थना करो। जिससे कि वे हम सबके लिए गाय के समान कल्याणकारी हों ॥ १ ॥

यह इन्द्र अगर हमारी प्रार्थनाओं को सुन लेतेहैं तो गायोंसे सम्पन्न अन्न को देने में हिचकिचाते नहीं ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुम वृत्रहन हो। असीमित अन्न प्रदान करने वाले हो। तुम गायों से घिरे हुए स्थान पर आकर हमको शक्ति दो ॥ ३ ॥

सूक्त (७९)

(ऋषि—शक्तिः, वसिष्ठः । देवता—इन्द्रः । छन्द—बार्हतः प्रगाथः)

इन्द्रं क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥ १ ॥

मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो माशिवासो अव क्रमुः ।
त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोऽति शूर तरामसि ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! जिस प्रकार कि एक पिता अपने पुत्र को उसकी पसन्द की वस्तु देता है उसी प्रकार तुम हमको अभीष्ट वस्तु दीजिए हे देवता ! इस संसार रूपी यात्रा में हमारी इच्छा की वस्तु दो जिससे कि अधिक जीवित रह कर संसार के सभी सुखों को भोगें ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! हम पर रोगों की विजय न हो। बुरी वाणियों और पापों से हम दूर रहें हम तुम्हारी कृपा से मनुष्यों से पूर्ण रहें और सभी कार्यों को सावधानी से करें ॥ २ ॥

सूक्त (८०)

(ऋषि—शंयु । देवता इन्द्र । छन्द—प्रगाथः)

इन्द्र ज्येष्ठं न आ भर ओजिष्ठं पपुरि श्रवः ।
येनेमे चित्र वज्रहस्त रोदसी ओभे सुशिप्र प्राः ॥ १ ॥
त्वामुग्रमवसे चर्षणीसहं राजन् देवेषु हूमहे ।
विश्वा सु नो विथुरा पिब्दना वसोऽमित्रान्
सुषहान् कृधि ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुम अपने अपरिमित धन को हमे दो। हे वज्रधारी तुमने अपने जिस धन से आकाश और पृथ्वी को युक्त किया है उसी धन को हमे दो ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुम हमारे डरों के सभी कारणों को दूर करो और हमें ऐसा बल दो जिससे कि हम शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर सकें। हम तुम्हें अपनी रक्षा के लिये बुलाते है ॥ २ ॥

सूक्त (८१)

(ऋषि—पुरुहन्मा । देवता—इन्द्रः । छन्द—प्रगाथ)

यद् द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः ।

न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥ १ ॥
आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन् विश्वा शविष्ठ शवसा ।
अस्माँ अव मघवन् गोमति व्रजे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः ॥ २ ॥

हे इन्द्र देवता ! अगर सैकडो पृथ्वी और आकाश भी तुम्हारी बराबरी करना चाहें तब भी बराबरी नहीं कर सकते ॥ १ ॥

हे वज्रधारी ! हमारी गाओ के चरने वाल स्थान पर अपने रक्षा के साधनो से हमारी मदद करो और अपनी बुद्धि के बल पर ही हमारी बढोतरी करो ॥ २ ॥

सूक्त (८२)

(ऋषि—वसिष्ठ. । देवता—इन्द्र । छन्द—प्रगाथ)

यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय ।
स्तोतारमिद् दिधिषेय रदावसो न पापत्वाय रासीय ॥ १ ॥
शिक्षेयमिन्महयते दिवेदिवे राय आ कुहचिद्विदे ।
नहि त्वदन्यन्मघवन् न आप्यं वस्यो अस्ति पिता चन ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुम्हारे बराबर बड़प्पन मैं भी पाऊं । मैं प्रार्थना करने वाले पुरुषो को धन दूं । और पाप का मुझमे निशान भी न हो जिसके कि मैं पुरुषो द्वारा दु खी किया जाऊं ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! मैं जिधर से भी धन की कामना करू उधर से ही धन प्राप्त करू । जो मुझसे उत्कृष्ट होना चाहे उसे स्वर्ग मे भेज दू । हे इन्द्र ! मुझे इस प्रकार की शक्ति देने वाला आपके सिवाय और कौन हो सकता है ॥ २ ॥

सूक्त (८३)

(ऋषि—शयु । देवता—इन्द्र । छन्द—प्रगाथ)

इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तिमत् ।

छदियच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः ॥ १ ॥
ये गव्यता मनसा शत्रुमादभुरभिप्रघ्नन्ति धृष्णुया ।
अध स्मा नो मघवन्निन्द्र गिर्वणस्तनूपा अन्तमो भव ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! मेरे लिए कल्याणकारी गृह दो और हिंसा करने वाली शक्तियों को वहाँ न बिल्कुल मिटा दो ॥ १ ॥

तुम्हारे जो बल दुश्मनों को नष्ट करते और मारते हैं, अपने उन्हीं वृषभों से हे देवता ! हमारी रक्षा करो । २ ॥

सूक्त (८४)

(ऋषि मधुच्छन्दा देवता—इन्द्र । छन्द गायत्री)

इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः ।
अण्वीभिस्तना पूतासः ॥ १ ॥
इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः ।
उप ब्रह्माणि वाघतः ॥ २ ॥
इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः ।
सुते दधिष्व नश्चनः ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! यहाँ आगमन करो यह निष्पन्न सोम तुम्हारे लिए ही रखा गया है ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! ये महान ब्राह्मण तुम्हें अपने से भी विद्वान मानते हैं । अतः इन मन्त्रों का उच्चारण करने वाले और सज्जन ब्राह्मणों के निकट आओ ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुम घोड़े रखते हो । जल्दी ही हमारे स्तोत्रों की तरफ आओ और हमारे सत्कार किये गये सोम के पास अपने घोड़ों को रोको ॥ ३ ॥

सूक्त (८५)

(ऋषि– प्रगाथ मेध्यातिथि । देवता—इन्द्र । छन्द—प्रगाथ)

मा चिदन्यद् वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।
इन्द्रमित् स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ॥ १ ॥
अवक्रक्षिणं वृषभं यथाजुरं गां न चर्षणीसहम् ।
विद्वेषणं संवननोऽभयंकरं मंहिष्ठमुभयाविनम् ॥ २ ॥
यच्चिद्धि त्वा जना इमे नाना हवन्त ऊतये ।
अस्माकं ब्रह्मेदमिन्द्र भूतु तेऽहा विश्वा च वर्धनम् ॥ ३ ॥
वि तर्तूर्यन्ते मघवन् विपश्चितोऽर्यो विपो जनानाम् ।
उप क्रमस्व पुरुरूपमा भर वाजं नेदिष्ठमूतये ॥ ४ ॥

हे स्तुति करने वालो ! तुम लोग और किसी देवता की शरण मे मत जाओ। और न ही अन्य देवता की प्रार्थना करो। हे संस्कारित साम वाले होताओ। तुम इन्द्र की प्रार्थना करते हुए बारम्बार मन्त्रो का उच्चारण करो ॥ १ ॥

वे इन्द्र बल के समान चरने वाले दुश्मनो को नष्ट करने वाले अवक्रक्षी अजुर महिष्ठ सवननीय एवं दोनो लोकों की रक्षा करने वाले हैं ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! अपनी रक्षा के लिये अनेको पुरुष तुम्हे बुलाते हैं हमारा यह स्तोत्र भी तुम्हारी बढ़ोत्तरी करने वाला है ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! तुम जल्दी आकर विशाल अन्नतार दो। इन गुणीयो, भक्तो की उँगलियाँ जल्दी कर रही हैं। तुम हमारे पोषण के लिये अन्न को हमारे निकट लाकर हमें दो ॥ ४ ॥

सूक्त (८६)

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्)

ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्मि हरी सखाया सधमाद आशू ।
स्थिरं रथं सुखमिन्द्राधितिष्ठन् प्रजानन् विद्वाँ उप
याहि सोमम् ॥ १ ॥

तुम्हारे रथ में कमशील मन्त्र द्वारा अश्वों को योजित करता हूँ। हे मेधावी इन्द्र ! अपने शोभायमान रथ पर आरूढ होकर हमारे द्वारा प्रस्तुत इस सोम के समीप पधारो। १ ॥

सूक्त (८७)

(ऋषि—वसिष्ठ. । देवता—इन्द्र इन्द्राबृहस्पती: ।
छन्द--त्रिष्टुप्)

अध्वर्यवोऽरुणं दुग्धमंशुं जुहोतन वृषभाय क्षितीनाम् ।
गौराद् वेदीयाँ अवपानमिन्द्रो विश्वाहेद्याति
सुतसोममिच्छन् ॥ १ ॥
यद् दधिषे प्रदिवि चार्वन्न दिवेदिवे पीतिमिदस्य वक्षि ।
उत हृदोत मनसा जुषाण उशन्निन्द्र प्रस्थितान्
पाहि सोमान् ॥ २ ॥
जज्ञानः सोम सहसे पपाथ प्र ते माता महिमानमुवाच ।
एन्द्र पप्राथोर्वन्तरिक्षं युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ ॥ ३ ॥
यद् योधया महतो मन्यमानान् साक्षाम तान्
बाहुभिः शाशदानान् ।
यद्वा नृभिर्वृत इन्द्राभियुध्यास्तं त्वयाजिं
सौश्रवसं जयेम ॥ ४ ॥
प्रेन्द्रस्य वोचं प्रथमा कृतानि प्र नूतना मघवा या चकार ।

यदेददेशीरसहिष्ट माया अथाभवत् केवल सोमो अस्य ॥ ५ ॥
तवेद विश्वमभित पशव्य यत् पश्यसि चक्षसा सूयस्य ।
गवामसि गोपतिरेक इन्द्र भक्षीमहि ते प्रयतस्य वस्व ॥ ६ ॥
बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य ।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद् यूय पात
स्वस्तिभि सदा न ॥ ७ ॥

हे अध्वर्यु आ ! इन्द्र देव पृथ्वी पर वृष्टि करने वाले हैं। उनके निमित्त साम के दूध रूप अंश का आहुति अर्पित करो। वह इन्द्र सोम पान की कामना लिए पधारते है ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुम आकाश में श्रेष्ठ अन्न के धारण कर्त्ता हो और यजानि शुभ कर्मों के समय सोम का पान करते हो। अत इस सोम की इच्छा करते हुए इसकी रक्षा करो ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुम उपस्थित होते ही सोम पर जाते हो। तुमने संग्रामों को विजय कर देवताओं को धन प्रदान किया। तुम विस्तृत अन्तरिक्ष में जाते हो। वह विस्तृत अन्तरिक्ष तुम्हारी महिमा का गुणगान करते हैं ॥ ३ ॥

हे इन्द्र। तुम मनुष्यों को साथ लेकर युद्ध करो। हम तुम्हारे बल से इस युद्ध को विजय करते हुए कीर्तिवान हों। तुम अपने जिन बाहुओं से बडे बडे संग्रामों को लडते हो, उन बाहुओं की शक्ति से हम युक्त हों ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! मैं तुम्हारे नूतन प्राचीन कर्मों का बखान करता हूँ। तुमने जिन राक्षसी मायाओं का सामना किया है, इसी से सोम तुम्हारा ही बन गया है ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! यह सब पशु धन तुम्हारा है तुम गौओं के पोषक हो। तुम सूर्य रूपी नेत्र से देखने वाले हो। तुम अपने

उपासक के फल मे प्रयत्न शील रहते हो, ऐसे तुम्हारे धन हम पावें ॥ ६ ॥

हे बृहस्पते ! हे इन्द्र ! तुम दोनों ही स्वर्गिक और पार्थिव धनो के स्वामी हो। तुम अपनी रक्षा साधन रूप व्रतो द्वारा हमारा रक्षण करते हुए स्तवन करने वाले हमको धन प्रदान करो। ७ ॥

सूक्त (८८)

(ऋषि—वामदेव.। देवता -बृहस्पति । छन्द त्रिष्टुप्)

यस्तस्तम्भ सहसा वि ज्मो अन्तान् बृहस्पतिस्त्रिषधस्थो रवेण ।
त प्रत्नास ऋषयो दीध्यानाः पुरो विप्रा दधिरे
मन्द्रजिह्वम ॥ १ ॥
धुनेतयः सुप्रकेत मदन्तो बृहस्पते अभि ये नस्ततस्रे ।
पृषन्त सृप्रमदब्धमूर्वं बृहस्पते रक्षतादस्य योनिम् ॥ २ ॥
बृहस्पते या परमा परावदत आ त ऋतस्पृशो नि षेदुः ।
तुभ्यं खाता अवता अद्रिदुग्धा मध्व श्चोतन्त्यभितो
विरप्शम् ॥ ३ ॥
बृहस्पतिः प्रथम जायमानो महो ज्योतिषः परमे व्योमन् ।
सप्तास्यस्तुविजातो रवेण वि सप्तरश्मिरधमत् तमासि ॥ ४ ॥
स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन वल रुरोज फलिग रवेण
बृहस्पतिरुस्रिया हव्यसूद कनिक्रदद् वावशतीरुदाजत ॥ ५ ॥
एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः ।
बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वय स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ६ ॥

पुरातन ऋषिगण उन बृहस्पति देव का पुनः पुन स्मरण करते हैं जिन्होने पृथ्वी की अन्तिम सीमा को अपने घोष से स्तभित किया था। वे बृहस्पति प्रसन्न करने वाली जिह्वा वाले है विद्वान ब्राह्मण उन्हे अग्रणी रखते है ॥ १ ।

हे वृहस्पते ! जो ऋत्विज तुम्हें हमारी ओर आकृष्ट करते हैं, उन गमनशील, अहिंसित घृत बिन्दु युक्त ऋत्विजों की तुम रक्षा करो ॥ २ ॥

हे वृहस्पते ! ऋतु स्पर्श ऋत्विज तुम्हारी रक्षा साधनों वाली महान रक्षा के निमित्त बैठे हुए पर्वतों से चमन किये हुए सुन्दर मधु की तुम पर वृष्टि करते हैं ॥ ३ ॥

वे वृहस्पति महान ज्योतिष चक्र से परमाकाश में प्रकट होते हुए सप्त रश्मियाँ बनकर तम का विनाश करते है ॥ ४ ॥

वे वृहस्पति मेघ को ऋचा युक्त गुण द्वारा विदीर्ण करते हैं। तथा हव्य से प्रेरित होकर कामना करने वाली गौओं को पुनः पुनः घोष करते हुए प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

हे वृहस्पते ! हम सुन्दर वीर पुत्र पौत्रादि एव सम्पत्ति से सपन्न हों। हम उन वृहस्पति देव की आहुतियों और नमस्कारों द्वारा आराधना करते है ॥ ६ ॥

सूक्त (८९)

(ऋषि—कृष्ण । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप)

अस्तेव सु प्रतरं लायमस्यन् भूषन्निव प्र भरा स्तोममस्मै ।
वाचा विप्रास्तरत वाचमर्यो नि रामय जरितः
सोम इन्द्रम ॥ १ ॥

दोहेन गामुप शिक्षा सखायं प्र बोधय जरितर्जारमिन्द्रम् ।
कोशं न पूर्णं वसुना न्यृष्टमा च्यावय मघदेयाय शूरम् ॥ २ ॥

किमङ्ग त्वा मघवन् भोजमाहुः शिशीहि मा शिशयं
त्वा शृणोमि ।
अप्नस्वती मम धीरस्तु शक्र वसुविदं भगमिन्द्रा
भरा न ॥ ३ ॥

हवां जना ममसत्येष्विन्द्र संतस्थाना वि ह्वयन्ते समीके ।
अत्रा युजं कृणुते यो हविष्मान्नासुन्वता सख्यं
वष्टि शूरः ॥ ४ ॥
धनं न स्पन्द्रं बहुलं यो अस्मै तीव्रान्त्सोमा
आसुनोति प्रयस्वान् ।
तस्मै शत्रून्त्सुतुकान् प्रातरह्नो नि स्वष्ट्रान् युवति
हन्ति वृत्रम् ॥ ५ ॥
यस्मिन् वयं दधिमा शंसमिन्द्रे यः शिश्राय
मघवा काममस्मे ।
आराच्छत्रुमप बाधस्व दूरमुग्रो यः शम्बः पुरुहूत तेन ।
अस्मे धेहि यवमद् गोमदिन्द्र कृधी धियं जरित्रे
वाजरत्नाम् ॥ ७ ॥
प्र यमन्तर्वृषसवासो अग्मन् तीव्राः सोमा बहुलान्तास इन्द्रम् ।
नाह दामानं मघवा नि यंसन् नि सुन्वते वहति
भूरि वामम् ॥ ८ ॥
उत प्रहामतिदीवा जयति कृतमिव श्वघ्नी वि
चिनोति काले ।
यो देवकामो न धनं रुणद्धि समित् तं राया सृजति
स्वधाभिः ॥ ९ ॥
गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन वा क्षुधं पुरुहूत विश्वे ।
वयं राजसु प्रथमा धनान्यरिष्टासो वृजनीभिर्जयेम ॥ १० ॥
बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो
वरीवः कृणोतु ॥ ११ ॥

हे ब्राह्मणो ! तुम इन्द्र के निमित्त स्तोमो को पूर्ण करो ।

मय रूप वाणी द्वारा पार जाओ। हे स्तवन करने वालो ! तुम इन्द्र को सोम से भली भाँति सयुक्त करो ।।१।।

हे स्तुति करने वालो ! अपनी सत्या रूप वाणी को दुहते हुए शत्रु विनाशक इन्द्र का आह्वान करो। धन से भरे कोश के समान इन्द्र के निमित्त पवित्र सोम का सिंचन करो ।।२।

हे इन्द्र ! तुम भोगने वाले हो एव शत्रु को क्षीण करने वाले हो। मुझे क्षीण न करो। मुझे धन पाने वाला सौभाग्य प्रदान करो। मेरी बुद्धि कर्मों की ओर अग्रसर हो। ३ ।।

हे इन्द्र ! मेरे व्यक्ति तुम्हारा ही आह्वान करते हैं। जो पुरुष तुम्हारी मित्रता की इच्छा रखता है और हवियुक्त अनुष्ठान करता है, वह सोम का सस्कार करता है ।। ४ ।।

जो हविर्दान पुरुष इन्द्र के निमित्त सोमों का सस्कार नहीं करता उसकी सम्पत्ति क्षीण होने लगती है और इन्द्र उसे शत्रुओं से सयुक्त करते हुए उस पर अपने वज्र द्वारा प्रहार करते हैं ।। ५ ।

हमारे अभीष्टों को पूर्ण करने वाले एव प्रशसनीय इन्द्र जिनके निकट आते ही शत्रु भयभीत हो उठते हैं ऐसे महिमा शाली इन्द्र को ससार के समस्त प्राणी नमस्कार करें ।। ६ ।।

हे इन्द्र ! तुम अपने उग्र वज्र से निकटस्थ अथवा दूरस्थ शत्रु को शोकाकुल करो। हमको अन्न रूप बुद्धि प्रदान करते हुए अन्न तथा पशु धन से सपन्न करो ।। ७ ।।

जिन इन्द्र के पास तीव्र सोम गमन करते हैं वे इन्द्र धन की बाधक रस्सी को रोकते और सोम का सस्कार करने वाले स्तोता को अपार धन देते हैं ।। ८ ।।

जैसे क्रीडा कुशल व्यक्ति अपने विरोधी को द्यूत में

पराजित करता है क्योंकि वह अक्ष नामक कृत को ही खोजता है। वह खेलने वाला इन्द्र की कामना करता हुआ उस जीते हुए धन को व्यर्थ ही न रोकता हुआ इन्द्र के कार्य मे लगाता और उन्हें स्वधावान करता है ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! निर्धनता के कारण प्राप्त हुई दुर्बुद्धि को हम पशुओं के द्वारा पार कर जांय। अन्न द्वारा अपनी क्षुधा शमन करें। विरोधियों पर विजय प्राप्त करते हुए हम राजाओं में स्थित श्रेष्ठ धन को शक्ति सम्पन्न अक्षो से प्राप्त करें ॥ १० ॥

जो शत्रु हमारी हिंसा करने की कामना करता है, उससे वृहस्पति देवता चारो दिशाओं से हमारा रक्षण करें और अपने अन्य मित्रों से हम श्रेष्ठता प्रदान करायें ॥ ११ ॥

सूक्त (६०)

(ऋषि—भरद्वाज । देवता—बृहस्पतिः । छन्द—त्रिष्टुप्)

यो अद्रिभित् प्रथमजा ऋतावा बृहस्पतिराङ्गिरसो हविष्मान् ।
द्विबर्हज्मा प्राघर्मसत् पिता न आ रोदसी वृषभो रोरवीति ॥ १ ॥
जनाय चिद् य ईवत उ लोक बृहस्पतिर्देवहूतौ चकार ।
घ्नन् वृत्राणि वि पुरो दर्दरीति जयञ्छत्रूंरमित्रान पृत्सु साहन् ॥ २ ॥
बृहस्पतिः समजयद् वसूनि महो व्रजान् गोमतो देव एषः ।
अपः सिषासन्त्स्वरप्रतीतो बृहस्पतिर्हन्त्यमित्रमर्कैः ॥ ३ ॥

प्रथम आविर्भूत होने वाले मेघो को विदीर्ण करने वाले सत्यशील आंगिरस वृहस्पति आहुत होने योग्य हैं। वे पोषक द्यावा पृथ्वी में शब्द करने वाले द्विबर्हज्मा प्राघर्मसत् और वृष्टि करने वाले हैं ॥ १ ॥

देवहूति में शोक को करने वाले मनुष्यों के लिए गमनशील बृहस्पति मेघों को विदीर्ण कर पुरियों को तोड़ते हैं और शत्रुओं को पराजित करते हुए सेनाओं का सामना करते हैं ॥ २ ॥

बृहस्पति ने गौओं सम्पन्न वृहद गोष्ठों और धनों को जीत लिया है। वे जलदान के निमित्त स्वर्ग में आरूढ होने और मन्त्रों से शत्रुओं को नष्ट करते है ॥ ३ ॥

सूक्त ९१ (आठवां अनुवाक)

(ऋषि--अयास्य । देवता--बृहस्पति । छन्द-- त्रिष्टुप)

इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता न ऋतप्रजातां बृहतीमविन्दत् ।
तुरीयं स्विज्जनयद् विश्वजन्योऽयास्य
उक्थमिन्द्राय शंसन् ॥ १ ॥

ऋतं शंसन्त ऋजु दीध्याना दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः ।
विप्रं पदमङ्गिरसो दधाना यज्ञस्य धाम प्रथमं मनन्त ॥ २ ॥

हंसैरिव सखिभिर्वावदद्भिरश्मन्मयानि नहना व्यस्यन् ।
बृहस्पतिरभिकनिक्रदद् गा उत प्रास्तौदुच्च
विद्वाँ अगायत् ॥ ३ ॥

अवो द्वाभ्यां पर एकया गा गुहा तिष्ठन्तीरनृतस्य सेतौ ।
बृहस्पतिस्तमसि ज्योतिरिच्छन्नुदुस्रा आकर्वि हि
तिस्र आवः ॥ ४ ॥

विभिद्या पुरं शयथेमपाचीं निस्त्रीणि साकमुदधेरकृन्तत् ।
बृहस्पतिरुषसं सूर्यं गामर्कं विवेद स्तनयन्निव द्यौः ॥ ५ ॥

इन्द्रो वलं रक्षितारं दुघानां करेणेव वि चकर्ता रवेण ।
स्वेदाञ्जिभिराशिरमिच्छमानोऽरोदयत् पणिमा
गा अमुष्णात् ॥ ६ ॥

स ई सत्येभिः सखिभि. शुचद्भिर्गोधायसं वि धनसैरदर्दः ।
ब्रह्मणस्पतिर्वृषभिर्वराहैर्घर्मस्वेदेभिर्द्रविणं व्यानट् ॥ ७ ॥
ते सत्येन मनसा गोपतिं गा इयानास इषणयन्त धीभिः ।
बृहस्पतिर्मिथोअवद्यपेभिरुदुस्रिया असृजत स्वयुग्भिः ॥ ८ ॥
तं वर्धयन्तो मतिभिः शिवाभिः सिंहमिव नानदतं सधस्थे ।
बृहस्पतिं वृषणं शूरसातौ भरेभरे अनु मदेम जिष्णुम् ॥ ९ ॥
यदा वाजमसनद् विश्वरूपमा द्यामरुक्षदुत्तराणि सद्म ।
बृहस्पतिं वृषणं वर्धयन्तो नाना सन्तो बिभ्रतो
ज्योतिरासा ॥ १० ॥
सत्यामाशिषं कृणुता वयोधै कीरिं चिद्ध्यवथ स्वेभिरेवैः ।
पश्चा मृधो अप भवन्तु विश्वास्तद् रोदसी शृणुत
विश्वमिन्वे ॥ ११ ॥
इन्द्रो मह्ना महतो अर्णवस्य वि मूर्धानमभिनदर्बुदस्य ।
अहन्नहिमरिणात् सप्त सिन्धून् देवैर्द्यावापृथिवी
प्रावतं नः ॥ १२ ॥

बृहस्पति देव ने सत्य द्वारा प्रकट सत्यशीर्षा मेधा को प्राप्त किया है और विश्व से उत्पन्न उन आस्य स्य ने इन्द्र से कहकर तुरीय को उत्पन्न कराया ॥ १ ॥

सत्य भाषण द्वारा प्राण रूपवीर्य से उत्पन्न हुए अंगिरा यज्ञ स्थान मे अग्रणी समझे जाते है ॥ २ ॥

वधक मेघो का उदघाटन करते हुए बृहस्पति स्तुति को करते हुये विद्वान जैसे प्रतीत होते है ॥ ३ ॥

दो से फिर एक से हृदय गुहा मे अवास्थित वाणियो को उद्भुत करते हुए अन्धकार मे प्रकाश की कामना वाले प्रकाश को प्रकट करते हैं ॥ ४ ॥

पुर को विदीर्ण कर पश्चिम में सोते हैं। समुद्र के भाग का त्याग नहीं करते। आकाश मे गरजते हुए वृहस्पति उषा सूर्य मघ और गो को प्राप्त करते हैं ॥ ५ ॥

काम धेनुओ के पोशक मेघ को इन्द्र छिन्न भिन्न करते हैं। इन्द्रोने दधि की कामना से गोओ के चुराने वाले पणियो को पिडित किया ॥ ६ ॥

वह इन्द्र धन प्रदाता तथा पृथ्वी को पुष्ट करने वाले मेघ को विद र्ण करते हैं और ब्रह्मण स्पति षपणशील मेघों द्वारा घन मे व्याप्त होते हैं ॥ ७ ॥

वह मेघ वृषभ और गोओ पर जाने की इच्छा करते हुए अपनी बुद्धियो द्वारा उन्हे प्राप्त करते हैं। उन अनवद्यप शब्द का पालन करने वाले वृहस्पति मघो के योग से गोओ मे सयुक्त होते हैं ॥ ८ ॥

उस युद्ध में सिह सदृष्य घोष करने वाले वृहस्पति को अपनी सद बुद्धियो द्वारा प्रवृद्ध करते हैं और युद्ध काल मे उन्हे प्रसन्न रखते हैं ॥ ६ ॥

जब यह विश्व रूप आकाश रूपी भवन पर आरूढ हो अन्न प्रदान करने की कामना प्रकट करते हैं तब ज्योति को अगीकार करते हुए बुद्धि के द्वारा वृहस्पति को प्रवृद्ध किया जाता है। १० ॥

अन्न के पोपक कारणो से आर्शीवाद को फलीभूत करते हुए स्तोता का रक्षण करो। हे पृथ्वी आकाश। तुम अग्नि सबधी ऋचाओ के प्रचड होने पर श्रवण करो। जितने युद्ध हैं सब भूत की वातें हो जांय ॥ ११ ॥

मेघ के मस्तक को अपनी महिमा से ही इन्द्र काट देते

हैं। वे प्रहार करके सप्त नदियों को प्रकट करते हैं। हे द्यावा पृथ्वी। तुम हमारी पालन कर्त्री बनो ॥ १२ ॥

सूक्त (६२)

(ऋषि—प्रियमेधः पुरुहन्मा। देवता—इन्द्र.। छन्द—गायत्री; अनुष्टुप्, पंक्तिः बृहती प्रगाथ)

अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे।
सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥ १ ॥
आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि।
यत्राभि संनवामहे ॥ २ ॥
इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु।
यत् सीमुपह्वरे विदत् ॥ ३ ॥
उद् यद् ब्रध्नस्य विष्टपं गृहमिन्द्रश्च गन्वहि।
मध्वः पीत्वा सचेवहि त्रिः सप्त सख्युः पदे ॥ ४ ॥
अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत।
अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न धृष्ण्वर्चत ॥ ५ ॥
अव स्वराति गर्गरो गोधा परि सनिष्वणत्।
पिङ्गा परि चनिष्कददिन्द्राय ब्रह्मोद्यतम् ॥ ६ ॥
आ यत् पतन्त्येन्यः सुदुघा अनपस्फुरः।
अपस्फुरं गृभायत सोममिन्द्राय पातवे ॥ ७ ॥
अपादिन्द्रो अपादग्निर्विश्वे देवा अमत्सत।
वरुण इदिह क्षयत् तमापो अभ्यनूषत वत्सं संशिश्वरीरिव ॥ ८ ॥
सुदेवो असि वरुण यस्य ते सप्त सिन्धवः।
अनुक्षरन्ति काकुदं सूर्म्यं सुषिरामिव ॥ ९ ॥
यो व्यतीँरफाणयत् सुयुक्ताँ उप दाशुषे।

तदत्रो नेता तदिद् यपस्पमा यो अमुच्यत ॥ १० ॥

हे स्तोता ! गौओं व अजपाल इन्द्र को जिस प्रकार प्राप्त करूँ, उसी विधि से तुम उनकी अराधना करो । यह इन्द्र अपने स यशील उपासकों का रक्षण करते हैं ॥ १ ॥

जिन कुशाओ पर हम इन्द्र की उपासना कर रहे हैं, उन कुशाओ पर इन्द्र क अश्व रथ को योजित करें ॥ २ ॥

जब गाऐ इन्द्र के लिये दुग्ध का दोहान कराती हैं तब वे इन्द्र चहुँ ओर से मधुर सोम रसों को प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥

ब्रह्म के ग्रह रूप स्वग मे हम और इन्द्र गमन करें । हम इक्कीस बार मधु का पान कर इन्द्र के मित्र भाव की प्राप्ति करें ॥ ४ ॥

हे स्तोताओ ! इन्द्र की श्रेष्ठ ढग से उपासना करो । अपने शत्रुओ को अपने अधीन करने के लिए उनकी आराधना करो ॥ ५ ॥

जब इन्द्र के प्रति मस्त गमन करता है तब कलश शब्द युक्त होता है उस समय विशाल पदाथ गमन करता हुआ धनुष की डोरी के समान ध्वनि करता है ॥ ६ ॥

हे स्तोताओ ! इन शुभ्र धेनुओ मे स्थित अक्षय पदार्थों को स्वीकार करते हुए इन्द्र के पानाथ सोम लाओ ॥ ७ ॥

इस पदाथ को इन्द्र अग्नि और विश्वेदेवाओ न पान कर लिया है । हे जलो । सशिश्वरी के वत्स सदृप्य वरुण का स्तुति-गान करो ॥ ८ ॥

हे वरुण ! तुम्हारे पास पुर स्तात वयवन्ती अभ्रपत्नी अथवा मेघ पत्नी त्रितुवा असन्वा नाम की सात नदियाँ हैं जसे

नगर से जल बाहर निकलता है वैसे ही उन नदियों से जल प्रवाहित होता है ॥ ९ ।

जो हविदाता के लिए सुंयुक्तों को फणित करते हैं जो नेता हैं, तपत्र हैं, उनकी उपमा उनका शरीर ही है ॥ १० ॥

अनोदु शक्र ओहत इन्द्रो विश्वा अति द्विषः ।
भिनत् कनीन ओदनं पच्यमानं परो गिरा ॥ ११ ॥
अर्भको न कुमारकोऽधि तिष्ठन्नवं रथम ।
स पक्षन्महिषं मृग पित्रे मात्रे विभुक्रतुम् ॥ १२ ॥
आ त सुशिप्र दंपते रथं तिष्ठा हिरण्ययम् ।
अध द्युक्षं सचेवहि सहस्रपाद मरुष स्वस्तिगामनेहसम् ॥ १३ ॥
त घेमित्था नमस्विन उपराजमासते ।
अर्थं चिदस्य सुधित यदेतव आवर्तयन्ति दावने ॥ १४ ॥
अनु प्रत्नस्यौकस· प्रियमेधास एषाम् ।
पूर्वामनु प्रयति वृक्तबर्हिषो हितप्रयस आशत ॥ १५ ॥
यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगः ।
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठो यो वृत्रहा गृणे ॥ १६ ॥
इन्द्रं त शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि ।
हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो महो दिवे न सूर्यः ॥ १७ ॥
नकिष्टं कर्मणा नशद् यश्चकार सदावृधम् ।
इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्णवोजसम् ॥ १८ ॥
अषाढमुग्रं पृतनासु सासहिं यस्मिन् महीरुरुज्रयः ।
स धेनवो जायमाने अनोनवुर्द्याव क्षामो अनोनवुः ॥ १९ ॥
यद् द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः ।
न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥ २० ॥
आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन् विश्वा शविष्ठ शवसा ।

अस्मां अद्य मघवन् गोमति व्रजे
वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः ॥ २१॥

इन्द्र समस्त शत्रुओं को अपने अधीन करते हैं, वे भार को वहन करने वाले हैं। इन्होंने मन्त्र से पक्व हुए ओदन का कनीन होते हुए भी भेदन किया। ११॥

व अपने रथ पर श्रेष्ठ कुमार के समान चढ़ते हैं और द्यावा पृथ्वी रूप माता पिता के निमित्त विभुक्तु पाक करते हैं॥ १२॥

हे इन्द्र! तुम इस स्वर्णिम रथ पर चढ़ो और हम भी तुम्हारे अनुग्रह से सुन्दर वाणियों से सम्पन्न सहस्रों मार्ग से युक्त स्वर्ग पर आरोहण करें॥ १३॥

उन इन्द्र की इस प्रकार की महिमा के ज्ञाता पुरुष अपने राज्य में प्रतिष्ठित करते हैं। हवि अर्पित करने वाले यजमान के लिए ऋत्विज गण इनके निकटस्त धन को प्राप्त कराते हैं॥ १४॥

प्रियमेधा वाले ऋत्विज उनके पूर्व सवन से हित प्रद अन्न से पूर्ण हो प्रयति' का उपयोग करते हैं॥ १५॥

राजा इन्द्र ज्येष्ठ हैं। वे रथ द्वारा गमन करते हुए सभी सेनाओं के पार होते हैं। मैं उनकी स्तुति करता हूँ॥ १६॥

हे पुरुहन्मन्! इन्द्र की महत्ता, मर्त्यलोक, अन्तरिक्ष और स्वर्ग में भी है। क्रीड़ा के निमित्त ऊँचा उठाया हुआ वज्र उनके हाथ में सूर्य समान दर्शनीय है। इस कारण यज्ञ में अन्न प्राप्ति हेतु उन्हीं इन्द्र को भली भाँति सज्जित करो॥ १७॥

जो व्यक्ति उन महान पराक्रमी ऋत्वस अपृष्ठ, पृथिवर और धर्षक तेज से सम्पन्न इन्द्र की उपासना में लगाता है। उसे पापी कर्म से कोई रोक नहीं सकता॥ १८॥

वे उग्र इन्द्र विशाल आश्रय मार्ग वाले वाणियों द्वारा स्तुत और सेनाओ मे दुर्दमनीय हैं, उनका द्यावा पृथ्वी स्तवन करते हैं ॥ १९ ॥

हे इन्द्र ! सौ सौ आकाश और पृथ्वी हो या हजारो सूर्य आकाश पृथ्वी बन जाय तो भी वे तुम्हारी समानता करने मे असमर्थ ही रहेगे ॥ २० ॥

हे इन्द्र ! हमारी गोचर भूमि अपने रक्षा साधनो से हमारी रक्षा करते हुए हमारी वृद्धि करो ॥ २१ ॥

सूक्त (९३)

(ऋषि—प्रगाथ, देवजामय । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

उत् त्वा मन्दन्तु स्तोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः ।
अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥ १ ॥
पदा पणाँरराधसो नि बाधस्व महाँ असि ।
नहि त्वा कश्चन प्रति ॥ २ ॥
त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम् ।
त्वं राजा जनानाम् ॥ ३ ॥
ईङ्खयन्तीरपस्युव इन्द्रं जातमुपासते ।
भेजानासः सुवीर्यम् ॥ ४ ॥
त्वमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः ।
त्वं वृषन् वृषेदसि ॥ ५ ॥
त्वमिन्द्रासि वृत्रहा व्यन्तरिक्षमतिरः ।
उद् द्यामस्तभ्ना ओजसा ॥ ६ ॥
त्वमिन्द्र सजोषसमर्कं बिभर्षि बाह्वोः ।
वज्रं शिशान ओजसा ॥ ७ ॥

त्वमिन्द्राभिभूरसि विश्वा जातान्योजसा ।
स विश्वा भुव आभवः ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! हमारी यह स्तुति तुम्हें प्रसन्नता प्रदान करने वाली हो। तुम ब्रह्म द्वेषियो को नष्ट करो और हमें धन दो ॥ १ ॥

हे वज्रिन ! पणियों के धन को हस्तगत कर उन्हें नष्ट कर डालो। तुम महान हो तथा तुम्हारी कोई भी समता नहीं कर सकता ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुम निष्पन्न लोकों के तथा मनुष्यो के अधिपति हो ॥ ३ ॥

जल की इच्छा करती हुई और श्रेष्ठ वीर्य से युक्त हुई औषधियाँ पैदा होते ही इन्द्र की उपासना करती है ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! तुम काम्यवर्षक अपने धर्षक ओज सहित प्रकट हुए हो ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! तुम अन्तरिक्ष को पार करने मे पूर्ण सामर्थ्यवान हो वहाँ तुम वृत्रासुर का संहार करते हो। तुम्हारा तेज चकित करने वाला है जिससे द्युलोक स्थिर है ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! तुम प्रीतिकर मन्त्र के धारण करने के बाद उग्र वज्र को अपने तेज से धारण करते हो ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! सभी उत्पन्न होने वाले पदार्थों को तुम अपनी शक्ति से वंश में करते हो। अतः समस्त शक्तियो को अपने अधीन करो ॥ ८ ॥

सूक्त (८४)

(ऋषि—गृत्स० । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप् जगती)

आ यात्विन्द्रः स्वपतिर्मदाय यो धर्मणा तूतुजानस्तुविष्मान् ।

प्रत्यक्षाणो अति विश्वा सहांस्यपारेण महता वृष्ण्येन ॥ १ ॥
सुष्ठामा रथः सुयमा हरी ते मिम्यक्ष वज्रो नृपते गभस्तौ ।
शीभं राजन्त्सुपथा याह्यर्वाङ वर्धाम ते
पपुषो वृष्ण्यानि ॥ २ ॥
एन्द्रवाहो नृपतिं वज्रबाहुमुग्रमुग्रासस्तविषास एनम् ।
प्रत्वक्षसं वृषभं सत्यशुष्ममेमस्मत्रा सधमादो वहन्तु ॥ ३ ॥
एवा पतिं द्रोणसाचं सचेतसमूर्ज स्कम्भं धरुण
आ वृषायसे ।
ओजः कृष्व सं गृभाय त्वे अप्यसो यथा
केनिपानामिनो वृधे ॥ ४ ॥
गमन्नस्मे वसून्या हि शंसिषं स्वाशिषं भरमा याहि सोमिनः ।
त्वमीशिषे सास्मिन्ना सत्सि बर्हिष्यनाधृष्या तव
पात्राणि धर्मणा ॥ ५ ॥
पृथक् प्रायन् प्रथमा देवहूतयोऽकृण्वत श्रवस्या नि दुष्टरा ।
न ये शेकुर्यज्ञियां नावमारुहमीर्मैव ते न्यविशन्त केपयः ॥ ६ ॥
एवैवापागपरे सन्तु दूढ्यो ऽश्वा येषां दुर्युज आयुयुज्रे ।
इत्था ये प्रागुपरे सन्ति दावने पुरूणि यत्र
वयुनानि भोजना ॥ ७ ॥
गिरींरज्रान् रेजमानां अधारयद् द्यौः
क्रन्ददन्तरिक्षाणि कोपयत् ।
समीचीने धिषणे वि ष्कभायति वृष्णः पीत्वा मद
उक्थानि शंसति ॥ ८ ॥
इमं बिभर्मि सुकृतं ते अङ्कुशं येनारुजासि मघवञ्छफारुजः ।
अस्मिन्त्सु ते सवने अस्त्वोक्यं सुत इष्टौ
मघवन् बोध्याभगः ॥ ९ ॥

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥ १० ॥
बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो
वरिवः कृणोतु ॥ ११ ॥

जो इन्द्र धन के स्वामी हैं, धर्म से त्वरावान है, वे हर्ष के निमित्त पदार्पण करें और वही अपने बल से शत्रुओं प्रत्येक प्रकार से नष्ट करें ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुम अपने कर म वज्र को धारण करते हो । तुम्हारे अश्व सब प्रकार से तुम्हारे वश मे है । तुम्हारे रथ मे आसीन होने का स्थान उत्कृष्ट हैं अत द्युलोक से से सुन्दर श्रेष्ठ पथ द्वारा पदार्पण करो और हम तुम्हारे सोम पान की कामना वाली शक्ति को प्रवृद्ध करते हैं ॥ २ ॥

हमारे इस यज्ञ स्थान मे परमपराक्रमी, महान, वज्रधारी विकराल शत्रुओं को नष्ट करने मे समर्थ सत्यशील काम्य वर्षक इन्द्र को इन्द्र के अश्व लेकर आवें ॥ ३ ॥

हे ऋत्विज ! ज्ञानी, बली द्रोण पात्र से भली भाँति सुसगत होने वाले स्कम को जल म खीचो । मैं केनिपानो को बढाने के लिए तुम में प्रविष्ट हूँ । तुम मुझे शक्ति प्रदान करो और भलीभाँति आश्रय दो ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! इस स्तवन करने वाले को शुभाशीर्वाद दो एव उसे सुन्दर धनो मे प्रतिष्ठित करो । हे स्वामी इस सोमयुत मे पधार कर इस कुशासन पर आसीन होओ । तुम्हारे पात्र धारण शक्ति के कारण अना घृष्य हैं ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! जो अपने ज्ञान और कर्मानुसार देवयान आदि मार्गों से गमन करने की इच्छा रखते हैं जो सर्व साधारण को

कष्ट प्रदायक देवहुति आदि कर्मो को कराते हैं, परन्तु तुम्हारे अनुग्रह के आभाव मे वे यज्ञ रूप नौकापर आरूढ नहीं हो पाते अन साधारण कर्मों को करते हुए मृत्यलोक मे ही बने रहते हैं ॥ ६ ॥

जिन अश्वो को दुर्युज योजित करते है वे 'अपाक' रहें। जो दाता को अनेक खाद्य पदार्थो से युक्त है वे मेघ बनें ॥ ७ ॥

सोम पान से हर्षोन्मत्त हो इन्द्र पर्वतो का धारण करते, अन्तरिक्ष के पदार्थों को कुपित करते और स्वर्ग लोक को कुन्दित करते हैं। द्यावा पृथ्वो को विक्रमण करते हुए उनयो को श्रेष्ठता प्रदान करते हैं ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! मैं तुम्हारे अकुश को धारण करता हूँ तुम उसके द्वारा नख वाले पीडक प्राणियो को नष्ट करते हो। इस सवन मे तुम पूजनीय होकर सोम के सस्कारित होने पर धन के ज्ञाता हो। ६ ॥

हे अनेको द्वारा आह्वानीय इन्द्र। हम यजमान तुम्हारे द्वारा दी गई गौओ से निधनता को पार कर जाँय और तुम्हारे प्रदत्त अन्न स हम अपने बन्धु बान्धवो की क्षुधा शमन करें। हम अपने बल से शत्रुओं पर विजय प्राप्त करें और अपने समान पुरुषो मे श्रेष्ठ पद प्राप्त कर धनवान हो ॥ १० ॥

पूर्व दिशा से आते हुए हिंसक शत्रु से इन्द्र हमारा रक्षण करें और हमे धन दे। पश्चिम उत्तर और दक्षिण दिशा को ओर से आते हुए हिंसक शत्रुओ से वृहस्पति हमारी रक्षा करे ॥ ११ ॥

सूक्त (६५)

(ऋषि—गृत्समदः, सुदाः । देवता—इन्द्रः । छन्द—अष्टि,, शक्वरी)

त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिर तुविशुष्मस्तृपत् सोममपिबद् विष्णुना सुत यथावशत् ।
स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरु सैनं सश्चद् देवो देव सत्यमिन्द्र सत्य इन्दु. ॥ १ ॥
प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत ।
अभीके चिदु लोककृत् सगे समत्सु वृत्रहास्माकं बोधि चोदिता नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ २ ॥
त्वं सिन्धूंरवासृजोऽधराचो अहन्नहिम् ।
अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्वं पुष्यसि वार्यं त त्वा परि ष्वजामहे नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ ३ ॥
वि षु विश्वा अरातयोऽर्यो नशन्त नो धियः ।
अस्तासि शत्रवे वधं यो न इन्द्र जिघांसति या ते रातिर्ददिर्वसु नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ ४ ॥

वे इन्द्र त्रिकद्रुक सोम यागों में सोम पान करते और जौ आदि के मिश्रण से तृप्त होते हैं । विष्णु द्वारा संस्कारित सोम को अपने अधीन करते है क्यों कि वह सोम उन्हे हर्षोन्मत बनाता है । १ ॥

इन्द्र के बल तथा उनकी उपासना करो । वे संग्राम में शत्रुओं का विनाश करते हैं । अन्य पुरुषों की धनुषों पर प्रत्यंचाऐं न चढ पावें । यह प्रेरणा के श्रोत इन्द्र हमारी स्तुति को समझ गये हैं ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुमने मेघ को चीर कर नदियों को दक्षिण की

और प्रवाहमान बनाया है। तुम समस्त वरणीय पदार्थों को पुष्टि प्रदान करते और शत्रुओ का सहार करते हो। हम तुम्हारा आलिंगन करते हैं। अन्य पुरुषो की धनुषो पर प्रत्यंचाऐ न चढ पावे ॥ ३ ॥

हे स्वामिन्! हमारे समस्त शत्रओ की वृद्धियाँ नष्ट न हो। जो शत्रु हमे हिंसित करने की कामना करता है उस मरण साधन रूप वज्र का प्रहार करो। अपना धन हमे दो। अन्य पुरुषो की प्रत्यचाऐ उनके धनुषो पर न चढ पावे ॥ ४ ॥

सूक्त (८६)

(ऋषि—पूरण प्रभृति । देवता—इन्द्र प्रभृति । छन्द—त्रिष्टुप् जगती अनुष्टुप, उष्णिक् बृहती, पंक्ति)

तीव्रस्याभिवयसो अस्य पाहि सर्वरथा वि हरी इह मुञ्च ।
इन्द्र मा त्वा यजमानासो अन्ये नि रीरमन्
तुभ्यमिमे सुतास ॥ १ ॥
तुभ्य सुतास्तुभ्यमु सोत्वासस्त्वा गिर॰ श्वात्र्या आ ह्वयन्ति ।
इन्द्रेदमद्य सवन जुषाणो विश्वस्य विद्वाँ इहा
पाहि सोमम् ॥ २ ॥
य उशता मनसा सोममस्मै सवहृदा देवकाम सुनोति ।
न गा इन्द्रस्तस्य परा ददाति प्रशस्तमिच्चारुमस्मै
कृणोति ॥ ३ ॥
अनस्पष्टो भवत्येषो अस्य यो अस्मै रेवान् न सुनोति सोमम् ।
निररत्नौ मघवा त दधाति ब्रह्मद्विषो हन्त्यनानुदिष्ट ॥ ४ ॥
अश्वायन्तो गव्यन्तो वाजयन्तो हवामहे त्वोपगन्तवा उ ।
आभूषन्तस्ते सुमतौ नवायां वयमिन्द्र त्वा शुन हुवेम ॥ ५ ॥

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात् ।
ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् ॥ ६ ॥
यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव ।
तमा हरामि निऋतेरुपस्थादस्पार्शमेनं शतशारदाय ॥ ७ ॥
सहस्राक्षेण शतवीर्येण शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ।
इन्द्रो यथैनं शरदो नयात्यति विश्वस्य दुरितस्य पारम् ॥ ८ ॥
शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्ताञ्छतमु वसन्तान् ।
शतं त इन्द्रो अग्निः सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ॥ ९ ॥
आहार्षमविदं त्वा पुनरागाः पुनर्णव ।
सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम् ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! तुम इस हवि रूप अन्न वाले यजमान के रथियों के रथ के रक्षक बनो। हे इन्द्र ! सोमों को निष्पन्न किया जा चुका है अतः अपने अश्वों को छोड़कर यहां पधारो। अन्य यजमानों के यहाँ रमण न करो ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! यह सोम तुम्हारे ही लिए सस्कारित हुए हैं एवं यह स्तुतियां तुम्हारा ही आह्वान कर रही हैं। तुम सबको जानने वाले हो। हमारे यज्ञ में पधार कर इस सोमरस का पान करो ॥ २ ॥

जो देवताओं की कामना करने वाला पुरुष सोम को अभिषुत करता है उसके स्तोत्रों को तुम ग्रहण कर लेते हो और सुन्दर वाणी द्वारा उसे तृप्त करते हो ॥ ३ ॥

जो व्यक्ति इस सोम को निष्पन्न नहीं करता वह

इन्द्र के प्रहार के योग्य होता है ब्रह्म द्वेषी और यज्ञ न करने वाले को इन्द्र नष्ट कर देते हैं ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! हम अश्व धेनु और अन्न के अभिलाषी तुम्हारे आश्रय के निमित्त नूतन सद्बुद्धि से युक्त होकर तुम्हारा आह्वान करते हैं । ५ ॥

हे रोगिन ! मैं तेरे जीवन के निमित्त हवि अर्पित करता हुआ तुझे क्षये आदि रोगों से मुक्त करता हूँ । हे इन्द्राग्नि ! यदि इसे राक्षसी ने वस्त्रन ग्रस्य कर लिया हो तो उसके पाप दोष से इसे मुक्ति दिलाओ ।। ६ ॥

यह अवनीति को प्राप्त हुआ है तथा इसकी आयु क्षीण होगई है तथा यह मृत्यु के निकट जा पहुँचा है । फिर भी मैं इसे पाप देवता निर्ऋति की गोद से वापिस लौटाता हूँ । इसे शतायुष्य बनाने के लिए मैंने इसको छुआ है ॥ ७ ॥

मैं इस रोगी को सहस्त्रों सूक्ष्म दृष्टियाँ सैकड़ों वीर्यों और शतायुष्य होने के लिए यज्ञ द्वारा मृत्यु से छीन लाया हूँ । इसे इन्द्र जीवन पर्यन्त पापों से पार लगावे ॥ ८ ॥

हे रोगी ! तू शतायुष्य होकर वृद्धि को प्राप्त हो । सौ हेमन्तों और वसन्तों तक जीवित रह । इन्द्र अग्नि सविता वृहस्पति तुझे सौ वर्ष तक जीवन यापन करने वाला बनावें । इस यज्ञ द्वारा मैं तुझे शतायु करके मृत्यु से छीन लाया हूँ ॥ ९ ॥

हे रोगिण ! तू वापिस आ । तू पुनः नूतन जीवन धारण कर । इस यज्ञ द्वारा मैंने तेरी दर्शन शक्ति और दीर्घायु प्राप्त करली है ॥ १० ॥

ब्रह्मणाग्निः संविदानो रक्षोहा बाधतामितः ।
अमीवा यस्ते गर्भं दुर्णामा योनिमाशये ।। ११ ॥

यस्ते गर्भममीवा दुर्णामा योनिमाशये ।
अग्निष्टं ब्रह्मणा सह निष्क्रव्यादमनीनशत् ॥ १२ ॥
यस्ते हन्ति पतयन्तं निषत्स्नुं यः सरीसृपम् ।
जातं यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥ १३ ॥
यस्त ऊरू विहरत्यन्तरा दम्पती शये ।
योनिं यो अन्तरारेढि तमितो नाशयामसि ॥ १४ ॥
यस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते ।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥ १५ ॥
यस्त्वा स्वप्नेन तमसा मोहयित्वा निपद्यते ।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥ १६ ॥
अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि ।
यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते ॥ १७ ॥
ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात् ।
यक्ष्मं दोषण्यमंसाभ्यां बाहुभ्यां वि वृहामि ते ॥ १८ ॥
हृदयात् ते परि क्लोम्नो हलीक्ष्णात् पार्श्वाभ्याम् ।
यक्ष्मं मतस्नाभ्यां प्लीह्नो यक्नस्ते वि वृहामसि ॥ १९ ॥
आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोरुदरादधि ।
यक्ष्मं कुक्षिभ्यां प्लाशेर्नाभ्या वि वृहामि ते ॥ २० ॥
ऊरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम् ।
यक्ष्मं भसद्यं श्रोणिभ्यां भासदं भंससो वि वृहामि ते ॥ २१ ॥
अस्थिभ्यस्ते मज्जभ्यः स्नावभ्यो धमनिभ्यः ।
यक्ष्मं पाणिभ्यामङ्गुलिभ्यो नखेभ्यो वि वृहामि ते ॥ २२ ॥
अङ्गेअङ्गे लोम्निलोम्नि यस्ते पर्वणिपर्वणि ।
यक्ष्मं त्वचस्यं ते वयं कश्यपस्य वीबर्हेण विष्वञ्चं
वि वृहामसि ॥ २३ ॥

अपेहि मनसस्पतेप क्राम परश्चर ।
परो निऋरया श्रा चक्ष्व बहुधा जीवतो मनः ।। २४ ।।

अग्नि देव ! राक्षसो का सहार करने वाले हैं । वे मंत्र से सयुक्त हुए तेरे कुत्सित रोगों को नष्ट करें । वह रोग तेरे गर्भाशय मे व्याप्त हो रहा है ।। ११ ।

जो दूषित रोग तेरे गर्भाशय मे व्याप्त हो रहा है उसे अग्निदेव मत्र शक्ति से नष्ट करें ।। १२ ।।

तेरे गिरते हुए गर्भ को जो नष्ट करने की इच्छा करता है हम उसको नष्ट करते है ।। १३ ।।

जिस रोग से तुम दम्पत्ति पीडित हो, जो रोग तेरी योनि और उरुओं मे घुसा हुआ है हम उसे नष्ट करते हैं ।। १४ ।।

जो राक्षस पति, उपपति या भाई बनकर आता हुआ तेरे गर्भस्थ शिशु का हनन करना चाहता है उसे हम संहार करते हैं ।। १५ ।।

जो तुझे स्वप्न मे या अन्धकार मे प्राप्त होकर तेरी सतान का नष्ट करना चाहता है हम उसका संहार करते हैं ।। १६ ।।

मैं तेरे नेत्र नासिका कान ठोडी आदि से शीर्ष और यक्ष्मादि रोगो को मस्तक और जीभ से बाहर निकालता हूँ ।। १७ ।।

मैं तेरी हड्डियो से, नाडियो से, कन्धो और बाहुओं से तेरे क्षय रोग को विनष्ट करता हूँ ।। १८ ।।

हे रोगिन ! मैं तेरे हृदय से यक्ष्मा को निकालता हूँ । हृदय के निकटस्थ क्लो मे से हलीक्ष्य से, पित्ताधारो पार्श्वों प्लीहा यकृत तथा उदर से भी तेरे यक्ष्मा रोगको विनष्ट करता हूँ ।। १९ ।।

हे क्षयग्रस्त रोगिन ! तेरी आंतो, गुदा उदर दोनों कोखों प्लाशि तथा नाभि से तेरे क्षय रोग को बाहर निकाल कर दूर करता हूँ ॥ २० ॥

तेरे उम प्रदेश जानु पांवों के ऊपर तथा आगे के भाग से कमर से, नीचे और गुह्य प्रदेश से तेरे व्याप्त हुए यक्ष्मा रोग को निकाल कर दूर करता हूँ ॥ २१ ॥

मज्जा, अस्थि, सूक्ष्म नाड़ियाँ, स्थूल नाड़ियाँ उंगलियाँ नख तथा तेरे शरीर की सब धातुओं से तेरे यक्ष्मा रोग को निकाल कर हटाता हूँ ॥ २२ ॥

हे रोगिनी ! तेरे सब अंगों सब रोग कूपों और सन्धि स्थलों में व्याप्त यक्ष्मा को हम पृथक करते हैं ॥ २३ ॥

हे रोग ! तू मन को भी अपने अधीन करने वाला है अतः तू दूर हो । इस जीवित प्राणी के मन से दूर होने को निर्ऋति से कह ॥ २४ ॥

सूक्त (९७)

(ऋषि—कलिः । देवता—इन्द्र; । छन्द—प्रगाथः; बृहती)

वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम् ।
तस्मा उ अद्य समना सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते ॥ १ ॥
वृकश्चिदस्य वारण उरामथिरा वयुनेषु भूषति ।
सेमं न स्तोमं जुजुषाण आ गहीन्द्र प्र चित्रया धिया ॥ २ ॥
कद्वन्वस्याकृतमिन्द्रस्यास्ति पौंस्यम् ।
केनो नु कं श्रोमतेन न शुश्रुवे जनुषः परि वृत्रहा ॥ ३ ॥

हे स्तोताओ ! हमने इन्द्र को सोम से पुष्ट किया है । तुम भी हर्षित हो उन्हें अभिषुत अर्पित करो । उन इन्द्र को स्तुतियों द्वारा शोभित करो ॥ १ ॥

इन्द्र का वृक्त शत्रुओ को भगाने वाला है, वह मेढो का मथन करने वाला है। हे इन्द्र ! तुम अपनी उत्कृष्ट बुद्धि द्वारा इस यज्ञ मे पदार्पण कर हमारी स्तुतियो को सुनो ॥ २ ॥

यह किसने नही सुना कि इन्द्र ने वृत्र का सहार किया। इन्द्र सभी पराक्रमो से पूर्ण है ॥ ३ ॥

सूक्त (९८)

(ऋषि—शयु । देवता—इन्द्र । छन्द—बार्हतः, प्रगाथ)

त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारवः ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वा काष्ठास्वर्वतः ॥ १ ॥
स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया मह स्तवानो अद्रिव ।
गामश्वं रथ्यमिन्द्र स किर सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! हम स्तोता अन्न प्राप्ति वाले यज्ञ मे तुम्हारा ही आह्वान करते है। तुम साधु पुरुषो के रक्षक और वृष्टि वर्षक हो। जब कोई घिर जाता है तब तुम्हारा ही आह्वान किया जाता है ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुम हमारे द्वारा उपसित होकर इस विजय की कामना वाले राजा के निमित्त अश्व रथ, धेनु आदि प्रदान करो हे इन्द्र ! तुम अपने कर मे वज्र धारण करने वाले हो ॥ २ ॥

सूक्त (९९)

(ऋषि—मेध्यातिथिः । देवता—इन्द्र । छन्द—बार्हत. प्रगाथ)

अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः ।
समीचीनास ऋभवः समस्वरन् रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ॥ १ ॥
अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्य शवो मदे सुतस्य विष्णवि ।
अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुमने पहले सोमपान किया था उसी भांति सोमपान के लिए ऋभु देवता और रुद्र देवता तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

संस्कारित सोम से हर्षोन्मत्त होने पर वे इन्द्र यजमान को धन और बल से सम्पन्न करते हैं। यह स्तोता उन इन्द्र के गौरव का ही पूर्ववत बखानते हैं ॥ २ ॥

सूक्त (१००)

(ऋषि—नृमेधः । देवता—इन्द्रः । छन्द—उष्णिक्)

अधा होन्द्र गिर्वण उप त्वा कामान् महः ससृज्महे ।
उदेव यन्त उदभिः ॥ १ ॥
वार्ण त्वा यव्याभिर्वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि ।
वावृध्वांसं चिदद्रिवो दिवेदिवे ॥ २ ॥
युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथ उरुयुगे ।
इन्द्रवाहा वचोयुजा ॥ ३ ॥

जैसे जल के आकांक्षी जल में जल को मिश्रित करते हैं, उसी भांति हे इन्द्र ! तुम्हें चाहने वाले पुरुष तुम्हें सोमरूपी जलों से संयुक्त करते हैं ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुम प्रत्येक स्तुति पर अपनी वृद्धि की इच्छा करते हो अतः यह मंत्र तुम्हें जल की भांति प्रवृद्ध करते हैं ॥ २ ॥

युद्ध में जाने वाले इन्द्र के स्तुति गान से मन द्वारा संयुक्त होने वाले इन्द्र के अश्व रथ में योजित होते हैं ॥ ३ ॥

सूक्त (१०१)

(ऋषि—मेध्यातिथि । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् ।

अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ ४१ ॥
अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम् ।
हव्यवाहं पुरुप्रियम् ॥ २ ॥
अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे ।
असि होता न ईड्यः ॥ ३ ॥

वे अग्नि सबके ज्ञाता और होता रूप हैं। वे यज्ञादि कर्मों को श्रेष्ठता प्रदान करते हैं। अतः हम उन अग्नि देव का वरण करते हैं। १ ॥

हव्य वहन करने वाले, अनेकों के प्रिय प्रजापति अग्नि को यजमान आहुति अर्पित करते है अतः हम भी अग्नि को हवि प्रदान करते है। २ ॥

हे अग्ने! ऋत्विज के लिये प्रज्वलित होते हुए तुम हमारे होता हो, अतः देवगणों को हमारे यज्ञ में लाओ ॥ ३ ॥

सूक्त (१०२)

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—अग्निः । छन्द—गायत्री)

ईळेन्यो नमस्यस्तिरस्तमांसि दर्शतः समग्निरिध्यते वृषा ॥ १ ॥
वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववाहनः ।
तं हविष्मन्त ईळते ॥ २ ॥
वृषणं त्वा वयं वृषन् वृषणः समिधीमहि ।
अग्ने दीद्यतं बृहत् ॥ ३ ॥

वे अग्नि देवस्तुतियों और नमस्कारो के योग्य हैं, वे काम्यवर्षक एवं दर्शन करने योग्य हैं। वे अपने धूँऐ को तिरछा करते हुए प्रदीप्त होते हैं ॥ १ ॥

देवताओं को वहन करने वाले अश्व के समान, वे बल वर्षक अग्नि प्रज्वलित होते हैं तब हवि दाता यजमान उन अग्नि की उपासना करते हैं ॥ २ ॥

हे वृपन ! हे अग्ने ! हम हविवधक तुम फलवर्धक क भली भांति प्रदीप्त करते है। अतः तुम भली भांति प्रज्वलित करो ॥ १ ॥

सूक्त (१०३)

(ऋषि—सुदीतिपुरमीढौ, भर्गः । देवता—अग्निः छन्द—बृहती)

अग्निमीळिष्वावसे गाथाभिः शीरशोचिषम् ।
अग्निं राये पुरमीढ श्रुतं नरोऽग्निं सुदीतये छर्दिः ॥ १ ॥
अग्न आ याह्यग्निभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।
आ त्वामनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं बर्हिरासदे ॥ २ ॥
अच्छा हि त्वा सहसः सूनो अङ्गिरः स्रुचश्चरन्त्यध्वरे ।
ऊर्जो नपातं घृतकेशमीमहेऽग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ॥ ३ ॥

हे मनुष्य ! अग्नि की गाथाओं द्वारा तू अन्न प्राप्ति लिए अग्नि की स्तुति कर। वह अग्नि धन देने के लिए प्रसिद्ध दीप्त एवं शोभनीय हैं तू उन्हें ही पूज। १ ॥

हे अग्ने ! हम होता तुम्हें आहूत करते हैं, तुम अपनी सभी शक्तियों सहित पधारो। प्रयता हविष्मती बर्हि तुम से सुसंगत हो ॥ २ ॥

हे अग्ने ! तुम अंगिरा गोत्रीय हो एव जल के पुत्र रूप हो। यज्ञ के श्रुच तुम्हारे सामने घूमते हैं। सर्वदा नूतन एवं पराक्रमी अग्नि का यज्ञ मे हम भी स्तुति करते हैं ॥ ३ ॥

सूक्त (१०४)

(ऋषि—मेध्यातिथिः नृमेधः । देवता—इन्द्रः । छन्द—प्रगाथ)

इमा उत्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम ।

पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ॥ १ ॥
अय सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्रइव पप्रथे ।
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥ २ ॥
आ नो विश्वासु हव्य इन्द्र समत्सु भूषतु ।
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहा परमज्या ऋचीषमः ॥ ३ ॥
त्वं दाता प्रथमो राधसामस्यसि सत्य ईशानकृत ।
तुविद्युम्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! तुम असीम वैभव से युक्त हो हमारी अग्नि के समान पवित्र वाणियाँ तुम्हें प्रवृद्ध करें। हे स्तोताओ ! तुम इन्द्र के निमित्त स्तोत्रो का पाठ करो ॥ १ ॥

जल द्वारा वृद्धि को प्राप्त समुद्र वत यह अग्नि ऋषियो को हवियों से सहस्त्र गुणा वृद्धि को प्राप्त होते हैं। मैं इन अग्नि की महिमा का यथोचित वर्णन कर रहा हूँ। इन अग्नि का बल यज्ञो मे देखने योग्य होता है ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुम हवि के योग्य हो। तुम हमको सभी यज्ञों में सुशोभित करो। वह इन्द्र वृत्र के हनन कर्त्ता हैं। वह ऋचाओ के अनुकूल अपना रूप प्रकट करते हैं। वे इन्द्र हमारे सवनो को हवियो को और मन्त्रो को शोभित करें ॥ ३ ॥

हे अग्ने ! तुम धन दाता हो एव प्रभुता प्रदायक हो। तुम जल के पुत्र को हम प्रज्वलित करते हुए वरण करते हैं ॥ ४ ॥

सूक्त (१०५)

(ऋषि—नृमेधः, पुरुहन्मा । देवता—इन्द्र। छन्द—बार्हतः प्रगाथ, बृहती)

त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।

अशस्तिहा जनिता विश्वतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥ १ ॥
अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा ।
विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि ॥ २ ॥
इत ऊती वो अजरं प्रहेतारमप्रहितम् ।
आशुं जेतारं हेतारं रथीतममतूर्तं तुग्र्यावृधम् ॥ ३ ॥
यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठो यो वृत्रहा गृणे ॥ ४ ॥
इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि ।
हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो महो दिवे न सूर्यः ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! तुम अशस्ति के नाश करने वाले कल्याण प्रद, मरणात्मक युद्धो मे प्रतिस्पर्धा करने वाले हो । तुम स्वय सबसे त्वरा करते हो ॥ १ ॥

तुम्हारे त्वरावान बल के पीछे द्यावा पृथ्वी उसी प्रकार गमन करते हैं जैसे पुत्र के पीछे माता पिता पहुँचते हैं । जब तुम वृत्रासुर सहार मे व्यस्त थे तब उसको द्वेष वृत्तिया तुम्हें विनष्ट करने की इच्छा कर रही थी ॥ २ ॥

यहाँ से प्रेरित होने वाली रक्षक शक्तिया तुम्हें अप्रहित अजर, रथितम, अतूर्त, तुग्यवृध, प्रहेता, हेला और द्रुतकर्मा बना रही थी ॥ ३ ॥

मानवो के राजा सेनाओं को लाँघने वाले, वृत्रासुर सहारक ज्येष्ठ और रथों द्वारा मंत्रो के सामने जाने वाले जो हैं, उनका स्तवन करता हूँ ॥ ४ ॥

हे पुरुहन्मन ! उन इन्द्र की सत्ता अंतरिक्ष और स्वर्ग मे भी है । क्रीडाहेतु हाथ मे लिया हुआ उनका वज्र सूर्य के समान दर्शनीय है । इस यज्ञ मे तुम उन इन्द्र को ही सुप्रतिष्ठित करो ॥ ५ ॥

सूक्त (१०६)

(ऋषि—गोपूक्त्यश्वसूक्तिनौ । देवता—इन्द्रः । छन्द—उष्णिक्)

तव त्यदिन्द्रियं बृहद् तव शुष्ममुत क्रतुम् ।
वज्रं शिशाति धिषणा वरेण्यम् ॥ १ ॥
तव द्यौरिन्द्र पौंस्यं पृथिवी वर्धति श्रव. ।
त्वामापः पर्वताश्च हिन्विरे ॥ २ ॥
त्वां विष्णुर्बृहन् क्षयो मित्रो गृणाति वरुण ।
त्वां शर्धो मदत्यनु मारुतम् ॥ ३ ॥

तुम्हारा इन्द्रात्मक महान पराक्रम बुद्धि द्वारा वरणीय है। वह कर्म रूप वज्र को तीक्ष्ण करता है ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! आकाश तुम्हारा वीर्य है जल और पवत तुम्हे प्रेरित करते है। पृथ्वी तुम्हारे द्वारा ही अन्न की वृद्धि करती है । २ ॥

हे इन्द्र ! सूर्य, वरुण, यम और विष्णु तुम्हारी प्रशसा करते हैं। वायु का अनुगत बल तुम्हे प्रसन्न करता है ॥ ३ ॥

सूक्त (१०७)

(ऋषि—वत्स, बृहद्दिवोऽथर्वा ब्रह्मा, कुत्सः । देवता—इन्द्र सूर्यः । छन्द—गायत्री, त्रिष्टुप, पंक्तिः)

समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः ।
समुद्रायेव सिन्धव ॥ १ ॥
ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत् समवर्तयत् ।
इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥ २ ॥
वि चिद् वृत्रस्य दोधतो वज्रेण शतपर्वणा ।
शिरो बिभेद वृष्णिना ॥ ३ ॥

सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यदेनं मदन्ति विश्व ऊमाः ॥ ४ ॥
वावृधानः शवसा भूय : शत्रुर्दासाय भियसं दधाति ।
अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि स ते नवन्त प्रभृता मदेषु ॥ ५ ॥
त्वे क्रतुमपि पृञ्चन्ति भूरि द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः ।
स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा समदः सु मधु मधुनाभि योधीः ॥ ६ ॥
यदि चिन्नु त्वा धना जयन्तं रणेरणे अनुमदन्ति विप्राः ।
ओजीयः शुष्मिन्त्स्थिरमा तनुष्व मा त्वा दभन् दुरेवासः कशोकाः ॥ ७ ॥
त्वया वय शाशद्महे रणेषु प्रपश्यन्तो युधेन्यानि भूरि ।
चोदयामि त आयुधा वचोभिः सं ते शिशामि ब्रह्मणा वयांसि ॥ ८ ॥
नि तद् दधिषेऽवरे परे च यस्मिन्नाविथावसा दुरोणे ।
आ स्थापयत मातरं जिगत्नुमत इन्वत कर्वराणि भूरि । ९ ॥
स्तुष्व वर्ष्मन् पुरुवर्त्मानं समृभ्वाणमिनतममाप्त्यमाप्त्यानाम् ।
आ दर्शति शवसा भर्योजाः प्र सक्षति प्रतिमानं पृथिव्याः ॥ १० ॥

समुद्र के लिए जैसे नदियाँ झुककर चलती हैं, उसी भाँति इस कर्मशील इन्द्र के लिए समस्त प्रजायें नमन करती है ॥ १ ॥

द्यावा पृथ्वी को इन्द्र चर्म के समान आवृत कर लिया था, इन्द्र का यह महान पराक्रम था ॥ २ ॥

क्रोधवन्त वृत्र के सिर को इन्द्र ने अपने शतपर्वा एवं रक्त वर्षक वज्र द्वारा छिन्न-भिन्न कर डाला था ॥ ३ ॥

यह इन्द्र पराक्रमी और धनवान है, समस्त भुवनो मे परम श्रेष्ठ हैं। उत्पन्न होते ही शत्रुओं का सहार करते है। इनके प्रकट होते ही इनको रक्षक शक्तियाँ बलवान हो उठती हैं ॥ ४॥

स्थावर जगम जगत ब्रह्म मे लीन हो जाता है। बल द्वारा प्रवृद्ध शत्रु सेवकों को कष्ट देता है। युद्धो मे वेतन भोगी सैनिक उन इन्द्र की ही याचना करते हैं ॥ ५ ॥

यह वीर जन्म, सस्कार और युद्ध की दीक्षा ग्रहण करने के कारण द्विजन्मा कहलाते है। उन वीरो को सुस्वादु पदार्थों से सतुष्ट करो ॥ ६ ॥

हे वीर ! तुम प्रत्येक युद्ध मे धनो को जीतते हो। यदि ब्राह्मण तुम्हारा स्तवन करे तो पराक्रमी बनाओ। सुख के अवसर पर दुखदायी पुरुष तुम्हे प्राप्त न हो ॥ ७ ॥

तुम्हारे द्वारा ही युद्ध भूमि मे हम विपक्षियो का सहार कराते हैं। मैं अपने तप द्वारा सिद्ध हुए वचनो से तुम्हारे शस्त्रों को प्रेरित करता और पक्षी के समान वेगवान तुम्हारे बाणो को मन्त्रो के द्वारा तीक्ष्ण करता हूँ ॥ ८ ॥

जिस ग्रह मे अन्न द्वारा पोषण हुआ है जिसे श्रेष्ठ प्राणियो ने धारण किया है, उस घर मे माता द्वारा शक्ति स्थापित हो, फिर इस गृह को समस्त शोभनीय पदार्थो से सपन्न करो ॥ ९ ॥

हे स्तोता ! परम तेजस्वी, विचरणशील, श्रेष्ठ स्वामी इन्द्र का स्तवन करो। यह पृथ्वी रूपी इन्द्र इस यज्ञ स्थान में व्याप्त हो रहे हैं ॥ १० ॥

इमा ब्रह्म बृहद्दिव. कृणवदिन्द्राय शूषमग्रिय. स्वर्षा ।

महो गोत्रस्य क्षयति स्वराजा तुरश्चिद् विश्वमर्णवत् तपस्वान् ॥ ११ ॥

एवा महान् बृहद्दिवो अथर्वावोचत् स्वां तन्वमिन्द्रमेव ।
स्वसारौ मातरिभ्वरी अरिप्रे हिन्वन्ति चैने शवसा वर्धयन्ति च ॥ १२ ॥

चित्रं देवानां केतुरनीकं ज्योतिष्मान् प्रदिशः सूर्य उद्यन् ।
दिवाकरोऽति द्युम्नस्तमांसि विश्वातारीद् दुरितानि शुक्रः ॥ १३ ॥

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्ने ।
आप्राद् द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ १४ ॥

सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात् ।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम् ॥ १५ ॥

यह नृप स्वर्ग के स्वामी इन्द्र के निमित्त स्तोत्र पाठ करता हुआ स्वर्ग की इच्छा करता है। वह इन्द्र मेघ के जल की वर्षा करते हुए संसार को जल से तुष्ट करते हैं ॥ ११ ॥

महर्षि अथर्वा ने अपने को इन्द्र मानते हुए कहा—पाप रहित मातरिभ्वरी इसे हर्षित करती हुई बल वृद्धि करती है ॥ १२ ॥

यह रश्मिवान इन्द्रवत इन्द्र सब दिशाओं की ओर उठते हुए अपने प्रकाश से दिन को प्रकट करते हैं और सब अन्धकारों और पापों से पार होते हैं ॥ १३ ॥

किरणों का पूजन योग्य समूह मित्र वरुण और अग्नि के चक्षु रूप से प्रकट हो रहा है। यह सूर्य ही प्राणियों के आत्मा

है और अपनी महिमा से द्यावा पृथ्वी और अन्तरिक्ष को सम्पन्न करते हैं ॥ १४ ॥

पति के पत्नी रूप के पीछे जाने के समान सूर्य भी इन उषाओं के पीछे गमन करते है। उस समय सज्जन पुरुष देव कार्य मे दिन को लगाते हुए सूर्य के निमित्त श्रेष्ठ कर्मो को करते हैं ॥ १५ ॥

सूक्त (१०८)

(ऋषि—नृमेध । देवता—इन्द्र । छन्द—गायत्री, उष्णिक्)

त्व न इन्द्रा भर ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे ।
आ वीर पृतनाषहम् ॥ १ ॥
त्व हि न पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ ।
अधा ते सुम्नमीमहे ॥ २ ॥
त्वां शुष्मिन् पुरुहूत वाजयन्तमुप ब्रुवे शतक्रतो ।
स नो रास्व सुवीर्यम् ॥ ३ ॥

यह शतकर्मा इन्द्र ! हमको धन बल और शत्रुओं को पराजित करने वाली सन्तान प्रदान करो ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुम हमारे माता पिता हो, अत हम तुमसे सुख की याचना करते है ॥ २ ॥

हे इन्द्र तुम हविरूप अन्न की इच्छा करने वाले हो। मैं तुम्हारा स्तवन करता हूँ। मुझे वीरो से युक्त धन दो ॥ ३ ॥

सूक्त (१०९)

(ऋषि—गोतम. । देवता—इन्द्रः । छन्द—पंक्ति)

स्वादोरित्था विषूवतो मध्व. पिबन्ति गौर्यः ।

या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभसे वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ १ ॥
ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।
प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकं वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ २ ॥
ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः ।
व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ ३ ॥

स्तोत्र रूप वाणियाँ विपुवत यज्ञ के स्वादिष्ट मधु का इस भाँति पान करती हैं, जिससे रात्रियों पर्यन्त इन्द्र से सुसगत होकर वह इन्द्र को आनन्दित करती रहें। हे यजमान! इसके पश्चात तू अपने राज्य पर सुशोभित होगा ॥ १ ॥

पृश्नियाँ इस सोम को पका रही हैं। इन्द्र की यह गौयें इन्द्र के बाणों और वज्र को प्रेरित करती है। इन रात्रियों के पश्चात् हे यजमान! तू अपने राज्य पर सुशोभित होगा ॥ २ ॥

वाणियाँ हवि के द्वारा इन्द्र की उपासना करती है और यजमान के महान व्रत इन्द्र से संयुक्त होते हैं। इन रात्रियों के बाद हे यजमान! तू अपने राज्य पर सुशोभित होगा ॥ ३ ॥

सूक्त (११०)

(ऋषि—श्रुतकक्षः सुकक्षो वा । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

इन्द्राय मद्वने सुतं परि ष्टोभन्तु नो गिरः ।
अर्कमर्चन्तु कारवः ॥ १ ॥
यस्मिन् विश्वा अधि श्रियो रणन्ति सप्त संसदः ।
इन्द्रं सुते हवामहे ॥ २ ॥

त्रिकद्रुकेषु चेतन देवासो यज्ञ मत्नत ।
तमिद् वर्धन्तु नो गिरः ॥ ३ ॥

सेवा के योग्य इन यज्ञ मे संस्कारित सोम से युक्त हमारी वाणियां स्तवन करती हुई इन्द्र की आराधना करें ॥ १ ॥

सब विभूतमयी सभायें जिन्हे प्राप्त होती है, उन इन्द्र को सोम के अभिषुत होने पर आह्वान करते हैं ॥ २ ॥

इस ज्ञान प्रद यज्ञ को त्रिकद्रुको ने प्रारम्भ किया, उसे हमारी वाणियां प्रवृद्ध करें ॥ ३ ॥

सूक्त (१११)

(ऋषि - पर्वत । देवता—इन्द्रः । छन्द—उष्णिक्)

यत् सोममिन्द्र विष्णवि यद्वा घ त्रित आप्त्ये ।
यद्वा मरुत्सु मन्दसे समिन्दुभिः ॥ १ ॥
यद्वा शक्र परावति समुद्रे अधि मन्दसे ।
अस्माकमित् सुते रणा समिन्दुभिः ॥ २ ॥
यद्वासि सुन्वतो वृधो यजमानस्य सत्पते ।
उक्थे वा यस्य रण्यसि समिन्दुभि ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! त्रित, यज्ञ आपत्य और मरुत मे जो तुम प्रसन्न होते हो, उसका कारण जल मिश्रित सोम ही है ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुम दूरस्थ समुद्र अथवा हमारे यज्ञ मे आनन्द प्राप्त करते हो, वह जल युक्त सोम से ही आनन्दित होते हो ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुम सोम के अभिषुतकर्ता की वृद्धि करने वाले हो, जिसके उक्थ्य में तुम रमण करते हो, वह जलमिश्रित सोम द्वारा ही करते हो ॥ ३ ॥

सूक्त (११२)

(ऋषि– सुकक्ष । देवता– इन्द्रः । छन्द– गायत्री)

यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य ।
सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥ १ ॥
यद्वा प्रवृद्ध सत्पते न मरा इति मन्यसे ।
उतो तत् सत्यमित् तव ॥ २ ॥
ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे ।
सर्वांस्तां इन्द्र गच्छसि ॥ ३ ॥

हे सूर्यात्मक इन्द्र ! तुम वृत्रासुर के संहारक हो। जिस क्षण तुम प्रकट होते हो, वह समय तुम्हारे ही अधीन है ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुम जिसे चाहते हो कि यह मृत्यु को प्राप्त न हो तो वह सत्य ही होता है ॥ २ ॥

जो सोम दूर अथवा निकट कहीं भी निष्पन्न होते हैं, उनके पास इन्द्र स्वयं ही उपस्थित हो जाते हैं ॥ ३ ॥

सूक्त (११३)

(ऋषि—भर्ग. । देवता—इन्द्रः । छन्द—प्रगाथ)

उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।
सत्राच्या मघवा सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् ॥ १ ॥
स हि स्वराज वृषभ तमोजसे धिषणे निष्टतक्षतुः ।
उतोपमानां प्रथमो नि षीदसि सोमकामं हि ते मनः ॥ २ ॥

इन्द्र दोनों लोकों मे हितकर कर्म करने वाले हैं, वे इन्द्र हमारे वचन को यह मानते हुए सुनें कि इन्द्र देव सोम पानार्थ पधार रहे हैं ॥ १ ॥

वे इन्द्र कामवर्षक और अपनी दीप्ति से दीप्तवान हैं।

आकाश पृथ्वी को तनू करते हैं। तुम उपमान को प्राप्त होते हो और सोम की कामना करते हो ॥ २ ॥

सूक्त (११४)

(ऋषि—सौभरि । देवता—इन्द्र । छन्द—गायत्री)

अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि ।
युधेदापित्वमिच्छसे ॥ १ ॥
नकी रेवन्त सख्याय विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्वः ।
यदा कृणोषि नदनु समूहस्यादित् पितेव हूयसे ॥ २ ॥

हे इन्द्र! तुम प्रकट होते ही समक्ति करते हो और संग्राम मे 'आपित्व' की इच्छा करते हो। तुम शत्रु रहित हो ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुम्हे सुराशु पुष्ट करते हैं। तुम जब गर्जन शील होते हो तब पिता के समान आहूत किए जाते हो। तुम धनवान को मित्र भाव के निमित्त प्राप्त करते हो ॥ २ ॥

सूक्त (११५)

(ऋषि—वत्स. । देवता—इन्द्र छन्द—गायत्री)

अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रभ ।
अहं सूर्यइवाजनि ॥ १ ॥
अहं प्रत्नेन मन्मना गिरः शुम्भामि कण्ववत् ।
येनेन्द्रः शुष्ममिद् दधे ॥ २ ॥
ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुर्ऋषयो ये च तुष्टुवुः ।
ममेद् वर्धस्व सुष्टुत ॥ ३ ॥

मैं सूर्य की भाँति उत्पन्न हुआ हूँ और पिता ब्रह्मा की बुद्धि को मैंने ग्रहण कर लिया है ॥ १ ॥

मैं पुरातन स्तोत्र द्वारा वणियों को सुशोभित करता हुआ इन्द्र को पराक्रमी बनाता हूँ ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! जिन ऋषियों ने तुम्हारा स्तवन किया है अथवा जिन्होंने तुम्हारी स्तुति नहीं की, इससे उदासीन रहते हुए मेरे स्तवन द्वारा प्रवृद्ध हो ॥ ३ ॥

सूक्त (११६)

(ऋषि—मेध्यातिथि । देवता—इन्द्र । छन्द—बृहती)

मा भूम निष्ट्या इवेन्द्र त्वदरणा इव ।
वनानि न प्रजहितान्यद्रिवो दुरोषासो अमन्महि ॥ १ ॥
अमन्महीदनाशवोऽनुग्रासश्च वृत्रहन् ।
सुकृत् सुते महता शूर राधसानु स्तोमं मुदीमहि ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! हम तुम्हारा ऋण न चुका सकने के कारण दुष्ट शत्रुवत न समझे जाँय । तुम्हारे द्वारा त्याज्य पदार्थों को हम भी दावाग्नी के समान त्याज्य समझें ॥ १ ॥

हे वृत्रहन ! हम तुम्हारी वृद्धि के द्वारा सुखी हों । हम अपने को नाश से रहित समझें ॥ २ ॥

सूक्त (११७)

(ऋषि—वसिष्ठ । देवता—इन्द्र । छन्द—गायत्री)

पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः ।
सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा ॥ १ ॥
यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्यश्व हंसि ।
स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु ॥ २ ॥
बोधा सु मे मघवन् वाचमेमां यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम् ।
इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! जो सोम पाषाण द्वारा अभिषुत किया है, वह तुम्हें आनन्दित करें। पाषाण सोम संस्कार करने वाले के हाथ में स्थित है। हे इन्द्र ! तुम इस सोम का पान करो ॥१॥

हे हर्यश्ववान ! इन्द्र ! तुम अपने जिस शोभनीय मद से मेघों को विदीर्ण करते हो वह तुम्हें आनन्दित करें ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! जिसे कीर्ति की वसिष्ठ उपासना करते है, उस मंत्र समूह वाली मेरी वाणी को यश मे स्वीकार करो ॥ ३ ॥

सूक्त (११८)

(ऋषि– भर्गः मेधातिथिः । देवता—इन्द्रः । छन्द—बार्हतः प्रगाथः)

शग्ध्यू षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ॥ १ ॥
पौरो अश्वस्य पुरुकृद् गवामस्युत्सो देव हिरण्ययः ।
नकिर्हि दानं परिमर्धिषत् त्वे यद्यद्यामि तदा भर ॥ २ ॥
इन्द्रमिद् देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे ।
इन्द्रं समीके वनिनो हवामहे इन्द्रं धनस्य सातये ॥ ३ ॥
इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत् ।
इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिरे इन्द्रे सुवानास इन्दवः ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! मेरी प्रार्थना है कि मैं तुम्हारे समस्त रक्षा रूप साधनों से कीर्ति और सौभाग्य प्राप्त करने के निमित्त तुम्हारा भक्त बनूं ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुम नगर वासियों को अश्व रूप हो और धन को असीम बनाते हो। तुम गौओं की वृद्धि करने वाले हो हिरण्मय और अहिंसित दान वाले हो। मैं तुम्हारे आश्रय में

जिन पदार्थों के लिए आया हूँ, उन पदार्थों को मुझे प्रदान करो ॥ २ ॥

हम इन्द्र के सेवन करने वाले संग्राम उपस्थित होने पर धन पाने के लिए इन्द्र का आह्वान करते हैं ॥ ३ ॥

इन्द्र ने सूर्य को तेजस्वी बनाया और द्यावा पृथ्वी को अपनी महिमा से विस्तृत किया । यह इन्द्र सब भुवनों में आश्रित होते हैं । यह सोम इन्द्र के लिए संस्कारित किए जाते हैं ॥४॥

सूक्त (११९)

(ऋषि--आयु, श्रुष्टिगु । देवता--इन्द्र । छन्द--बार्हतः प्रगाथ)

अस्तावि मन्म पूर्व्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत ।
पूर्वीऋ॑तस्य बृहतीरनूषत स्तोतुर्मेधा असृक्षत ॥ १ ॥
तुरण्यवो मधुमन्तं घृतश्चुतं विप्रासो अर्कमानृचुः ।
अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यं शवोऽस्मे सुवानास इन्दवः ॥ २ ॥

हे ऋत्विजो ! मैंने पुरातन स्तोत्र से इन्द्र का स्तवन किया है । अब तुम भी यज्ञ की पुरातन ऋचाओं द्वारा स्तुति करो । स्तोताओं की बुद्धि मन्त्रों से सम्पन्न हो गई है ॥ १ ॥

इस यजमान के लिए धन की वृद्धि और बल प्राप्त होता है । इन इन्द्र के लिए सोम सिद्ध होते हैं । शीघ्रता करने वाले ब्राह्मण पूजा मन्त्रों की प्रशंसा करते हैं । २ ॥

सूक्त (१२०)

(ऋषि--देवातिथि । देवता--इन्द्रः । छन्द--बार्हत प्रगाथ)

यदिन्द्र प्रागपागुदङ् न्यग्वा हूयसे नृभिः ।

यद्वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा।
कण्वासस्त्वा ब्रह्मभि स्तोमवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गहि ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुम चारों दिशाओं में स्थित मनुष्यों द्वारा आह्वान किए जाते हो। तुम पूर्ण रूप से शत्रुओं के विनाशक हो। तुम इस यजमान के लिए पदार्पण करो ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! कण्व गोत्री ऋषि तुम्हें हवि अर्पित करते हैं। तुम रुम, रुशम और श्यावक में एक साथ हव प्रकट करते हो। तुम यहाँ पधारो। २ ॥

सूक्त (१२१)

(ऋषि--देवातिथि । देवता--इन्द्र । छन्द--बार्हत प्रगाथ)

अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धाइव धेनव ।
ईशानमस्य जगत स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुष ॥ १ ॥
न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्य तस्त्वा हवामहे ॥ २ ॥

हे पराक्रमी इन्द्र ! हम तुम्हें बिना दुही गौओं के समान प्रेरित करते हैं तुम संसार के ईश्वर और स्वर्ग के द्रष्टा हो ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! कोई पार्थिव और दिव्य प्राणी तुम्हारे समकक्ष नहीं है। हे इन्द्र ! तुम गौ, अश्व और अन्न की कामना से तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥ २ ॥

सूक्त (१२२)

(ऋषि--शुन शेप । देवता-इन्द्र । छन्द--गायत्री)

रेवतीर्न सधमाद इन्द्र सन्तु तुविवाजा ।
क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥ १ ॥

आ घ त्वावान् त्मनाप्त स्तोतृभ्यो धृष्णवियानः ।
ऋणोरक्षं न चक्र्योः ॥ २ ॥

आ यद् दुवः शतक्रतवा कामं जरितृणाम् ।
ऋणोरक्षं न शचीभिः ॥ ३ ॥

हम यज्ञ मे इन्द्र के पदार्पण करने पर अन्न की विभिन्न विभूतियो से सपन्न होते हुये सुख प्राप्त करें ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुम्हारी कृपा का आकाक्षी स्तोताओ के अनुग्रह से चलने वाले रथ के दोनो पहियो के अक्ष के समान दृढ हो हो जाता है ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुम्हारा आराधक तुम्हारी शक्ति को प्राप्त करता हुआ चलने वाले रथ के अक्ष के समान दृढ होता है ॥ ३ ॥

सूक्त (१२३)

(ऋषि—कुत्स । देवता—सूर्य । छन्द—त्रिष्टुप)

तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततं सं जभार ।
यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥ १ ॥
तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे ।
अनन्तमन्यद् रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति ॥ २ ॥

वे सूर्य अपनी महिमा से किरणो को अपने मे आवृत कर लेते है तो व्याप्त समस्त कर्मों को समेट लेते हैं और तब अन्धकार को चहुँ ओर से आवृत करती हुई पृथ्वी वस्त्र को अपण करती है ॥ १ ॥

मैं मित्रावरुण की महिमा को बखानता हूँ । वे सूर्य रूप से स्वर्ग में अपना रूप निर्मित करते हैं उनका तेज दीप्यमान

है, इनका द्वितीय तेज काले वर्ण का है, उसे सूर्य किरणें भरण करती है ॥ २ ॥

सूक्त (१२४)

(ऋषि—वामदेवः, भुवनः। देवता—इन्द्रः। छन्द—गायत्री, त्रिष्टुप्)

कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा।
कया शचिष्ठया वृता ॥ १ ॥
कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः।
दृढा चिदारुजे वसु ॥ २ ॥
अभी षु णः सखीनामविता जरितृणाम्।
शतं भवास्यूतिभिः ॥ ३ ॥
इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः।
यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह चीक्लृपाति ॥ ४ ॥
आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्माकं भूत्वविता तनूनाम्।
हत्वाय देवा असुरान् यदायन् देवा देवत्व
मभिरक्षमाणाः ॥ ५ ॥
प्रत्यञ्चमर्कमनयञ्छचीभिरादित् स्वधामिषिरां पर्यपश्यन्।
अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ ६ ॥

सर्वदा वृद्धि करने वाले वे मित्र किस रक्षा साधन द्वारा हमारी रक्षा करेंगे। वह रक्षात्मक वृत्ति किस प्रकार संपन्न होगी ॥ १ ॥

हे इन्द्र! आनन्द प्रद हवियों में सोम रूप अन्न का कौन सा भाग उत्कृष्ट है जिससे प्रसन्न होकर तुम धनों को अपने उपासकों में विभक्त कर देते हो ॥ २ ॥

हे इन्द्र! तुम हम स्तोताओ के सखा रूप हो। तुम हमारे समक्ष सैकड़ों बार आविर्भूत हुए हो ॥ ३ ॥

इस यज्ञ को ऋत्विज और सब देवगणों सहित इन्द्र संपन्न करें। मूर्यात्मक इन्द्र हमारे शरीर और सन्तति को ~कमी बनाएं। ४।

देवत्व की रक्षा हेतु जिन देवगणों ने राक्षसों का संहार किया वे इन्द्र सूर्य और मरुद्गणों सहित हमारे शरीरों की रक्षा करें ॥ ५।

ये देव अपने पराक्रम से सूर्य को सबके समक्ष प्रकट करते हैं। उन्होंने पृथ्वी को हवि युक्त किया है। हम देवताओं के सेवक उन्हीं के द्वारा अन्न प्राप्त करें और वीरों से सुसंगत रहते हुए शतायुष्य हों ॥ ६ ॥

सूक्त (१२५)

(ऋषि - सुकीर्तिः। देवता—इन्द्रः, अश्विनौ। छन्द—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप

अपेन्द्र प्राचो मघवन्नमित्रानपापाचो अभिभूते नुदस्व।
अपोदीचो अप शूराधराच उरौ यथा तव शर्मन् मदेम ॥ १ ॥
कुविदङ्ग यवमन्तो यव चिद् यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय।
इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमोवृक्तिं न जग्मु ॥ २ ॥
नहि स्थूर्यृतुथा यातमस्ति नोत श्रवो विविदे संगमेषु।
गव्यन्त इन्द्रं सख्याय विप्रा अश्वायन्तो वृषणं वाजयन्तः ॥ ३ ॥
युवं सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा।
विपिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम् ॥ ४ ॥
पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दंसनाभिः।
५ सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा

मघवन्नभिष्टक् ॥ ५ ॥
इन्द्र. सुत्रामा स्ववाँ अवोभि सुमृडीको भवतु विश्ववेदा. ।
बाधतां द्वेषो अभयं नः कृणोतु सुवीर्यस्य पतय स्याम । ६ ॥
तस्य वय सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ।
स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मदाराच्चिद् द्वेष सनुतर्यु योतु ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! तुम चारो दिशाओ से हमारे शत्रुओ को रोको जिससे हम तुम्हारे द्वारा दिए हुए सुख को भोग सकें ।

हे अग्ने ! जैसे जो सपन्न कृषक बहुत से यवो को ससुक्त कर काटते हैं वैसे ही हवि से सयुक्त हुई कुशाओ का सेवन करो ॥ २ ॥

युद्धो मे हमको अन्न नही मिला फसलो के समय भी हमको आवश्यकतानुसार अन्न प्राप्त नही हुआ. अत सखा इन्द्र की कामना करते हुए हम अश्व गौ और अन्न की याचना करते हैं ॥ ३ ॥

हे अश्विद्वय ! नमुचि राक्षस से युद्ध होते समय तुमने हर्षोन्मत्तकारी सोम का पान कर इन्द्र की रक्षा की ॥ ४ ।

हे अश्विद्वय ! तुमने अपने शत्रु विनाशक कौशल से इन्द्र की उसी भाँति रक्षा की है जिस भाँति माता पिता अपने बालक का पालन करते हैं। हे इन्द्र ! तुमने शोभनीय सोम का पान किया है । तुम्हे सरस्वती अपनी विभूतियो से सींचें ॥ ५ ॥

रक्षक एव ऐश्वर्यवान इन्द्र अपने रक्षा साधनो से हमको सुख प्रदान करें । यह पराक्रमी इन्द्र हमारे शत्रुओ का विनाश कर हमे अभयता प्रदान करें। हम सुन्दर धनो से सपन्न हों । ६ ॥

रक्षक इन्द्र दूर से हमारे शत्रुओं को भगावें। उन यज्ञ के योग्य इन्द्र की कृपा बुद्धि मे स्थित हुए हम उनकी कल्याणमय भावना को सदा प्राप्त करते रहें ॥ ७ ॥

सूक्त (१२६)

(ऋषि—वृषाकपिरिन्द्राणी च । देवता—इन्द्रः छन्द—पंक्ति)

वि हि सोतोरसृक्षत नेन्द्रं देवममंसत ।
यत्रामदद् वृषाकपिरर्यः पुष्टेषु मत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १ ॥
परा हीन्द्र धावसि वृषाकपेरति व्यथिः ।
नो अह प्र विन्दस्यन्यत्र सोमपीतये विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २ ॥
किमयं त्वां वृषाकपिश्चकार हरितो मृगः ।
यस्मा इरस्यसीदु न्वर्यो वा पुष्टिमद् वसु विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ३ ॥
यमिमं त्वं वृषाकपिं प्रियमिन्द्राभिरक्षसि ।
श्वा न्वस्य जम्भिषदपि कर्णे वराहयुर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ४ ॥
प्रिया तष्टानि मे कपिर्व्यक्ता व्यदूदुषत् ।
शिरो न्वस्य राविषं न सुगं दुष्कृते भुवं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ५ ॥
न मत्स्त्री सुभसत्तरा न सुयाशुतरा भुवत् ।
न मत् प्रतिच्यवीयसी न सक्थ्युद्यमीयसी विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ६ ॥
अम्ब सलाभिके यथेवाङ्ग भविष्यति ।

भसन्मे अम्ब सक्थि मे शिरो मे वीव हृष्यति
विश्वस्मादिन्द्र उत्तर. ॥ ७ ॥
किं सुबाहो स्वङ्गुरे पृथुष्टो पृथुजाघने ।
किं शूरपत्नि नस्त्वमभ्यमीषि वृषाकपिं
विश्वस्मादिन्द्र उत्तर. ॥ ८ ॥
अवीरामिव मामयं शरारुरभि मन्यते ।
उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा विश्वस्मादिन्द्र
उत्तर. ॥ ६ ॥
संहोत्रं स्म पुरा नारी समनं वाव गच्छति ।
वेधा ऋतस्य वीरिणीन्द्रपत्नी महीयते
विश्वस्मादिन्द्र उत्तर. ॥ १० ॥

वृषाकपिदेव ने इन्द्र को देवता के समान समझा। वे वृषाकपि पुष्टियों के पालक हैं और मेरे मित्र हैं अत मैं इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हूँ ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुम वृषाकपि से अधिक द्रुतगामी हो। तुम शत्रुओं को पीडित करने मे पूर्ण समर्थ हो। जहाँ सोम-पान का साधन नही है वहाँ तुम उपस्थित नही होते अत. इन्द्र सबसे उत्कृष्ट हैं। २ ॥

हे इन्द्र ! इन वृषाकपि ने तुम्हे किस कारण से हरित वर्ण का मृग बनाया है। जो तुम इन्हे पुष्टि दायक अन्न प्रदान करते हो। इन्द्र सबसे श्रेष्ठ है ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! तुम जिन वृषाकपि का पोषण करते हो क्या इसके समान कुत्ता अंगडाई लेता है, क्या वाराह की कामना वाला कान पर जमाई लेता है? इन्द्र सबसे अधिक श्रेष्ठ हैं ॥ ४ ॥

कपि ने मेरे प्रेमियो को तनू किया और व्यक्त ने दोप-युक्त किया। दुष्कर्म मे स्थापित होना सुगम नही होता। मैं इसके शिर को शब्द युक्त करता हूँ। इन्द्र सबसे महान है ॥ ५ ॥

मेरी पत्नी ने तो सयाशुतरा है और न सुमसत्तरा है और प्रत च्य वोयसी तथा सक्थियो को वेठान वाली भी नही है, इन्द्र परमोत्कृष्ट हैं ॥ ६ ॥

हे अम्ब! मेरा सिर कटि सविथ पक्षी के समान फडक रहे हैं। जैसा होना है वैसा हो। इन्द्र परमोत्कृष्ट हैं ॥ ७ ॥

हे शूरपत्नी! तू सुन्दर भुजा सुन्दर उँगली पृयुस्तु एव पृयु जाँघ वाली है। तू क्या हम वृषाकपि के समक्ष हिंसित करती है। इन्द्र परमोत्कृष्ट हैं ॥ ८ ॥

यह नहुष अपने शरीर को नष्ट करने की इच्छा लेकर मुझे वीर-रहित समझता है। परन्तु मैं वीर सपन्न पति से युक्त हूँ। मेरे पति मरुद्गणों के मित्र इन्द्र सर्वोत्कृष्ट हैं ॥ ९ ॥

यज्ञ मे पुरुष के साथ नारी होत्र रूप से वैठती है। वह इस प्रकार यज्ञ की रचयित्री है वह वीर पत्नी इन्द्राणी स्तवन योग्य है क्यो कि इन्द्र सर्वोत्कृष्ट हैं ॥ १० ॥

इन्द्राणीमासु दारिष सुभगामहमथवम् ।
नह्यस्या अपर चन जरसा मरते पतिर्विश्वस्मादिन्द्र
उत्तर ॥ ११ ॥

नाहमिन्द्राणि रारण सख्युर्वृषाकपेर्ऋते ।
यस्येदमप्य हवि प्रिय देवेष गच्छति
६ - उत्तर ॥ १२ ॥
ि रेवति सुपुत्र आदु सुस्नुषे ।

घमत् त इन्द्र उक्षणः प्रिय काचित्करं हविर्विश्वस्मादिन्द्र
उत्तरः । १ ॥
उक्ष्णो हिमे पंचदश साक पचन्ति विशंतम् ।
उताहमद्मि पीव इदुभा कुक्षी पृणन्ति मे
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १४ ॥
वृषभो न तिग्मश्रृङ्गोऽन्तर्यूथेषु रोरुवत् ।
मायस्त इन्द्र श हृदे य ते सुनोति
भावयविश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १५ ॥
न सेशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या कपृत् ।
सेदीशे यस्य रोमश निषेदुषो विजृम्भते
विश्वस्मादिन्द्र उत्तर· ॥ १६ ॥
न सेशे यस्य रोमश निषेदुषो विजृम्भते ।
सेदीशे यस्य रमयतेऽन्तरा सक्थ्या कपृद्
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १७ ॥
अयमिन्द्र वृषाकपिः परस्वन्त हत विदत् ।
असिं सूना नव चरुमादेधस्यान आचितं
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १८ ॥
अयमेमि विचाकशद् विचिन्वन् दासमार्यम् ।
पिबामि पाकसुत्वनोऽभि धीरमचाकश
विश्वस्मादिन्द्र उत्तर. । १९ ॥
धन्व च यत् कृन्तत्र क्षति स्वित् ता वि याजना ।
नेदीयसो वृषाकपेऽस्तमेहि गृहाँ उप
विश्वस्मादिन्द्र उत्तर ॥ २० ॥
पुनरेहि वृषाकपे सुविता कल्पयावहै ।
य एष स्वप्ननशनोऽस्तमेषि पथा पुनर्विश्वस्मादिन्द्र
उत्तर ॥ २१ ॥
यदुदञ्चो वृषाकपे गृहमिन्द्राजगन्तन ।

यवस्य पुल्वघो मृगः कमगं जनयोपनो
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २२ ॥

पर्शुर्ह नाम मानवी साकं ससूव विंशतिम् ।
भद्र भल त्वस्या अभूद् यस्या उदरमामयद्
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २३ ।

मैं इन्द्र पत्नी को परम सौभाग्यशालिनी समझता हूँ क्योंकि इनका पति न तो मृत्यु को प्राप्त होता है और न वृद्ध ही होता है। अन्य नारियों के पति को मरणशील व्यक्ति हैं ॥ ११ ॥

हे इन्द्राणि ! मैं अपने सखा वृषाकपि के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं जाता। इनकी हवन की सामिग्री जल से संस्कारित होती है । वे मुझे इन सब देवताओं में सबसे ज्यादा प्यारे हैं। मैं इन्द्र सब देवताओं से उत्कृष्ट हूँ ॥ १२ ॥

हे वृषाकपिष्प' सूर्य की पत्नी ! तू सुपुत्रों से सम्पन्न है और तेरे पास धन भी बहुत है ॥ ३ ॥

मुझ महान के पन्द्रह साक बोम को युद्ध करते हैं। मैं उनको खाता हूँ। मेरी कुक्षियां पूर्ण हैं। इन्द्र देवता सब देवताओं मे श्रेष्ठ है ॥ १४ ॥

हे इन्द्र। तेज सींग वाले बैलों के गोकों में शब्द करने के समान जिनके हृदय में तुम्हारा मन्य सुख देता है, वही मनुष्य सुखदाता है क्योंकि इन्द्र सर्व श्रेष्ठ है ॥ १५ ॥

सन्धियों में चपून लटकाने वाला यश प्राप्त नहीं करता। बैठने की इच्छा वाले जिनका शरीर अंगड़ाई लेता है, वह सहनशील होता है। इन्द्र सर्वश्रेष्ठ हैं ॥ १६ ॥

जिसका चोना आलस्य करता है, वह असमर्थ होता है

और जिसका कपृत् सन्धियों में लटकता है वह सामर्थ्य वाला होता है। इन्द्र सर्व श्रेष्ठ है। १७॥

हे इन्द्र! वृषाकपि ने अपने पास क्षीण हुए शत्रु धन को प्राप्त किया और असि चूना, नवीन, चरु को ग्रहण किया वह इन्द्र सर्वश्रेष्ठ है ॥ १८ ॥

मैं काम करने वाले पुरुष की खोज करता हूँ। मैं निष्पन्न मदिरा को पी रहा हूँ। इन्द्र सर्वश्रेष्ठ है ॥१६॥

मरुस्थल और आकाश को दूरी कितनी है। हे वृषाकपे! तुम पास के स्थान से घरों में आया करो॥ २०।

हे वृषाकपे! तुम उदय होते ही स्वप्न को नष्ट कर देते हो और छिपते भी हो। तुम ही संसार में सर्वश्रेष्ठ हो। इस लिये जल्दी उदय हो जाओ। फिर हम संसार की भलाई में सुंदर कार्यों की योजना तैयार करें ॥ २१ ॥

हे सूर्य देव! तुम उत्तर में रहते हुये महलों की प्रदक्षिणा करते हुये छिपते हो। तब लोग अपने अपने घरों में अंधकार को देखकर चौंक जाते हैं और कहते हैं कि सूर्य देव कहाँ गये? वे प्राणियों को मोहित करने वाले सूर्य सर्वश्रेष्ठ है ॥ २२ ॥

मानवी पशु ने बोझ का अनुभव किया जिसका पेट रोगी था उसके लिये बुरा हुआ इन्द्र सब में महान् हैं ॥ २३ ।

सूक्त (१२७)

इद जना उप श्रुत नराशंस स्तविष्यते।
षष्टिं सहस्रा नवतिं च कौरम आ रुशमेषु दद्महे ॥ १ ॥
उष्ट्रा यस्य प्रवाहणो वधूमन्तो द्विर्दश
वर्ष्मा रथस्य नि जिहीडते दिव ईषमाणा उपस्पृश. ॥ २ ॥

एवा इयाय मामहे शत निष्कान् दश स्रज ।
त्रीणि शतान्यर्वतां सन्त्रा दश गोनाम् ॥ ३ ॥
वच्यस्व रेभ वच्यस्व वृक्षे न पक्वे शकुन ।
नष्टे जिह्वा चर्चरीति क्षुरो न भुरिजोरिव ॥ ४ ॥
प्र रेभासो मनीषा वृषा गावइवेरते ।
अमोतपुत्रका एषाममोत गाइवासते ॥ ५ ॥
प्र रेभ धीं भरस्व गोविद वसुविदम ।
देवत्रेमां वाच श्रीणाहीषुर्नावीरस्तारम् ॥ ६ ॥
राज्ञो विश्वजनीनस्य यो देवोऽमर्त्यां अति ।
वैश्वानरस्य सुष्टु तिमा सुनोत परिक्षित ॥ ७ ॥
परिच्छिन्न क्षेममकरोत् तम आसनमाचरन् ।
कुलायन् कृण्वन् कौरव्य पतिर्वदति ज यया ॥ ८ ॥
कतरत् त आ हराणि दधि म.थां परि श्रुतम् ।
जाया पति वि पृच्छति राष्ट्रे राज्ञ परिक्षित ॥ ९ ॥
अभीवस्व प्र जिहीते य वः पक्व परो बिलम् ।
जन स भद्रमेधते राष्ट्रे राज्ञ परिक्षितः ॥ १० ॥
इन्द्र कारुमबूबुधदुत्तिष्ठ वि चरा जनम्
ममेदुग्रस्य चर्कृधि सर्व इत् पृण आदरि ॥ ११ ॥
इह गावः प्रजायध्वमिहाश्वा इह पूरुषा ।
इहो सहस्रदक्षिणोऽपि पूषा नि षीदति ॥ १२ ॥
नेमा इन्द्र गावो रिषन् मो आसा गोपती रिषत् ।
मासाममित्रयुर्जन इन्द्र मा स्तेन ईशत ॥ १३ ॥
उप नो न रमसि सूक्तेन वचसा वय भद्रेण वचसा वयम् ।
वनादधिध्वनो गिरो न रिष्येम कदा चन ॥ १४

हे नरा शस, कौरम । स्तोताओ के बारे मे सुनो ि ?

जिसके देह रूपी रथ के बोन ऊँट होन्ने वाले है, वह आकाश को छूने हुये ही डन करने है ॥ २ ॥

अन्न प्राप्ति के लिये मैं सौ मिश्क तीन सौ अश्व व एक हजार गायें और दस मालायें देता हूँ ॥ ३ ॥

हे प्रार्थना करने वालो ! जैसे पके हुये फलो से लदे पेड पर बैठा हुआ पक्षी मधुर शब्द करता है वैसे तुम भी करो । हाथ मे लिये हुये छुरे के समान, कार्य के समाप्त होने पर भी तुम्हारी जीभ न रुके ।। ४ ।।

यह मनीषी स्तुति करने वाले वीर्यवान बैलो के समान हैं . इनके घरो मे सुपुत्र. गायें आदि हैं ॥ ५ ॥

हे स्तोता ! जिस प्रकार की वाण से मनुष्य अपनी रक्षा करता है उसी प्रकार तू भी इस मधुर वाणी से अपनी रक्षा कर । तू गायो और धन प्राप्त कराने वाली बुद्धि को ले ॥ ६ ॥

यदि यह देवता पाजा के मनुष्यो का अतिक्रमण करें तो वैश्वानर की सुखदायी स्तुति करनी चाहियें ॥ ७ ।

देवता मगल रने वाला है, आसन को बाँटता है । इस प्रकार बढाया हुआ कौरव्य पति अपनी पत्नि से कहता है ॥ ८ ॥

राजा परिक्षित के राज्य मे पत्नि अपने पति से पूछती है कि दही मथन से निकला हुआ मक्खन कितना लाऊँ ॥९॥

पेट रूपी बिल को पका हुआ जो प्राप्त होता है । राजा परीक्षित के राज्य मे इस प्रकार मनुष्य सुखी थे ॥ १० ॥

स्तुति करने वाले मनुष्य से इन्द्र बोले - उठ, खड़ा हो । मनुष्यो मे घूम । तू मेरे अनुसार कार्य करने वाला हो । तेरा दुश्मन तेरे पास अपना सब कुछ छोड दें । ११ ॥

यहाँ मनुष्य और घोड़े उत्पन्न हों। गायें बच्चे दें। सैकड़ों असंख्य दक्षिणाओं के देने वाले पूषा यहाँ उपस्थित हों ॥ १ ॥

हे इन्द्र! गायें नष्ट न हों। इनका पालन अहिंसात्मक रूप से हो। दुश्मन और चोर का भी इन पर कोई असर न पड़े ॥ २ ॥

हे इन्द्र! तुम हमको सूक्त द्वारा प्रसन्न करते हो। हम तुम सुखदायी वाणी से प्रसन्न करते हैं। तुम हमारी वाणियों को ऊपर से सुनो। हम कभी नाश को प्राप्त न हों ॥ १४ ॥

सूक्त (१२८)

य सभेयो विदथ्य सुत्वा यज्वाथ पूरुष ।
सूर्यं चामू रिशादसस्तद् देवा प्रागकल्पयन् । १ ॥
यो जाम्या अप्रथयस्तद् यत् सखाय दुधूर्षति ।
ज्येष्ठो यदप्रचेतास्तदाहुरधरागिति । २ ॥
यद् भद्रस्य पुरुषस्य पुत्रो भवति दाधृषि ।
तद् प्रा अब्रवीद् तद् गन्धर्व काम्य वच ॥ ३ ॥
यश्च पणि रघुजिष्ठ्यो यश्च देवाँ अदाशुरि ।
धीराणां शश्वतामहं तदपागिति शुश्रुम ॥ ४ ॥
ये च देवा अयजन्ताथो ये च परादंदि ।
सूर्यो दिवमिव गत्वाय मघवा नो वि रप्शते ॥ ५ ॥
यो नाक्ताक्षो अनभ्यक्तो अमणिवो अहिरण्यव ।
अब्रह्मा ब्रह्मण पुत्रस्तोता कल्पेषु संमिता ॥ ६ ॥
य आक्ताक्ष सुभ्यक्त सुमणि सुहिरण्यव ।
सुब्रह्मा ब्रह्मण पुत्रस्तोता कल्पेषु संमिता ॥ ७ ॥
अप्रपाणा च वेशन्ता रेवा अप्रतिदिश्यय ।
[illegible] ॥ ८ ॥

सुप्रपाणा च वेशन्ता रेवान्त्सुप्रतिदिश्यय ।
सुयम्या कन्या कल्याणी तोता कल्पेषु संमिता ॥ ९ ॥
परिवृक्ता च महिषी स्वस्त्या च युधिगम ।
अनाशुरश्चायामी तोता कल्पेषु संमिता ॥ १० ॥

दान करने वाला यज्ञ करने वाला सभ्य आदमी सूर्य लोक को पार कर दूसरे लोकों में जाता है। देवताओं ने यह बात पहले ही जान ली थी ॥ १ ॥

भित्र का दूर्धुषिक, जामि से विस्तारक अप्रचेता ज्येष्ठ अवराक कहता है। २ ॥

जिस ब्राह्मण का पुत्र सुफा होता है वह ब्राह्मण अभीष्ट वचन को कहने में समर्थ है वह गधव कहाता है। ३ ॥

जो वैश्य देवताओ को हवि प्रदान नही करता, वह शाश्वत वीरों का अपक होता है। ऐसा सुनते है ॥ ४ ॥

जो स्तुति करने वाले यज्ञ एव दान करने वाले है वे सूर्य की तरह ही स्वर्ग मे जाते हैं। इन्द्र श्रेष्ठ है। ५ ॥

जो अनभक्त अनताक्ष अमणिव, अहिरण्यव तथा अब्रह्मा है वह ब्रह्मपुत्र स्तुति करने वालो में सम्मित है ॥६॥

जो आक्ताक्ष, सुभ्यक्त, सुहिरण्यव सुमणि, सुब्रह्मा है वह ब्रह्मपुत्र तोता कल्पो मे सम्मित है ॥ ७ ॥

अप्राण, वेशन्ता, रेगा, अप्रतिदिश्य, अयम्भा, कन्या, कल्याणी तोता कल्पो मे सम्मित है ॥ ८ ॥

सुप्राणा, वेशन्ता रेवा, सुप्रतिदिश्य, सुयम्भा, कन्या, कल्याणी तोता कालो मे है ॥ ९ ॥

परिवृत्ता, महिषी, स्वस्तया, युधिगम, अनासुर और आयामी तोता कल्पो मे सम्मित है ॥ १० ॥

वावाता च महिषी स्वस्त्या युधिगमः ।
श्वाशरश्चायामो तोता कल्पेषु संमिता ॥ ११ ॥
यदिन्द्रादो दाशराज्ञे मानुषं वि गाहथाः ।
विरूपः सर्वस्मा आसीत् सह यज्ञाय कल्पते ॥ १२ ॥
त्वं वृषाक्षुं मघवन्नम्रं मर्याकरो रविः ।
त्वं रौहिणं व्यास्यो वि वृत्रस्याभिनच्छिरः ॥ १३ ॥
यः पर्वतान् व्यदधाद् यो अपो व्यगाहथाः ।
इन्द्रो यो वृत्रहान्महं तस्मादिन्द्र नमोऽस्तु ते ॥ १४ ॥
पृष्ठं धावन्तं हर्योरौच्चैः श्रवसमब्रुवन् ।
स्वस्त्यश्व जैत्रायेन्द्रमा वह सुस्रजम् ॥ १५ ॥
ये त्वा श्वेता अजैश्रवसो हार्यो युञ्जन्ति दक्षिणम् ।
पूर्वा नमस्य देवानां बिभ्रदिन्द्र महीयते ॥ १६ ॥

वावाता, महिषी, स्वस्त्या, युधिगम्, श्वासुर और आयामी तोता कल्पों में सम्मित हैं ॥ ११ ॥

हे इन्द्र ! तुमने दाशराज के पुत्र को विगाहित किया था, और तुम सबके लिये रूप रहित हुये थे । तुम यज्ञ के साथ कल्पित होते हो ॥ १२ ॥

हे वर्षा करने वाले देवता इन्द्र ! तुम सूर्य के रूप में ऋक्षु को झुकाते हो और रौहिण को विस्तृत मुख वाला करते हो। तुमने ही वृत्र का सर काटा था ॥ १३ ॥

जिन्होंने पर्वतों को अडिग किया और जल को बहाया, जो वृत्रहन हैं, उन इन्द्र को नमस्कार है ॥ १४ ॥

हर्यश्वों की पीठ पर तेज गति को प्राप्त हुये इन्द्र के सम्बन्ध में उच्चैश्रवा ने कहा—हे अश्व ! तेरा कल्याण हो । तू माला धारण करने वाले इंद्र को चढ़ाता है ॥ १५ ॥

हे इंद्र ! सफेद घोड़ा तुम्हारे दक्षिण का ओर मुड़ते है। उन पूर्वाओं पर चढने वाले तुम देवताओं द्वारा नमस्कार के योग्य तथा महिमा सम्पन्न हो ॥ १६ ॥

सूक्त (१२६)

एता अश्वा आ प्लवन्ते ॥ १ ॥
प्रतीपं प्राति सुत्वनम् ॥ २ ॥
तासामेका हरिक्निका ॥ ३ ॥
हरिक्निके किमिच्छसि ॥ ४ ॥
साधुं पुत्रं हिरण्ययम् ॥ ५ ॥
क्वाहतं परास्य. ॥ ६ ॥
यत्रामूस्तिस्त्रः शिंशपाः ॥ ७ ॥
परि त्रयः ॥ ८ ॥
पृदाकवः ॥ ९ ॥
शृङ्गं धमन्त आसते ॥ १० ॥
अयन्महा ते अर्वाहः ॥ ११ ॥
स इच्छक सघाघते ॥ १२ ॥
सघाघते गोमीद्या गोगतीरति ॥ १३ ॥
पुमां कुस्ते निमिच्छसि ॥ १४ ॥
पल्प बद्ध वयो इति ॥ १५ ॥
बद्ध वो अघा इति ॥ १६ ॥
अजागार केविका ॥ १७ ॥
अश्वस्य वारो गोशपद्य के ॥ १८ ॥
श्येनीपती सा ॥ १९ ॥
अनामयोपजिह्विका ॥ २० ॥

यह अश्वा आती है ॥ १ ॥
सुत्वा प्रतीप का देश है ॥ २ ॥
इनमें से एक हरिनिका है ॥ ३ ॥
हे हरिनिके ! तेरी क्या इच्छा है ! ॥ ४ ॥
साधु पुत्रको हिरण्य ॥ ५ ॥
परास्य अहिंसात्मक रूप से कहा है ॥ ६ ॥
जिस स्थान पर यह तीन शिशपा हैं ॥ ७ ॥
सब ओर तीन हैं ॥ ८ ॥
मौर ॥ ९ ॥
सींगों को धमन्त करते बैठे हैं ॥ १० ॥
यह दिन तुम्हारा सबसे बड़ा अश्व हो ॥ ११ ॥
वह प्रार्थना करने वाले का सधापन करने वाला है ॥ १२ ॥
गोमीदा गोगतियों के लिये सधाघ करता है ॥ १३ ॥
पुरुष और पृथ्वी तुमको पूजते हैं ॥ १४ ॥
हे वृद्ध पलप ! यह तेरा अनाज है ॥ १५ ॥
हे वृद्ध ! तेरी अघा है ॥ १६ ॥
वैविका समझे नहीं ॥ १७ ॥
गोलवधक में अश्व का आक्रमण है ॥ १८ ॥
यह धर्मनीपति है ॥ १९ ॥
यह उपजीविका अनामय है ॥ २० ॥

सूक्त (१३०)

को अर्य बहुलिमा इषूनि ॥ १ ॥
को असिद्याः पयः ॥ २ ॥
को अर्जुन्याः पयः ॥ ३ ॥

कः कार्ष्ण्यः पय· ॥ ४ ॥
एत पृच्छ कुह पृच्छ ॥ ५ ॥
कुहाकं पक्वक पृच्छ ॥ ६ ॥
यवानो यतिस्वभिः कुभिः ॥ ७ ॥
अकुप्यन्त कुपायकुः ॥ ८ ॥
आमणको मणत्सकः ॥ ९ ॥
देव त्वप्रतिसूर्य ॥ १० ॥
एनश्चिपक्तिका हविः ॥ ११ ॥
प्रदुद्र्‌दोमघाप्रति ॥ १२ ॥
शृङ्ग उत्पन्न ॥ १३ ॥
मा त्वाभि सखानो विदन् ॥ १४ ॥
वशायाः पुत्रमा यन्ति ॥ १५ ॥
इरावेदुमयं दत ॥ १६ ॥
अथो इयन्नियन्निति ॥ १७ ॥
अथो इयन्निति ॥ १ ॥
अथो श्वा अस्थिरो भवन् ॥ १९ ॥
उयं यकांशलोकका ॥ २० ॥

बहुत से तीरों को अपने अधिकार मे कौन रखता है ॥ १ ॥
असिद्यापय कौन सा है ॥ २ ॥
अर्जुन्यापय कौन सा है ॥ ३ ॥
कार्ष्णयपय कौन सा है ॥ ४ ॥
इससे पूछो, कुह से पूछो ॥ ५ ॥
कुहाकपक्वक से पूछ ॥ ६ ॥
पति के समान मैं पृथ्वीयो से युक्त हुआ ॥ ७ ॥
कुपायकु नाराज हो गया है ॥ ८ ॥

आमणक मण्त्मक ॥ ६ ॥
हे सूरज देवता ! ॥ १० ॥
एनश्चिप वत वाली यज्ञ सामिग्री ॥ ११ ।
प्रदद्रु दो मघाप्रति ॥ १२ ॥
श्रङ्ग पँदा ॥ १३ ॥
मेरा दोस्त तुझे और मुझे मिले। १४ ॥
वशा के पुत्र को मिलते हैं ॥ १५ ॥
हे इरावेदुमय दत ! ॥ १६ ॥
इसके बाद यह ऐसे हैं ॥ १७ ॥
फिर वह इस प्रकार है ॥ १८ ॥
फिर जवा अस्थिर होता है ॥ १९ ॥
उग यकाशलोकया ॥ २० ॥

सूक्त (१३१)

आमिनोनिति भद्यते ॥ १ ॥
तस्य अनु निभञ्जनम् ॥ २ ॥
वरुणो याति वस्वभि ॥ ३ ॥
शतं वा भारती शव ॥ ४ ॥
शतमाश्वा हिरण्यया । शत रथ्या हिरण्ययाः ।
शत कुथा हिरण्यया. । शत निष्का हिरण्यया ॥ ५ ॥
अहल कुश वर्तक ॥ ६ ॥
शफेनइव ओहत ॥ ७ ॥
आय वनेनती जनी ॥ ८ ।
वनिष्ठा नाव गृह्णन्ति ॥ ९ ॥
इद मह्यं मदूरिति ॥ १० ॥
ते वृक्षाः सह तिष्ठति ॥ ११ ॥

पाक बलि ॥ १२ ॥
शक बलि ॥ १३ ॥
अश्वत्थ खदिरो धव ॥ १४ ॥
अरदुपरम ॥ १५ ॥
शयो हतइव ॥ १६ ॥
व्याप पूरुष ॥ १७ ॥
अदहमित्यां पूषकम् ॥ १८ ॥
अपर्धच परस्वत ॥ १९ ॥
दौव हस्तिनो दृती ॥ २० ॥

आविनोनिति कहते हैं ॥ १ ॥
उसके बाद निभजन है ॥ २ ॥
रात के साथ वरुण जाते है ॥ ३ ॥
वाणा के अनगिनत बल ॥ ४ ॥
सौ सोने के घोडे सौ सोने के रथ सौ स्वर्णिम कृष्या और सौ स्वर्णिम निष्क हैं ॥ ५ ॥
अहल कुश वतक ॥ ६ ॥
शफ द्वारा वहन करता है ॥ ७ ॥
आय वनेनती जनी ॥ ८ ॥
वनिष्ठा नाव ली जाती है ॥ ९ ॥
यह मुझे प्रसन्न करता है ॥ १० ॥
वह वृक्षो मे बैठा हुआ है ॥ ११ ॥
पक्व बलि ॥ १२ ॥
शाक बलि ॥ १३ ॥
पीपल, खदिर धौ ॥ १४ ॥
आराम को पा ॥ १५ ॥
सोने वाला मरे हुये आदमी के समान है ॥ १६ ॥

पुरुष रमा हुआ है ॥ १७ ॥
मैं पूषा का दोहन करता हूँ ॥ १८ ॥
परस्वान हिरण को लाँघ कर मधं चं प्रवृत हो ॥ १६ ॥
हाथी की दातों को दुह ॥ २० ॥

सूक्त (१३२)

आदलाबुकमेककम् ॥ १ ॥
अलाबुकं निखातकम् ॥ २ ॥
कर्करिको निखातकः ॥ ३ ॥
तद् वात उन्मथायति ॥ ४ ॥
कुलायं कृणावादिति ॥ ५ ॥
उग्रं वनिषदाततम् ॥ ६ ॥
न वनिषदनाततम् ॥ ७ ॥
क एषां कर्करी लिखत् ॥ ८ ॥
क एषां दुन्दुभिं हनत् ॥ ९ ॥
यदीयं हनत् कथं हनत् ॥ १० ॥
देवी हनत् कुहनत् ॥ ११ ॥
पर्यागारं पुनः पुनः ॥ १२ ॥
त्रीण्युष्ट्रस्य नामानि ॥ १३ ॥
हिरण्य इत्येके अब्रवीत् ॥ १४ ॥
द्वौ वा ये शिशवः ॥ १५ ॥
नीलशिखण्डवाहनः ॥ १६ ॥
फिर एक राम तुरई ॥ १ ॥
राम तुरई, खोदने वाला ॥ २ ॥
कड़ी जमीन को खोदने वाला ॥ ३ ॥
वायु को चलाता है ॥ ४ ॥

कुलाय करता है ॥ ५ ॥
फैला हुआ उग्र की सेवा करता है ॥ ६ ॥
न फैलने वाले को सेवा नहीं करता ॥ ७ ॥
कौनसा कर्करी को इनमे से लिखता है ? ॥ ८ ।
वाद्य यन्त्र को इनमे से कौन मारता है । ६ ॥
यह हिंसित करती है तो व से हिंसित करती है ? ॥१०॥
देवी ने मारा, बडी बुरी तरह मारा ॥ ११ ॥
निवास के सब ओर जल्दी-जल्दी ॥ १२ ॥
ऊँट के तीन नाम हैं ॥ १३ ॥
एक मृग ने यह कहा ॥ १४ ॥
दो बालक है ॥ १५ ॥
नीलशिख डी वाहन है ॥ १६ ॥

सूक्त (१३३)

वितती किरणौ द्वौ तावा पिनष्टि पूरुषः ।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥ १ ॥
मातुष्टे किरणौ द्वौ निवृत्तः पुरुषानृते ।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥ २ ॥
निगृह्य कर्णकौ द्वौ निरायच्छसि मध्यमे ।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥ ३ ॥
उत्तानायै शयानायै तिष्ठन्ती वाव गूहसि ।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥ ४ ॥
श्लक्ष्णायां श्लक्ष्णिकायां श्लक्ष्णमेवाव गूहसि ।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥ ५ ॥
अवश्लक्ष्णमिव भ्रंशदन्तर्लोममति ह्रदे ।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥ ६ ॥

हे कुमारिके ! तू उसे जैसा समझती है वह वैसा नहीं है । दो किरण फैली हुई हैं, पुरुष उनका विसन करता है । १ ॥

हे मनुष्य ! तू जिस असत्य से छूटा है, तेरी माता भी दो किरणें हैं । हे कुमारिके ! तू जैसा समझती है वह वैसा नहीं है ॥ २ ॥

हे नीच वाली ! तू दोनो कानो से पकड कर देती नहीं, हे कुमारिके ! तू उसे जैसा समझती है नहीं हैं । ३ ॥

सोने के लिये तू जाती है । हे कुमारिके ! तू उसे जैसा समझती है, वह नहीं हैं ॥ ४ ॥

तू शलघिरणका, श्लक्षणा मे श्लक्षणु अवगूहन करती है । हे कुमारिके ! तू उसे जैसा समझती, वह वैसा नहीं है ।' ५ ॥

अवश्लक्षण के समान टूटे हुये दाँत लोम से पुष्कल तालाब मे है । हे कुमारिके ! तू उसे जैसा समझती है, वह वैसा नहीं है ॥ ६ ॥

सूक्त (१३४)

इहेत्थ प्रागपागुदगधराग् – अरालागुदभर्त्सथ ॥ १ ॥
इहेत्थ प्रागपागुदगधराग् –वत्साः पुरुषन्त आसते ॥ २ ॥
इहेत्थ प्रागपागुदगधराग् स्थालीपाको वि लीयते ॥ ३ ॥
इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्– स वै पृथु लीयते ॥ ४ ॥
इहेत्थ प्रागपागुदगधराग् - आष्टे लाहणि लीशायी ॥ ५ ॥
इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्—अक्षिलली पुच्छिलीयते ॥ ६ ॥

यहाँ चारो दिशाओ के अराल से उत्मर्सन करो ॥ १ ॥

मनुष्य बनने की इच्छा से बेटा बैठे हैं ॥ २ ॥
स्थालीपाक दुखी हो जाता है ॥ ३ ॥

वह बहुत लीन होता है ॥ ४ ॥

लाहन् मे लीशायो उपजीवन करती है ॥ ५ ॥

पूर्व, पशचिम उतर में इस प्रकार मछिलली पूंछ वाली होतो है ॥ ६ ॥

सूक्त (१३५)

भुगित्यभिगत. शलित्यपक्रान्तः फलित्यभिष्ठित. ।
दुन्दुभिमाहननाभ्यां जरितरोऽथामो दैव ॥ १ ॥
कोशबिले रजनि ग्रन्थेर्धानमुपानहि पादम् ।
उत्तमां जनिमां जन्यानुत्तमां जनीन् वर्मन्यात् ॥ २ ॥
अलाबूनि पृषातकान्यश्वत्थपलाशम् ।
पिपीलिकावटश्वसो विद्युत्स्वापर्णशफो गोशफो
जरितरोऽथामो दव ॥ ३ ॥
वी मे देवा अक्रंसताध्वर्यो क्षिप्रं प्रचर ।
सुसत्यमिद् गवामस्यसि प्रखुदसि ॥ ४ ॥
पत्नी यदृश्यते पत्नी यक्ष्यमाणा जरितरोऽथामो दैव
होता विष्टीमेन जरितरोऽथामो दैव ॥ ५ ॥
आदित्या ह जरितरङ्गिरोभ्यो दक्षिणमनयन् ।
तां ह जरित प्रत्यायस्तामु ह जरित प्रत्यायन् ॥ ६ ॥
तां ह जरितर्नः प्रत्यगृभ्णंस्तामु ह जरितर्नः प्रत्यगृभ्णः ।
अहानेतरसं न वि चेतनानि यज्ञानेतरसं न पुरोगवाम. ॥ ७ ॥
उत श्वेत आशुपत्वा उतो पद्याभिर्यविष्ठः ।
उतेमाशु मानं पिपर्ति ॥ ८ ॥
आदित्या रुद्रा वसवस्त्वेनु त इदं राधः प्रति गृभ्णीह्यङ्गिर ।
इदं राधो विभु प्रभु इदं राधो बृहत् पृथु ॥ ९ ॥
देवा ददत्वासुरं तद् वो अस्तु सुचेतनम् ।

युष्मां अस्तु दिवेदिवे प्रत्येव गृभायत् ॥ १० ।
त्वमिन्द्र शर्मरिणा हव्यं पारावतेभ्य ।
विप्राय स्तुवते वसुवनि दुरश्रवसे वह ॥ ११ ॥
त्वमिन्द्र कपोताय च्छिन्नपक्षाय वञ्चते ।
श्यामाकं पक्वं पीलु च वारस्मा अकृणोर्बहु ॥ १२ ॥
अरंगरो वावदीति त्रेधा बद्धो वरत्रया ।
इरामह प्रशंसत्यनिरामप सेधति ॥ १३ ॥

"भुक," "अभिगत," "शल" "अपक्रान्त,,, "फल" अभीष्ठित है। हे प्रार्थना करने वालो ! फिर तुम वाद्य यन्त्र को बजाने वाले दो दण्डों से खेलो ॥ १ ॥

पाँव को जूते में, धान को कोठी में और उत्तमा जानिमा जन्य तथा उत्तमा जानियो को मार्ग मे रखे ॥ २ ॥

हे स्तोता ! पृपातक, लौकी, पीपल, ढाक, वट, अवट श्वस, स्वापर्णशिफ, त्रिजली, और गोशफ के बाद बलसे खेल ॥ ३ ॥

हे अध्वर्यो, ! इन चमक्ते हुए देवताओं के सामने शीघ्र ही मन्त्रो को पढ़ो। तुम गायों के लिये सत्य रूप हो ॥ ४ ॥

पत्नी पूजा करती हुई दिखायी देती है। इसके बाद तुम डरो पर काबू पाने की कामना करो ॥ ५ ॥

हे स्तोता ! अङ्गिराओ से दक्षिणा लाये थे, उसे वह लाये थे। वह उसे लाये थे ॥ ६ ॥

हे स्तोता ! उसको उन्होने ग्रहण किया। जो तुमने ग्रहण किया। चेतनो को, अज्ञानेत रस को और यज्ञानेतरसको नहीं विशिष्ट चेतनो को हम पाते हैं ॥ ७ ॥

तुम सफेद और आशुयत्वा पद वाली ऋचाओ से जवानी प्राप्त करते हो। इन्हें आदर जल्दी पूरा करता है ॥ ८ ॥

हे आंगिरस ! आदित्य, वसु इन्द्र सब तुझपर अनुग्रह करते हैं। तू इस पैसे को ले । यह घन विशाल, वृहद विभु और वड़प्पन से भी सम्पन्न है । ९ ॥

देवता तुझे प्राण, ताकत, चैतन्यता देते हुए प्रत्येक अवसर पर प्राप्त होते रहें ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! तुम इस लोक, परलोक, दोनो से पार करने वालों के लिये शर्मरी से हवि वहन करो । जिसे अनाज प्राप्त होना कठिन है, उस स्तोता ब्राह्मण को बल प्रदान करो ॥ ११ ॥

हे इन्द्र ! बिना पर वाले कबूतर के लिये तुम पके हुये पीलु, अखरोट और बहुत सा जल प्रकट करो ॥ १२ ॥

चमड़े की रस्सी से बँधा हुआ अंगर बारम्बार शब्द करता हुआ पृथ्वी की कामना करता है तथा पृथ्वी विहीन स्थान का अपसेध करता है ॥ १३ ।

सूक्त (१३६)

यदस्या अंहुभेद्याः कृधु स्थूलमुपातसत् ।
मुष्काविदस्या एजतो गोशफे शकुलाविव ॥ १ ॥

यदा स्थूलेन पससाणौ मुष्का उपावधीत ।
विष्वञ्चा वस्या वर्धतः सिकतास्वेव गर्दभौ ॥ २ ॥

यदल्पिकास्वल्पिका कर्कन्धूकेव पद्यते ।
वासन्तिकमिव तेजनं यन्त्यवाताय वित्पति ॥ ३ ॥

यद् देवासो ललामगुं प्र विष्टीमिनमाविषुः ।
सकुला देदिश्यते नारी सत्यस्याक्षिभुवो यथा ॥ ४ ॥

महानग्न्य तृप्नद्वि मोक्रदवस्थानासरन् ।

शवितपानना स्वचमशाय मवनु दक्षम ॥ ५ ॥

महानग्न्यु लूखलमतिक्रामन्त्यब्रवीत् ।
यथा नय वनस्पते निरघ्नन्ति तथैवेति ॥ ६ ॥

महानग्न्युप ब्रूते भ्रष्टोऽथाप्यभूभुव ।
यथैव ते वनस्पते पिप्पनि तथैव त ॥ ७ ॥

महानग्न्युप ब्रूते भ्रष्टोऽथाप्यभूभुवः ।
यथा वयो विदाह्य स्वर्गे नमवदह्यते ॥ ८ ॥

महानग्न्युप ब्रूत स्वसावेशित पस ।
इत्थ फलस्य वृक्षस्य शूर्पे शूर्पं भजेमहि ॥ ९ ॥

महानग्नी कृपवाप शम्यया परि धावति ।
अथ न विद्म यो मृग शीर्ष्णा हरति धाणिकाम् ॥ १० ॥

इस पाप का नाश करने वाली का कृधु क्षीण होगया इसके मुष्क शकुन के समान गाणक मे प्रकम्पित होते हैं ॥ १ ॥

जब स्थून पस द्वारा मुष्का का अणु मे प्रहार किया गया तब रेत मे गधो के बढन के समान आच्छादिता मे मुष्क प्रवृद्ध होते हैं ॥ २ ॥

जो 'कर्कन्धू' सदृश अवपदन करने वाला है और जो अल्प से भी अल्प है वास्तविक तेज के समान श्वात के लिये विस्तृत मे गमन करते हैं ॥ ३ ॥

जब सुन्दर गात्र मे प्रवेश हुऐ देवता खुशी होते हैं तब अक्षिभू के समान नारी बनायी जाती है ॥ ४ ॥

महान अग्नि ऊपर खडे हुओ को उत्क्रमण न करता हुआ तृप्ति को प्राप्त होता है । हम चमकते हुओं को शक्ति व नन प्राप्त हो ॥ ५ ॥

महान अग्नि उलूखल को लाघती हुई कहने लगी—हे वनस्पते ! जैसे तुझे कूटते हैं, वैसे ही हो ॥ ६ ॥

महान अग्नि ने कहा—तू भस्म होकर भी बार-बार पैदा होता है। हे वनस्पते। जिस भाँति तू पूर्ण होता है, वैसे ही हो ॥ ७ ॥

महान अग्नि ने कहा—तू नष्ट होकर भी विकसित हो जाता है। दुखी अवस्था होकर स्वर्ग मे हवि के समान दुही जाती है ॥ ८ ॥

महान् अग्नि का कथन है कि यह पस भले प्रकार वढा दिया गया है। हम फल वाले पेड़ के सूप में सूप को प्रविष्ट करते हैं ॥ ९ ॥

कृक शब्द वाले पर महान् अग्नि दौडते है और हमें यह ज्ञात है कि वह हिरण के समान शिर के द्वारा धाणिका को हरते हैं ॥ १० ॥

महानग्नी महानग्नं धावन्तमनु धावति ।
इमास्तदस्य गा रक्ष यभ मामद्धयौदनम् ॥ ११ ॥

सुदेवस्त्वा महा नग्नीर्बबाधते महतः साधु खोदनम् ।
कुसं पीवरो नवत् ॥ १२ ॥

वशा दग्धामिमाङ्गुरि प्रसृजतोऽग्रं त परे ।
महान् वै भद्रो यभ मामद्धयौदनम् ॥ १३ ॥

विदेवस्त्वा महानग्नीर्विबाधते महयः साधु खोदनम् ।
कुमारिका पिङ्गलिका कार्द भस्मा कु धावति ॥ १४ ॥

महान् वै भद्रो विल्वो महान् भद्र उदुम्बर ।
महाँ अभिक्त बाधते महतः साधु खोदनम् ॥ १५ ॥

य कुमारी पिङ्गलिका वसन्तं पीवरी लभे्।
तैलकुण्डमिमाङ्गुष्ठं रोदन्तं शुदमुद्धरेत् ॥ १६ ।

महान् अग्नि महानग्न के पीछे दौडते हैं। इसकी इन्द्रियों का रक्षक हो। इस चावल को खा॥ ११ ॥

महान् अग्नि उत्पीडन करने वाला, बड बडो को कुरेदता है। यह स्थूल या कृप सभी को मिटा देता है ॥ १२ ॥

वशा ने दग्ध उ गली की रचना की। अन्य उग्रन को रचते हैं। यह बहुत कल्याणकारी है इस चावल को खा ॥ १३ ॥

यह महान् अग्नि विशिष्ट दु खदायक है। बडो को मिटा डालता है। पिंगलि कुमारी काम के बाद भाग जाती हैं। १४ ॥

विल्व और उदुम्बर दोनो ही बडे एव भद्र हैं। जो महान् ओर से पीडित करता है वह बड बडों को कुरेदता है ॥ १५ ॥

कुमारी पिंगल यदि बसन्त को प्राप्त करे तो तैल कुण्ड में से अगूठा के समान कुरेदती हुई इसका उद्धार करे ॥ १६ ॥

सूक्त (१३७)

(ऋषि—शिरिम्बिठि, बुध, वामदेव, ययाति, तिरश्ची द्युतानो वा, सुकक्षः। देवता—अलक्ष्मीनाशनम्, विश्वदेवा ऋत्विकस्तुतिर्वा, सोम पवमान, इन्द्र, मरुत इन्द्रो वृहस्पतिश्च। छन्द—अनुष्टुप्, जगती, त्रिष्टुप्, गायत्री)

यद्ध प्राचीरजगन्तोरो मण्डूरधाणिकी ।
हता इन्द्रस्य शत्रव. सर्वे बुद्बुदयाशवः ॥ १ ॥

कपृन्नरः कपृथमुद् दधातन चोदयत खुदत वाजसातये ।
निष्टिग्रय् पुत्रमा च्यावयोतय इन्द्रं सबाध
इह सोमपीतये ॥ २ ॥

दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।
सुरभि नो मुखा करत् प्र ण आयूं षि तारिषत् ॥ ३ ॥

सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः ।
पवित्रवन्तो अक्षरन् देवान् गच्छन्तु वो मदा ॥ ४ ॥

इन्दुरिन्द्राय पवत इति देवासो अब्रुवन् ।
वाचस्पतिर्मखस्यते विश्वस्येशान ओजसा ॥ ५ ॥

सहस्रधार पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः ।
सोम पती रयीणां सखेन्द्रस्य दिवेदिवे ॥ ६ ॥

अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदियान कृष्णो दशभिः सहस्रैः ।
आवत् तमिन्द्रः शच्या धमन्तमपस्नेहितीर्नृमणा अधत्त ॥ ७ ॥

द्रप्समपश्यं विषुणे चरन्तमुपह्वरे नद्यो अंशुमत्याः ।
नभो न कृष्णमवतस्थिवांसमिष्यामि वो
वृषणो युध्यताजौ ॥ ८ ॥

अध द्रप्सो अंशुमत्या उपस्थेऽधारयत् तन्वं तित्विषाणः ।
विशो अदेवीरभ्याचरन्तीर्बृहस्पतिना युजेन्द्रः ससाहे ॥ ९ ॥

त्वं ह त्यत् सप्तभ्यो जायमानोऽशत्रुभ्यो अभवः शत्रुरिन्द्र ।
गूढे द्यावापृथिवी अन्वविन्दो विभुमद्भ्यो
भुवनेभ्यो रण धाः ॥ १० ॥

त्वं ह त्यदप्रतिमानमोजो वज्रेण वज्रिन् धृषितो जघन्थ ।
त्वं शुष्णस्यावातिरो वधत्रैस्त्वं गा इन्द्र
शच्येदविन्दः ॥ ११ ॥

तमिन्द्र वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे ।
स वृषा वृषभो भुवत् ॥ १२ ॥

इन्द्र स दामने कृत ओ जष्ठ स मदे हित ।
द्युम्नी श्लोकी स सोम्य ॥ १३ ॥

गिरा वज्रो न सभृत सबलो अनपच्युत ।
ववक्ष ऋष्वो अस्तृत ॥ १४ ॥

जब प्राचीन मण्डरधारिणी हृदय प्रदेश को प्राप्त हुई, तब इन्द्र के सब दुश्मन मर गए । १ ।

तुम वपृथ को स्वीकार करो, मनुष्य वपृथ है। तुम अनाज प्राप्ति के लिये प्रेरणा करो। रक्षा के लिए पुत्र को उत्पत्ति करो और सोम पान इन्द्र को बुलाओ ।। २ ॥

इन्द्र के आरोहण के लिए मैं जल्दी चलने वाले घोड़े का पूजन कर चुका हूँ वे इन्द्र हम सुरक्षित करें और हमको महान् बनाते हुए हमारे जीवन को भी उत्कृष्ट करें ॥ ३ ॥

हृष प्रद सोम इन्द्र के लिए सत्कारित चुने। छन्ने से सोम का रस टपक रहा है। हे सोमो ! तुम्हारा बल देवताओं को प्रसन्न करें ॥ ४ ॥

इन्द्र के लिए सोम का शोधन किया जाता है। संसार के मालिक वाचस्पति अपने गुण से सुखी होते हैं ।। ५ ॥

यह सैकड़ा धारों वाला गमनशील सोम सत्कारित किया जा रहा है। यह धनेश्वर सोम हरेक स्तोत्र में इन्द्र का मित्र होता है ॥ ६ ॥

दश सौ कि णा से प्राकृष्ट करने वाले सूर्य पृथ्वी पर आकार अपने ओज से गड़े हुए और अपनी शक्ति से पृथ्वी को

हिंसित करने लगे। तब इन्द्र ने अपनी ताकत से उन्हें वहाँ से हटकर पृथ्वी की रक्षा की और अपने बल से ही जलवती शक्तियों को उन्होंने पृथ्वी पर स्थापित किया ॥ ७ ॥

कड़ा विचारशील शुक्र को अंशुमती के पास घूमते देखा है। सूर्य की तरह वह भी आकाश में रहते हैं मैं उनका आश्रित हूँ। वह फल की वर्षा करने वाली लड़ाई में तुम्हारा साथ दें ॥ ८ ॥

फिर अपने शरीर को शुक्र ने छोटा करके अंशुमती के कोड में प्रतिष्ठित किया, बृहस्पति की मदद से इन्द्र ने देव-सत्ता न मानने वाली जनता को मार दिया ॥ ९ ॥

हे इन्द्र ! तुमने आकाश और पृथ्वी को छूआ और उन्हें प्राप्त कर लिया। तुम सात अशत्रुओं से पैदा होकर उनके दुश्मन हो जाते हो। तुमने विभुत्व वाले भुवनों से लड़ाई की ॥ १० ॥

हे वज्रिन ! तुमने बलासुर को वज्र से मारा। तुमने उसे अपने हिंसात्मक साधनों से दूर कर दिया और गायें प्राप्त कर ली ॥ ११ ॥

विशालकाय वृत्र को नष्ट करने के कारण हम इन्द्र की प्रशंसा करते हैं। वह अभीष्ट वर्षक इन्द्र सबमें महान हो ॥ १२ ॥

पापियों को काबू में करने के लिए बलवान इन्द्र को रस्सी के समान किया। वह हर्षप्रद यज्ञ में प्रतिष्ठित होते हैं। वह इन्द्र सुन्दर, प्रसिद्ध एवं महान् हैं ॥ १३ ॥

वह इन्द्र पर्वत की तरह बली हैं, वह कभी पापी नहीं होते। वह महान यजमानों के लिए दुश्मन के धन को प्राप्त कराते हैं ॥ १४ ॥

सूक्त (१२८)

(ऋषि—वत्सः। देवता—इन्द्र । छन्द—गायत्री)

महाँ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँइव ।
स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे ॥ १ ॥
प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यद् भरन्त वह्नयः ।
विप्रा ऋतस्य वाहसा ॥ २ ॥
कण्वा इन्द्र यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम् ।
जामि ब्रुवत आयुधम् ॥ ३ ॥

इन्द्र महान् हैं, यह वर्षा के जल से युक्त बादल के समान वत्स के स्तोम द्वारा बढ़ोत्तरी को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

हे अश्विद्वय ! तुम सत्य बोलने वाली जनता का पालन करो। उस प्रजा को अग्नियाँ पवित्र करती हैं और यज्ञ वाहक अग्नि से ब्राह्मण उस प्रजा की रक्षा करते हैं ॥ २ ॥

इन्द्र को कण्व के स्तोमों द्वारा यज्ञ साधन रूप में किया और उसी को जामि आयुध कहती है ॥ ३ ॥

सूक्त (१२९)

(ऋषि—शशकर्ण । देवता—अश्विनौ । छन्द—बृहती, गायत्री, ककुप्)

आ नूनमश्विना युवं वत्सस्य गन्तमवसे ।
प्रास्मै यच्छतमवृकं पृथुच्छर्दिर्युयुतं या अरातयः ॥ १ ॥
यदन्तरिक्षे यद् दिवि यत् पञ्च मानुषाँ अनु ।
नृम्णं तद् धत्तमश्विना ॥ २ ॥
ये वां दंसांस्यश्विना विप्रासः परिमामृशुः ।

एग्नेत् काण्वस्य बोधतम् ॥ ३ ॥
अयं वां घर्मो अश्विना स्तोमेन परि षिच्यते ।
अय सोमो मधुमान् वाजिनीवसू येन वृत्र चिकेतथः ॥ ४ ॥
यदप्सु यद् वनस्पतौ यदोषधीषु पुरुदससा कृतम् ।
तेन माविष्टमश्विना ॥ ५ ॥

हे अश्विद्वय ! इसके बच्चे के विचरणार्थ एव मदद के लिये इसे सियार रहित घर दो और इसके दुश्मनो को दूर करो ॥ १ ॥

हे अश्विनी कुमारो ! अन्तरिक्ष और स्वर्ग मे जो पैसा है, निषाद पचम पुरुषो मे जो धन है उसे हममे प्रतिष्ठित करो ॥ २ ।

हे अश्वनो कुमारो ! ब्राह्मण तुम्हारे कार्यों का परिमर्शन करते हैं उस सत्र कर्म को तुम कण्व कृत ही समझो ॥ ३ ।

हे अश्विद्वय ! यह सामिग्री धन से पूर्ण है, यह स्तोम घर्म द्वारा सिचता है, यह सोम मधुर है । तुम इसी सोम के द्वारा आवरक शत्रु के ज नने वाले हो ॥ ४ ॥

हे अश्विद्वय ! जल, दवाइयो और वनस्पतियों मे जो कर्म निहित है, उससे मुझे युक्त करो ॥ ५ ॥

सूक्त (१४०)

(ऋषि—शशकर्ण । देवता—अश्विनौ । छन्द—बृहती, अनुष्टुप्, त्रिष्टुप,)

यन्नासत्या भुरण्यथो यद् वा देव भिषज्यथः ।
अय वां वत्सो मतिभिर्न विन्धते हविष्मन्तं
हि गच्छथः ॥ १ ॥
आ नूनमश्विनोर्ऋषि स्तोमं चिकेत वामया ।

आ सोम मधुमत्तम घर्मं सिञ्चा-दथर्वणि ॥ २ ॥
आ नन् रघुवर्तनिं रथ तिष्ठाथो अश्विना ।
आ वां स्तोमा इमे मम नभो न चुच्यवीरत ॥ ३ ॥
यदद्य वा नासत्योक्थैराचुच्युवीमहि ।
यद् वा वाणीभिरश्विनेवेत् काण्वस्य बोधतम् ॥ ४ ॥
यद् वां कक्षीवां उत यद् व्यश्व ऋर्षियद् वां दीर्घतमा जुहाय ।
पृथी यद् वां वैन्य सादनेष्वेवेदतो अश्विना
चेतयेथाम् ॥ ५ ॥

हे अश्विद्वय ! तुम तेज चलने और चिकित्सा के कार्य मे प्रवीण हो। तुम्हारा यह वत्स बुद्धियो द्वारा बीधा नही जाता तुम यज्ञ के पास गमन करते हो ॥ १ ॥

अपनी प्रार्थना-योग्य बुद्धियो के द्वारा मुनियो ने अश्विनी कुमारो के स्तोत्र को जान लिया। अत. मधुर सोम को अथर्व म सिंचित करो ॥ २ ॥

हे अश्विनी कुमारो ! तुम तेज चलने वाले रथ पर चढने वाले हो, तुम्हारे लिए की जाने वाली प्रार्थना व्योम के समान अडिग रहे । ३ ॥

हे अश्विनी कुमारो ! हम उक्थो द्वारा तुम्हारी शरण लेते हैं। यह कण्व की कृपा है कि हम आवाज के द्वारा तुम्हारी सेवा कर रहे हैं। ४ ॥

हे अश्विद्वय ! कक्षीवान, दीर्घतमा और व्यश्व मुनियो ने तुम्हे आहुति दी है। वन का वत्स पृथु तुम्हारे सब भवनो में है अत तुम चैतन्य होओ ॥ ५ ॥

सूक्त (१४१)

(ऋषि—शशकर्ण । देवता—अश्विनौ । छन्द—अनुष्टुप् जगती, बृहती)

यात छर्दिष्पा उत न परस्पा भूत जगत्पा उत नस्तनूपा ।

यन्निस्तोकाय तनयाय यातम् ॥ १ ॥
यदिन्द्रेण सरथ याथो अश्विना यद् वा वायुना
भवथ समोकसा ।
यदादित्येभिऋ॑भुभिः सजोषसा यद् वा विष्णोर्विक्रमणेषु
तिष्ठथः ॥ २ ॥
यदद्याश्विनावह हुवेय वाजसातये ।
यत् पृत्सु तुर्वणे सहस्तच्छ्रेष्ठमश्विनोरवः ॥ ३ ॥
आ नून यातमश्विनेमा हव्यानि वा हिता ।
इमे सोमासो अधि तुर्वशे यदाविमे कण्वेषु वामथ ॥ ४ ॥
यन्नासत्या पराके अर्वाके अस्ति भेषजम् ।
तेन नून विमदाय प्रचेतसा छर्दिर्वत्साय यच्छतम् ॥ ५ ॥

हे अश्विनी कुमारो ! तुम हमारी रक्षा करने वालो के रूप मे आओ। तुम हमारे घर की रक्षा करते हुए मिलो। हमारे शरीर के पुत्र, पौत्रादि के रक्षक रूप मे प्राप्त होओ और ससार की रक्षा करने वाले होकर मिलो ॥ १ ॥

हे अश्विनी कुमारो ! तुम इन्द्र के रथ मे साथ ही बैठकर चलते हो। तुम हवा के साथ रहते हो। तुम आदित्य और ऋभुओं के प्रेमी हो। तुम विष्णु के विक्रमणो मे भी पूरण हो ॥ २ ॥

हे अश्विनी कुमारो ! तुम यजमानो को जल्दी से प्राप्त होते हो। तुम अपनी महान् रक्षा करने वाली शक्ति से लडाई मे दुश्मन को वशमे करते हो। अन्न पाने के लिये मैं तुम्हे आहूत करता हूँ ॥ ३ ॥

हे अश्विद्वय ! यह हव्य तुम्हारे लिये भलाई का है। यह सोम तुर्वश, यदु और कण्व के हैं। तुम यहाँ जरूर आओ ॥ ४ ॥

हे अश्विनी कुमारो ! दूर की या पास की दवाई को अपने दानी मन द्वारा विशिष्ट शक्ति के लिये दो और बच्चे के लिये घर प्रदान करो ॥ ५ ॥

सूक्त (१४२)

(ऋषि शशकर्णः । देवता—अश्विनौ । छन्द—अनुष्टुप्, गायत्री ।

अभुत्स्यु प्र देव्या साकं वाचाहमश्विनोः ।
व्यावर्देव्या मतिं वि रातिं मर्त्येभ्यः ॥ १ ॥
प्र बोधयोषो अश्विना प्र देवि सूनृते महि ।
प्र यज्ञहोतरानुषक् प्र मदाय श्रवो बृहत् ॥ २ ॥
यदुषो यासि भानुना सं सूर्येण रोचसे ।
आ हायमश्विनो रथो वर्तिर्याति नृपाय्यम् ॥ ३ ॥
यदापीतासो अंशवो गावो न दुह्र ऊधभिः ।
यद्वा वाणीरनूषत प्र देवयन्तो अश्विना ॥ ४ ॥
प्र द्युम्नाय प्र शवसे प्र नृषाह्याय शर्मणे ।
प्र दक्षाय प्रचेतसा ॥ ५ ॥
यन्नू न धीभिरश्विना पितुर्योना निषीदथः ।
यद्वा सुम्नेभिरुक्थ्या ॥ ६ ॥

मैं अश्विनीकुमारों को ज्ञान और मति के साथ रहने वाला मानता हूँ । हे मेघे ! तुम मेरी बुद्धि को समझाओ और पुरुषों को धन दो ॥ १ ॥

हे स्तोताओ ! तुम सवेरे ही अश्विद्वय को प्रबोधित करो । हे सत्य रूप देवो, तुम उन्हें प्रशंसनीय करो । हे होता ! तुम उनके यश को सब ओर फैलाओ ॥ २ ॥

हे अश्विनी कुमारों के रथ ! तू अपने तेज से ऊषा से

मिलता हुआ सूर्य के साथ चमकता है वह रथ घोड़ों द्वारा रास्ते को जाता है ॥ ३ ॥

जब किरणें पान की हुई के समान होती हैं, तब गायों को रोनों से दुहा जाता है। उस समय हे अश्विद्वय ऋत्वियों को वाणी तुम्हारी प्रार्थना करती है ॥ ४ ॥

हे अश्विनी कुमारो! महान् यश, पुरुषों पर काबू पाने वाली शक्ति और कल्याण को प्राप्त करने के लिये सुन्दर मति द्वारा मैं तुम्हारी प्रार्थना करता हूँ ॥ ५ ॥

हे अश्विनी कुमारो! तुम अपने पालन करने वालों के लिये अपनी बुद्धियों द्वारा विराजमान होते हो और तुम कल्याणकारी कार्यों द्वारा प्रशंसा के योग्य होते हो ॥ ६ ॥

सूक्त (१४३)

(ऋषि—पुरुमं ढाजमीढो वामदेव.; मेध्य तिथिः। देवता—अश्विनौ। छन्द त्रिष्टुप्)

त वां रथ वयमद्या हुवेम पृथुज्रयमश्विना सगंति गोः।
यः सूर्यां वहति वन्धुरायुर्गिर्वाहस पुरुतम वसूयुम् ॥ १ ॥
युवं श्रियमश्विना देवता तां दिवो नपाता
वनथः शचीभिः।
युवोर्वपुरभि पृक्षः सचन्ते वहन्ति यत् ककुहासो
रथे वाम ॥ २ ॥
को वामद्या करते रातहव्य ऊतये वा सुतपेयाय वार्कः।
ऋतस्य व वनुषे पूर्व्याय नमो येमानो
अश्विना ववर्तत् ॥ ३ ॥
हिरण्ययेन पुरुभू रथेनेम यज्ञं नासत्योप यातम्।
पिबाथ इन्मधुनः सोम्यस्य दधथो रत्न विधते जनाय ॥ ४ ॥

आ नो यातं दिवो अच्छा पृथिव्या हिरण्ययेन सुवृता रथेन ।
मा वामन्ये नि यमन् देवयन्तः सं यद् ददे नाभिः
पूर्व्या वाम् ॥ ५ ॥
नू नो रयिं पुरुवीरं बृहन्तं दस्रा मिमाथामुभयेष्वस्मे ।
नरो यद् वामश्विना स्तोममावन्त्सधस्तुतिमाजमीढासो
अग्मन् ॥ ६ ॥
इहेह यद् वां समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना ।
उरुष्यतं जरितारं युवं ह श्रितः कामो
नासत्या युवद्रिक् ॥ ७ ॥
मधुमतीरोषधीर्द्याव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम् ।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तो
अन्वेनं चरेम ॥ ८ ॥
पनाय्यं तदश्विना कृतं वां वृषभो दिवो रजसः पृथिव्याः ।
सहस्रं शंसा उत ये गविष्टौ सर्वाँ इत् ताँ उप
याता पिबध्यै ॥ ९ ॥

हे अश्विनी कुमारो! हम तुम्हारे वेगवान् रथ का आज आह्वान करते हैं। तुम्हारा वह रथ ऊँचे नीचे स्थानों में जाता तथा सूर्य का वहन करता है। वह वाणी का वहनकर्त्ता, वसुओं को प्राप्त कराने वाला तथा गौओं से सुसगत होने वाला है। मैं उसी रथ को आहूत करता हूँ ॥ १ ॥

हे अश्विद्वय! तुम लक्ष्मी के अधिष्ठात्री देवता हो, तुम उसे अपनी शक्तियों द्वारा सेवन करते हो और उसे आकाश से पतित नहीं होने देते। रथ में तुम्हें वहन करने वाले विशाल अश्व और अन्न तुम्हारे शरीर से सदा मिले रहते हैं ॥ २ ॥

कौन हविर्दाता रक्षा प्राप्ति के लिये और सत्कारित, सोम को पीने के लिये तुम्हें आहूत कर रहा है, कौन तुम्हारी,

सेवा कर रहा है ? यज्ञ देवी इन्द्र को नमस्कार है । अश्विनी-कुमारों को यहाँ लाने वाले के लिए भी मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ३ ॥

हे अश्विद्वय ! तुम अपने स्वर्णिम रथ के द्वारा इस यज्ञ स्थान में आगमन करो । तुम सोम के मधुर रस का पान करते हुये इस सेवक पुरुष को रत्न धन प्रदान करो । ४ ॥

हे अश्विद्वय ! तुम अपने स्वर्णिम रथ के द्वारा आकाश से पृथिवी पर आगमन करो । अन्य पूजक तुम्हें रोक न सकें, मैं तुम्हारे निमित्त स्तुति करता हूँ ॥ ५ ॥

हे अश्विद्वय ! स्तोता मनुष्य स्तुति के साथ ही आजमीढ होते हैं । इस स्तोता यजमान को वीर्य द्वारा आविर्भूत होने वाले पुत्र पौत्रादि से युक्त धन दोनों लोकों में दो ॥ ६ ॥

हे अश्विद्वय ! इन्हें ऐसी सुबुद्धि दो, जिससे यह यजमान परस्पर समान मति वाले हों । इनकी अभिलाषा तुम पर ही निर्भर रहे और तुम इस स्तोता के रक्षक होओ ॥ ७ ॥

हमारे लिये आकाश मधुमय हो, अन्तरिक्ष मधुमय हो औषधियाँ भी मधुवती हों और क्षेत्रपति भी मधुमय हों । हम अमृतत्व को प्राप्त हुये उसके अनुगामी होते हुये घूमें ॥ ८ ॥

तुम्हारा स्तोत्र कर्म आकाश और पृथिवी में फलों का वर्षक है तुम सोम पान करके गो पूजा वाले सैकड़ों स्तोत्रों को प्राप्त होते हो ॥ ९ ॥

❀ इति विंश काण्ड समाप्तम् ❀

॥ इति अथर्ववेद समाप्तम् ॥

मुद्रक श्री प्रिन्टिंग प्रेस,